

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुष्पम्

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्



(ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डात्मकम)

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम्,
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।
वीरान्द्व्यष्ट चतुष्कषष्टि नवकं वीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥



५, क्लाइव रो,
कलकत्ता

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	ख्रैस्ताब्दः
२०११	५०००	१९५४



Gurumandal Series No. XIV.

THE

Brahma Vaivarta Puranam

(Brahm-prakriti-Ganeshkhandatmkam).

By

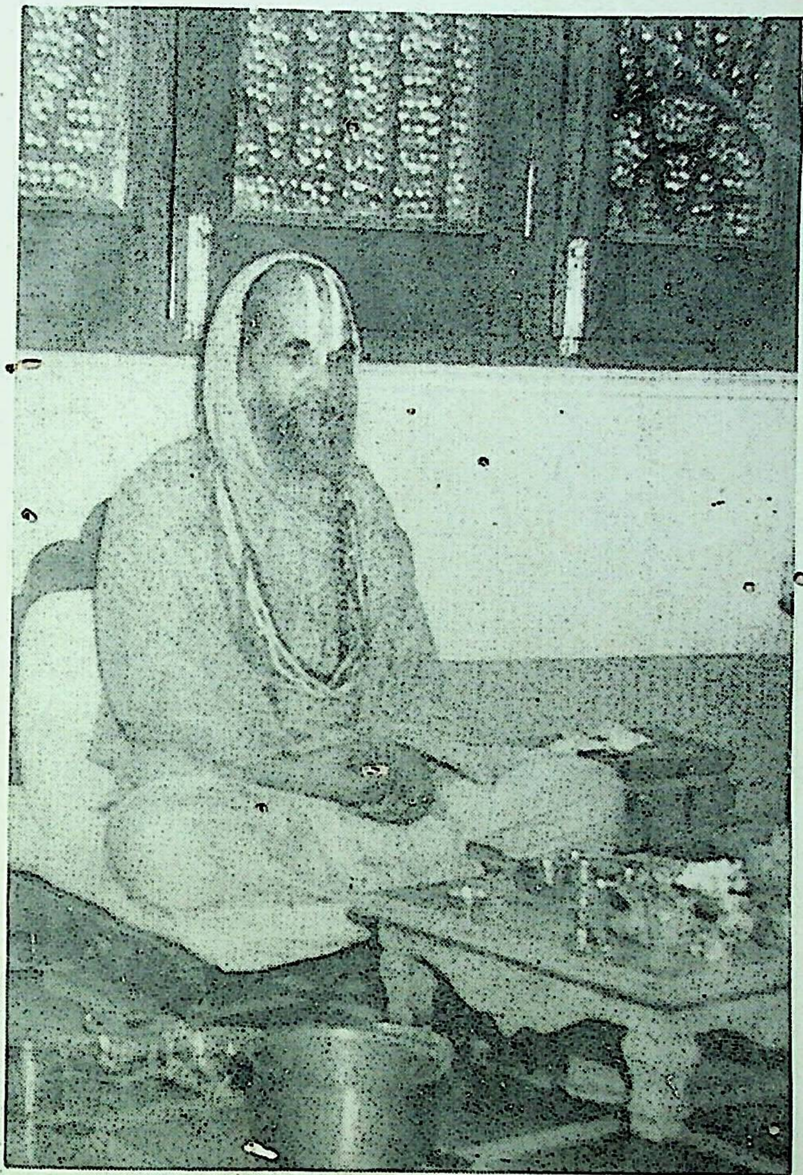
MAHARSHI KRISHNADWAIPAYAN VYAS.

5, Clive Row,

Calcutta.

Vikram Era.	First Edition.	Christian Era.
2011	5000	1954

Printed by :
Gopal Printing Works
198/1, Cornwallis St.,
Calcutta - 6.



भगवद्रामानुजपीठाधिपति

वैष्णवाचार्य श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिपाद

राजमन्दिर, बनारस।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री पुराणपुरुषोत्तमाय नमः ॥

समर्पणम्

श्रीमतां विविधज्ञानविज्ञानविचक्षणप्रभविष्णूनां अशेषशास्त्रपारायणैकदिव्यचक्षुषां तपसा त्यागेन ब्रह्मवर्चसा शमेन दमेन दयया च प्रकाशितदिव्यगुणौघानां अजस्रं कर्मभक्तिज्ञानत्रिवेणीधाराप्रवाहाय कृतभगीरथपरिश्रमाणां समस्तभारते स्वविद्वत्ताप्रकाशेन चमत्कृतानेकविद्वत्परिषत्प्रकर्षोत्कर्षवतां शान्तिस्वरूपाणां अधिभूमण्डलं भागवतधर्मप्रसाराय विजयवैजयन्तीसमुत्तोलनपराणां नानाविलक्षणयुक्तिवादैरपास्तनिर्विशेषप्रतिपक्षजन्मनां विद्वत्कुलभूषणानां सनातनधर्मधुरन्धराणां वैष्णवाग्रगण्यानां उत्तरप्रतिवादिभयङ्कराणां वाराणसीस्थ जगद्गुरुभगवद्रामानुजाचार्यपीठाधिपतीनां श्रीमतां १००८ पूज्यप्रवर भगवत्पाद श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिमहाभागानां करकमलेषु श्रीगुरुमण्डलग्रन्थमालाचतुर्दशपुष्पोपहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणमिदं सादरं सविनयञ्च समर्प्यते—

विजयैकादशीदिनम्
विक्रम सं० २०१२ ।

श्रीमतां चरणसेवकः
श्रद्धाभक्तिविनम्रः—
राधाकृष्ण मोरः
५, क्लाइव रो, कलकत्ता

|| श्रीगणेशायनमः ||

आरम्भे हसितं भुजभ्रमकृतैरान्दोलनैर्विस्मितम् ।
म्लानं बाहुलतोपीपड़नभिया प्रोल्लासने भूभृतः ॥
दत्ताः कृष्णकराब्जशायिनि नगे श्रेयांसि पुष्णन्तु वो (नो) ।
गोपीभिर्भुजवल्लिकङ्कण क्वणत्कारोत्तरास्तालिकाः ॥

आमुख

श्रीप्रभुकृपा से पूज्य पिताजी की यह दृढ़ निष्ठा रही है कि अपने पुरुषार्थ से उन्होंने किसी न किसी श्रेष्ठ कर्म के आयोजन में कहीं रहते हुए भीजुटकर उसकी पूर्ण सफलतातक लगे रहने का ही सदा प्रयत्न किया है। मनुष्य की स्वाभाविक अभिलाषा है कि जीऊँ, जागूँ, जानूँ, अधिकार समर्थ बनूँ, आनन्द पाऊँ, और स्वतन्त्र रहूँ। इसकी विशेष व्याख्या तो विद्वज्जन ही करेंगे परन्तु मनुष्य की लोकैषणा, धनैषणा और पुत्रैषणा में उस इच्छा का कुछ-कुछ चित्रण अवश्य मिलता है। जीवन को प्रशस्त करने में पुरुषार्थी महानुभाव इसमें कृतकार्य होते हैं एवं पुरुषार्थ-हीन असफल। आपके दो मुख्य सिद्धान्त हैं; संसार में मनुष्य परमपिता का ज्येष्ठ पुत्र है अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमय चाभी उसे सौंप कर प्रभु निरपेक्ष होकर उसके क्रियाकलाप को देखते हैं। प्राणीमात्र की रक्षा का पूर्ण दायित्व उसपर रखकर निर्भर हो जाते हैं और उसके श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न हो सदैव उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। इसके साथ-साथ मनुष्य अपनी ओर से अहिंसा, सत्य एवं प्रेम का पाठ जगत् के प्राणीमात्र को अपने सद् आचरण से पढ़ाकर

सभी को "जीवो और जीने दो" की कला सिखाता है। सृष्टि में कोई भी आर्त न रहने पावे इसके लिये अदम्य उत्साह से यथाशक्ति प्रयत्न करता है। उसकी यह चेष्टा प्राचीनकाल से आरम्भ होकर आजतक नीचे लिखे डिण्डिमघोष करने योग्य मन्त्र का जप करते हुए भारतीय जंनपद में हिंसा को नष्ट कर अहिंसा प्रचार के रूप में रहती आई है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
[शुक्ल यजुर्वेद ४० अ० १ मन्त्र]।

ईश्वर का कथन है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा हैं; ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग, जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है, भोगो। किसी भी प्राणी की शक्ति को (दूध को) हरण करने की भावना मनमें भी न आने दो। यह क्रम मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, पुलह और पुलस्त्य आदि महान् विभूतियों से स्वीकृत होता हुआ संसार के सभी मतमतान्तरों और सम्प्रदायों को लेकर सृष्टि के उत्थानकालतक बराबर चलता रहा जो आज भी विश्वसाहित्य में सन्तवाणी के रूप में भारतीयों के विश्वभ्रातृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण और अहिंसक भावना का अपूर्व आदर्श है। विशेषता यही है कि यह सब अमर साधक अरविन्द, महर्षि रमण, विश्ववन्द्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र और सुप्रसिद्ध अमर सेनानी सुभाष बाबू के ही भारत में विशेषरूप से प्रचलित हुआ। भगवान् बुद्ध, महावीर तीर्थङ्कर और सम्राट् अशोक के ज्वलन्त आदर्श सिद्धान्तों को आज भी भारत सरकार ने "अहिंसा परमो धर्मः" के रूप में अशोक चक्र के राज्यचिह्न के रूप में प्रधानस्थान देकर अपना शान्तिमार्ग को प्रशस्त किया है यह एक अभूतपूर्व घटना है। ऐसे सभी वरेण्य मानव और प्राणीमात्र के उद्धारक नरपुङ्गवों को हम अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

जिनके निःस्वार्थ विश्वप्रेम ने मानवको दानव एवं पशु होने से सदा बचाया साथ ही प्राणिरक्षा के सामने अपने जीवन की भी आहुति दे मानव का गौरव बढ़ाया।

दूसरे सिद्धान्त का रूप है शास्त्रप्रचार—इसमें मानव की उदात्त भावनाओं का सभी दिशाओं में विकास होने से जीवनस्तर ऊँचा होगा और सभी प्रकार की आधिव्याधियां सृष्टि से विदा हो जायगी। उन्हें यह इष्ट है कि जिस भारतीय साहित्य ने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती और पञ्चाम्बु तथा कृष्णा और कावेरी आदि की रज में उद्भूत होकर विश्व का मार्ग दर्शन किया उसका प्रसार आज के विज्ञानयुग में अधिकाधिक प्रकाशन द्वारा कियाजाय। इसी उद्देश्य से आपने अपने गार्हस्थ्यजीवन को कठिन अनुभवों की कसौटी पर कसते हुए गम्भीर मनन और अध्ययन द्वारा शास्त्रचर्चा के व्याज से विद्वत्समुदाय की सहायता से विशुद्ध पवित्र विचारों का सङ्कलन ग्रन्थ 'गृहस्थधर्म' षष्ठ संस्करणात्मक वितरण किया। इसका स्पष्ट प्रभाव हिन्दीभाषी क्षेत्रों में लोकप्रियता और एक अपूर्व धार्मिक क्रान्ति, उत्साह की लहर, एवं जनजागृति के रूप में स्पष्ट हुआ जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे ग्रन्थप्रकाशन के सम्बन्ध में प्रतिदिन आनेवाले बीसियों प्रशस्तिपत्र हैं जिनमें कितने हजार तो 'सम्मति और उद्गार' के आकार में गुरुमण्डल के आठवें पुष्प के रूप में सङ्कलित कर दो वर्ष पूर्व प्रकाशित भी किये गये हैं। मुझे आरम्भ से उनके सान्निध्य का लाभ मिला है और इसीलिये उनके अगाध वात्सल्य का पूर्ण अनुभव करने का सुयोग भी। उनकी इच्छानुसार जैसे मैं उनके पदचिह्नों पर चलकर आदर्श नागरिक होने का स्वप्न देखता हूं, उसी प्रकार एक सच्चरित्र पिता में भगवत्सन्निधि समझ पालन, पोषण शिक्षा और दीक्षा द्वारा अपने तुच्छ क्रियाकलाप से उनकी आज्ञा में रहते हुए एक आज्ञाकारी पुत्र होने का भी मुझे गौरव मिले इसके लिये प्रयत्नशील रहताहूं। पूज्य पिताजी अपने सत्यवादपूर्ण जीवन में एक ओर तो अजेय हिमालय के समान सिद्धान्तरूप में अडिग हैं तो दूसरी ओर उसीसे निकलनेवाली कलकल शब्द से विश्व को

मुखरित करनेवाली श्वेताभ पवित्र निर्मल गङ्गा के समान अपने में विश्वबन्धुत्व की भावना (सभी प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूतिपूर्ण उदार भाव) रखते हुए पुष्प से भी कोमल हृदय रखते हैं। अपने आदर्श वाक्य "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामर्ति नाशनम्" के द्वारा उठते-बैठते उन्हें प्राणीमात्र के दुःखको मेटने की याद बनी रहती है और उसीके लिये कृतसङ्कल्प हो दिन-रात भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

विक्रम सम्वत् २०१० के चैत्रमास में जब श्री पितुःश्री स्वास्थ्यसुधार के लिये नवलगढ़ गये हुए थे वहां पर अपने पण्डितद्वय श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी तथा पं० कजोड़ीलाल मिश्र के सहयोग से स्थानीय विद्याविवर्द्धन पुस्तकालय तथा सात्विकजीवनशाला के पुस्तकालय से प्रायः अठारह पुराणों के पारायण का उपक्रम किया। पुराण पूर्ण संख्या में न मिलने के कारण केवल बारह पुराणों की ही आवृत्ति हो सकी। जो लोग आपके स्वाध्याय क्षणों में साथ रहते और उन्हें शास्त्रचर्चा करने का अवसर देते हैं उन्हें शास्त्रीय परम्परानुमोदित नवीन-नवीन अनुसन्धानों से आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। मैं तो अपने पिताजी को ही इस सब का श्रेय दूँ तो अत्युक्ति नहीं; फिर भी जिनके निःस्वार्थ कार्यों का सहयोग इन सभी शास्त्रचर्चाओं में हुआ है उन सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। हां, तो पिताजी को जो धुन सवार होती है उसे वे करके रहते हैं। मत्स्यपुराण के शङ्खचूड़ आख्यान को बार-बार पढ़ते हुए उन्हें वर्तमान शासन की परिस्थिति और कलहप्रिय प्रजा का दयनीय दृश्य व्याकुल करने लगे। आपने सृष्टि को अपने पूर्व गौरवगाथा का स्मरण करा पुरुषार्थ द्वारा स्वर्गतुल्य बनाने के लिये 'मानवजीवन और अहिंसा;' 'गृहस्थधर्म के सिद्धान्त' और 'सृष्टि की रक्षिका मातृजाति' शीर्षक से कई लेखमालायें कलकत्ता के दैनिक 'सन्मार्ग', 'लोकमान्य' एवं 'विश्ववन्धु' पत्रों में निकालीं। फिर तो मूल से ही सबको मानवता का अमूल्य सन्देश मिले इस आशय से पुराणों के प्रकाशन का श्रीगणेश का प्रस्ताव मुझे प्रत्यक्ष आदेशरूप में कलकत्ता लिख भेजा। अभीतक पूर्वपरम्परा के

अनुसार जहां व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योगधन्धों में उनके आज्ञाकारी विनयावनत पुत्र के रूप में आदेश पालन करने का मैं अधिकारी हूं वहां घर के सभी कार्यों में उनका आदेश ईश्वराज्ञा रूप में ही हमें इष्ट होता है। यही बात पुराणप्रकाशन के प्रस्ताव के समय भी हुई। कलकत्ते में वाबूजी के अन्यतम कार्यकर्ता और उनके निरुक्त स्मृति सन्दर्भ के सम्पादन में कार्य करनेवाले अपना व्यस्तजीवन का उपयोग शास्त्रों के स्वाध्याय में लगानेवाले श्री रामनाथदाधीच शास्त्री नवलगढ़ निवासी ने निरन्तर परिश्रम कर वाबूजी के स्वदेशवास के सात मास की स्वल्प अवधि में दश हजार श्लोकों के प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। अपने उत्साह की सीमा का अतिक्रमण कर श्रीमान् वाबूजी ने स्वास्थ्य में सुधार होते ही पुराण-परिचय से अपनी भूमिका तैयार की। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त विषय-सूची बड़ी गवेषणा और प्रामाणिकता के साथ बनाई गई। आपका यह लेख वास्तव में पुराणोक्त परिचय के सम्बन्ध में नई सूझ है। यह प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के पुराण एवं भारतीय समाज के प्रति सम्माननीय सामयिक उद्धरणों से वहुत ही गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं मननीय सामग्री प्रस्तुत करता है। विषय की प्रगल्भता और दुरूहता से लम्बा होने पर भी पाठ्य-वस्तु का क्रम पठनीय है साथ ही चारों ओर के पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसकी प्रतिपादन शैली विशेष प्रौढ़ हो गई है। वास्तव में पुराणों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री से सुसज्जित पूर्ण परिचय देनेवाली अपने ढंग की यह एक अभिनव रचना है।

सदा की तरह ही इन महान् ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रेरक श्रीमान् पिताजी की इस ब्रह्मवैवर्त महापुराण के विषयों को ध्यान में रखते हुए एक ही मान्यता रही है कि जो पाश्चात्य राष्ट्र शास्त्रचर्चा को तिलाञ्जलि देकर शस्त्र के बल पर परमाणु एवं उद्रजन जैसे संहारास्त्रों के हिंसक प्रयोगों के बल पर शान्ति सुरक्षा और न्याय का दम भरते हैं उनकी आंखें खोली जाय तथा उनका अनुकरण करनेवाली मध्यपूर्व, पूर्व और सुदूरपूर्व दक्षिण-पूर्वी

एशिया के अल्पविकसित आत्मनिर्भरता के पथ को प्रशस्त करनेवाले राष्ट्रों को नव-जागरण के प्रभात में ही इस अमूल्य देन से सच्चा मार्ग दर्शन हो; जिसकी आधार-शिला विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, कल्याण और अहिंसा के अमर सन्देश देनेवाले इस ब्रह्माण्ड के प्राण इन महापुराणों के पारायण से मन्थन की हुई विचारधारा हो और जनताजनार्दन सच्चे अर्थों में मानवी गुणों को अपनाकर लोकहित में अपना पराया न समझकर लग जाय। इसी उद्देश्य से यह बृहत्प्रकाशन सेवी में प्रस्तुत है।

वैसे तो "न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते" इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार किसी प्रकार विद्वत्समुदाय के सामने ब्रह्मवैवर्त के विषयों के लिये निवेदन करना सूर्य को दीपक दिखाना है फिर भी प्रसङ्गवश ब्रह्मवैवर्त के विभिन्न खण्डों का परिचय देना आवश्यक है। यह महापुराण सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार और वैष्णवों के हृदय का हार है। इसके प्रतिपाद्य गोलोकनाथ परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिकाजी हैं जो नित्य ही गोलोक में गोगोपीगोपगण के साथ रासक्रीड़ा करते हुए सहृदय भक्तगण को अपूर्व अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। इसमें चार खण्ड हैं—प्रथम ब्रह्मखण्ड; द्वितीय प्रकृतिखण्ड; तृतीय गणेशखण्ड और चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड है—

सारभूतंपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वं तत्त्वज्ञानविवर्द्धनम्॥
कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्चमोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्॥
ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम्॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्।
तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्॥

कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः।
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत्स्थानं शुभाशुभम्॥
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणन्ततः।
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्मपरिकीर्तितम्॥
अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्॥५२॥
गणेशभृगुसम्वादसर्वतत्त्वनिरूपणम्।
निगूढ़कवचस्तोत्र मन्त्रतन्त्रनिरूपणम्॥५३॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्तितञ्च ततःपरम्।
भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीष्णजन्मकर्म च॥
भुवो भारावतरणं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम्।
सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डनिरूपितम्॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम्।
विवृतं ब्रह्मकात्स्न्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक!॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः॥
(उपक्रमाध्यायः)

इस बार ब्रह्मवैवर्त में विषय-सूची बहुत विस्तार से हिन्दी भाषाभाषी जनता के लाभार्थ दी गई है। आशा है, पुराण-प्रेमियों को इससे सन्तोष होगा। अभी कुछ समय से ब्रह्मवैवर्त के तृतीयखण्ड का एक काशीरहस्यभाग बनारस से मिलने की आशा है जो सम्पूर्ण ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग बनाने और अबतक के छपे ब्रह्मवैवर्त के संस्करणों में विशिष्टता रखनेवाला होगा। भगवत्कृपा से इसको परिशिष्टरूप से ही सम्मिलित करने का विचार है इसके लिये हम श्रद्धेय वैष्णवाचार्य प्रतिवादिभयंकर श्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज भगवद्रामानुजपीठा-

धिपति, राजमन्दिर, बनारस के शुभाशीर्वाद से अनुगृहीत हुए हैं। इस ग्रन्थ का सादर समर्पण उन्हीं आचार्यश्री के करकमलों में अर्पित कर मैं अपना कर्तव्य का पालन कर सन्तुष्ट होता हूं। अब इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर उपसंहार करना चाहता हूं।

इतने बड़े विस्तार को लेकर संस्कृत के ग्रन्थों का सम्पादन वैसे ही कठिन है। प्रूफ संशोधन, भूमिका लेखन, विषय-सूची और शुद्धिपत्र तैयार करने में हमारे श्री मोरप्राच्य शोधप्रतिष्ठान की विद्वन्मण्डली का पूर्ण सहयोग रहा है। प्रभु उन्हें हमारे इस कार्य की पूर्णता के लिये सतत सम्बल और क्षमता प्रदान करते रहे और उनका सदा ही हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहे यही शुभ कामना है। पूज्यपाद १००८ श्रीमान् गुरुवर्य आचार्य करुणामय सरस्वती और राजगुरु पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री देहरादून का कृतज्ञतापूर्ण आभार मानता हूं। उभय विद्वद्धुरन्धर हैं इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत विवेचन, प्रतिभा,, विलक्षण स्मृति अपूर्व मेधा और विचित्र वाग्वैदग्ध्य पूर्ण समन्वय शक्ति से हमें शङ्कास्थलों पर विशेष प्रमाणों द्वारा सन्देह निवृत्ति के लिये अवसर और शुभाशीर्वाद मिला है।

पुनः अपने सभी अनुग्राहक सम्मान्य पाठक महानुभावों से अपनी भूलों के लिये प्रार्थना करते हुए आप सभी को अमूल्य सत्परामर्शों के लिये बारम्बार साग्रह अनुरोध करता हूं जिनसे हमें भूलसुधार में सहायता मिलती रहे। अब आप सभी गुणग्रहणैक पक्षपाती महानुभावों की सेवा में अपने परिवार की यह अनुपम भेंट 'पुरा नवं भवति' कहते हुए मुझे आत्मसन्तोष एवं गौरव अनुभव होरहा है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी महानुभाव हमारी अपूर्णताओं को क्षमा करते हुए प्रतिदिन इस दिव्यवाणी के स्वाध्याय प्रसार द्वारा इस परिश्रम को सफल बनायेंगे और जो कुछ तुच्छ सेवा हमसे होगी उससे उन पुराणवक्ता महर्षिकल्प आचार्यों के आदर्शवाक्यों से जनता का विशेष हित सम्पादन करेंगे।

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये"

कार्तिक शुक्ला
देवोत्थापिनी एकादशी
विक्रम सम्वत् २०११

विद्वज्जनचरणसेवक—
राधाकृष्ण मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता।

श्रीराधाकृष्णौ प्रसीदेताम्

सम्पादकीयं निवेदनम्

श्रीभगवत्कृपया वैष्णवहृदयहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणं सहृदयधुरीणानां विद्वज्जनचूड़ामणीनां करकमलेषु प्रस्तूयमाना नितरांहृदयतोषं प्रसन्नताञ्चाऽनुभवामः। ग्रन्थेऽस्मिन् कियता विस्तारेण ज्ञानकर्मोपासनरहस्यानां गूढ़तमं तत्त्वं सविस्तरं प्रकटीकृतमिति विद्वांस एवाऽवगच्छन्ति। गमिष्यन्ति च ग्रन्थस्य पारं प्रतिदिनं पारायणैकशीलाः कृष्णभक्तिविलसितदेहभाजः सज्जनाः। श्रीमतां भगवत्पाद रामानुजाचार्यपीठाधिपतिनां वाराणसेयप्रतिवादिभयङ्करेत्यादि विविधविरुदोपेतानां श्री१००८ देवनायकाचार्यस्वामिमहाभानां करकमलेषु समर्पयन्तः श्रेष्ठिप्रवरवैदिकविचारचर्चापरायणैक शास्त्रव्यवस्था प्रकाशननिपुणामां गीर्वाणवाणीसेवासक्तस्वनामधन्यश्रीमनसुखरायमोरमहोदयानां ज्येष्ठसुपुत्राः श्रीराधाकृष्णमोरमहाशयाः नितरां धन्यवादार्हाः। स्थाने एव यत्सद्धर्मप्रचाराय कृतस्य प्रयत्नस्य पूर्णता गोविन्दगुणानुवादकीर्तनपरायणानां विद्वद्धुरन्धराणां श्रीस्वामिसदृशाचार्यचरणानां कृतेऽपूर्वज्ञानविज्ञाननिधानयोःश्रीराधाकृष्णयोर्भक्तिप्रसङ्गात्मकस्य पुराणस्यास्य समर्पणं विश्वकल्याणकारणपरमिति निश्चिनुमः। आशास्महेऽस्माकं भ्रमप्रमादालस्यादिदोषवशाद्ग्रन्थेऽस्मिन् त्रुटयःस्युस्ताः गुणग्रहणैकपक्षपातिनो विद्वांसो निपुणं संशोध्यकृतार्थयिष्यन्तीति।

विदुषांविधेयाः

श्रीब्रह्मदत्तत्रिवेदि कजोड़ीलाल मिश्र रामनाथदाधीचाः।

गङ्गादशहरादिनम्
ज्येष्ठ शुक्ला दशमी
२०११ विक्रमाब्दः

श्रीमोरप्राच्यशोधसंस्थानम्
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता।

सर्पाणां तु तथा राज्ये अभिषिच्य स तक्षकम् ॥ १५ ॥

वारणानां ततोराज्ये ऐरावणमसिञ्चता । अश्वानांचैव सर्वेषामुच्चैःश्रवसमेव च ॥
पक्षिणांचैव सर्वेषां वैनतेयमथापि सः । मृगाणां च ततोराज्ये ब्रह्मा सिंहमथादिशत्
गोवृषं तु गवांमध्ये अभिषिच्य प्रजापतिः । वनस्पतीनां सर्वेषां प्लक्षमेव पितामहः ॥

एवं राज्यानि सर्वाणि संस्थाप्य च पितामहः ।
दिशापालांस्ततो ब्रह्मा स्थापयामास सत्तमः ॥ १६ ॥

वैराजस्य तथापुत्रं पूर्वस्या दिशिसत्तमः । सुधन्वानं दिशःपालं राजानं सोऽभ्यषिञ्चत
दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः । पुत्रं शङ्खपदंनाम राजानं सोऽभ्यषिञ्चत ॥
पश्चिमायां तथा ब्रह्मा वरुणस्य प्रजापतेः । पुत्रं च पुष्करंनाम सोऽभ्यषिञ्चत्प्रजापतिः
उत्तरस्यां दिशि ब्रह्मा नलकूबरमेव च । एवं चैवाभ्यषिञ्चच दिक्पालान्स महौजसः ॥
यैरियं पृथिवीसर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना । यथा प्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते ॥२४॥

पृथुश्चैवं महाभागः सोऽभिषिक्तो नराधिपः ।
राजसूयादिभिः सर्वैरभिषिक्तो महामखैः ॥ २५ ॥

विधिना वेददृष्टेन राजराज्ये महीपतिः । चाक्षुषेनाम्नि सम्पुण्ये अतीते च महौजसि
मन्वन्तरे महाभाग देवपुण्यहितैषिणि । ततो वैवस्वतायैव मनवे राज्यमादिशत् ॥
विस्तरं चापिव्याख्यास्ये पृथोश्चैव महात्मनः । यदि मामेव विप्रेन्द्रशुश्रूषसिअतन्द्रितः
एतदेवमधिष्ठानं महत्पुण्यं प्रकीर्तितम् । सर्वेष्वेव पुराणेषु एतद्धि निश्चितं सदा ॥
पुण्यंयशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम् । धन्यं पवित्रमायुष्यं पुत्रदं वृद्धिदायकम्
यः शृणोति नरोभक्त्या भावध्यानसमन्वितः । अश्वमेधफलं तस्य जायते नात्रसंशयः

इति श्रीपाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे राज्याभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

पृथुचरित्रवर्णनम् ।

ऋषयऊचुः ।

विस्तरेण समाख्याहि जन्म तस्य महात्मनः । पृथोश्चैव महाभाग श्रोतुकामा वयं पु
राज्ञा तेन यथादुग्धा इयं धात्री महात्मना । पुनर्देवैश्च पितृभिर्मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथायक्षैर्यथा द्रुमैः । शैलैश्चैव पिशाचैश्च गन्धर्वैःपुण्यकर्मभि
ब्राह्मणैश्च तथा सिद्धै राक्षसैर्भीमविक्रमैः । पूर्वमेव यथादुग्धा अन्यैश्च सुमहात्मभि

तेषामेव हि सर्वेषां विशेषं पात्र धारणम् ।
क्षीरस्यापि विधिं ब्रूहि विशेषं च महामते ॥ ५ ॥

वेनस्यापि नृपस्यैव पाणिरेव महात्मनः । ऋषिभिर्मथितःपूर्वं स कस्मादिहकारण
क्रुद्धश्चैत्र महापुण्यैःसूतपुत्र वदस्वनः । विचित्रेयं कथापुण्या सर्वपापप्रणाशिनी

श्रोतुकामा महाभाग तृप्तिर्नैव प्रजायते ॥ ८ ॥

सूत उवाच ।

वैन्यस्य हि पृथोश्चैव तस्य विस्तरमेव च । जन्मवीर्यं तथाक्षेत्रं पौरुषं द्विजसत्तम
प्रवक्ष्यामि यथा सर्वं चरितंतस्य धीमतः । शुश्रूषध्वं महाभागा मामेवं द्विजसत्तमाः
अभक्ताय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च । सुमूर्खाय सुमोहाय कुशिष्याय तथैव च
श्रद्धाहीनाय कूटाय सर्वनाशाय मा द्विजाः । अन्यथा पठते यो हि निरयं च प्रयाति
भवन्तो भावसंयुक्ताःसत्यधर्मपरायणाः । भवतामग्रतःसर्वं चरित्रं पापनाशनम्
सम्प्रवक्ष्याम्यशेषेण शृणुध्वं द्विजसत्तमाः । स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यंधन्यंवेदैश्चसम्मित
रहस्यमृषिभिःप्रोक्तं प्रवक्ष्यामिद्विजोत्तमाः । यश्चैनं कीर्तयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्यविस्तर
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् । सप्तजन्मार्जितं पापं श्रुतमात्रेण नश्य

ब्राह्मणोवेदविद्वांश्च क्षत्रियो विजयी भवेत् ।

वैश्यो धनसमृद्धःस्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥
एवंफलं समाप्नोति पठनाच्छ्रवणादपि। पृथोर्जन्मचरित्रं च पवित्रंपापनाशनम् ॥१८॥
धर्मगोप्ता महाप्राज्ञो वेदशास्त्रार्थकोविदः। अत्रिवंश समुत्पन्नःपूर्वमत्रिसमःप्रभुः ॥
स्रष्टा सर्वस्य धर्मस्य अङ्गोनाम प्रजापतिः। य आसीत्तस्य पुत्रोवैवेनोनाम प्रजापतिः
धर्ममेवं परित्यज्य सर्वदैव प्रवर्त्तते। मृत्योःकन्या महाभागा सुनीथा नाम नामतः ॥
तांतु अङ्गो महाभागःसुनीथामुपयेमिवान्। तस्यामुत्पादयामास वेनं धर्मप्रणाशनम् ॥
मातामहस्य दोषेण वेनःकालात्मजात्मजः। निजधर्मपरित्यज्य अधर्मनिरतोऽभवत् ॥
कामाल्लोभान्महामोहात्पापमेव समाचरन्। वेदाचारमयं धर्मं परित्यज्य नराधिपः॥
अन्ववर्तत पापेन मदमत्सरमोहितः । वेदाध्यायं विना लोके प्रावर्तन्त तदा जनाः ॥
निःस्वाध्यायवषट्कारा:प्रजास्तस्मिन्प्रजापतौ ।
प्रवृत्तं न पपुःसोमं हुतं यज्ञेषुदेवताः ॥ २६ ॥
इत्युवाच सदुष्टात्मा ब्राह्मणान्प्रतिनित्यशः। नाध्येतव्यं न होतव्यं न देयं दानमेव च
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्यप्रजापतेः। आसीन्प्रतिज्ञाक्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति पुनःपुनः। मयियज्ञा विधातव्या मयिहोतव्यमित्यपि
इत्यब्रवीत्सदावेनोह्यहं विष्णुःसनातनः । अहंब्रह्मा अहंरुद्रो मित्रइन्द्रः सदागतिः ॥
अहमेव प्रभोक्ता च हव्यं कव्यं न संशयः । अथ ते मुनयःक्रुद्धा वेनंप्रतिमहाबलाः
ऊचुस्ते सङ्गताः सर्वे राजानं पापचेतनम् ॥ ३१ ॥

ऋषयः ऊचु।

राजाहि पृथिवीनाथःप्रजां पालयते सदा। धर्ममूर्तिःसराजेन्द्रतस्माद्धर्मं हि रक्षयेत् ॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामो यज्ञेद्वादशवार्षिकीम्। अधर्मं कुरु मायागे नैषधर्मःसतांगतिः ॥
कुरुधर्मं महाराज सत्यं पुण्यं समाचर। राजाहं पालयिष्यामि इति ते समयः कृतः ॥
तांस्तथा ब्रुवतःसर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा । वेनःप्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थकम् ॥३५॥

वेन उवाच।

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यःश्रोतव्यं कस्य वामया। श्रुतवीर्यतपःसत्योमयावाकःसमोभुवि

प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः । सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मांविचेतसः ॥
इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलैस्तथा । द्यां भुवं चैवरुन्धेयं नात्रकार्या विचारणा ॥
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः । अपनेतुं तदा वेनं ततःक्रुद्धा महर्षयः ॥३६॥
विस्फुरन्तं तदावेनं बलाद्गृह्यततो रुषा । वेनस्य तस्य सव्योरुं ममन्थुर्जात मन्यवः ॥
कृष्णाञ्जनचयोपेतमतिह्रस्वं विलक्षणम् । दीर्घास्यं च विरूपाक्षं नीलकञ्चुकवर्चसम् ॥
लम्बोदरं व्यूढकर्णमतिभीतं दुरोदरम् । ददृशुस्ते महात्मानोनिषीदेत्यब्रुवंस्ततः ॥
तेषांतद्वचनं श्रुत्वा निषसादभयातुरः । पर्वतेषु वनेष्वेव तस्यवंशःप्रतिष्ठितः ॥ ४३ ॥

निषादाश्च किराताश्च भिल्लानाहलकास्तथा ।
भ्रमराश्च पुलिन्दाश्च ये चान्ये म्लेच्छजातयः ॥ ४४॥

पापाचारास्तुते सर्वे तस्मादङ्गात्प्रजज्ञिरे । अथ ते ऋषयःसर्वे प्रसन्नमनसस्ततः ॥
गतकल्मषमेवं तं जातं वेनं नृपोत्तमम् । ममन्थुर्दक्षिणं पाणिं तस्यैव च महात्मनः ॥
मथितेतस्यपाणौ तु सञ्जातं स्वेदमेवहि । पुनर्ममन्थुस्ते विप्रादक्षिणं पाणिमेव च ॥
सुकरात्पुरुषोजज्ञे द्वादशादित्य सन्निभः । तप्तकाञ्चनवर्णाङ्गोदिव्यमाल्याम्बरावृतः
दिव्याभरणशोभाङ्गो दिव्यगन्धानुलेपनः । मुकुटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां विराजते ॥
महाकायो महाबाहू रूपेणाप्रतिमो भुवि । खड्ग बाणधरो धन्वी कवची च महाप्रभुः
सर्वलक्षणसम्पन्नःसर्वालङ्कारभूषणः । तेजसा रूपभावेन सुवर्णैश्च महामतिः ॥ ५१ ॥
दिवि इन्द्रो यथाभाति भुवि वेनात्मजस्तथा । तस्मिञ्जातेमहाभागे देवाश्चऋषयोऽमलाः
उत्सवं चक्रिरे सर्वे वेनस्य तनयं प्रति । दीप्यमानःस्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलः
आद्यमाजगवंनाम धनुर्गृह्य महावरम् । शरान्दिव्यांश्च रक्षार्थे कवचं च महाप्रभम् ॥
जातेसति महाभागे पृथौ वीरे महात्मनि । सम्प्रहृष्टानि भूतानि समस्तानि द्विजोत्तम
सर्वतीर्थानितोयानि पुण्यानि विविधानि च । तस्याभिषेके विप्रेन्द्राःसर्वएवप्रतस्थिरे

पितामहाद्या देवास्तु भूतानि विविधानि च ।
स्थावराणि चराण्येव अभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ॥ ५७ ॥

महावीरं प्रजापालं पृथुमेव द्विजोत्तम । पृथुर्वैन्यो राजराज्ये अभिगम्य चराचरैः ॥५८॥

देवैर्विप्रैस्तथा सर्वैरभिषिक्तो महामनाः । राज्ञां समधिराज्ये वै पृथुर्वैन्यःप्रतापवान् ॥
तस्य पित्राप्रजाःसर्वाःकदानैवानुरञ्जिताः । तेनानुरञ्जिताः सर्वा मुमुदिरे सुखेन वै ॥
तस्यानुरागाद्वीरस्य नामराजेत्यजायत । प्रयातस्य सुवीरस्य समुद्रस्य द्विजोत्तम ॥
आपस्तस्तम्भिरे सर्वा भयात्तस्य महात्मनः । दुर्गं मार्गं विलोप्यैव सुमार्गं पर्वताद्दुः
आज्ञा भङ्गं न चक्रुस्ते गिरयःसर्वएव ते । अकृष्टपच्या पृथिवी सर्वत्र कामधेनवः ॥

पर्जन्यःकामवर्षी च वेदयज्ञान्महोत्सवान् ।
कुर्वन्ति ब्राह्मणाःसर्वे क्षत्रियाश्च तथापरे ॥ ६४ ॥

सर्वकामफलावृक्षास्तस्मिञ्छासतिपार्थिवे । नदुर्भिक्ष न च व्याधिर्नाकालमरणंनृणाम्
सर्वे सुखेन जीवन्ति लोका धर्मपरायणाः । तस्मिञ्छासति दुर्धर्षे राजराजे महात्मनि
एतस्मिन्नेव कालेतु यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सूत्यांसमुत्पन्नःसौम्येऽहनि महामतिः ॥
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः । पृथोःस्तवार्थं तौ तत्र समाहूतोमहर्षिभिः
सूतस्य लक्षणं वक्ष्ये महापुण्यं द्विजोत्तमाः । शिखा सूत्रेणसंयुक्तो वेदाध्ययनतत्परः
सर्वशास्त्रार्थवेत्ताऽसावग्निहोत्रमुपासिता । दानाध्ययनसम्पन्नो ब्रह्माचारपरायणः ॥

देवानां ब्राह्मणानां च पूजनाभिरतःसदा ।
याचकःस्तावकैःपुण्यैर्वेदमन्त्रैर्यजेत्किल ॥ ७१ ॥

सदाचारपरोनित्यं सम्बन्धो ब्राह्मणैःसह । एवं स मागधोजज्ञे वेदाध्ययनवर्जितः ॥
बन्दिनश्चारणाःसर्वे ब्रह्माचार विवर्जिताः । ज्ञेयास्ते च महाभागाःस्तावकाःप्रभवन्तिते
स्तवनार्थमुभौसृष्टौ निपुणौ सूतमागधौ । तावूचुऋर्षयःसर्वेस्तूयतामेष पार्थिवः ॥
कर्मैतदनुरूपं च यादृशोऽयं नराधिपः । तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्बन्दिमागधौ ॥
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावःस्वकर्मभि । न चास्यविद्वो वै कर्म न तथः लक्षणंयशः

कर्मणा येन कुर्याव: स्तोत्रमस्य महात्मनः ।
जानीवस्तन्न विप्रेन्द्रा अविज्ञातगुणस्य हि ॥ ७७ ॥

भविष्यैस्तैर्गुणैःपुण्यैःस्तोतव्योऽयं नरोत्तमः । कृतवान्यानिकर्माणि पृथुरेव महायशाः
ऊचुस्तेमुनयःसर्वेगुणान्दिव्यान्महात्मनः । सत्यवाग्ज्ञानसम्पन्नो बुद्धिमान्ख्यातविक्रमः

सदाशूरोगुणग्राही पुण्यवांस्त्यागवान्गुणी । धार्मिकःसत्यवादीच यज्ञानांयाजकोत्तम
प्रियवाक्सत्यवादीच धान्यवान्धनवान्गुणी । गुणज्ञःसगुणग्राही धर्मज्ञःसत्यवत्सल
सर्वगःसर्ववेत्ता च ब्रह्मण्यो वेदवित्सुधीः । प्रज्ञावान्सुस्वरश्चैव वेदवेदाङ्गपारगः ॥८
धातागोप्ता प्रजानां सविजयी समराङ्गणे । राजसूयादिकानां तु यज्ञानां राजसत्तमः
आहर्ता भूतलेचैकःसर्वधर्मसमन्वितः । एतेगुणा अस्यचाग्रे भविष्यन्ति महात्मनः ।

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु कुर्वाणौ सूतमागधौ ।
गुणैश्चैव भविष्यैश्च स्तोत्रं तस्य महात्मनः ॥ ८५ ॥

तदाप्रभृति वै लोकाः स्तवैस्तुष्टा महामते । पुरतश्च भविष्यन्ति दातारःस्तावनैर्गुणै
ततःप्रभृतिलोकेऽस्मिन्स्तवेषु द्विजसत्तमाः । आशीर्वादाःप्रयुज्यन्ते तेषां द्रविणमुत्तमः

सूताय मागधायैव बन्दिने च महोदयम् ।
चारणाय ततःप्रादात्कलिङ्गं देशमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

पृथुःप्रसादाद्धर्मात्मा हैहयं देशमेव च । रेवातीरे पुरं कृत्वा स्वनाम्ना नृपनन्दनः ॥८९
ब्राह्मणेभ्यो द्विजश्रेष्ठ यजन्दाता पृथुःपुरा । सर्वज्ञं सर्वदातारं धर्मवीर्यं नरोत्तमम्।

तं ददृशुःप्रजाःसर्वा मुनयश्च तपोऽमलाः ।
ऊचुःपरस्परं पुण्या एष राजा महामतिः ॥ ९१ ॥

देवादीनांवृत्तिदाता अस्माकं च विशेषतः । प्रजानां पालकश्चैव वृत्तिदो हि भविष्या
इयंधात्रीमहाप्राज्ञा उप्तंबीजंपुराकिल । जीवनार्थंप्रजाभिस्तु ग्रासयित्वा स्थिराऽभव

ततःपृथुं द्विजश्रेष्ठ प्रजासमभिदुद्रुवुः ।
विधत्स्वेति सुवृत्तिं नो मुनीनां वचनं तदा ॥ ९४ ॥

ग्रासयित्वातदान्नानि पृथ्वीजातासुनिश्चला । भयंप्रजानां सुमहत्सदृष्ट्वाराजसत्तम
महर्षिवचनात्सोऽपि प्रगृह्य सशरंधनुः । अभ्यधावतवेगेन पृथ्वीं क्रुद्धो नराधिपः ।

कौञ्जरं रूपमास्थाय भयात्तस्य तु मेदिनी ।
वनेषु दुर्गदेशेषु गुप्ता भूत्वा चचार सा ॥ ९७ ॥

न पश्यति महाप्राज्ञःकुरूपं द्विजसत्तमाः । आचचक्षुर्महाप्राज्ञं कुञ्जररूपमास्थिता ॥९८

ततःकुञ्जररूपां तामभिदुद्राव पार्थिवः। ताड्यमाना च सा तेन निशितैर्मार्गणैस्ततः ॥
हरिरूपं समास्थाय पलायनपराऽभवत् । हरेरूपं समास्थाय अभिदुद्राव पार्थिवः ॥
सोऽतिक्रुद्धो महाप्राज्ञो रोषारुणसुलोचनः।
सुबाणैर्निशितैस्तीक्ष्णैराजघान स मेदिनीम् ॥ १०१ ॥
आकुलव्याकुलाजाता बाणाघातहता तदा। माहिषंरूपमास्थाय पलायनपराऽभवत ॥
अभ्यधावतद्वेगेन बाणपाणिधनुर्धरः। सा गौर्भूत्वा द्विजश्रेष्ठाःस्वर्गमेव गताध्रुवम् ॥
ब्रह्मणःशरणंप्राप्ताविष्णोश्चैव महात्मनः। रुद्रादीनां च देवानां त्राणस्थानं न विन्दति
अलभन्ती भृशंत्राणं वैन्यमेवान्वविन्दत। तस्यपार्श्वं पुनःप्राप्ता बाणघातसमाकुला ॥
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा तं पृथुं वाक्यमब्रवीत्।
त्राहि त्राहीति राजेन्द्र सा राजानमभाषत ॥ १०६ ॥
अहंधात्री महाभाग सर्वाधारा वसुन्धरा। निहतायां मयिनृप निहतं लोकसप्तकम् ॥
कृताञ्जलिपुटाभूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिःसदा ॥
उवाच चैनं राजानमवध्यास्त्री सदा नृप ॥ १०८ ॥
स्त्रीणांवधे महत्पातं दृष्टमस्ति द्विजोत्तमैः। गवांवधे महत्पापं दृष्टमस्ति द्विजोत्तमैः ॥
मयाविना महाराज कथंधारयसे प्रजाः। अहं यदा स्थिरा राजंस्तदालोकाश्चराचराः ॥
स्थिरत्वं यान्ति ते सर्वे स्थिरीभूता यदाह्यहम्।
मां विना तु इमे लोका विनश्येयुश्चराचरः ॥ १११ ॥
ततः प्रजा विनश्येयुर्ममनाशे समागते। कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्मया विना ॥
मयिलोकाःस्थिरा राजन्मयेदं धार्यते जगत्। मद्विनाशे विनश्येयुःप्रजाःसर्वा न संशयः
न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल शृणुदेव वचोमम ॥
उपायैश्च महाभाग सुसिद्धियान्त्युपक्रमाः। समालोक्य ह्युपायंत्वं प्रजा येनधरिष्यसि
मां हत्वा त्वं महाराज धारणेपालने सदा। पोषणे च महाप्राज्ञ मद्विनाहि कथंनृप ॥
धरिष्यसि प्रजां चेमां कोपं यच्छत्वमात्मनः।
अन्नमया भविष्यामि धरिष्यामि प्रजामिमाम् ॥ ११७ ॥

अहंनारी अवध्या च प्रायश्चित्तीभविष्यसि । अवध्यांतुस्त्रियंप्राहुस्तिर्यग्योनिगतामपि
विचार्यैवं महाराज न धर्मंत्यक्तुमर्हसि । एवंनानाविधैर्वाक्यैरुक्तोधात्र्यानराधिपः।
कोपमेनं महाराज त्यज दारुणमेवहि। प्रसन्ने त्वयि राजेन्द्र तदा स्वस्था भवाम्यहम्
एवमुक्तस्तयाराजापृथुर्वैन्यःप्रजापतिः। तामुवाच महाभागां धरित्रीं द्विजसत्तमाः।

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पृथूपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

पृथ्वीम्प्रति पृथोरुक्तिः।

पृथुरुवाच।

हतेचैव महापापेएकस्मिन्पापचारिणि। लोकाःसुखेन जीवन्ति साधवःपुण्यदर्शिनः।
तस्मादेकःप्रहर्तव्यःपापिष्ठःपापचेतनः। तस्मात्त्वां हि हनिष्यामिसर्वसत्त्वप्रणाशिनीम्

त्वया वीजानि सर्वाणि लुप्तान्येतानि साम्प्रतम्।
ग्रासं कृत्वा स्थिरीभूत्वा प्रजा हत्वा क यास्यसि ॥ ३ ॥

हते पापे दुराचारे सुखं जीवन्ति साधवः। तस्मात्पापा प्रहन्तव्या सत्यमेवं न संशयः
पालितव्यः प्रयत्नेन यस्माद्धर्मःप्रवर्द्धते। भवत्या तु महत्पापं प्रजासंक्षयकारकम्।
एकस्यार्थे न यो हन्यादात्मनो वापरस्यवा। लोकोपतापकंहत्वा न भवेत्तस्यपातकम्
यस्मिंस्तु निहते पाप एकस्मिन्स्वे परे तथा। बहवस्सुखमेधन्ते हन्याद्दुष्टं न पातकम्
प्रजानिमित्तं त्वामेव हनिष्यामि न संशयः। यदिमे पुण्यसंयुक्तं वचनं न करिष्यसि
जगतोऽस्य हितार्थायसाधुचैववसुन्धरे। हनिष्येत्वांशितैर्बाणैर्मद्वाक्यात्तुपराङ्मुखीम्

स्वीयेन तेजसा चैव पुण्यास्त्रैलोक्यवासिनीः।
प्रजाश्चाहं धरिष्यामि धर्मेणापि न संशयः ॥ १० ॥

मच्छासनं समास्थाय धर्मयुक्तं वसुन्धरे। इमाः प्रजा आज्ञया मे सञ्जीवय सदैव हि॥

एवं मे शासनं भद्रे अद्ययर्हि करिष्यसि। ततःप्रीतोऽस्मितेनित्यंगोपायिष्यामिसर्वदा
त्वामेव हि न सन्देह अन्येचैव नृपोत्तमाः। धेनुरूपेण सा पृथ्वी बाणाञ्चितकलेवरा॥
उवाचेदं पृथुं वैन्यं धर्माधारं महामतिम्॥ १४ ॥

धरण्युवाच।

तवादेशं महाराज सत्यपुण्यार्थसंयुतम्। प्रजानिमित्तमत्यर्थं विधास्यामि न संशयः॥
उद्यमेनापि पुण्येन उपायेन नरेश्वर। समारम्भाःप्रसिद्ध्यन्ति पुण्याश्चैवाप्युपक्रमाः॥
उपायं पश्य राजेन्द्र येन त्वं सत्यवान्भवेः। धारयेथाःप्रजाश्चेमा येनसर्वाःप्रवर्द्धयेः॥
संलग्नाश्चोत्तमावाणा ममाङ्गे ते शिलाशिताः। समुद्धर स्वयंराजंश्छल्यन्निभृतमेक्रमे
समां कुरु महाराज तिष्ठेन्मयि यथा पयः॥ १८॥

सूत उवाच।

धनुषोऽग्रेण ताञ्छैलान्नानारूपान्गुरूंस्तथा। उत्सारयंस्ततःसर्वां समरूपां चकारसः
तदाप्रभृति ते शैला वृद्धिमापुर्द्विजोत्तमाः। तस्याअङ्गात्स्वयंबाणान्स्वकीयान्नृपनन्दनः
समुद्धृत्य ततोवैन्यःप्रीतेन मनसा तदा। गर्ताश्च कन्दराश्चैव बाणाघातैःसमीकृताः॥
एवंपृथ्वीं समांसर्वां चकार पुण्यवर्द्धनः। समीकृत्य महाभागो वत्संतस्याव्यकल्पयत्
मनुं स्वायम्भुवं पूर्वं परिचिन्त्य पुनःपुनः। अतीतेष्वथ सर्वेषु मन्वन्तरेषु सत्तमाः॥
विषमत्वं गता भूमिःपन्थानासीच्च कुत्रचित्।
समानि विषमाण्येवं स्वयमासन्द्विजोत्तमाः ॥ २४॥
पूर्वं मनोश्चाक्षुषस्य प्राप्ते चैवान्तरे तदा। जाते पूर्वविसर्गे च विषमे च धरातले॥
ग्रामाणां च पुराणां च पत्तनानां तथैव च। देशानां क्षेत्रपन्नानां मर्यादा न हि दृश्यते
कृषिर्नैव न वाणिज्यं न गोरक्षा प्रवर्तते। नानृतंभाषते कश्चिन्नलोभो न च मत्सरः॥
नाभिमानं च वै पापं न करोति कदाकिल। वैवस्वतस्य सम्प्राप्ते अन्तरेद्विजसत्तम?॥
वैन्यस्य सम्भवात्पूर्वं प्रजानामेव सम्भवः। इमाःप्रजाद्विजाःसर्वा निवासं समरोचयन्
क्वचिद्भूमौ गिरौक्वापि नदीतीरेषु वै तदा। कुञ्जेषु सर्वतीर्थेषु सागरस्यतटेषु च॥
निवासंचक्रिरे सर्वाःप्रजाःपुण्येन वै तदा। तासामाहारःसञ्जात फलंमूलं तथामधु॥

महताकृच्छ्रेण तासामाहारश्च द्विजोत्तमाः । पृथुर्वैन्यः समालोक्य प्रजानांकष्टमेव हि ॥
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सःकल्पितस्तेन भूभुजा । स्वपाणिः कल्पितस्तेन पात्रमेवं महामते
सपृथुःपुरुषव्याघ्रो दुदोह वसुधां तदा । सर्वसस्यमयंधीरं स सर्वान्नं गुणान्वितम् ॥

तेन पुण्येन चान्नेन सुधाकल्पेन ताः प्रजाः ।
तृप्तिं नयन्ति देवान्वै प्रजाःपितॄंस्तथाऽपरान् ॥ ३५ ॥
प्रसादात्तस्य वैन्यस्य सुखं जीवन्ति ताः प्रजाः ।
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दत्त्वा चान्नं प्रजास्ततः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण अतिथिभ्यस्तथैव च ।
पुण्यास्ता भुञ्जते पश्चात् प्रजाः सर्वा द्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥

यज्ञैश्चान्ये यजन्त्येव तर्पयन्ति जनार्दनम् । तेन चान्नेन देवेशं तृप्तिं गच्छन्ति देवताः।
पुनर्वर्षति पर्जन्यः प्रेषितो माधवेन च । तस्मात्पुण्या महौषध्यः सम्भवन्ति सुपुण्यदा

सस्यजातानि सर्वाणि पृथोः प्रभृति नान्यथा ।
तेनान्नेन प्रजाः सर्वा वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ॥ ४० ॥

ऋषिभिश्चैव मिलितैर्दुग्धा चेयं वसुन्धरा। पुनर्विप्रैर्महाभाग्यैः सत्यवद्भिः सुरैस्तथा।

सोमो वत्सस्वरूपोऽभूद्दोग्धा देवगुरुः स्वयम् ।
ऊर्जं क्षीरं पयः कल्पं येन जीवन्ति चामराः ॥ ४२ ॥

तेषामन्नेन पुण्येन सर्वे जीवन्ति जन्तवः । सत्यपुण्ये प्रवर्त्तन्ते ऋषिदुग्धा वसुन्धरा।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यथा दुग्धा इयं धरा ।
पितृभिश्च पुरा वत्स विधिना येन वै तदा ॥ ४४ ॥

सुपात्रं राजतंकृत्वा स्वधाक्षीरं सुधान्वितम् । परिकल्प्य यमंवत्संदोग्धाचान्तकएवस
नागैः सर्पैस्ततो दुग्धा तक्षकं वत्समेव च । अलाबुपात्रमादाय विषं क्षीरं द्विजोत्तमा
नागानां तु तथा दोग्धा धृतराष्ट्रःप्रतापवान् । सर्पानागाद्विजश्रेष्ठास्तेनवर्तन्ति चातुला
नागा वर्तन्तितेनापि ह्यत्युग्रेण द्विजोत्तमाः । विषेण घोररूपेण सर्पाश्चैव भयानकाः।
तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया महाबलाः । तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तत्पराक्रमाः।

अथातःसम्प्रवक्ष्यामि यथादुग्धा वसुन्धरा। असुरैर्दानवैःसर्वैःकल्पयित्वाद्विजोत्तमाः
पात्रमत्रान्नसदृशमायसं सर्वकामिकम्। क्षीरं मायामयंकृत्वा सर्वारातिविनाशनम्॥

तेषामभूत्स वै वत्सो विरोचनः प्रतापवान्।
ऋत्विग्द्विमूर्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः ॥ ५२ ॥
तया हि मायया दैत्याः प्रवर्तन्ते महाबलाः।
महाप्रज्ञा महाकाया महातेजः पराक्रमाः ॥ ५३ ॥

तद्बलंपौरुषं तेषां तेन जीवन्ति दानवाः। तयैते माययाद्यापि सर्वमायाद्विजोत्तमाः॥
प्रवर्तन्तेऽमितप्रज्ञास्ते तदेषामिदं बलम्। तथा तु दुग्धायक्षैःसा सर्वाधारासुमेदिनि॥
इतिशुश्रुम विप्रेन्द्राः पुराकल्पे महात्मभिः। अन्तर्धानमयं क्षीरमयस्पात्रे सुविस्तरे॥
वैश्रवणो महाप्राज्ञस्तदा वत्सःप्रकल्पितः। मणिधरस्य पितापुण्यःप्राज्ञो बुद्धिमतांवरः
दोग्धा रजतनाभस्तु तस्याश्चासीन्महामतिः। सर्वज्ञः सर्वधर्मज्ञो यक्षराजसुतोबली॥
अष्टबाहुर्महातेजा द्विशीर्षःसुमहातपाः। यक्षावर्तन्ति तेनापि सर्वदैव द्विजोत्तमाः॥
पुनर्दुग्धा इयंपृथ्वी राक्षसैश्च महाबलैः। तथाचैषा पिशाचैश्च सातुरैर्दुग्धवारिभिः॥

उत्प्लुतं नृकपालं तं शावपात्रमयस्कृतम्।
सुप्रजां भोक्तुकामास्ते तीव्रकोपपराक्रमाः ॥ ६१ ॥

दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीन्महाबलः। सुमालीनामवत्सश्च शोणितं क्षीरमेव च॥
रक्षांसि यातुधानाश्च पिशाचाश्च महाबलाः। यक्षास्तेन च जीवन्ति भूतसङ्घाश्च दारुणाः

गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा।
कृत्वा वत्सं सुविद्वांसं तैश्च चित्ररथं पुनः ॥ ६४ ॥

दुदुहुःपद्मपात्रे तु गान्धर्वं गीतसङ्कुलम्। सुरुचिर्नामगन्धर्वस्तेषामासीन्महामतिः॥
दोग्धा पुण्यतमश्चैव तस्याश्च द्विजसत्तमाः। शुचिगीतं महात्मानःसुक्षीरं दुदुहुस्तदा
गन्धर्वास्तेन जीवन्ति यक्षाश्चाप्सरसस्तथा। पर्वतैश्च महापुण्यैर्दुग्धाचेयं वसुन्धरा॥
रत्नानिविविधान्येव ओषधीश्चामृतोपमाः। वत्सश्चैव महाभागो हिमवान्परिकल्पितः
मेरुर्दोग्धा च सञ्जातःपात्रंकृत्वा तु शैलजम्। तेनक्षीरेण संवृद्धाःशैलाःसर्वैमहोच्छ्रयाः

पुनर्दुग्धा महावृक्षैः पुण्यैःकल्पद्रुमादिभिः। पालाशं पात्रमानिन्युश्छिन्नदग्धप्ररोहणा
शालो दुदोह पुण्याङ्गः प्लक्षोवत्सोऽभवत्तदा
गुह्यकैश्चारणैःसिद्धैर्विद्याधरगणैस्तदा ॥ ७१ ॥
दुग्धाचेयं सर्वधात्री सर्वकामप्रदायिनी। यं यमिच्छन्ति ये लोकाः पात्रवत्सविशेषणै
तैस्तैस्तेषां ददात्येव क्षीरं सद्भावमीदृशम्। इयं धात्री विधात्री तु इयं श्रेष्ठावसुन्धर
सर्वकामदुघा धेनुरियं पुण्यैरलङ्कृता। इयंज्येष्ठा प्रतिष्ठा तु इयं सृष्टिरियं प्रजा।
पावनी पुण्यदा पुण्या सर्वशस्यप्ररोहिणी। चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठायोनिरेव च।
महालक्ष्मीरियं विद्या सर्वविश्वमयी सदा। सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्ववीजप्ररोहिणी
सर्वेषां श्रेयसांमाता सर्वलोकधरा त्वियम्। पञ्चानामपि भूतानां प्रकाशोरूपमेव च
आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता। मधुकैटभयोःकृत्स्ना मेदसा समभिप्लुत
तेनेयं मेदिनीनाम प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः। ततोऽभ्युपगमात्प्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य सत्तमा
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवीपृथ्वीति चोच्यते। तेनराज्ञा द्विजश्रेष्ठाः पालितेयं वसुन्धरा।
ग्रामाधारा गृहाढ्या च पुरपत्तनमालिनी। सस्या करवंतीस्फीता सर्वतीर्थमयी द्विजा
एवं वसुमतीदेवी सर्वलोकमयी सदा। एवं प्रभावो राजेन्द्रः पुराणे परिपठ्यते ॥८३
पृथुर्वैन्यो महाभागः सर्वकर्मप्रकाशकः। यथाविष्णुर्यथाब्रह्मा यथारुद्रः सनातनः।
नमस्कार्यास्त्रयो देवा देवाद्यैर्ब्रह्मवादिभिः।
ब्राह्मणैर्ऋषिभिः सर्वैर्नमस्कार्यो नृपोत्तमः ॥ ८४ ॥
वर्णानामाश्रमाणां यःस्थापकःसर्वलोकधृक्।
पार्थिवैश्च महाभागैःपार्थिवत्वमिहेप्सुभिः ॥ ८५ ॥
आदिराजो नमस्कार्यःपृथुर्वैन्यःप्रतापवान्। धनुर्वेदार्थिभिर्योधैःसदैव जयकाङ्क्षिभि
नमस्कार्यो महाराजो वृत्तिदाता महीभृताम्।
एवं पात्रविशेषाश्च मयाख्याता द्विजोत्तमाः ॥ ८७ ॥
वत्सानां सुविशेषाश्च दोग्धृणां भवदग्रतः। क्षीरस्यापि विशेषं तु यथोद्दिष्टंहि भूभुज
समाख्यातं तथाग्रे च भवतां वै यथार्थतः। धन्यं यशस्यमारोग्यं पुण्यं पापप्रणाशन

पृथोर्वैन्यस्यचरितं यःशृणोतिद्विजोत्तमाः । तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥ ६१ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीयेभूमिखण्डे पृथूपाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

विस्तरेण वेनचरित्रवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

योऽसौ वेनस्त्वयाऽख्यातःपापाचारेण वर्तितः ।
तस्य पापस्य का वृत्तिःकिं फलं प्राप्तवान्द्विज ॥ १ ॥
चरित्रं तस्य वेनस्य समाख्याहि यथापुरा । विस्तरेण विदांश्रेष्ठ त्वं न एतन्महामते ॥

सूत उवाच ।

चरित्रं तस्य वेनस्य वैन्यस्यापि महात्मनः । प्रवक्ष्यामि सुपुण्यंच यथान्यायं श्रुतंपुरा
जातेपुत्रे महाभागे तस्मिन्पृथौ महात्मनि । विमलत्वं गतोराजा धर्मत्वं गतवान्पुनः ॥
महापापानि सर्वाणि अर्जितानि नराधमैः । तीर्थसङ्गप्रसङ्गेन तेषां पापं प्रयाति च॥५॥
सतांसङ्गात्प्रजायेत पुण्यमेव न संशयः । पापानां तु प्रसङ्गेन पापमेव प्रजायते ॥ ६ ॥
सम्भाषाद्दर्शनात्स्पर्शादासनाद्भोजनात्किल ।
पापिनां सम्भवाच्चैव किल्विषं परिसञ्चरेत् ॥ ७ ॥
तथापुण्यात्मकानां च पुण्यमेव प्रसञ्चरेत् । महातीर्थप्रसङ्गेन पापाःशुध्यन्ति नान्यथा
पुण्यां गतिंप्रयान्त्येते निर्द्धूता शेषकल्मषाः ॥ ९ ॥

ऋषय ऊचुः ।

तत्कथंयान्ति ते पापाःपरांसिद्धिं द्विजोत्तम। ततो विस्तरतो ब्रूहिश्रोतुं श्रद्धा प्रवर्तते

सूत उवाच ।

लुब्धकाश्च महापापाःसञ्जाता दासधीवरा । रेवा चयमुनागङ्गातासामम्भसिसंस्थिताः
ज्ञानतोऽज्ञानतःस्नात्वा सङ्क्रीडन्ते च वै जले । महानद्याःप्रसङ्गेनतेयान्तिपरमां गतिम्
दासत्वंपापसङ्घातं परित्यज्य व्रजन्ति ते । पुण्यतोयप्रसङ्गाच्च ह्याप्लुताःसर्वएव ते ।
महानद्याःप्रसङ्गाच्च अन्यासां नैवसत्तमाः । महापुण्यजनस्यापि पापंनश्यतिपापिनाम्
प्रसङ्गाद्दर्शनात्स्पर्शान्नात्र कार्या विचारणा । अत्रार्थे श्रूयते विप्रा इतिहासोऽघनाशनः
तंवोह्यद्य प्रवक्ष्यामिबहुपुण्यप्रदायकम् । कश्चिदस्ति मृगव्याधः सुलोभाख्यो महाव
श्वभिर्वागुरिजालैश्च धनुर्बाणैस्तथैवच । मृगान्घातयतेनित्यं पिशितास्वाद लम्पटः।
एकदा तु सुदुष्टात्मा बाणपाणिर्धनुर्धरः । श्वभिःपरिवृतोदुर्गं वनंविन्ध्यस्य वै गतः।
मृगान्रुरून्वराहांश्च भीतान्सूदितवान्बहून् । रेवातीरं समासाद्य कश्चिच्छफरघातकः।
शफरान्सूदयित्वा स निर्जगाम बहिर्जलात् । मृगव्याधस्यलोभस्य भयत्रस्तातत्तोमृगी

जीवत्राणपरा साऽर्ता भीता चलितचेतना ।
त्वरमाणा पलायन्ती रेवातीरं समाश्रिता ॥ २१ ॥

श्वभिश्चचालिता सा तु बाणघातक्षतातुरा । श्वसनस्यापि वेगेन सुलोभो मृगघातक
पृष्ठएव समायाति पुरतोयाति सामृगी । दृष्टवांस्तां शफरहा बाणपाणिः समुद्यतः।
धनुरानम्यवेगेन अनुरुध्य च तांमृगीम् । तावल्लुब्धकलोभाख्यःश्वभिःसार्द्धंसमागत
न हन्तव्या मदीयेयं मृगयां मे समागता । तस्यवाक्यं समाकर्ण्य मीनहामांसलम्पटः।
बाणं मुमोच दुष्टात्मा तामुद्दिश्य महाबलः । निहता मृगलुब्धेन बाणेन निशितेन
प्रमृता सा मृगी तत्र बाणाभ्यां पापचेतसोः ।
श्वभिर्दन्तैःसमाक्रान्तो त्वरमाणा पपात सा ॥ २७ ॥

शिखराच्च ह्रदेपुण्ये रेवायाःपापनाशने । श्वानश्च त्वरमाणास्ते पतिता विमलेह्रदे।
मृगव्याधोवदत्येवं धीवरं क्रोधमूर्च्छितः । मदीयेयं मृगी दुष्ट कस्माद्बाणैर्हता त्वया।
तमुवाचपुनःसोऽपि मीनहामृगघातकम् । मदीयेयं न सन्देहश्चावलिप्तःप्रभाषसे।
युध्यमानौ ततस्तौ तु द्वावेतौ तु परस्परम् । क्रोधलोभान्महाभागौ पतितौविमलेजले

तस्मिन्काले महापर्व वर्तते गतिदायकम् ।
अमावास्यासमायोगं महापुण्यफलप्रदम् ॥ ३२ ॥
वेलायां पतिताःसर्वे पर्वणस्तस्यसत्तमाः । जपध्यानविहीनास्ते भावसत्यविवर्जिताः
तीर्थस्नानप्रसङ्गेन मृगीश्वा च स लुब्धकः । सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेगताःपरमांगतिम् ॥
तीर्थानां च प्रभावेण सतांसङ्गाद्द्विजोत्तमाः । नाशतेत्पापिनांतापं दहदग्निरिवेन्धनम्
तेषामेवं हि संसर्गादृषीणां च महात्मनाम् । सम्भाषाद्दर्शनान्नष्टं स्पर्शाच्चैव नृपस्यच
वेनस्य कल्मषंनष्टं सतांसङ्गात्पुराकिल । अत्युग्रपुण्यसंसर्गात्पापंनश्यति पापिनाम् ॥
अत्युग्रपापिनांसङ्गात्पापमेव प्रसञ्चरेत् । मातामहस्यदोषेण संलिप्तो वेन एव सः ॥

ऋषय ऊचुः ।

मातामहस्य कोदोषस्तन्नो विस्तरतो वद । समृत्युः सच वैकालः सयमो धर्म एव च
नहिंसको हि कस्यापि पदेतस्मिन्प्रतिष्ठितः । चराचराश्रये लोकाःस्व कर्मवशवर्तिनः
जीवन्ति च म्रियन्ते च भुञ्जन्त्येवं स्वकर्मभिः ।
पापाः पश्यन्ति तं घोरं तेषां कर्मविपाकतः ॥ ४१ ॥
निरयेषु च सर्वेषु कर्मणैवं सुपुण्यवान् । योजयेत्ताडयेत्सूत यम एष दिने दिने ॥४२॥
सर्वेष्वेव सुपुण्येषु कर्मस्वेवं स पुण्यवान् । योजयत्येवधर्मात्मा तस्यदोषो नदृश्यते
स मृत्योः केनदोषेण पापी वेनस्त्वजायत ॥ ४३ ॥

सूत उवाच ।

स मृत्युःशासको नित्यं पापानां दुष्टचेतसाम् ॥ ४४ ॥
वर्ततेकालरूपेणतेषां कर्म विमृश्यति । दुष्कृतं कर्म यस्यापि कर्मणातेन घातयेत् ॥
तस्यपापं विदित्वासौ नयत्येवं हि तं यमः । सुकृतात्मा लभेत्स्वर्गं कर्मणासुकृतेन वै
योजयत्येष तान्सर्वान्मृत्युरेव सुदूतकैः । महता सौख्यभावेन गीतमङ्गलकारिणा ॥
दानभोगादिभिश्चैव योजयेच्च कृतात्मकान् ।
पीडाभिर्विविधाभिश्च क्लेशैःकाष्ठैश्चदारुणैः ॥ ४८ ॥
त्रासयेत्ताडयेद्विप्रान्सक्रोधो मृत्युरेवतान् । कर्मण्येवं हितस्यापि व्यापारःपरिवर्तते

मृत्योश्चापि महाभाग लोभात्पुण्यात्प्रजायते। सुनीथानामवैकन्यासञ्जातैषामहात्मन
पितुःकर्म विमृश्यैव क्रीडमाना सदैवसा। प्रजानां शास्तिकर्तारंपुण्यपापनिरीक्षण

सा तु कन्या महाभागा सुनीथा नाम तस्य सा।
रममाणा वनं प्राप्ता सखीभिःपरिवारिता ॥ ५२ ॥

तत्रापश्यन्महाभागं गन्धर्वतनयं वरम्। गीतकोलाहलस्यापि सुशङ्खंनाम सा तदा।
ददर्श चारुसर्वाङ्गं तप्यन्तं सुमहत्तपः। गीतविद्यासु सिद्ध्यर्थं ध्यायमानं सरस्वती
तस्योपघातमेवासौ साचकार दिने दिने। सुशङ्खःक्षमतेनित्यं गच्छगच्छेतिसोऽब्रवी

प्रेषिता नैव गच्छेत्सा विघ्नमेव समाचरेत्।
तेनैवमुक्ता सा क्रुद्धाऽताडयत्तपसि स्थितम् ॥ ५६ ॥

तामुवाचततःक्रुद्ध सुशङ्खःक्रोधमूर्च्छितः। दुष्टेपापसमाचारे कस्माद्विघ्नस्त्वया कृतः।
ताडनात्ताड़नंदुष्टे न कुर्वन्ति महाजनाः। आक्रुष्टानैव कुप्यन्ति इतिधर्मस्य संस्थितिः

त्वयाऽहं घातितःपापे निर्दोषस्तपसान्वितः।
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा सुनीथां पापचारिणीम् ॥ ५९ ॥

विरराम महाक्रोधाज्ज्ञात्वा नारींनिवर्तितः। ततः सपापमोहाद्वा बाल्याद्वातमिहैव
समुवाच महात्मानं सुशङ्खं तपसिस्थितम्। त्रैलोक्यवासिनां तातो ममैवपरिघातव
असतोघातयेन्नित्यं सत्यान्स परिपालयेत्। नैवदोषो भवेत्तस्य महापुण्ये न वर्तये
एवमुक्त्वा गता सातु पितरं वाक्यमब्रवीत्। मया हि ताडितस्तात गन्धर्वतनयो व
तपस्तपन्सदैकान्ते कामक्रोधविवर्जितः। समामुवाच धर्मात्मा क्रोधरागसमन्वितः
नाताये‍त्ताडयन्तं क्रोशन्तं नैव क्रोशयेत्। इत्युवाच स मां तात तन्मे त्वं कारणं व
एवमुक्तः सवै मृत्युःसुनीथां द्विजसत्तमाः। किञ्चिन्नोवाच धर्मात्मा प्रश्नप्रत्युत्तरं तत

वनंप्राप्ता पुनःसा हि सुशङ्खो यत्र संस्थितः।
कशाघातैस्ततो दौष्ट्याज्जघान तपतांवरम् ॥ ६७ ॥

सुशङ्खस्ताडितो विप्रा मृत्योश्चैव हि कन्यया। ततःक्रुद्धोमहातेजाःशशाप तनुमध्यमा
निर्दोषो हि यतो दुष्टे त्वयैव परिताडितः। अहमत्र वने संस्थस्तस्माच्छापं ददाम्यहम्

गार्हस्थ्यं च समास्थाय सहभर्त्रा यदा शृणु ।
पापाचारमयःपुत्रो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ७० ॥
सर्वपापरतो दुष्टे तवगर्भे भविष्यति । एवं शप्त्वागतःसोऽपि तपएव समाश्रितः ॥
गते तस्मिन्महाभागे सा सुनीथा गृहंगता । समाचष्ट महात्मानं पितरं तप्तमानसा ॥
यथाशप्ता तदा तेन गन्धर्वतनयेन सा । तत्सर्वं संश्रुतं तेन मृत्युना परिभाषितम् ॥
कस्मात्त्वया ताडितोऽसौ तपस्वी दोषवर्जितः । युक्तंनैव कृतंपुत्री तपतस्तस्य ताडनम्
एवमाभाष्य धर्मात्मा मृत्युःपरमदुःखितः ।
बभूव सहितन्तस्यादिष्टमेवं विचिन्तयन् ॥ ७५ ॥

सूत उवाच ।

अत्रिपुत्रो महातेजा अङ्गोनाम प्रतापवान् । एकदा तु गतोविप्रा नन्दनंप्रति स द्विजः ॥
तत्रदृष्ट्वा देवराजं तमिन्द्रं पाकशासनम् । अप्सरसांगणैर्युक्तं गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥
गीयमानं गीतगैश्च सुस्वरैःसप्तकैस्तथा । वीज्यमानं सुगन्धैश्च व्यजनैःसर्वतोऽपि तम्
योषिद्भीरूपयुक्ताभिश्चामरैर्हंसगामिभिः । छत्रेण हंसवर्णेन चन्द्रबिम्बानुकारिणा॥७६॥
राजमानं सहस्राक्षं सर्वाभरणभूषितम् । कामक्रीडा गतंदेवं दृष्टवानमितौजसम् ॥
तस्य पार्श्वे महाभागां पौलोमीं चारुमङ्गलाम् ।
रूपेण तेजसा चैव तपसा च यशस्विनीम् ॥ ८१ ॥
सौभाग्येन विराजन्तीं पातिव्रत्येन तां सतीम् । तयासह सहस्राक्षः सरेमे नन्दनेवने ॥
तस्य लीलांसमालोक्य अङ्गश्चैव द्विजोत्तमः । धन्यो वै देवराजोऽयमीदृशैःपरिवारितः
अहोऽस्य तपसोवीर्यं येन प्राप्तं महत्पदम् । यदा ममेदृशःपुत्रःसर्वलोकप्रधारकः ॥
भवेत्तदा महत्सौख्यं प्राप्स्यामीह न संशयः । इतिचिन्तापरोभूत्वा त्वरमाणो गृहंगतः
इति श्रीपाद्मपुराणे भूमिखण्डे वेनोपाख्याने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

अङ्गस्यात्र्युपदेशेनेन्द्रसदृशपुत्रप्राप्तये तपस्याकरणार्थगमनम् ।

सूत उवाच ।

अथत्वङ्गोमहातेजा दृष्ट्वेन्द्रस्यसम्पदम् । भोगंचैवविलासं च लीलां तस्य महात्मन
कथं मे इन्द्रसदृशःपुत्रःस्याद्धर्मसंयुतः । चिन्तयित्वा क्षणं चैव अङ्गो धर्मभृतांवरः ॥२
स्वकं गेहं समायातःसत्वङ्गःसत्यतत्परः । अत्रिं पप्रच्छपितरं प्रणतो नम्रकन्धरः ॥३

कोऽयं पुण्यसमाचारो भुङ्क्त ऐन्द्रंपदं महत् ।
कस्य पुण्यस्य वै पुष्टिःकिं कृतं कर्म कीदृशम् ॥ ४ ॥

कीदृशं तप एतस्य कमाराधितवान्पुरा । एतन्मे विस्तारेण त्वं ब्रूहि सत्यवतांवर

अत्रिरुवाच ।

साधुसाधु महाभाग यद्येवं पृच्छसे मयि । चरित्रमिन्द्रस्य वत्स तन्मे निगदतःशृणु
सुव्रतोनाम मेधावी पुरा ब्राह्मणसत्तमः । तेन कृष्णो हृषीशस्तपसाचैव तोषितः ॥७

पुण्यं गर्भं पुनःप्राप्तो ह्यदित्याःकश्यपात्किल ।
विष्णोश्चैव प्रसादेन सुरराजो बभूवह ॥ ८ ॥

अङ्ग उवाच ।

कथमिन्द्रसमःपुत्रो ममस्यात्पुत्रवत्सल । तदुपायं समाचक्ष्व त्वं हि ज्ञानवतांवर

अत्रिरुवाच ।

समासेनैव तस्यैव सुव्रतस्य महात्मनः । चरित्रमखिलंपुण्यं निशामय महामते ॥१
यथा सुव्रतमेधावी पुराराधितवान्हरिम् । तस्यभावं च भक्तिं च ध्यानंचैव महात्मनः

समालोक्य जगन्नाथो दत्तवान्वै महत्पदम् ।
स ऐन्द्रं सर्वभोगाढ्यं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १२ ॥

विष्णोश्चैवप्रसादाच्चपदंभुङ्क्तेत्रिलोकधृक् । एवंतेसर्वमाख्यातमिन्द्रस्यापिविचेष्टि

भक्त्यातुष्यति गोविन्दो भावध्यानेनसत्तम। सर्वंददातितुष्टात्मा भक्त्यासन्तोषितोहरिः
तस्मादाराध्य गोविन्दं सर्वदं सर्वसम्भवम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेषां पुरुषंवरम्॥
तस्मात्प्राप्स्यसि सर्वं त्वं यद्यदिच्छसि नन्दन॥ १६॥
सुखस्यदाता परमार्थदाता मोहस्यहाता जगतां हि नाथः।
तस्मात्तमाराधय गच्छ पुत्र सम्प्राप्स्यसे इन्द्रसमं हि पुत्रम्॥ १७॥
आकर्ण्य वाक्यं परमार्थयुक्तमुक्तं महात्मा ऋषिणा हि तेन।
सङ्गृह्य तत्त्वं वचनस्य तस्य प्रणम्य तं शाश्वतमभ्ययात्सः॥ १८॥
आमन्त्र्य चाङ्गः पितरं महात्मा ब्रह्मात्मजं ब्रह्मसमानमेव।
सम्प्राप्तवान्मेरुगिरेस्तु शृङ्गं तं काञ्चनै रत्नमयैःसमेतम्॥ १६॥
इति श्रीपाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने
एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

अङ्गस्य तपःकरणात्प्रादुर्भूतवासुदेवस्यस्तोत्रकरणम्।

सूतउवाच।

नानारत्नैःसुदीप्ताङ्गो हाटकेनापि सर्वतः। राजमानो गिरिश्रेष्ठो यथासूर्यःस्वरश्मिभिः
छायामशोकांसम्प्राप्य शीतलांसुखदायिनीम्। ध्यायन्ति योगिनःसर्वेउपविष्टादृढासने
क्वचित्तपन्ति मुनयःक्वचिद्गायन्ति किन्नराः।
सन्तुष्टा ऋषिगन्धर्वा वीणातालकराविलाः॥ ३॥
तालमानलयेलीनाः स्वरैः सप्तभिरन्वितैः। मूर्च्छनारतिसंयुक्तैर्व्यक्तं गीतंमनोहरम्॥
तस्मिन्वै पर्वतश्रेष्ठे चन्दनच्छायसंश्रिताः। गन्धर्वा गीततत्त्वज्ञा गीतंगायन्ति तत्पराः
नृत्यन्ति योषितस्तत्र देवानां पर्वतोत्तमे। पापहा पुण्यदो दिव्यःसुश्रेयसां प्रदायकः॥

वेदध्वनिःसुमधुरःश्रूयते पर्वतोत्तमे । चन्दनाशोकपुन्नागैःशालैस्तालैस्तमालकैः ॥ ७ ॥
वटैस्तु मेघसङ्काशै राजते पर्वतोत्तमः । सन्तानकैःकल्पवृक्षै रम्भापादपसङ्कुलै ॥ ८ ॥
नगेन्द्रो भाति सर्वत्र नाकवृक्षैःसुपुष्पितैः ।
नानाधातुसमाकीर्णो नानारत्नचयो गिरिः ॥ ९ ॥
नानाकौतुकसंयुक्तो नानामङ्गलसंयुतः । वेदवृन्दैःसुसञ्जुष्टो ह्यप्सरोगणसङ्कुलः ।
ऋषिभिर्मुनिभिःसिद्धैर्गन्धर्वैः परिभाति सः । गजैश्चाचलसङ्काशैःसिंहनादैर्विराजते ।
शरभैर्मत्तशार्दूलैर्मृगधूर्तैरलङ्कृतः । वापीकूपतडागैश्च सम्पूर्णैर्विमलोदकैः ॥ १२ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः सर्वत्र परिशोभते ।
कनकोत्पलैश्च श्वेतैश्च रक्तोत्पलैर्विराजते ॥ १३ ॥
नदीस्रवणसङ्घातैर्विमलैश्चोदकैस्तथा । शालतालैश्च रूपैश्च सगजैःस्फाटिकैस्तथा ।
विस्तीर्णैःकाञ्चनैर्दिव्यैःसूर्यवह्निसमप्रभैः । शिलातलैश्च सम्पूर्णःशैलराजो विराजते ।
विमानैर्देवतानां च प्रासादैःपर्वतोत्तमैः । हंसचन्द्रप्रतीकाशैर्हेमदण्डैरलङ्कृतः ॥ १६ ॥
कलशैश्चामरैर्युक्तैःप्रासादैःपरिशोभितः । नानागुणप्रमुदितदेववृन्दैश्च शोभितः ॥ १७ ॥
देववृन्दैरनेकैश्च गन्धर्वैश्चारणैस्तथा । सर्वत्र राजते पुण्यो मेरुर्गिरिवरोत्तमः ॥ १८ ॥
तस्माद्गङ्गा महापुण्या पुण्यतोया महानदी ।
प्रसूता पुण्यतीर्थाढ्या हंसपद्मैःसमाकुला ॥ १९ ॥
मुनिभिःसेव्यमाना सा ऋषिसङ्घैर्महानदी । एवंगुणं गिरिश्रेष्ठं पुण्यकौतुकमङ्गलम् ।
अङ्गश्चात्रिसुतःपुण्यःप्रविवेश महामुनिः । गङ्गातीरे सुपुण्ये च एकान्ते चारुकन्दरे ।
तत्रोपविश्य मेधावी कामक्रोधविवर्जितः ।
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य हृषीकेशं मनोगतम् ॥ २२ ॥
ध्यायमानःसधर्मात्मा कृष्णं क्लेशापहं प्रभुम् । आसने शयनेयाने ध्याने च मधुसूदनं ।
नित्यं पश्यति युक्तात्मा योगयुक्तो जितेन्द्रियः । चराचरेषु जीवेषु तेषु पश्यतिकेशवं ।
आर्द्रेषु चैव शुष्केषु सर्वेष्वन्येषु स द्विजः ।
एवं वर्षशतं जातं तप्यमानस्य तस्य च ॥ २५ ॥

समालोक्य जगन्नाथश्चक्रपाणिर्द्विजोत्तमम्। बहुविघ्नान्सुघोरांश्च दर्शयत्येव नित्यशः
तेजसा तस्यदेवस्य नृसिंहस्य महात्मनः। निरातङ्कःसधर्मात्मा दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥
नियमैःसंयमैश्चान्यैरुपवासैर्द्विजोत्तमः। क्षीयमाणस्तु सञ्जातो दीप्यमानःस्वतेजसा॥
सूर्यपावकसङ्काशस्त्वङ्ग एवं प्रदृश्यते। एवंतपःसुनिरतं ध्यायमानं जनार्दनम् ॥२९॥
आविर्भूयाब्रवीद्देवो वरं वरय मानद। तं च दृष्ट्वा हृषीकेशमङ्गःपरमनिर्वृतः ॥ ३० ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वासुदेवं प्रसन्नधीः ॥ ३१ ॥

अङ्गउवाच।

त्वं गतिःसर्वभूतानां भूतभावन पावन। भूतात्मा सर्वभूतेश नमस्तुभ्यं गुणात्मने ॥
गुणरूपाय गुह्याय गुणातीताय ते नमः। गुणाय गुणकर्त्रे च गुणाढ्यस्य गुणात्मने
भवाय भवकर्त्रे च भक्तानां भवहारिणे। भवोद्भवाय गुह्याय नमो भवविनाशिने ॥
यज्ञाय यज्ञरूपाय यज्ञेशाय नमोनमः। यज्ञकर्मप्रसङ्गाय नमःशङ्खधराय च ॥ ३५ ॥
नमोनमो हिरण्याय नमोऽधाङ्गधारिणे। सत्याय सत्यभावाय सर्वसत्यमयाय च ॥
धर्माय धर्मकर्त्रे च सर्वकर्त्रे च ते नमः। धर्माङ्गाय सुवीराय धर्माधाराय ते नमः ॥
नमःपुण्याय पुत्राय ह्यपुत्राय महात्मने। मायामोहविनाशाय सर्वमायाकराय ते ॥
मायाधराय मूर्ताय त्वमूर्ताय नमोनमः। सर्वमूर्तिधरायैव शङ्कराय नमोनमः ॥ ३९ ॥
ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय परब्रह्मस्वरूपिणे। नमस्ते सर्वधाम्ने च नमोधामधराय च ॥४०॥
श्रीपते श्रीनिवासाय श्रीधराय नमोनमः। क्षीरसागरवासाय चामृताय च ते नमः ॥
महौषधाय घोराय महाप्रज्ञापराय च। अक्रूराय प्रमेध्याय मेध्यानां पतये नमः ॥४२॥
अनन्ताय ह्यशेषाय चानघाय नमोनमः। आकाशस्य प्रकाशाय पक्षिरूपाय ते नमः ॥
हुताय हुतभोक्त्रे च हवीरूपाय ते नमः। बुद्धाय बुद्धरूपाय सदाबुद्धाय ते नमः ॥४४॥
नमो हव्याय कव्याय स्वधाकाराय ते नमः। स्वाहाकारायशुद्धाय ह्यव्यक्तायमहात्मने
व्यासाय वासवायैव वसुरूपाय ते नमः। वासुदेवाय विश्वाय वह्निरूपाय ते नमः ॥
हरये केवलायैव वामनाय नमोनमः। नमो नृसिंहदेवाय सत्त्वपालाय ते नमः ॥ ४७ ॥
नमो गोविन्दगोपाय नम एकाक्षराय च। नमःसर्वाक्षरायैव हंसरूपाय ते नमः ॥४८॥

त्रितत्त्वाय नमस्तुभ्यं पञ्चतत्त्वाय ते नमः। पञ्चविंशतितत्त्वाय तत्त्वाधाराय वै नमः॥
कृष्णाय कृष्णारूपाय लक्ष्मीनाथाय ते नमः। नमःपद्मपलाशाक्ष आनन्दाय पराय च॥
नमोविश्वम्भरायैव पापनाशाय वै नमः।० नमःपुण्यसुपुण्याय सत्यधर्माय ते नमः॥

नमोनमःशाश्वत अव्ययाय नमोनमःसर्वनभोमयाय।
श्रीपद्मनाभाय महेश्वराय नमामि ते केशव पादपद्मम्॥ ५२॥
आनन्दकन्द कमलाप्रिय वासुदेव सर्वेशईश मधुसूदन देहि दास्यम्।
पादौ नमामि तव केशव जन्मजन्म कृपां कुरुष्व ममशान्तिद शङ्खपाणे॥५३॥
संसारदारुणहुताशनतापदग्धं पुत्रादि बन्धुमरणैर्बहुशोकतापैः।
ज्ञानाम्बुदेन ममप्लावय पद्मनाभ दीनस्य मच्छरणरूप भवस्व नाथ ॥ ५४॥

एवं स्तोत्रं समाकर्ण्य त्वङ्गस्यापि महात्मनः। दर्शयित्वा स्वकंरूपंघनश्यामंमहौजसम्
शङ्खचक्रगदापाणिं पद्महस्तं महाप्रभुम्। वैनतेयसमारूढमात्मरूपं प्रदर्शितम्॥ ५६॥
सर्वाभरणशोभाङ्गं हारकङ्कणकुण्डलैः। राजमानं परंदिव्यंनिर्मलं वनमालया॥ ५७॥
अङ्गस्याग्रे हृषीकेशःशोभमानमहत्प्रभः। श्रीवत्साङ्केन पुण्येन कौस्तुभेन जनार्दनः
दर्शयित्वा स्वकंदेहं सर्वदेवमयोहरिः। स उवाच महात्मानं तमङ्गमृषिसत्तमम्।

भोभोविप्र महाभाग श्रूयतां वचनं शुभम्।
मेघगम्भीरघोषेण समाभाष्य द्विजोत्तमम् ॥ ६०॥

तपसाऽनेन तुष्टोऽस्मि वरं वरयशोभनम्। तुष्यमाणं हृषीकेशं तंदृष्ट्वाकमलापतिम्।
दीप्यमानं विराजन्तं विश्वरूपं जनेश्वरम्। पादाम्बुजद्वयं तस्य प्रणम्य च पुनः पुनः
हर्षेण महताविष्टस्तमुवाच जनार्दनम्। दासोऽहं तव देवेश शङ्खचक्रगदाधर॥ ६३॥
वरंमेदातुकामोऽसिदेहि त्वं वंशजं सुतम्। दिविशक्रो यथाऽऽभातिसर्वतेजःसमन्वित
तादृशं देहि मे पुत्रं सर्वलोकस्य रक्षकम्। सर्वदेवप्रियंदेव ब्रह्मण्यं धर्मपण्डितम्।
दातारं ज्ञानसम्पन्नं धर्मतेजःसमन्वितम्। त्रैलोक्यरक्षकं कृष्णं सत्यधर्मानुपालकम्।
यज्वनामुत्तमंचैकं शूरंत्रैलोक्यभूषणम्। ब्रह्मण्यं वेदविद्वांसं सत्यसन्धंजितेन्द्रियम्।
अजितं सर्वजेतारं विष्णुतेजःसमप्रभम्। वैष्णवं पुण्यकर्तारं पुण्यजं पुण्यलक्षणम्।

शान्तं तु तपसोपेतं सर्वशास्त्र विशारदम् ।
वेदज्ञं योगिनांश्रेष्ठं भवतो गुणसंनिभम् ॥ ६६ ॥
ईदृशं देहि मे पुत्रं दातुकामो यदा वरम् ।

वासुदेव उवाच ।

एभिर्गुणैःसमोपेतस्तवपुत्रो भविष्यति । अत्रिवंशस्य वै धर्ता विश्वस्यास्य महामते ॥
तेजसा यशसापुण्यैःपितरं चोद्धरिष्यति । उद्धरिष्यति यःसत्यैः पितरं च पितामहम् ॥
भवान्यास्यति मे स्थानं तद्विष्णोःपरमं पदम् । इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तमङ्गंप्रतिसंद्विज ॥
कस्यचित्पुण्यवीर्यस्य पुण्यां कन्यांविवाहय ।
तस्यामुत्पादय सुतं शुभं पुण्यावहप्रियम् ॥ ७४ ॥
स भविष्यतिधर्मात्मामत्प्रसादान्महामते । सर्वज्ञः सर्ववेत्ता च यादृशोवाञ्छितस्त्वया
एवं वरं ततो दत्त्वा अन्तर्धानगतोहरिः ॥ ७५ ॥

इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने अङ्गवरप्रदानं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

सुनीथाचरित्रम् ।

ऋषय ऊचुः ।

शप्ता गन्धर्वपुत्रेण सुशङ्खेन महात्मना । तस्य शापात्कथंजाता किं किं कर्मकृतंतया ॥
स लेभे कीदृशं पुत्रं तस्य शापाद्द्विजोत्तम। सुनीथायाश्च चरितं त्वंनो विस्तरतो वद

सूत उवाच ।

सुशङ्खेनापि तेनैव सा शप्ता तनुमध्यमा । पितुःस्थानं गतासा तु सुनीथादुःखपीडिता
पितरं चात्मनश्चैव चरितं च प्रकाशितम् । श्रुतवान्सोऽपिधर्मात्मा मृत्युःसत्यवतांवरः

तामुवाच सुनीथां तु सुतां शप्तां महात्मना ।
भवत्या दुष्कृतं पापं धर्मतेजःप्रणाशनम् ॥ ५ ॥
कस्मात्कृतं महाभागेसुशान्तस्य हि ताडनम् । विरुद्धंसर्वलोकस्यभवत्यापरिकल्पितम्
कामक्रोधविहीनं तं सुशान्तं धर्मवत्सलम् । तपोमार्गे विलीनं च परब्रह्मणिसंस्थितम्
तमेव घातयेद्योवै तस्यपापं शृणुष्व हि । पापात्माजायते पुत्रः किल्विषं लभते बहु ।
ताडयन्तं ताडयेद्यःक्रोशन्तं क्रोशयेत्पुनः । तस्य पापं सर्वं भुङ्क्ते ताडितस्य न संशय
स वै शान्तो जितात्मा च ताडयन्तं न ताडयेत् !
निर्दोषं प्रति येनापि ताडनं च कृतं सुते ॥ १० ॥
पश्चान्मोहेन् पापेन निर्दोषेऽपि च ताडयेत् । निर्दोषं प्रतियेनापि हृद्रोगःक्रियतेवृथा
निर्दोषं ताडयेत्पश्चान्मोहात्पापेनकेनचित् । स पापी पापमाप्नोति निर्दोषस्यशरीरजम्
निर्दोषो घातयेत्तंवै ताडन्तं पापचेतसम् । पुनरुत्थाय वेगेन साहसात्पापचेतनम् ।
पापकर्तुश्च यत्पापं निर्दोषं प्रतिगच्छति । ताडनंनैव तस्माद्धै कार्यंदोषवतोऽपि च
दुष्कृतं च महत्पुत्रि त्वयैवपरिपालितम् ।
शप्तां तेनापियाद्यैव तस्मात्पुण्यं समाचर ॥ १५ ॥
सतां सङ्गं समासाद्य सदैव परिवर्तय । योगध्यानेन ज्ञानेन परिवर्तय नन्दिनि ॥१६
सतांसङ्गो महापुण्यो बहुश्रेयो विधायकः। बाले पश्य सुदृष्टान्तं सतां सङ्गस्ययद्गुण
अम्भंसंस्पर्शनात्पानात्स्नानात्तत्रमहाधियः । मुनयःसिद्धिमायान्तिवाह्याभ्यन्तरक्षालित
आयुष्मन्तो भवन्त्येते लोकाः सर्वे चराचराः ।
आपः शान्ताः सुशीताश्च मृदुगात्राः प्रियङ्कराः ॥ १६ ॥
निर्मला रसवत्यश्च पुण्यवीर्या मलापहाः। तथा सन्तस्त्वयाज्ञेया निषेव्याश्च प्रयत्न
यथावह्नि प्रसङ्गाच्च मलंत्यजति काञ्चनम् । तथासतां हिसंसर्गात्पापंत्यजति मानव
सत्यवह्निःप्रदीप्तश्च प्रज्वलेत्पुण्यतेजसा । सत्येन दीप्ततेजास्तु ज्ञानेनापि सुनिर्मलः
अत्युष्णो ध्यानभावेन अस्पृश्यःपापजैर्नरैः । सत्यवह्नेःप्रसङ्गाच्च पापं सर्वं विनश्य
तस्मात्सत्यस्य संसर्गःकर्तव्यःसर्वथा त्वया । पापभारं परित्यज्य पुण्यमेवं समाश्र

सूत उवाच ।

एवं पित्रा सुनीथा सा दुःखिता प्रतिबोधिता ।
नमस्कृत्य पितुःपादौ गता सा निर्जनं वनम् ॥ २५ ॥
कामं क्रोधं परित्यज्य बालभावं तपस्विनी ।
मोहद्रोहौ च मायां च त्यक्त्वा एकान्तमास्थिता ॥ २६ ॥
तस्याःसख्यःसमाजग्मू रम्भाद्यास्तास्तपोऽन्विताः ।
तां ददृशुर्विशालाक्ष्यः सुनीथां दुःखभागिनीम् ॥ २७ ॥
ध्यायन्तींचिन्तयानांतामूचुश्चिन्तापरायणाः। कस्माच्चिन्तयसेभद्रेकयावाचिन्तयान्विता
तन्नो वै कारणंब्रूहिचिन्तादुःखप्रदायिनी । एकैव सार्थकाचिन्ताधर्मस्यार्थेविचिन्त्यते
द्वितीया सार्थका चिन्ता योगिनां धर्मनन्दिनी ।
अन्या निरर्थिका चिन्ता तां नैव परिकल्पयेत् ॥ ३० ॥
कायनाशकरी चिन्ता बलतेजःप्रणाशिनी । नाशयेत्सर्वसौख्यं तु रूपहानिं निदर्शयेत्
तृष्णा मोहं तथा लोभमेतांश्चिन्ता हि प्रापयेत् ।
पापमुत्पादयेच्चिन्ता चिन्तिता च दिने दिने ॥ ३२ ॥
चिन्ताव्याधिप्रकाशाय नरकाय प्रकल्पयेत् । तस्माच्चिन्तांपरित्यज्यचानुवर्तस्वशोभने
अर्जितं कर्मणापूर्वं स्वयमेवनरेण तु । तदेव भुङ्क्तेऽसौ जन्तुर्ज्ञानवान्नविचिन्तयेत् ॥
तस्माच्चिन्तांपरित्यज्य सुखदुःखादिकं वद । तासांतद्वचनंश्रुत्वासुनीथावाक्यमब्रवीत्
इतिश्री पाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने
सुनीथाचरितं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

———

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सुनीथयासखीभ्योनिजदुष्कर्मनिरूपणम् ।

सूत उवाच ।

यथा शप्ता वनेपूर्वं सुशङ्खेन महात्मना । तासु सर्वं समाख्यातं सखीष्वेव विचेष्टितम्
आत्मनश्च महाभागा दुःखेनाति प्रपीड़िता ॥ १ ॥

सुनीथोवाच ।

अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि सख्यः शृण्वन्तु साम्प्रतम् ॥ २ ॥
मदीयरूपसम्पत्तिवयःसुगुणसम्पदः । विलोक्य मां पितुश्चिन्तासञ्जाताममकारणात्
देवेभ्यो दातुकामोऽसौ मुनिभ्यस्तु महायशाः ।
मां च हस्ते विगृह्यैव सर्वान्वाक्यमुदाहरन् ॥ ४ ॥
गुणयुक्ता सुताबाला ममेयं चारुलोचना । दातुकामोस्मि भद्रं वोगुणिने सुमहात्मने
मृत्योर्वाक्यं ततोदेवा ऋषयः शुश्रुवुस्तदा । तमूचुर्भाषमाणंते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥
तवकन्या गुणाढ्येयं शीलानां परमोनिधिः । दोषेणैकेन सन्दुष्टा ऋषिशापेन तेनवै
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो यस्य वीर्यात्पुमान्किल ।
भविता स महापापी पुण्यवंशविनाशकः ॥ ८ ॥
गङ्गातोयेन सम्पूर्णः कुम्भ एवप्रदृश्यते । सुराया विन्दुनालिप्तो मद्यकुम्भः प्रजायते
पापस्य पापसंसर्गात्कुलं पापि प्रजायते । आरनालस्य वै विन्दुःक्षीरमध्ये यथाति
पश्चान्नाशयते क्षीरमात्मरूपं प्रकाशयेत् । तद्वद्विनाशयेद्वंशं पापःपुत्रो न संशयः ॥
अनेनापि हि दोषेण तवेयं पापभागिनी । अन्यस्मै दीयतां गच्छ देवैरुक्तः पितामम
देवैश्चापि सगन्धर्वैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः। तैश्चापि सम्परित्यक्तःपिता मे दुःखपीडि
ममान्ये चापि स्वीकारं न कुर्वन्ति हि सज्जनाः ।
एवं पापमयं कर्म मया चैव पुराकृतम् ॥ १४ ॥

सन्तप्ता दुःखशोकेन वनमेव समाश्रिता। तपएव चरिष्यामि करिष्ये कायशोषणम्॥
भवतीभिः सुपृष्टाहं कार्यकारण मेव हि। मम चिन्तानुगं कर्म मयातद्वःप्रकाशितम्॥

एवमुक्त्वा सुनाथा सा मृत्योःकन्या यशस्विनी।
विरराम च दुःखार्ता किञ्चिन्नोवाच वै पुनः॥ १७॥

सख्य ऊचुः।

दुःखमेव महाभागे त्यज कायविनाशनम्। नास्ति कस्यकुलेदोषो देवैःपापंसमाश्रितम्
जिह्ममुक्तं पुरा तेन ब्राह्मणा हरसन्निधौ। देवैश्चापि सहित्यक्तो ब्रह्मा पूज्यतमोऽभवत्

ब्रह्महत्याप्रयुक्तोऽसौ देवराजोऽपि पश्य भोः।
देवैःसार्धं महाभागो भुङ्क्ते लोकत्रयं महान्॥ २०॥

गौतमस्य प्रियां भार्यामहल्यां गतवान्पुरा। परदाराभिगामी स देवत्वे परिवर्त्तते॥
ब्रह्महत्योपमंकर्म दारुणं कृतवान्हरः। ब्रह्मणस्तु कपालेन चाद्यापि परिवर्तते॥ २२॥
देवा नमन्ति तं देवमृषयो वेदपारगाः। आदित्यःकुष्ठसंयुक्तस्त्रैलोक्यं च प्रकाशयेत्॥
लोका नमन्ति तं देवं देवाद्याःसचराचराः। कृष्णोभुङ्क्ते महाशापं भार्गवेण कृतंपुरा
गुरुभार्यांगतश्चन्द्रःक्षयीतेन प्रजायते। भविष्यति महातेजा राजराजःप्रतापवान्॥२५॥
पाण्डुपुत्रो महाप्राज्ञो धर्मात्मा सयुधिष्ठिरः। गुरोश्चैव वधार्थाय अनृतं स वदिष्यति

एतेष्वेव महत्पापं वर्तते च महत्सु च।
वैगुण्यं कस्य वै नास्ति कस्य नास्ति च लाञ्छनम्॥ २७॥

भवती स्वल्पदोषेण विलिप्तासिवरानने॥ उपकारं करिष्यामस्तवैव वरवर्णिनि॥२८॥

तवाङ्गे ये गुणाःसन्ति सत्यस्त्रीणां यथाशुभे।
अन्यत्रापि न पश्यामस्तान्गुणांश्चारुलोचने॥ २९॥

रूपमेवगुणःस्त्रीणां प्रथमं भूषणं शुभे। शीलमेव द्वितीयं च तृतीयं च सत्यमेव च॥
आर्जवत्वं चतुर्थं च पञ्चमं धर्ममेव हि। मधुरत्वं ततःप्रोक्तं षष्ठमेव वरानने॥ ३१॥
शुद्धत्वं सप्तमं बाले अन्तर्बाह्येषु योषिताम्। अष्टमं हि पितुर्भावःशुश्रूषा नवमं किल॥
सहिष्णुर्दशमंप्रोक्तं रतिश्चैकादशं तथा। पातिव्रत्यं ततःप्रोक्तं द्वादशं वरवर्णिनि॥३३॥

तैस्त्वं सम्भूषिता बाले मा बिभेषि वरानने। येनोपायेन ते भर्ता भविष्यति सुधर्म
तमुपायं प्रपश्यामस्तवार्थं वयमेव हि। स्वस्थाभव महाभागे मा त्वंवै साहसं कु

सूत उवाच।

एवमुक्ता सुनीथा सा पुनरूचे सखीस्तु ताः। कथयध्वं ममोपायं येनभर्ता भविष्
तामूचुस्तावरानार्यो रम्भाद्याश्चारुलोचनाः। रूपमाधुर्यसंयुक्ता भवती भूतिवर्द्धिनी
ब्रह्मशापेन सम्भीता वयमत्र समागताः। विद्यामेकां प्रदास्यामःपुरुषाणां प्रमोहि
सर्वमायाविदां भद्रे सर्वभद्रप्रदायिनीम्। विद्याबलं ततो दद्युस्तस्यै ताःसुखदाय

यं यं मोहयितुं भद्रे इच्छास्येवं सुरादिकम्।
तं तं सद्यो मोहयाव इत्युक्ता सा तथाकरोत्॥ ४०॥
विद्यायां हि सुसिद्धायां सा सुनीथा सुनन्दिता।
भ्रमत्येवं सखीभिस्तु पुरुषान्सा विपश्यति॥ ४१॥

अटमाना गतापुण्यं नन्दनं वनमुत्तमम्। गङ्गातीरे ततोद्दृष्ट्वा ब्राह्मणंरूपसंयुत
सर्वलक्षणसम्पन्नं सूर्यतेजःसमप्रभम्। रूपेणाप्रतिमंलोके द्वितीयमिव मन्मथम्॥४
देवरूपं महाभागं भाग्यवन्तं सुभाग्यदम्। अनौपम्यं महात्मानं विष्णुतेजःसमप्रभ
वैष्णवं सर्वपापघ्नं विष्णुतुल्यपराक्रमम्। कामक्रोधविहीनं तमत्रिवंशविभूषणम्॥

दृष्ट्वा सुरूपं तपसां स्वरूपं दिव्यप्रभावं परितप्यमानम्।
पप्रच्छ रम्भां सुसखीं सरागा कोऽयं दिविष्ठः प्रवरो महात्मा॥ ४६।

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

रम्भामुखादङ्गवृत्तं श्रुत्वा तदाप्तये सुनीथायानिश्चयः।

रम्भोवाच।

ब्रह्मा अव्यक्तसम्भूतस्तस्माज्जज्ञे प्रजापतिः। अत्रिर्नाम सधर्मात्मा तस्यपुत्रो महा

अङ्गोनाम अयं भद्रे नन्दनं वनमागतः। इन्द्रस्य सम्पदं दृष्ट्वा नानातेजस्समन्विताम्
कृतास्पृहा अनेनापि इन्द्रस्य सदृशेपदे। ईदृशो हि यदापुत्रो ममस्याद्धर्मसंयुतः ॥३॥
सुश्रेयो मे भवेज्जन्म यशःकीर्ति समन्वितम्। आराधितो हृषीकेशस्तपोभिर्नियमैस्तथा
सुप्रसन्ने हृषीकेशे वरं याचितवानयम्। इन्द्रस्य सदृशंपुत्रं विष्णुतेजःपराक्रमम् ॥५॥
वैष्णवं सर्वपापघ्नं देहिमे मधुसूदन। दत्तवान्स तदा पुत्रमीदृशं सर्वधारकम् ॥ ६ ॥
तदाप्रभृति विप्रेन्द्रःपुण्यां कन्यां प्रपश्यति। यथा त्वं चारुसर्वाङ्गी तथा यं परिपश्यति
एनंगच्छ वरारोहे अस्मात्पुत्रो भविष्यति। पुण्यात्मा पुण्यधर्मज्ञो विष्णुतेजःपराक्रमः
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथाहं पृच्छिता त्वया। अयंभर्ता भवत्यर्हो भवेदेव न संशयः ॥९॥

सुशङ्खस्यापि यःशापो वृथा सोऽपि भविष्यति।
अस्माज्जाते महाभागे पुत्रे धर्मं प्रचारिणि ॥ १० ॥

भविष्यसि सुखी भद्रे सत्यंसत्यं वदाम्यहम्। सुक्षेत्रे कृषिकारस्तु वीजंवपति तत्परः
स तथा भुञ्जते देवि यथावीजं तथाफलम्। अन्यथानैव जायेत तत्सर्वं सदृशं भवेत् ॥
अयमेष महाभागस्तपस्वी पुण्यवीर्यवान्। अस्य वीर्यात्समुत्पन्नो अस्यैव गुणसम्पदा
युक्तःपुत्रो महातेजाःसर्वदेहभृतांवरः। भविष्यति महाभाग्यो शुक्तात्मा योगतत्त्ववित्

एवं हि वाक्यं तु निशम्य बाला रम्भाप्रियोक्तं शिवदायकं तत्।
विचिन्त्यबुद्ध्येह सुनीथया तदा तत्त्वार्थमेतत्परिसत्यमेव हि ॥ १५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

सुनीथयागानप्रभावादङ्गंवशीकरणम्।

सुनीथोवाच।

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे एवमेतत्करोम्यहम्। अनयाविद्यया विप्रं मोहयिष्यामि नान्यथा

साहाय्यं देहि मे पुण्यं येन गच्छामि साम्प्रतम् ।
एवमुक्ता तया रम्भा तामुवाच मनस्विनीम् ॥ २ ॥

कीदृग्ददामि साहाय्यं तत्त्वं कथय भामिनि । दूतत्वं गच्छमे भद्रे एतंप्रति सुलाम्प्रतम्
एवमुक्तं तया तां तु रम्भांप्रति सुलोचनाम् । एवमेव प्रतिज्ञातं रम्भयादेवयोषिता ॥
करिष्ये तव साहाय्यमादेशो मम दीयताम् । सद्भावेन विशालाक्षी रूपयौवनशालि
मायया दिव्यरूपा सा सम्बभूव वरानना । रूपेणाप्रतिमालोके मोहयन्ती जगत्त्रय
मेरोश्चैव महापुण्ये शिखरे चारुकन्दरे । नानाधातुसमाकीर्णे नानरत्नोपशोभिते
देववृक्षैःसमाकीर्णे बहुपुष्पोपशोभिते । देववृन्दसमाकीर्णे गन्धर्वाप्सरसेविते ॥
मनोहरे सुरम्ये च शीतच्छायासमाकुले । चन्दनानामशोकानां तरूणां चारुहासि
दोलायां सा समारूढा सर्वश्रृङ्गारशोभिता । कौशेयेन सुनीलेन राजमाना वरानन
बन्धूकपुष्पवर्णेन कञ्चुकेन द्विजोत्तमाः । सर्वाङ्गसुन्दरी बाला वीणातालकराविल
गायमाना वरंगीतं सुस्वरं विश्वमोहनम् । ताभिःपरिवृताबाला सखीभिःसुमनोह

अङ्गस्तु कन्दरे पुण्ये एकान्ते ध्यानमास्थितः ।
कामक्रोधविहीनस्तु ध्यायमानो जनार्दनम् ॥ १३ ॥

स श्रुत्वा सुस्वरंगीतं मधुरं सुमनोहरम् । तालमानक्रियोपेतं सर्वसत्त्वविकर्षणम् ॥
ध्यानाच्चचाल तेजस्वी मायागीतेन मोहितः । समुत्थायासनात्तूर्णं वीक्षमाणोमुहु
जगाम तत्रवेगेन मायाचलित मानसः । दोलासंस्थां विलोक्यैव वीणादण्डकरावि
हसमानां सुगायन्तीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । मोहितस्तेन गीतेन रूपेणापि महाय
तस्यालावण्यभावेन मन्मथस्य शराहतः । आकुलव्याकुलज्ञानऋषिपुत्रो द्विजोत्तम

प्रलपत्यतिमोहेन जृम्भते च पुनः पुनः ।
स्वेदःकम्पोऽथ सन्तापस्तस्याजायत तत्क्षणात् ॥ १६ ॥

मुह्यन्निव महामोहैर्ग्लानश्चलितमानसः । वेपमानस्ततस्त्वङ्गो दूयमानःसमागतः ॥

तामालोक्य विशालाक्षीं मृत्युकन्यां यशस्विनीम् ।
अथोवाच महात्मास सुनीथां चारुहासिनीम् ॥ २१ ॥

का त्वं कस्य वरारोहे सखीभिःपरिवारिता। केनकार्येण सम्प्राप्ता केनत्वं प्रेषितावनम्
तवाङ्ग सुन्दरं सर्वमत्रभाति महावने। समाचक्ष्व ममाद्यैव प्रसादसुमुखीभव ॥२३॥
मायामोहेन सम्मुग्धास्तस्याःकर्म न विन्दति। मार्गणैर्मन्मथस्यापि परिविद्धोमहामुनिः

एवंविधं महद्वाक्यं समाकर्ण्य महामतेः।
नोवाच किञ्चित्सा विप्रं समालोक्य सखीमुखम् ॥ २५ ॥

रम्भां च प्रेरयामास सुनीथां संज्ञया सखीम्। समुवाच ततो रम्भा सादरं तं द्विजंप्रति

इयंकन्या महाभागा मृत्योश्चापि महात्मनः।
सुनीथाख्या प्रसिद्धेयं सर्वलक्षणसम्पदा ॥ २७ ॥

पतिमन्विच्छतींवालां धर्मवन्तं तपोनिधिम्। शान्तं दान्तं महाप्राज्ञं वेदविद्याविशारदम्
एवंविधं महद्वाक्यं समाकर्ण्य महामुनिः। तामुवाच ततस्त्वङ्गो रम्भामप्सरसांवराम्
मया चाराधितो विष्णुःसर्वविश्वमयो हरिः। तेन दत्तो वरोमह्यं पुत्राख्यःसर्वसिद्धिदः
तन्निमित्तमहं भद्रे सुतार्थं नित्यमेव च। कस्यचित्पुण्यवीर्यस्य कन्यामेकां प्रचिन्तये
सदैवाहं न पश्यामि सुभार्यां सत्यमीदृशीम्। इयंधर्मस्य वै कन्या धर्माचारा वरानना
मामेवं हि भजत्वेषा यदि कान्तमिहेच्छति। यं यमिच्छेदियंवाला तं ददामि न संशयः
प्रदेयं देयमित्याह अस्याःसङ्गमकारणात्। एकमेव त्वयादेयं रम्भोवाच द्विजोत्तमम् ॥

विप्रेन्द्र त्वं शृणुष्वेह प्रतिज्ञांवच्मि साम्प्रतम्।
एषानैव त्वया त्याज्या धर्मपत्नी तवैव हि ॥ ३५ ॥

अस्यादोषो गुणोनैव ग्राह्य एवत्वया कदा। इत्यर्थे प्रत्ययं विप्र प्रत्यक्षं परिदर्शय ॥
हस्तं देहि विप्रेन्द्र सत्यप्रत्ययकारकम्। एवमस्तु मयादत्तो ह्यस्याहस्तो न संशयः

सूत उवाच।

एवंसम्बन्धकं कृत्वा सत्यप्रत्ययकारकम्। गान्धर्वेण विवाहेन सुनीथामुपयेमिवान् ॥
तस्मैदत्त्वा सुनीथां तां रम्भा हृष्टेनचेतसा। सा तां चामन्त्रयित्वा वै गतासेहं स्वकंपुनः
हृष्टचेतसःसख्यःस्वस्थानं परिजग्मिरे। गतासु तासु सर्वासु सखीषु द्विजसत्तमः ॥
मे त्वङ्गस्तयासार्धं प्रिययाभार्यया सह। तस्यामुत्पाद्य तनयं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥

चकार नामतस्यैव वेनाख्यं तनयस्य हि । ववृधे समहातेजाःसुनीथातनयस्तदा ॥४
वेदशास्त्रमधीत्यैव धनुर्वेदं गुणान्वितम् । सर्वासामपि मेधावी विद्यानां पारमेयि
अङ्गस्य तनयोवेनःशिष्टाचारेणवर्तते । स वेनो ब्राह्मणश्रेष्ठःक्षत्राचारपरोऽभव
दिविचेन्द्रो यथाभाति सर्वतेजःसमन्वितः । भात्येवं तु महाप्राज्ञःस्ववलेन पराक्र
चाक्षुषस्यान्तरेप्राप्ते वैवस्वतसमागते । प्रजापालं विनालोके प्रजाःसीदन्ति सर्व

ऋषयो धर्मतत्त्वज्ञाःप्रजाहेतोस्तपोधनाः ।
व्यचिन्तयन्महीपालं धर्मज्ञं सत्यपण्डितम् ॥ ४७ ॥

तंवेनमेव ददृशुःसम्पन्नं लक्षणैर्युतम् । प्राजापत्ये पदेपुण्ये अभ्यषिञ्चन्द्विजोत्तम
अभिषिक्ते महाभागे त्वङ्गपुत्रे तदा नृपे । ते प्रजापतयःसर्वे जग्मुश्चैव तपोवनम् ॥४

गतेपु तेषु सर्वेषु वेनो राज्यमकारयत् ।
सा सुनीथा सुतंदृष्ट्वा सर्वराज्यप्रसाधकम् ॥ ५० ॥

विशङ्कते प्रभावेण शापात्तस्य महात्मनः । ममपुत्रो महाभागो धर्मत्राता भविष्य
इत्येवं चिन्तयेन्नित्यं पूर्वपापाद्विशङ्किता । धर्माङ्गानि सुपुण्यानि सुताग्रे परिद

सत्यभावादिकान्पुण्यान्गुणान्सा वै प्रकाशयेत् ।
इत्युवाच सुतं सा हि अहं धर्मसुता सुत ॥ ५३ ॥

पिता ते धर्मतत्त्वज्ञस्तस्माद्धर्मं समाचर । इत्येवं बोधयेन्नित्यं पुत्रंवेनं तदा स
मातापित्रोस्तयोर्वाक्यं प्रजायुक्तं प्रपालयेत् । एवंवेनःप्रजापालःसञ्जातःक्षितिमण्ड
सुखेन जीवते लोकःप्रजाधर्मेण रञ्जिताः । एवं राज्यप्रभावं तु वेनस्यापि महात्म

धर्मभावाःप्रवर्तन्ते तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥ ५७ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

वेनस्य छन्नलिङ्गधारिणापुरुषेणसह संवादः ।

ऋषयऊचुः ।

एवंवेनस्य चैवासीत्सृष्टिरेव महात्मनः । धर्माचारं परित्यज्य कथं पापमतिर्भवेत् ॥

सूतउवाच ।

ज्ञानविज्ञानसंपन्ना मुनयस्तत्त्ववेदिनः । शुभाशुभं वदन्त्येवं तन्नस्यादिह चान्यथा ॥२॥
प्यमानेन तेनापि सुशङ्खेन महात्मना । दत्तःशापःकथं विप्रा न यथावच्चजायते ॥
वेनस्य पातकाचारं सर्वमेव वदाम्यहम् । तस्मिञ्छासति धर्मज्ञे प्रजापाले महात्मनि
पुरुषः कश्चिदायातश्छन्नलिङ्गधरस्तदा । नग्नरूपो महाकायः शिरोमुण्डो महाप्रभः ॥

मार्जनी शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन् ।
गृहीतं पानपात्रं तु नालिकेरमयंकरे ॥ ६ ॥

पठमानोह्यसच्छास्त्रं वेदधर्मविदूषकम् । यत्र वेनोमहाराजस्तत्रायातस्त्वरान्वितः ॥

सभायां तस्य वेनस्य प्रविवेश स पापवान् ।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं वेनः प्रश्नं तदाऽकरोत् ॥ ८ ॥

भवान्को हि समायात ईदृग्रूपधरो मम । सभायां वर्तमानस्य पुरः कस्मात्समागतः

को वेषः किन्तु ते नाम को धर्मः कर्म ते वद ।
को वेदस्ते कः आचारः किंतपः का प्रभावना ॥ १० ॥

ते ज्ञानं कःप्रभावस्ते किं सत्यंधर्मलक्षणम् । तत्त्वं सर्वं समाचक्ष्व ममाग्रेसत्यमेव च
त्वा वेनस्य तद्वाक्यं पापो वाक्यमुदाहरत् । करोष्येवं वृथा राज्यंमहामूढो नसंशयः
अहं धर्मस्यसर्वस्वमहंपूज्यतमस्सुरैः । अहं ज्ञानमहंसत्यमहं धाता सनातनः ॥ १३ ॥
अहं धर्म अहं मोक्षः सर्वदेवमयो ह्यहम् । ब्रह्मदेहात्समुद्भूतः सत्यसन्धोऽस्मिनान्यथा
नरूपं विजानीहि सत्यधर्मकलेवरम् । मामेव हि प्रधावन्ति योगिनो ज्ञानतत्पराः ॥

वेन उवाच ।

तवैव कीदृशं कर्म किं ते दर्शनमेव च । किमाचारो वदस्वैहि इत्युक्तं तेन भूभुजा

पातक उवाच ।

अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो दृश्यते गुरुः । दयाचैव परोधर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते
दर्शनेऽस्मिन्नसन्देह आचारान्प्रवदाम्यहम् । यजनं याजनं नास्ति वेदाध्ययनमेव च

नास्ति सन्ध्या तपो दानं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
हव्यकव्यादिकं नास्ति नैव यज्ञादिकाक्रिया ॥ १६ ॥

पितृणां तर्पणं नास्ति नातिथिर्वैश्वदेविकम् । क्षपणस्य वरापूजा अर्हतो ध्यानमुत्तम
अयं धर्मसमाचारो जैनमार्गे प्रदृश्यते । एतत्ते सर्वमाख्यातं निजधर्मस्य लक्षणं

वेन उवाच ।

वेदप्रोक्तो यथा धर्मो यत्र यज्ञादिकाःक्रियाः । पितृणां तर्पणं श्राद्धं वैश्वदेवं न दृश
न दानं तप एवास्ति कास्ते धर्मस्यलक्षणम् । वद सत्यं ममाग्रे तु दयाधर्मश्च कीदृ

पातक उवाच ।

पञ्चतत्त्वप्रवृद्धोऽयं प्राणिनां काय एव च । आत्मावायुस्वरूपोऽयंतेषांनास्तिप्रसङ्ग
यथा जलेषु भूतानामपि सङ्गमवेहि तत् । जायते बुद्बुदाकारं तद्वद्भूतसमागम
पृथ्वीभावो रजःस्थस्तु चापस्तत्रैव संस्थिताः । ज्योतिस्तत्र प्रदृश्येतसुवायुर्वर्तते
आकाशमावृणोत्पश्चाद्बुद्बुदत्वं प्रजायते । अप्सु मध्ये प्रभात्येव सुतेजो वर्तुलं
क्षणमात्रं प्रदृश्येत क्षणान्नैव च दृश्यते । तद्वद्भूतसमायोगः सर्वत्र परिदृश्य
अन्तकाले प्रयात्यात्मा पञ्चपञ्चसुयान्तिते । मोहमुग्धास्ततो मर्त्या वर्तन्ते चपरस्
श्राद्धंकुर्वन्ति मोहेन क्षयाहे पितृतर्पणम् । क्वास्तेमृतःसमश्नातिकीदृशोऽसौनृपो

किंज्ञानं कीदृशं कार्यं वेनदृष्टं वदस्व नः ।
मिष्टान्नं भोजयित्वा च तृप्यन्ति च ब्राह्मणाः ॥ ३१ ॥

कस्य श्राद्धं प्रदीयेत सा तु श्रद्धा निरर्थिका । अन्यदेवं प्रवक्ष्यामि वेदानांकर्मदा
यदाऽतिथिर्गृहे याति महोक्षं पचते द्विजः । अजं वा राजराजेन्द्र अतिथिपरिभोज

अश्वमेधमखे अश्वं गोमेधे वृषमेव च। नरमेधेनरं राजन्वाजपेये तथाह्यजान् ॥ ३४ ॥
राजसूये महाराज प्राणिनां घातनं बहु। पुण्डरीके गजंहन्याद्गजमेधेऽथ कुञ्जरम् ॥
सौत्रामण्यां पशुं मेध्यं मेषमेव प्रदृश्यते। नानारूपेषु सर्वेषु श्रूयतांनृपनन्दनः ॥

नानाजातिविशेषाणां पशूनां घातनं स्मृतम्।
यच्चापि दीयते दानं किंतद्दानस्य लक्षणम् ॥ ३७ ॥

ज्ञेयं तदन्नमुच्छिष्टं क्रियते भूरिभोजनम्। अत्यन्तदोषहीनांस्तान्हिंसन्ति यन्महामखे
तत्र किं दृश्यते धर्मः किं फलं तत्र भूपते। पशूनां मारणं यत्र निर्दिष्टंवेदपण्डितैः ॥
तस्माद्धिनष्टधर्मं च न पुण्यं मोक्षदायकम्। दयांविना हि योधर्मः स धर्मोविफलायते
जीवानां पालनं यत्र तत्र धर्मो न संशयः। स्वाहाकारः स्वधाकारस्तपःसत्यं नृपोत्तमः

दयाहीनं चापलं स्यान्नास्ति धर्मस्तु तत्र हि।
एते वेदा न वेदास्युः दया यत्र न विद्यते ॥ ४२ ॥

दयादानपरो नित्यं जीवमेव प्ररक्षयेत्। चाण्डालोऽप्यथशूद्रो वा स वै ब्राह्मणउच्यते
ब्राह्मणो निर्दयो योवै पशुघातपरायणः। स वै सुनिर्दयः पापे कठिनः क्रूरचेतनः ॥
वञ्चकैः कथितो वेदो योवेदो ज्ञानवर्जितः। यत्र ज्ञानं भवेन्नित्यं तत्र वेदः प्रतिष्ठते ॥
दयाहीनेषु वेदेषु विप्रेषु च महामते। नास्ति सत्यं क्रिया तत्र वेदविप्रेषु वै तदा ॥

वेदा न वेदा राजेन्द्र ब्राह्मणाः सत्यवर्जिताः।
दानस्यापि फलं नास्ति तस्माद्दानं न दीयते ॥ ४७ ॥
यथा श्राद्धस्य वै चिह्नं तथा दानस्य लक्षणम्।
जिनस्यापि च यद्धर्मं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४८ ॥

तवाग्रेऽहं प्रवक्ष्यामि बहुपुण्यप्रदायकम्। आदौ दया प्रकर्तव्या शान्तभूतेन चेतसा ॥
आराधयेद्धूर्तादेवं जितं येन चराचरम्। मनसा शुद्धभावेन जिनमेकं प्रपूजयेत् ॥

नमस्कारः प्रकर्तव्यस्तस्य देवस्य नान्यथा।
माता पित्रोस्तु वै पादौ कदा नैव प्रवन्दयेत् ॥ ५१ ॥
अन्येषामपि का वार्ता श्रूयतां राजसत्तमः ॥ ५२ ॥

वेन उवाच ।

एते विप्राश्च आचार्या गङ्गाद्याः सरितस्तथा । वदन्ति पुण्यतीर्थानि बहुपुण्यप्रदा
तत्किं वदस्व सत्यं मे यदि धर्ममिहेच्छसि ॥ ५३ ॥

पातक उवाच ।

आकाशाद्वै महाराज मेघा वर्षन्ति वै जलम् । भूमौ हि पर्वतेष्वेवं सर्वत्र पतते
सआप्लाव्य ततस्तिष्ठेद्द्यां सर्वत्र भावयेत् । नद्यः पापप्रवाहास्तुतास्तुतीर्थं श्रुतं
जलाशया महाराज तडागाः सागरास्तथा । पृथिव्या धारकाश्चैव गिरयो अश्मरा
नास्त्येतेषु च वै तीर्थं जलैर्जलदमुत्तमम् । स्नाने यदा महत्पुण्यं कस्मान्मत्स्येषु
दृष्टास्नानेन वै सिद्धिर्मीनाः शुद्धयन्तिनान्यथा । यत्र जिनस्तत्र तीर्थं तत्र धर्मःसना
तपोदानादिकं सर्वं पुण्यं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥ ५९ ॥
एको जिनः सर्वमयो नृपेन्द्र नास्त्येव धर्मं परमं हि तीर्थम् ।
अयं तु लाभः परमस्तु तस्माद्ध्यायस्व नित्यं सुसुखो भविष्यसि ॥ ६
विनिन्द्य धर्मं सकलं सवेदं दानं सपुण्यं परयज्ञरूपम् ।
पापस्वभावैर्बहुबोधितो नृपस्त्वङ्गस्य पुत्रो भुवि तेन पापिना ॥ ६१ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपा
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

वेनस्यवैदिकधर्मकर्मपरित्यागः ।

सूत उवाच ।

एवं सम्बोधितो वेनः पापभावं गतः किल । पुरुषेण तेन जैनेन महापापेन मोहि
नमस्कृत्य ततः पादौ तस्यैव च दुरात्मनः । वेदधर्मं परित्यज्य सत्यधर्मादिकांश्च

सुयज्ञानां निवृत्तिः स्याद्वेदानां हि तथैव च।
पुण्यशास्त्रमयो धर्मस्तदा नैव प्रवर्तितः ॥ ३ ॥

सर्वपापमयो लोकः सञ्जातस्तस्यशासनात्। नैवयागाश्च वेदाश्च धर्मशास्त्रार्थमुत्तमम्
न दानाध्ययनं विप्रास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे। एवं धर्मप्रलोपोऽभून्महत्पापं प्रवर्तितम्
अङ्गेन वार्यमाणस्तु अन्यथा कुरुते भृशम्। न ननाम पितुः पादौ मातुश्चैव दुरात्मवान्

सनकस्यापिविप्रस्य अहमेकः प्रतापवान्।
पित्रा निवार्यमाणश्च मात्राचैव दुरात्मवान् ॥ ७ ॥

न करोति शुभं पुण्यं तीर्थदानादिकं कदा। आत्मभावानुरूपं च बहुकालं महायशाः ॥
पुनः सर्वैर्विचार्यैवं कस्मात्पापी व्यजायत। अङ्गप्रजापतेः पुत्रो वंशलाञ्छनमागतः ॥
पुनःपप्रच्छ धर्मात्मा सुतां मृत्योर्महात्मनः। कस्यदोषात्समुत्पन्नो वद सत्यं ममप्रिये

सुनीथोवाच।

पूर्वमेव स्ववृत्तान्तमात्मपुण्यं च नन्दिनी। समाचष्ट च अङ्गाय मम दोषान्महामते ॥
बाल्येकृतं मयापापं सुशङ्खस्यमहात्मनः। तपसिसंस्थितस्यापि नान्यत्किञ्चित्कृतंमया
शप्ताहं कुप्यता तेन दुष्टा ते सन्ततिर्भवेत्। इति जाने महाभाग तेनायं दुष्टतां गतः ॥

समाकर्ण्य महातेजास्तयासह वनं ययौ।
गते तस्मिन्महाभागे सभार्ये च वने तदा ॥ १४ ॥

सप्तैते ऋषयस्तत्र वेनपार्श्वं गतास्तथा। समाहूय ततः प्रोचुरङ्गस्य तनयं प्रति ॥१५॥
मा वेनसाहसं कार्षीः प्रजापालोभवानिह। त्वयासर्वमिदं लोकं त्रैलोक्यं सचराचरम्
धर्मे चैव महाभाग सकलं हि प्रतिष्ठितम्। पापकर्म परित्यज्य पुण्यं कर्म समाचर ॥
एवमुक्तेषु तेष्वेव प्रहसन्वाक्यमब्रवीत्। अहमेवपरो धर्मोऽहमेवार्हः सनातनः ॥ १८ ॥
अहं धाता अहं गोप्ता अहं वेदार्थ एव च। अहं धर्मो महापुण्यो जैनधर्मः सनातनः ॥

मामेव कर्मणा विप्रा भजध्वं धर्मरूपिणम् ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः। सर्वेषामेव वर्णानां श्रुतिरेषासनातनी

वेदाचारेण वर्तन्ते तेन जीवन्ति जन्तवः । ब्रह्मवंशात्समुद्भूतो भवान्ब्राह्मण एव

पश्चाद्राजा पृथिव्याश्च सञ्जातः कृतविक्रमः ।

राजपुण्येन राजेन्द्र सुखं जीवन्ति वै द्विजाः ॥ २३ ॥

राज्ञः पापेन नश्यन्ति तस्मात्पुण्यं समाचर । समादृतस्त्वया धर्मः कृतश्चापि नरा

त्रेतायुगस्य कर्मापि द्वापरस्य तथा नहि । कलेश्चैव प्रवेशं तु वर्त्तयिष्यन्ति मान

जैनधर्मं समाश्रित्य सर्वे पापप्रमोहिताः । वेदाचारं परित्यज्य पापं यास्यन्ति मान

पापस्य मूलमेवं वै जैनधर्मो न संशयः । अनेन मुग्धा राजेन्द्र महामोहेन पातिता

मानवाः पापसङ्घातास्तेषां नाशाय नान्यथा ।

भविष्यत्येव गोविन्दः सर्वपापापहारकः ॥ २८ ॥

स्वेच्छारूपं समासाद्य संहरिष्यति पातकात् । पापेषु सङ्गतेष्वेवं म्लेच्छनाशाय वै

कल्किरेव स्वयं देवो भविष्यति न संशयः ॥ २९ ॥

व्यवहारं कलेश्चैव त्यज पुण्यं समाश्रय । वर्तयस्व हि सत्येन प्रजापालो भवस्व

वेन उवाच ।

अहं ज्ञानवतां श्रेष्ठः सर्वं ज्ञातं मया इह । योऽन्यथा वर्तते चैव स दण्ड्यो भवति

अत्यर्थं भाषमाणं तं राजानं पापचेतनम् । कुपितास्ते महात्मानः सर्वे वै ब्रह्मणः

कुपितेष्वेव विप्रेषु वेनो राजा महात्मसु ।

ब्रह्मशापभयात्तेषां वल्मीकं प्रविवेश ह ॥ ३३ ॥

अथ ते मुनयः क्रुद्धा वेनं पश्यन्तिसर्वतः । ज्ञात्वा प्रनष्टं भूपं तं वल्मीकस्थं सुसा

बलादानिन्युस्तं विप्राः क्रूरं तं पापचेतनम् । दृष्ट्वा च पापकर्माणं मुनयःसुसमा

सव्यं पाणिं ममन्थुस्ते भूपस्य जातमन्यवः ।

तस्माज्जातो महाह्रस्वो नीलवर्णो भयङ्करः ॥ ३६ ॥

बर्बरो रक्तनेत्रस्तु बाणपाणिर्धनुर्द्धरः । सर्वेषामेव पापानां निषादानां बभूवह ॥ ३

धाता पालयिता राजा म्लेच्छानां तु विशेषतः । तं दृष्ट्वा पापकर्माणमृषयस्तुमहा

ममन्थुर्दक्षिणंपाणिं वेनस्यापिमहात्मनः । तस्माज्जातोमहात्मा स येन दुग्धावसु

पृथुर्नाम महाप्राज्ञो राजराजोमहाबलः । तस्य पुण्यप्रसादाच्च वेनो धर्मार्थकोविदः ॥
चक्रवर्तिपदं भुक्त्वा प्रसादात्तस्य चक्रिणः । जगाम वैष्णवं लोकं तद्विष्णोःपरमंपदम्
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

रेवातीरे वेनस्यतपस्याकरणम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कथं वेनो गतः स्वर्गं पापंत्यक्त्वा प्रदूरतः। तन्नो विस्तरतोऽत्रापि वद सत्यवतां वर॥

सूत उवाच ।

ऋषीणांपुण्यसंसर्गात्संवादाच्चद्विजोत्तमाः । कायस्यमथनात्पापोवहिस्तस्यविनिर्गतः

पश्चाद्वेनः स पुण्यात्मा ज्ञानं लेभे च शाश्वतम् ।
रेवाया दक्षिणे कूले तपश्चार स द्विजाः ॥ ३ ॥

तृणविन्दोर्ऋषेश्चैव आश्रमे पापनाशने । वर्षाणां तु शतं साग्रं कामक्रोधविवर्जितः ॥
तस्योग्रतपसा देवः शङ्खचक्रगदाधरः । प्रसन्नोऽभून्महाभागो निष्पापस्य नृपस्य वै॥
उवाच च प्रसन्नोऽस्मि व्रियतां वर उत्तमः ॥ ५ ॥

वेन उवाच ।

यदि देव प्रसन्नोऽसि देहि मे वरमुत्तमम् ।
अनेनापि शरीरेण गन्तुमिच्छामि त्वत्पदम् ॥ ६ ॥

पित्रासार्धं महाभाग मात्रा चैव सुरेश्वर । तवैव तेजसा देव तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

श्रीवासुदेव उवाच ।

क्व गतोऽसौ महामोहो येन त्वं मोहितोनृप ।
लोभेनमोहयुक्तेन तमोमार्गे निपातितः ॥ ८ ॥

वेन उवाच ।

यन्मे पूर्वकृतं पापं तेनाहं मोहितो विभो । अतो मामुद्धरास्मात्त्वं पापाच्चैव सुदारुण
प्रजप्तव्यमथो पाठ्यं तद्वदानुग्रहाद्विभो ॥ १० ॥

भगवानुवाच ।

साधु भूप महाभाग पापं ते नाशमागतम् ।
शुद्धोऽसि तपसा च त्वं ततः पुण्यं वदाम्यहम् ॥ ११ ॥

पुरा वै ब्रह्मणा तात पृष्टोऽहं भवता यथा । तस्मै यदुदितं वत्स तत्ते सर्वं वदाम्य
एकदा ब्रह्मणा ध्यानस्थितेन नाभिपङ्कजे । प्रादुरास तदा तस्य वरदानाय सुव्रत ॥१
तेन पृष्टं महत्पुण्यं स्तोत्रं पापप्रणाशनम् । वासुदेवाभिधानं च सुगतिप्रदमिच्छता
स्तोत्राणां परमं तस्मै वासुदेवाभिधं महत् । सर्वसौख्यप्रदं नृणां पठतां जपतां सदा
उपादिशं महाभाग विष्णुप्रीतिकरं परम् ॥ १५ ॥

विष्णुरुवाच ।

एतत्सर्वं जगद्व्याप्तं मया त्वव्यक्तमूर्तिना । अतो मां मुनयः प्राहुर्विष्णुं विष्णुपरायण
वसन्ति यत्र भूतानि वसत्येषु च यो विभुः । स वासुदेवो विज्ञेयो विद्वद्भिरहमादय
सङ्कर्षति प्रजाश्चान्ते ह्यव्यक्ताय यतो विभुः । ततः सङ्कर्षणो नाम्ना विज्ञेयः शरणाग
इङ्गिते कामरूपोऽहं बहुस्यामिति काम्यया ।
प्रद्युम्नोऽहं बुधैस्तस्माद्विज्ञेयोऽस्मि सुदार्थिभिः ॥ १६ ॥

अत्र लोके विनाचेशौ सर्वेशौ हरकेशवौ । निरुद्धोऽहं योगबलान्नकेनातोऽनिरुद्धवत्
विश्वाख्योऽहं प्रतिजगज्ज्ञानविज्ञानसंयुतः । अहमित्यभिमानी च जाग्रच्चिन्तासमाकुल
तैजसोऽहं जगच्चेष्टामयश्चेन्द्रियरूपवान् । ज्ञानकर्मसमुद्रिक्तः स्वप्नावस्थां गतोऽहमस
प्राज्ञोऽहमधिदैवात्मा विश्वाधिष्ठानगोचरः ।
सुषुप्तावास्थितो लोकादुदासीनो विकल्पितः ॥ २३

तुरीयोऽहं निर्विकारी गुणावस्थाविवर्जितः । निर्लिप्तः साक्षिवद्विश्वप्रतिबिम्बितविश्व
चिदाभासश्चिदानन्दश्चिन्मयश्चित्स्वरूपवान् ।

नित्योऽक्षरो ब्रह्मरूपो ब्रह्मन्नेवमवेहि माम् ॥ २५ ॥

भगवानुवाच ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणे पुरा ।
सोऽपि ज्ञात्वा जगद्व्याप्तिं कृतात्मा समभूत्क्षणात् ॥ २६ ॥

राजंस्त्वमपि शुद्धात्मा पृथोर्जन्मन एव च । तथाप्याराधय विभुं स्तोत्रेणानेन सुव्रत
तुष्टो विष्णुस्तमभ्याह वरं वरय मानद ॥ २८ ॥

वेन उवाच ।

सुगतिं देहि मे विष्णो दुष्कृतात्तारयस्व माम् ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि कारणं वद सन्नतेः ॥ २९ ॥

विष्णुरुवाच ।

पूर्वमेव महाभाग त्वङ्गेनापि महात्मना । अहमाराधितस्तेन तस्मै दत्तो वरो मया ॥
यास्यसि महाभाग वैष्णवं लोकमुत्तमम् । कर्मणा स्वेन विप्रेन्द्र पुण्येन नृपनन्दन ॥
आत्मार्थे त्वं महाभाग वरमेव प्रयाचय । शृणु वेन महाभाग वृत्तान्तं पूर्वसम्भवम् ॥
व मात्रे पुरा दत्तः शापः क्रुद्धेन भूपते । सुशङ्खेन सुनीथायै बाल्ये पूर्वं महात्मना ॥
तस्त्वङ्गे वरो दत्तो मयैव विदितात्मना । त्वां समुद्धर्त्तुकामेन सुपुत्रस्ते भविष्यति ॥
वमुक्त्वा तु पितरं तवाहं गुणवत्सल । भवदङ्गात्समुद्भूतः करिष्ये लोकपालनम् ॥
दिवीन्द्रो हि यथा भाति तथाहं भूतलेस्थितः ।
आत्मा वै जायते पुत्र इति सत्यवती श्रुतिः ॥ ३६ ॥

तस्त्वं सुगतिं वत्स लभिष्यसि वरान्मम । गत्यर्थमात्मनो राजन्दानमेकं समाचर ॥
स्त्वां पातकरूपोऽहं सुनीथायाः परन्तप । अब्रुवं नग्नरूपेण कर्तुं त्वां तु विग्रहम्
न्यथा तु सुशङ्खस्य वाक्यमेवान्यथा भवेत् । अतो विधिर्निषेधश्च ह्यहमेव नृपोत्तम
र्मानुरूपफलदो बुद्ध्यतीतो गुणाग्रहः । दानमेव परं श्रेष्ठं दानं सर्वप्रभावकम् ॥ ४० ॥
स्माद्दानं ददस्व त्वं दानात्पुण्यं प्रवर्तते । दानेन नश्यते पापं तस्माद्दानं ददस्व हि ॥
श्वमेधादिभिर्यज्ञैर्यजस्व नृपसत्तम । भूमिदानादिकं दानं ब्राह्मणेभ्यो ददस्व वै ॥४२॥

सुदानात्प्राप्यते भोगः सुदानात्प्राप्यते यशः ।
सुदानाज्जायते कीर्तिः सुदानात्प्राप्यते सुखम् ॥ ४३ ॥

दानेन स्वर्गमाप्नोति फलं तत्र भुनक्ति च । दत्तस्यापि सुदानस्य श्रद्धायुक्तस्य स
कालेप्राप्ते व्रजेत्तीर्थं पुण्यस्यापि फलं त्विदम् । पात्रभूताय विप्राय श्रद्धापूतेन चेत
यो ददाति महादानं मयिभावं निवेश्य च । तस्याहं सकलं दद्मि मनसा यं यमिच्छ

वेन उवाच ।

कालं दानस्य मे ब्रूहि कीदृक्कालस्य लक्षणम् ।
तीर्थस्यापि च यद्रूपं पात्रस्यापि सुलक्षणम् ॥ ४७ ॥

दानस्यापि जगन्नाथ विधिं विस्तरतो वद । प्रसादसुमुखो भूत्वा दया मे यदि व

श्रीकृष्ण उवाच ।

दानकालं प्रवक्ष्यामि नित्यं नैमित्तिकं नृप । काम्यं चान्यं महाराज चतुर्थं प्रायिक
सूर्योदयस्य वेलायां पापं नश्यति सर्वतः । अन्धकारादिकानां च घोराणां नाशका

दिवि सूर्यो ममांशोऽयं तेजसां कल्पितोनिधिः ।
तस्यैव तेजसा दग्धा भस्मतां यान्ति किल्बिषाः ॥ ५१ ॥
उदयन्तं ममांशं यो दृष्ट्वा दत्ते तु वार्यपि ।
तस्य किं कथ्यते भूप नित्यं पुण्यविवर्द्धनम् ॥ ५२ ॥
सम्प्राप्तायां सुवेलायां तस्यां पुण्यकरो नरः ।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितॄन्देवान्दानदाता भवेत्पुनः ॥ ५३ ॥

यथाशक्तिप्रभावेन श्रद्धापूतेन चेतसा । अन्नं पयः फलं पुष्पं वस्त्रं ताम्बूलभूषण
हेमरत्नादिकं चैव तस्य पुण्यमनन्तकम् । मध्याह्ने तु ततो राजन्नपराह्णे तथैव
मामुद्दिश्य च योदद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् । खाद्यपानादिकं मिष्टं लेपनं गन्धकु
कर्पूरादिकमेवापि वस्त्रालङ्कारसंयुतम् । अविच्छिन्नं ददात्येवं भोगसौख्यप्रदायक

नित्यकालो मयाख्यातो दानपूजार्थिनां शुभः ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नैमित्तिकमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥

त्रिकालेष्वपि दातव्यं दानमेवं न संशयः। शून्यं दिनं न कर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता
यस्मिन्काले प्रदत्तं हि किंचिद्दानं नराधिप। तत्प्रभावान्महाप्राज्ञो बहुसामर्थ्यसंयुतः॥
धनाढ्यो गुणवान्प्राज्ञः पण्डितोऽपि विचक्षणः। पक्षं मासं दिनं यावन्न दत्तं वैयदाशनम्
तावद्वै वारयाम्येनं भक्ष्याच्चैव नरोत्तमम्। स्वमलं भक्षितं चैव अदत्त्वा दानमुत्तमम्
उत्पादयाम्यहं रोगं सर्वभोगनिवारणम्। तेषां कायेष्वसन्तुष्टोव ह्युपीडाप्रदायकम्॥
मन्दानलेन संयुक्तं ज्वरं सन्तापकारणम्। त्रिकालेषु न दत्तं यैर्ब्राह्मणेषु सुरेषु च॥
स्वयमश्नाति मिष्टं तु तेन पापं महत्कृतम्। प्रायश्चित्ते न रौद्रेण तमेवं परिशोधयेत्॥
उपवासैर्महाराज कायशोषकरादिकैः। चर्मकारो यथाचर्मकुण्डस्योपरि निर्घृणः॥
शोधयेच्च कषायैश्च तच्चर्मस्फोटयत्यथ। तथाऽहं पापकर्तारं शोधयामि न संशयः

ओषधीनां सुयोगाच्च कषायैः कटुकैर्ध्रुवम्।
उष्णोदकैश्च सन्तापैर्वैद्यरूपेण नान्यथा ॥ ६८ ॥

सुखंभुङ्क्ते ततस्सोऽग्रेभोगान्पुण्यान्मनोऽनुगान्। नकरोतिसमर्थस्सन्सर्वदानमनुत्तमम्
महतापापरूपेण तमेवं परितापये। नित्यकालस्य यद्दानमात्मार्थं पापिभिर्यथा॥
नदत्तंराजराजेन्द्र श्रद्धापूतेन चेतसा। तथा ताञ्जारयाम्येतानुपायैर्दारुणैः किल॥

नैमित्तिकं तथा कालं पुण्यं चैव तवाग्रतः।
प्रवक्ष्यामि नरश्रेष्ठ सुबुद्ध्या शृणुतत्परः ॥ ७२ ॥

अमावास्या महाराज पौर्णमासी तथैव च। यदाभवति सङ्क्रान्तिर्व्यतीपातो नरेश्वर
वैधृतिश्च यदाप्रोक्ता यदाचैकादशी भवेत्। महामाघी तथाषाढी वैशाखी कार्तिकीतथा
अमासोमसमायोगे मन्वादिषु युगादिषु। गजच्छाया तथा प्रोक्ता पितृक्षयतिथिस्तथा

एते नैमित्तिकाः ख्यातास्तवाग्रे नृपसत्तम।
एतेषु दीयते दानं तस्य दानस्य यत्फलम् ॥ ७६ ॥

तत्फलं तु प्रवक्ष्यामि श्रूयतां नृपसत्तम। मामुद्दिश्य नरो भक्त्याब्राह्मणाय प्रयच्छति
तस्याहं निर्विकल्पे न प्रयच्छामि न संशयः। गृहं सौख्यं महाराज स्वर्गमोक्षादिकंबहु

काम्यं कालं प्रवक्ष्यामि दानस्य फलदायकम्।

व्रतानामेव सर्वेषां देवादीनां तथैव च ॥ ७९ ॥

दानस्य पुण्यकालं तु सम्प्रोक्तं द्विजसत्तमैः । आभ्युदयिकमेवापि कालं वक्ष्यामि ते।
शुभानामेव सर्वेषां वैवाहिकमनुत्तमम् । पुत्रस्य जातमात्रस्य चौलमौञ्ज्यादिकं त
प्रासादध्वजदेवानां प्रतिष्ठादिककर्मणि । वापीकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च

तदाभ्युदयिकं प्रोक्तं मातृणां यत्र पूजनम् ।
तस्मिन्काले ददेद्दानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ८३ ॥
त्रिविधोऽयं तु ते कालः प्रोक्तश्चैत्र नृपोत्तम ।
अन्यच्चैव प्रवक्ष्यामि पापपीडानिवारणम् ॥ ८४ ॥

मृत्युकाले च सम्प्राप्ते क्षयं ज्ञात्वा नरोत्तम । तत्र दानं प्रदातव्यं यममार्गसुखप्रदम्

नित्यनैमित्तिकात्कालात्काम्याभ्युदयिकात्तथा ।
अन्त्यः कालो महाराज समाख्यातस्तवाग्रतः ॥ ८६ ॥

एते कालाःसमाख्याताःसर्वकर्मफलदायकाः । तीर्थस्य लक्षणं राजन्प्रवक्ष्यामितवाग्र

सुतीर्थानामियं गङ्गा भाति पुण्या सरस्वती ।
रेवा च यमुना तापी तथा चर्मण्वती नदी ॥ ८८ ॥

सरयूर्घर्घरावेणा सर्वपापप्रणाशिनी । कावेरी कपिलाचान्या विशाला विश्वतारि
गोदावरी समाख्याता तुङ्गभद्रा नरोत्तम । पापानां भीतिदां नित्यं भीमरथी प्रपठ
देविकाकृष्णगङ्गा च अन्याः सरिद्वरोत्तमाः । एतासां पुण्यकालेषु सन्तितीर्थान्यनेक
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये नद्यः सर्वत्र पावनाः। तत्रतत्रप्रकर्तव्याः स्नानदानादिकाःक्रि
यदा न ज्ञायते नाम तासां तीर्थस्यसत्तम । नामोच्चारं प्रकुर्वीत विष्णुतीर्थमिदं त्व
तीर्थस्य देवतातद्वदहमेवं न संशयः । मामेवमुच्चरैद्योवै तीर्थे देवेषु साधकः ॥ ९
तस्य पुण्यफलं जातं मन्नाम्ना नृपनन्दन । अज्ञातानां सुतीर्थानां देवानां नृपसत्तम
स्नानेदाने महाराज मन्नामहिसमुच्चरेत् । तीर्थानामेव राजेन्द्र धात्राधात्र्यइमाःकृता
सिन्धवः सर्वपुण्यानां सर्वस्थाः क्षितिमण्डले । यत्र तत्र प्रकर्तव्यं स्नानदानादिकं
अक्षयंफलमाप्नोति सुतीर्थानां प्रसादतः । तीर्थरूपा महापुण्याः सागराः सप्त एव

मानसाद्यास्तथा राजन्सरस्यश्च प्रकीर्तिताः । निर्झराःपल्वलाः प्रोक्तातीर्थरूपानसंशयः
स्वल्पा नद्यो महाराज तासु तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
खातेष्वेवं च सर्वेषु वर्जयित्वा च कूपकम् ॥ १०० ॥
पर्वतास्तीर्थरूपाश्च मेर्वाद्याश्च महीतले । यज्ञभूमिश्च यज्ञश्च अग्निहोत्रे यथास्थितः ॥
श्राद्धभूमिस्तथा शुद्धो देवशाला तथापुनः । होमशाला तथा प्रोक्ता वेदाध्ययनवेश्म च
गृहेषु पुण्य संयुक्तं गोस्थानं वरमुत्तमम् । सोमपायी भवेद्यत्र तीर्थं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥
आरामा यत्रवैपुण्या अश्वत्थो यत्र तिष्ठति । ब्रह्मवृक्षो भवेद्यत्र वटवृक्षस्तथैव च ॥
अन्ये च वन्य संस्थाने तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
एते तीर्थाः समाख्याताः पितामाता तथैव च ॥ ५ ॥
पुराणं पठ्यते यत्र गुरुर्यत्र स्वयंस्थितः । सुभार्यातिष्ठते यत्र तत्र तीर्थं न संशयः ॥
सुपुत्रस्तिष्ठते यत्र तत्र तीर्थं न संशयः : एतान्यापि च तीर्थानि राजवेश्म तथैव च ॥
वेन उवाच ।
पात्रस्य लक्षणं ब्रूहि तस्मै देयं सुरोत्तम । प्रसाद सुमुखो भूत्वा कृपया मममाधव ॥
वासुदेव उवाच ।
श्रृणु राजन्महाप्राज्ञ पात्रस्यापि सुलक्षणम् । यस्मै देयंसुदानं च श्रद्धापूतैर्महात्मभिः ॥
ब्राह्मणं सुकुलोपेतं वेदाध्ययनतत्परम् । शान्तं दान्तं तपोयुक्तं शुक्लमेव विशेषतः ॥
प्रज्ञावन्तं ज्ञानवन्तं देवपूजनतत्परम् । सत्यवन्तं महापुण्यं वैष्णवं ज्ञानपण्डितम् ॥
धर्मज्ञं मुक्तलौल्यं च पाखण्डैस्तु विवर्जितम् । एवं पात्रं समाख्यातमन्यदेवंवदाम्यहम्
एवमेतैगुणैर्युक्तं स्वसृपुत्रं नरोत्तमम् । एतं पात्रं विजानीहि दुहितुस्तनयं ततः ॥
जामातरं महाराज भावैरेतैश्च संयुतम् । गुरुं च दीक्षितं चैव पात्रभूतं नरोत्तम ॥
एतान्येव सुपात्राणि दानयोग्यानि सत्तम । वेदाचार समोपेतस्तृप्तिं नैव च गच्छति ॥
वर्जयेत्किलतं विप्रं तथाकाणंसुधूर्तकम् । अतिकृष्णं महाराज कपिलं प्रविवर्जयेत् ॥
कर्कटाक्षं सुनीलं च श्यावदन्तं विवर्जयेत् । नीलदन्तं तथा राजन्पीतदन्तं तथैव च ॥
गोदन्तं कृष्णदन्तं च बर्बरं चातिपांसुलम् । हीनाङ्गमधिकाङ्गं च कुष्ठिनं कुनखं तथा

दुश्चर्माणं महाराज खल्वाटं परिवर्जयेत्। अन्यायेषुरतायस्य जायाविप्रस्यकस्य
तस्मै दानं नदातव्यं यदि ब्रह्मसमोभवेत्। स्त्रीजितायं न दातव्यं शाखारण्डेमहामते
व्याधिताय न दातव्यं मृतभोजिषु भूपते। चोराय च न दातव्यं सयद्यत्रिसमो भवे

अतृप्ताय न दातव्यं शावं तु परिवर्जयेत्।
अतिस्तब्धाय नोदेयं शठाय च विशेषतः॥ २२॥

वेदशास्त्रसमायुक्तःसदाचारेण वर्जितः। श्राद्धेदाने च राजेन्द्र नैवयुक्तःकदा भवे
अथदानं प्रवक्ष्यामि सफलं पुण्यदायकम्। कालतीर्थे सुपुत्राणां श्रद्धायोगात्प्रजा

नास्ति श्रद्धा समंपुण्यं नास्ति श्रद्धा समंसुखम्।
नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप॥ २५॥

श्रद्धाभावेन संयुक्तो मामेवं परिसंस्मरेत्। पात्रहस्ते प्रदातव्यं स्वल्पमेव नृपोत्त
एवंविधस्यदानस्य विधियुक्तस्ययत्फलम्। अनन्तंतदवाप्नोति मत्प्रासादात्सुखीभ

इति श्रीपाद्मपुराणेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

नित्यनैमित्तिकदानफलकथनम्।

वेन उवाच।

नित्यदानफलं देव त्वत्तःपूर्वंमयाश्रुतम्। नैमित्तिकस्यदानस्य दत्तस्यापिहियत्फल

तत्फलं मे समाचक्ष्व त्वत्प्रसादात्प्रयत्नतः।
श्रृण्वंस्तृप्तिं न गच्छामि श्रोतुं श्रद्धा प्रवर्तते॥ २॥

विष्णुरुवाच।

नैमित्तिकं प्रवक्ष्यामि दानमेव नृपोत्तम। महापर्वणि सम्प्राप्ते येन दानानि श्रद्धया
सत्पात्रेभ्यःप्रदत्तानि तस्य पुण्य फलं श्रृणु। गजं रथं प्रदत्ते यो ह्यश्वंचापि नृपोत्त

स च भृत्यैस्तु संयुक्तःपुण्यदेशे नृपोत्तमः। जायते हि महाराज मत्प्रसादान्न संशयः
राजा भवति धर्मात्मा ज्ञानवान्बलवान्सुधीः। अजेयःसर्वभूतानां महातेजाःप्रजायते॥
महापर्वणि सम्प्राप्ते भूमिदानं ददाति यः। गोदानं वा महाराज सर्वभोगपतिर्भवेत्॥

ब्राह्मणाय सुपुण्याय दानं दद्यात्प्रयत्नतः।
महादानानि यो दद्यात्तीर्थेपर्वणि पात्रवित्॥ ८॥

तेषांचिह्नं प्रवक्ष्यामि भूपति त्वं प्रजायते। तीर्थे पर्वणि सम्प्राप्ते गुप्तदानं ददाति यः
निधीनामाशु सम्प्राप्तिरक्षरापरिजायते। महापर्वणिसम्प्राप्ते तीर्थेषु ब्राह्मणाय च॥

सुचैलं च महादानं काञ्चनेनसमन्वितम्।
पुण्यफलं प्रवक्ष्यामि तस्य दानस्य भूपते॥ ११॥

जायन्ते बहवःपुत्राःसुगुणा वेदपारगाः। आयुष्मन्तःप्रजावन्तो यशःपुण्यसमन्विताः॥
विपुलाश्चैव जायन्ते स्फीता लक्ष्मीर्महामते। सौख्यं च लभतेपुण्यं धर्मवान्परिजायते
महापर्वणिसम्प्राप्ते तीर्थे गत्वा प्रयत्नतः। कपिलां काञ्चनीं दद्याद्ब्राह्मणाय महात्मने

तस्यपुण्यं प्रवक्ष्यामि दानस्य च महामते।
कपिलादो महाराज सर्वसौख्यान्प्रभुञ्जति॥ १५॥

यावद्ब्रह्माप्रजीवेत्स तावत्तिष्ठति तत्र सः। महापर्वणिसम्प्राप्तेअलङ्कृत्य च गां तदा
काञ्चनेनापिसंयुक्तां वस्त्रालङ्कारभूषणैः। तस्यदानस्य राजेन्द्र फलभोगं वदाम्यहम्॥
विपुलाजायते लक्ष्मीर्दानभोग समाकुला। सर्वविद्यापतिर्भूत्वा विष्णुभक्तो भवेत्किल

विष्णुलोके वसेन्मर्त्यो यावत्तिष्ठति मेदिनी।
तीर्थंगत्वा तु यो दद्याद्ब्राह्मणाय विभूषणम्॥ १६॥

भुक्त्वा तु विपुलान्भोगानिन्द्रेण क्रीडतेसह। महापर्वणिसम्प्राप्ते वस्त्रं च द्विजपुङ्गवे
रत्नान्नं भूमिसंयुक्तं पात्रे श्रद्धासमन्वितः। मोदते स तु वैकुण्ठे विष्णुतुल्यपराक्रमः॥
वस्त्रंकाञ्चनं दत्त्वा द्विजायपरिशीलिने। स्वेच्छयाअग्निसदृशो वैकुण्ठे स वसेत्सुखी
सुवर्णस्य सुकुम्भं च घृतेन परिपूरयेत्। पिधानं रोप्यंकर्तव्यं वस्त्रहारैरलङ्कृतम्॥

पुष्पमालान्वितं कुर्याद्ब्रह्मसूत्रेण शोभितम्।

प्रतिष्ठितं वेदमन्त्रैस्तं सम्पूज्य महामते ॥ २४ ॥
उपचारैःपवित्रैश्च षोडशैःपरिपूजयेत् । स्वलङ्कृत्य ततोदद्याद्ब्राह्मणाय महात्मने
षोडशैवततोगावःसवस्त्राःकांस्यदोहनाः । कुम्भयुक्ताश्चचत्वारो दक्षिणांचसकाञ्चनाम्
तथाद्वादशका गावो वस्त्रालङ्कारभूषणाः पृथग्भूताय विप्राय दातव्या नात्रसंशयः
एवमादीनि दानानि अन्यानि नृपनन्दन ।
तीर्थकालं सुसम्प्राप्य पात्रसम्पत्तिमेव च ॥ २८ ॥
श्रद्धाभावेन दातव्यं बहुपुण्यकरं भवेत् । विष्णुमुद्दिश्य यद्दानं कामनापरिकल्पितम्
तस्यदानस्य भावेन भावना परिभावितः । तादृक्फलं समश्नाति मानुषोनात्र संशयः
आभ्युदयं प्रवक्ष्यामि यज्ञादिषु प्रवर्तते । तेनदानेन तस्यापि श्रद्धया च द्विजोत्तम
प्रज्ञावृद्धिं समाप्नोति न च दुखं प्रविन्दति ।
भोगान्भुनक्ति धर्मात्मा जीवमानस्तु साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥
ऐन्द्रास्तु भुङ्क्ते भोगान्सदाता दिव्यांगतिं गतः ।
स्वकुलं नयते स्वर्गं कल्पानां च सहस्रकम् ॥ ३३ ॥
एवमाभ्युदयं प्रोक्तमथान्यत्ते वदाम्यहम् । कायस्य च क्षयं ज्ञात्वा जरया परिपीडितः
दानं तेन प्रदातव्यमाशां कस्य न कारयेत् । मृते च मयि मे पुत्रा अन्येस्वजनबान्धवाः
कथमेते भविष्यन्ति मां विना सुहृदोमम् । तेषां मोहात्प्रमुग्धो वै न ददाति सकिंचन
मृत्युंप्रयाति मोहात्मा रुदन्ति मित्रबान्धवाः । दुःखेनपीडिताःसर्वैमायामोहेनपीडिताः
सङ्कल्पयन्ति दानानि मोक्षं वै चिन्तयन्ति च । तस्मिन्मृतेमहाराज मायामोहे गतेसति
विस्मरन्ति च दानानि लोभात्मानो दिशन्ति न ।
योऽसौ मृतो महाराज यमपथं सुदुःखितः ॥ ३६ ॥
तृषाक्षुधा समाक्रान्तो बहुदुःखैःप्रपीडितः । तस्माद्दानं प्रदातव्यं स्वयमेव न संशयः
कस्यपुत्राश्च पौत्राश्च कस्य भार्यानृपोत्तम । संसारेनास्ति कःकस्य तस्माद्दानंप्रदीयते
ज्ञानवता प्रदातव्यं स्वयमेव न संशयः । अन्नं पानं च ताम्बूलमुदकं काञ्चनं तथा
सुगां सवत्सां भूमिं च फलानि विविधानि च ।

जलपात्राण्यनेकानि सोदकानि नृपोत्तम ॥ ४३ ॥
[व]ाहनानि विचित्राणि यानान्येव महामते । नानागन्धं सकर्पूरं पादयोर्वै सुखप्रदे ॥
[उ]पानहौ प्रदातव्यौ यदीच्छेद्विपुलं सुखम् । एतैर्दानैर्महाराज यममार्गं सुखेन वै ॥ ४५ ॥
प्रयाति मानवो राजन्यमदूतैरलङ्कृतम् ॥ ४६ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

सुकलायापातिव्रत्यचरित्रवर्णनम् ।

वेन उवाच ।

[क]थंभार्या कथंतीर्थं पितामाता कथं वद । गुरुश्चैव कथंतीर्थं तन्मे विस्तरतो वद॥१॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

[अ]स्तिवाराणसीरम्या गङ्गायुक्ता महापुरी । तस्यांवसति वैश्योहि कृकलो नामनामतः
[त]स्य भार्यामहासाध्वी पतिव्रतपरायणा । धर्माचारपरानित्यं सा वै पतिपरायणा ॥
[सु]कलानाम पुण्याङ्गी सुपुत्रा चारुमङ्गला । सत्यंवदा सदाशुद्धा प्रियाकारा प्रियप्रिया
[स]र्वगुणैःसमायुक्ता सुभगा चारुकारिणी । सवैश्य उत्तमो नानाधर्मज्ञो ज्ञानवान्गुणी ॥
[पु]राणे श्रौतधर्मे च सदाश्रवणतत्परः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन बहुपुण्य प्रदायिकाम् ॥ ६ ॥
[श्र]द्धयानिर्गतो यात्रां तीर्थानां पुण्यमङ्गलाम् । ब्राह्मणानां प्रसङ्गेन सार्थवाहेन तेन च
[प्र]स्थितो धर्ममार्गं तु तमुवाच पतिव्रता । पतिस्नेहेन संमुग्धा भर्तारं वाक्यमब्रवीत् ॥

सुकलोवाच ।

[अह]ं ते धर्मतःपत्नी सहपुण्यकरीप्रिय । पतिमार्गं प्रतीक्ष्याहं पतिदेवं यज्ञारयहम् ॥
कदानैव मयात्याज्यं सामीप्यं ते द्विजोत्तम ।
तवच्छायां समाश्रित्य करिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ १० ॥

पतिव्रताख्यं पापघ्नं नारीणां गतिदायकम् ।
पुण्यस्त्री कथ्यते लोके यास्यात्पतिपरायणा ॥ ११ ॥

युवतीनां पृथक्तीर्थं विनाभर्तुर्न शोभते । सुखदंनास्ति वै लोके स्वर्गमोक्षप्रदायकम्
सव्यंपादं च भर्तुश्च प्रयागं विद्धिसत्तम । वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पये
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यपरिजायते । प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संश
सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यमयःपतिः । मखानां यजनात्पुण्य यद्वै भवति दीक्षिते
तत्फलं समवाप्नोति सेवया भर्तुरेव हि । गयादीनां सुतीर्थानां यात्रा कृत्वा हि यद्भवे
तत्फलं समवाप्नोति भर्तुःशुश्रूषणादपि । समासेन प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतःशृणु

नास्त्यासां हि पृथग्धर्मःपतिशुश्रूषणं विना ।
तस्मात्कान्त सहायन्ते कुर्वाणा सुखदायिनी ॥ १८ ॥
तवच्छायां समाश्रित्य आगमिष्यामि नान्यथा ।
रूपं शीलं गुणं भक्ति समालोक्य वयस्तथा ॥ १६ ॥

सौकुमार्यं विचार्यैवं कृकलःसपुनःपुनः । यद्येवं हि नयिष्यामि दुर्गमार्गं सुदुःखदम्

रूपनाशो भवेच्चास्याःशीतातप विलोडनात् ।
पद्मगर्भ प्रतीकाशमस्याश्चाङ्गं प्रवर्णकम् ॥ २१ ॥
झञ्झावातेन शीतेन कृष्णवर्णं भविष्यति ।
पन्थाःकर्कश सुग्रावा पादौ चास्याःसुकोमलौ ॥ २२ ॥

एष्यते वेदना तीव्रामथोगन्तुं न च क्षमा । क्षुत्तृष्णाभि परीताङ्गी कीदृशीयंभविष
वामाङ्गी मम च स्थानं सुखस्थानं वरानना । मम प्राणप्रियानित्यंनित्यंधर्मस्यचा
नाशमेति यदा वाला ममनाशो भवेदिह । इयं मे जीविकानित्यमियं प्राणस्य चेश्व
न नयिष्ये वनं तीर्थमेकश्चैवाप्यहं व्रजे । चिन्तयित्वा क्षणं नूनं कृकलेन महात्मन
तस्य चित्तानुगोभावस्तयाज्ञातो नृपोत्तम । पुनरूचे महाभागाःभर्त्तारं प्रस्थितं त
अनघा नैव वै त्याज्या पुरुषैः शृणु सत्तम । मूलमेवं हि धर्मस्य पुरुषस्य महाम
एवंज्ञात्वा महाभाग मामेवं नयसाम्प्रतम् । श्रुत्वा सर्वं हि तेनापि प्रियाया भाषि

प्रहस्यैव वचोब्रूते तामेवं कृकलःपुनः । नैवत्याज्या भवेद्भार्या प्राप्ताधर्मेण वै प्रिये ॥
येन भार्यापरित्यक्ता सुनीता धर्मचारिणी । दशाङ्ग धर्मस्तेनापि परित्यक्तो वरानने ॥
तस्मात्त्वामेव भद्रं तेनैवत्यक्ष्ये कदाप्रिये । एवमाभाष्य तां भार्यां सम्बोध्य चपुनःपुनः
तस्या अज्ञातमात्रेणससार्थेन समंगतः । गते तस्मिन्महाभागे कृकले पुण्यकर्मणि ॥
देवकर्म सुवेलाया कालेपुण्ये शुभानना । नैवपश्यति भर्तारं कृकलं निजमन्दिरे ॥३४॥
समुत्थाय त्वरायुक्ता रुद्माना सुदुःखिता । वयस्यान्पृच्छते भर्तुर्दुःखशोकाधिपीडिता

युष्माभिर्वा महाभागा दृष्टोऽसौ कृकलो मम ।
प्राणेश्वरो गतःक्वापि भवन्तो मम बान्धवाः ॥ ३६ ॥

यदिदृष्टो महाभागाःकृकलो मम साम्प्रतम् । भर्तारं पुण्यकर्तारं सर्वज्ञं सत्यपण्डितम्
कथयन्तु महात्मानं यदिदृष्टो महामतिः । तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा तामूचुस्तेमहामतिम्

धर्मयात्रा प्रसङ्गेन नाथस्ते कृकलःशुभे ।
तीर्थयात्रां चकारासौ कस्माच्छोचसि सुव्रते ॥ ३९ ॥

साधयित्वा महातीर्थं पुनरेष्यति शोभने । एवमाश्वासिता सा च पुरुषैराप्तकारिभिः ॥
पुनर्गेहं गताराजन्सुकला चारुभाषिणी । रुरोद करुणं दुःखंसुकलापि परायणा ॥४१॥

यावदायाति मे भर्त्ता भूमौस्वप्स्यामि संस्तरे ।
घृतं तैलं न भोक्ष्येऽहं दधिक्षीरं तथैव च ॥ ४२ ॥

लवणं च परित्यक्तं तथाताम्बूलमेव च । मधुरं च तथाराजंस्त्यक्तं गुडादिकं तथा ॥

एकाहारा निराहारा तावत्स्थास्ये न संशयः ।
यावच्चागमनं भर्तुःपुनरेव भविष्यति ॥ ४४ ॥

एवंदुःखान्विता भूत्वा एकवेणी धरापुनः । एककञ्चुकसंवीता मलिना च बभूव सा ॥

मलिनेनापि वस्त्रेण एकेनैव स्थितापुनः ।
हाहाकारं प्रमुञ्चन्तीनिःश्वसन्ती सुदुःखिता ॥ ४६ ॥
वियोगानलसन्दग्धा कृष्णाङ्गी मलधारिणी ।
एवंदुःख समाचारा सुकृशा विह्वला तदा ॥ ४७ ॥

रोदमाना दिवारात्रं निद्रांलेभे न वै निशि। क्षुधांनविन्दते राजन्दुःखेन विदलीकृता
अथसख्यःसमायाताःपप्रच्छुःसुकलां तदा ॥ ४६ ॥
सख्यऊचुः।
सुकले चारुसर्वाङ्गि कस्माद्रोदिषि सम्प्रति। ततस्त्वं कारणंब्रूहि दुःखस्यास्यवरा
सुकलोवाच।
स मां त्यक्त्वा गतोभर्ता धर्मार्थं धर्मतत्परः। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन अटतेमेदिनीं:तत
मां त्यक्त्वा स गतः स्वामी निर्दोषांपापवर्जिताम्
अहंसाध्वी समाचारा सदापुण्या पतिव्रता ॥ ५२ ॥
मां त्यक्त्वा सगतो भर्ता तीर्थसाधनतत्परः।
तेनाहं दुःखिता सख्योवियोगेनाति पीडिता ॥ ५३ ॥
जीवनाशो वरंश्रेष्ठो वरं वै विषभक्षणम्। वरमग्निप्रवेशश्च वरंकायविनाशनम् ॥ ५
नारीं प्रियांपरित्यज्य भर्तायाति सुनिष्ठुरः। भर्तृत्यागो वरंनैव प्राणत्यागोवरं स
वियोगं न समर्थाहं सहितुं नित्यदारुणम्।
तेनाहं दुःखिता सख्यो वियोगेनापि नित्यशः ॥ ५६ ॥
सख्यऊचुः।
तीर्थयात्रांगतो भर्ता पुनरेष्यति ते पतिः। वृथा शोषयसेकायं वृथाशोकं करो
वृथात्वं तप्यसे बाले वृथाभोगान्परित्यजेः। पिवस्व ग्रानंभुङ्क्ष्वत्वंस्वप्रदत्तंहिपूर्व
कस्यभर्ता सुताःकस्य कस्य स्वजनबान्धवाः।
कःकस्यनास्ति संसारे सम्बन्धःकेन चैव हि ॥ ५९ ॥
भक्ष्यतेभुज्यतेबालेसंसारस्यहितत्फलम्। मृतेप्राणिनि कोऽश्नातिकोहिपश्यतितत्फ
पीयते भुज्यते बाले एतत्संसारतःफलम् ॥ ६० ॥
सुकलोवाच।
भवतीभिःप्रयुक्तं यत्तन्नस्याद्वेदसंमतम्। यातुभर्तुःपृथग्भूता तिष्ठत्येका सदैव
पापभूता भवेन्नारी तां न मन्यन्ति सज्जनाः।

भर्तुःसार्धंसदा सख्यो दृष्टोवेदेषु सर्वदा ॥ ६२ ॥

सम्बन्धःपुण्यसंसर्गाज्जायते नात्रसंशयः । नारीणां च सदातीर्थं भर्ताशास्त्रेषु पठ्यते
तमेवावाहयेन्नित्यं वाचाकायेन कर्मभिः । मनसा पूजयेन्नित्यं भावसत्येन तत्परा ॥
भर्तुःपार्श्वंमहातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि । तमाश्रत्ययदानारी गृहस्थापरिवर्त्तयेत् ॥
यजते दानपुण्यैश्च तस्यदानस्य यत्फलम् । वाराणस्यांच गङ्गायां यत्फलं न च पुष्करे
द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे । लभतेनैव सा नारी यजमाना सदाकिल ॥

तादृशं फलमेवं सा न प्राप्नोति कदा सखि ।
सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम् ॥ ६८ ॥

वस्त्रालङ्कार सौभाग्यं रूपं तेजःफलं सदा । यशःकीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनी
भर्तुःप्रसादात्सर्वं च लभते नात्रसंशयः । विद्यमाने यदाकान्ते अन्यं धर्मं करोति या ॥

निष्फलं जायते तस्याःपुंश्चली परिकथ्यते ।
नारीणां यौवनंरूपमवतारं स्मृतं ध्रुवम् ॥ ७१ ॥

एकस्यापि हि भर्तुश्च तस्यार्थे भूमिमण्डले । सुपुत्रा सुयशानारी परिकथ्येत वै सदा
तुष्टे भर्तरि संसारे दृश्या नारी न संशयः । पतिहीना भवेन्नारी भवेत्सा भूमिमण्डले

कुतस्तस्याःसुखं रूपं यशःकीर्तिःसुता भुवि ।
सुदौर्भाग्यं महद्दुःखं संसारे परिभुज्यते ॥ ७४ ॥

पापभागा भवेत्सा च दुःखाचारा सदैव हि । तुष्टेभर्तरि तस्यास्तु तुष्टाःसर्वाश्च देवता
तुष्टेभर्तरि तुष्यन्ति ऋषयो देवमानवाः । भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतःसह ॥७६॥
भर्तातीर्थश्च पुण्यश्च नारीणां नृपनन्दन । शृङ्गारं भूषणं रूपं वर्णं सौगन्धमेव च ॥७७
कृत्वा सा तिष्ठते नित्यं वर्जयित्वासुपर्वसु । शृङ्गारैर्भूषणःसा तु शुशुभे सा यदा पति

पत्याविना भवत्येवं क्षीरंसर्पमुखे यथा ।
भर्तुरर्थे महाभागा सुव्रता चारुमङ्गला ॥ ७६ ॥

ृतेभर्तरि या नारी शृङ्गारं कुरुते यदि । रूपंवर्णं च तत्सर्वं शवरूपेण जायते ॥ ८० ॥
वदन्ति भूतले लोकाःपुंश्चली यं न संशयः । तस्माद्भर्तुर्वियुक्ता या नार्याःशृणुत भूतले

इच्छन्त्या वै महासौख्यं भवितव्यं कदाचन ।
सुजायायाःपरोधर्मो भर्ता शास्त्रेषु गीयते ॥ ८२ ॥
तस्माद्धैशाश्वतोधर्मो न त्याज्यो भार्यया किल । एवंधर्मं विजानामिकथंभर्तापरित्यजे
इत्यर्थे श्रूयते सख्य इतिहासःपुरातनः । सुदेवायाश्च चरितं सुपुण्यं पापनाशनम् ॥८४
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डेवनोपाख्यानेसुकलाचरित्रेएकचत्वारिंशोऽध्याय

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

सुदेवायाश्चरित्रवर्णनम् ।

सख्यऊचुः ।

सुदेवा का त्वयाप्रोक्ता किमाचारा वदस्व नः । त्वयाप्रोक्तं महाभागेवद नःसत्यमेव

सुकलोवाच ।

अयोध्यायां महाराजःस आसीद्धर्मकोविदः । मनुपुत्रो महाभागःसर्वधर्मार्थतत्पर
इक्ष्वाकुर्नाम सर्वज्ञो देवब्राह्मण पूजकः । तस्यभार्या सदापुण्या पतिव्रतपरायणा ॥
तयासार्द्धं यजेद्यज्ञं तीर्थानि विविधानि च ।
वेदराजस्य वीरस्य काशीशस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
सुदेवानाम वै कन्या सत्याचारपरायणा । उपयेमे महाराज इक्ष्वाकुस्तां महीपतिः
सुदेवां चारुसर्वाङ्गीं सत्यव्रत परायणाम् । तयासार्द्धं यजेद्यज्ञान्सुपुण्यान्पुण्यनायकः
स रेमे नृपशार्दूलो नित्यं च प्रियया तया । एकदा तु महाराजस्तयासार्द्धं वनं ययौ
गङ्गारण्यं समासाद्य मृगयां क्रीडते सदा ।
सिंहान्हत्वा वराहांश्च गजांश्च महिषांस्तथा ॥ ८ ॥
क्रीडमानस्य तस्याग्रे वराहश्च समागतः । बहुशूकरयूथेन पुत्रपौत्रैरलङ्कृतः ॥ ९
एका च शूकरी तस्य प्रियापार्श्वे प्रतिष्ठिता । दृष्ट्वाच राजराजेन्द्रं दुर्जयं मृगयार

पर्वताधारमाश्रित्य भार्यया सहशूकरः। तिष्ठत्येकःपरिवृतःपुत्रपौत्रादिभिस्तु सः ॥
महाराज कृतं तेषां ज्ञात्वा तु कदनं महत्।
तानुवाच सुतान्पौत्रान्भार्यां तां च सशूकरः ॥ १२ ॥
कोशलाधिपतिर्वीरो मनुपुत्रो महाबलः। क्रीडते मृगयां कान्ते मृगान्संहरते बहून् ॥
स मां दृष्ट्वामहाराज एष्यतेनात्रसंशयः। अन्येषांलुब्धकानां मे नास्तिप्राणभयंध्रुवम्
ममरूपं नृपोदृष्ट्वा क्षमांनैव करिष्यति। हर्षेण महताविष्टो बाणपाणिर्धनुर्द्धरः ॥
श्वभिर्युक्तो महातेजा लुब्धकैःपरिवारितः। प्रिये करिष्यतेघातं ममाप्येवं न संशयः ॥

शूकर्युवाच ।

यदायदापश्यसि लुब्धकान्बहून्महाशने कान्तसमायुधान्बहून्।
एतैस्तु पुत्रैर्ममपौत्रकै समं दूरंनुभो यासि पलायमानः ॥ १७ ॥
त्यक्त्वा सुधैर्यं बलपौरुषं महन्महाभये नापिविषण्णचेतनः।
दृष्ट्वा नृपेन्द्रं पुरुषोत्तमोत्तमं करोषि किं कान्त वदस्व कारणम् ॥ १८ ॥
तस्यास्तु वाक्यं सनिशम्य कोल उवाच तां शूकरराज उत्तरम्।
यदर्थं भीतोऽस्मि सुलुब्धकात्प्रिये दृष्ट्वा गतो दूर निशम्य शूकरान् ॥१९॥
सुलुब्धकाःपापकराःशठाःप्रिये कुर्वन्ति पापं गिरिदुर्गकन्दरे।
सदैव दुष्टा बहुपापचिन्तका जाताश्च सर्वे परिपापिनांकुले ॥ २० ॥
तेषां हि हस्तान्मरणाद्बिभेमि मृतोऽपि यास्यामि पुनश्च पापम्।
दूरं गिरिं पर्वतकन्दरं च व्रजामि कान्ते अपमृत्युभीतः ॥ २१ ॥
अयं हि पुण्यो नरनाथ आगतो विश्वाधिकःकेशवरूप भूपः।
युद्धं करिष्ये समरे महात्मनासार्द्धं प्रिये पौरुषविक्रमेण ॥ २२ ॥
जेष्यामि भूपं यदि स्वेनतेजसा भोक्ष्यामि कीर्तिं त्वतुलां पृथिव्याम्।
तेनाहतो वीरवरेण सङ्गरे यास्यामि लोकं मधुसूदनस्य ॥ २३ ॥
ममाङ्गभूते न पले न मेदसा तृप्तिं परांयास्यति भूमिनाथः।
तृप्ता भविष्यन्ति सुलोकदेवता अस्मादयं चागतो वज्रपाणिः ॥ २४ ॥

अस्यैव हस्तान्मरणं यदा भवेल्लाभश्च मे सुन्दरिकीर्तिरुत्तमा।
तस्माद्यशो भूमितले जगत्त्रये व्रजामि लोकं मधुसूदनस्य ॥ २५ ॥
नैवंभीतोऽस्मि क्षुब्धोऽस्मि गतोऽहं गिरिसानुषु।
पापाद्भीतो गतःकान्ते धर्मं दृष्ट्वास्थितोह्यहम् ॥ २६ ॥
न जाने पातकं पूर्वमन्यजन्मनि चार्जितम्। येनाहं शौकरीयोनिं गतोऽहं पापसञ्चया
क्षालयिष्याम्यहं घोरं पूर्वपातक सञ्चयम्। बाणौदकैर्महाघोरैःसुतीक्ष्णैर्निशितैःश
पुत्रान्पौत्रान्वरांकन्यां कुटुम्बंबालवृद्धकम्। गिरिंगच्छगृहीत्वा तु मम मोहमिमं त्य
भमस्नेहं परित्यज्य हरिरेष समागतः। अस्यहस्तात्प्रयास्यामि तद्विष्णोःपरमंपदम्
दैवानापि ममाद्यैव स्वर्गद्वारमनुत्तमम्। उद्‌घाटित कपाटं तु यास्यामि सुमहादिव

सुकलोवाच।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शूकरस्य महात्मनः। उवाचतत्प्रिया सख्यःसीदमानान्तरा त

शूकर्युवाच।

यस्मिन्यूथे भवान्स्वामी पुत्रपौत्रैरलङ्कृतः। मित्रैश्च भ्रातृभिश्चैव अन्यैःस्वजनबान्ध
त्वयैवालङ्कृतोयूथो भवता परिशोभते। त्वां विनायं महाभाग कीदृग्यूथो भविष्य
तथैव स्वबलेनापि गर्जमानाश्च शूकराः। विचरन्ति गिरौ कान्त तनया ममबाल
कन्दान्मूलान्सुभक्षन्ति निर्भयास्तव तेजसा। दुर्गेषु वनकुञ्जेषु ग्रामेषु नगरेषु व
न कुर्वन्ति भयं तीव्रं सिंहानोमिहपर्वते।
मनुष्याणां महाबाहो पालितास्तव तेजसा ॥ ३७ ॥
त्वया त्यक्ताअमी सर्वेबालका ममदारकाः। दीनाश्चैवाकुलाश्चैव भविष्यन्तिविचेत
नित्यमेवसुखं वर्त्म गत्वा पश्यन्ति बालकाः। पतिहीना यथानारी शोभते नैवशोभ
अलङ्कृता यथादिव्यैरलङ्कारैःसकाञ्चनैः। परिच्छदैर वस्त्रैःपितृमातृ सहोदरैः
श्वश्रूश्वशुरकैश्चान्यैःपतिहीना न भाति सा। चन्द्रहीना यथारात्रिःपुत्रहीनयथाकुल
दीपहीनं यथागेहं नैवभाति कदाचन। त्वांविनाऽयं तथायूथो नैवशोभेत मानद
आचारेण विनामर्त्यो ज्ञानहीनो यतिर्यथा।

मन्त्रहीनो यथाराजा तथायं नैव शोभते ॥ ४३ ॥
कैवर्तें न विनानौर्वा सम्पूर्णा परिसागरे । न भात्येवं यथासार्थःसार्थवाहेन वै विना
सेनाध्यक्षेण च विना यथासैन्यं न भाति च । त्वांविना वैतथासैन्यंशूकराणांमहामते
दीनो भविष्यति तथा वेदहीनो यथाद्विजः । मयिभारं कुटुम्बस्य विनिवेश्य प्रगच्छसि
मरणं सुलभोज्ञात्वा का प्रतिज्ञा तवेदृशी ।
त्वां विनाहं न शक्नोमि धर्तुं प्राणान्प्रियेश्वर ॥ ४७ ॥
त्वयैव सहिता स्वर्गं भूमिंवाथ महामते । नरकंवापि भोक्ष्यामि सत्यंसत्यंवदाम्यहम्
त्वं वा पुत्रांस्तु पौत्रांस्तु गृहीत्वा यूथमुत्तमम् ।
आवां व्रजावयूथेश दुर्गमेवं सुकन्दरम् ॥ ४६ ॥
जीवितव्यं परित्यज्य मरणायाभिगम्यते । तत्र कोदृश्यते लाभो मरणे वद साम्प्रतम्

वाराह उवाच ।

वीराणां त्वं न जानासि सुधर्मं शृणु साम्प्रतम् ।
युद्धार्थिना हि वीरेण वीरंगत्वा प्रयाचितम् ॥ ५१ ॥
देहि मेयोधनं सङ्ख्ये युद्धार्थ्यहं समागतः । परेणयाचितं युद्धं न ददाति यदानरः ॥
कामाल्लोभाद्भयाद्वापि मोहाद्वा शृणुवल्लभे । कुम्भीपाके तु नरकेवसेद्युगसहस्रकम् ॥
क्षत्रियाणां परोधर्मो युद्धं देयं न संशयः । तद्युद्धं दीयमानेन रणभूमि गतेन वै ॥
निर्जितं तु परंतत्र यशःकीर्तिं प्रभुञ्जते । सवाहतो युध्यमानः पौरुषेणाति निर्भयः ॥
वीरलोकमवाप्नोति दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जते । यावद्वर्षसहस्राणां विंशत्येकां प्रिये शृणु
वीरलोके वसेत्तावद्देवाचारैर्महीयते । मनुपुत्रःसमायात अयंवीरो न संशयः ॥॥५७ ॥
सङ्ग्रामं याचमानस्तु युद्धं देयं मया ध्रुवम् ।
युद्धातिथिःसमायातो विष्णुरूपःसनातनः ॥ ५८ ॥
सत्कारो युद्धरूपेण कर्तव्यश्च मयाशुभे ॥ ५९ ॥

शूकर्युवाच ।

यदायुद्धं त्वयादेयं राज्ञेचैव महात्मने । ततोऽयं पौरुषं कान्त पश्यामि तवकीदृशम् ॥

सुकलोवाच ।

एवमुक्त्वा प्रियान्पुत्रान्समाहूय त्वरान्विता । उवाच पुत्रकायूयं शृणुध्वं वचनं मम ।
युद्धातिथिःसमायातो विष्णुरूपःसनातनः । मया तत्र प्रगन्तव्यं यत्रायं हि गमिष्यति
यावत्तिष्ठति वै नाथो भवतां प्रतिपालकः । यूयं गच्छत वै दूरं दुर्गं गिरिगुहामुखम्

सुखं जीवतमेवत्सा वर्जयित्वा सुलुब्धकान् ।
मया तत्रैव गन्तव्यं यत्रैष हि गमिष्यति ॥ ६४ ॥

भवतां श्रेष्ठोऽयंभ्राता यूथरक्षां करिष्यति । एते पितृव्यकाःसर्वे भवतां त्राणकारकाः

दूरं प्रयात वै सर्वे मांविहाय सुपुत्रकाः ॥ ६६ ॥

पुत्राऊचुः ।

अयं हि पर्वतश्रेष्ठो बहुमूल फलोदकः । भयं तु कस्य वै नास्ति सुखं जीवनमस्ति वै
युवाभ्यां हि अकस्माद्वै इदमुक्तं भयङ्करम् । तन्नोहि कारणं मातवद सत्यमिहैवहि ।

शूकर्युवाच ।

अयं राजामहारौद्रःकालरूपःसमागतः । क्रीडते मृगयालुब्धो मृगान्हत्वा बहून्वने ।
इक्ष्वाकुर्नामदुर्धर्षो मनुपुत्रो महाबलः । संहरिष्यतिकालोऽयं दूरंयात सुपुत्रकाः ॥७०

पुत्राऊचुः ।

मातरं पितरं त्यक्त्वा यःप्रयाति स पापधीः । महारौद्रं सुघोरं तु नरकं प्रतिपद्यते ।
मातुःपुण्यं पयःपीत्वा पुष्टोभवति निर्घृणः । मातरंपितरं त्यक्त्वा यः प्रयाति सुदुर्बल
पूयंनरकमेतीह कृमिदुर्गन्ध सङ्कुलम् । मातस्तस्मान्नयास्यामो गुरुंत्यक्त्वा इहैव च ।
एवंविषादःसञ्जातस्तेषां धर्मार्थसंयुतः । व्यूहंकृत्वा स्थिताःसर्वे बलतेजःसमाकुलाः ।

साहसोत्साहसम्पन्नाःपश्यन्ति नृपनन्दनम् ।
न दन्तःपौरुषैर्युक्ताःक्रीडमाना वनेतदा ॥ ७५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मेरुपर्वतेमनुपुत्रस्य सैनिकैःसह शूकरस्ययुद्धम् ।

सुकलोवाच ।

एवं ते शूकराःसर्वे युद्धाय समुपस्थिताः । पुरःस्थितस्य ते राज्ञो ह्यवतस्थुश्चलुब्धकाः
महावराहो राजेन्द्र गिरिसानुं समाश्रितः । महता यूथभावेन व्यूहंकृत्वा प्रतिष्ठति ॥
कपिलःस्थूलपीनाङ्गो महादंष्ट्रो महामुखः । दुःसहःशूकरो राजन्गर्जते चातिभैरवम् ॥
तानपश्यन्महाराजःशालतालवनाश्रयान् । तेषां तद्वचनंश्रुत्वा मनुपुत्रःप्रतापवान् ॥
गृह्यतां शूरवाराहो विध्यतां बलदर्पितः । एवमाभाष्य तान्वीरो मनुपुत्रःप्रतापवान् ॥

अथ ते लुब्धकाःसर्वे मृगया मदमोहिताः ।
संनद्धादंशिताःसर्वे श्वभिःसार्द्धं प्रजग्मिरे ॥ ६ ॥

हर्षेण महताविष्टो राजराजो महाबलः । अश्वारूढःसुसैन्येन चतुरङ्गेण संयतः ॥ ७ ॥
गङ्गातीरं समायातो मेरौगिरिवरोत्तमे । रत्नधातु समाकीर्णे नानावृक्षैरलङ्कृते ॥

सुकलोवाच ।

योबलधाममरीचिचयकरनिकरमयप्रोत्तुङ्गोऽत्युच्चं-
गगनमेवसम्प्राप्तोनानानगांचरितशोभोगिरिराजोभाति ॥ ९ ॥
योजनबहलविमलगङ्गाप्रवाहसमुच्चरत्तीरवीचीतरङ्गभङ्गैर्मुक्ता-
फलसदृशैर्निर्मलाम्बुकणैःसर्वत्रप्रक्षालितधवलतलशिलातलो-
गिरीन्द्रःसुश्रियायुक्तः ॥ १० ॥
देवैश्चारणकिन्नरैःपरिवृतो गन्धर्वविद्याधरैः
सिद्धैरप्सरसांगणैर्मुनिजनैर्नागेन्द्रविद्याधरैः ।
श्रीखण्डैर्बहुचन्दनैस्ससरलैःशालैस्तमालैर्गिरी
रुद्राक्षैर्वरसिद्धिदायकघनैःकल्पद्रुमैःशोभते ॥ ११ ॥

नानाधातु विचित्रो वै नानारत्न विचित्रितैः । विमानैःकाञ्चनैर्दण्डैःकलत्रैरुपशोभते।
नालिकेरवनैर्दिव्यैःपूगवृक्षैर्विराजते । दिव्यपुन्नाग बकुलैःकदली खण्डमण्डितैः।
पुष्पकैश्चम्पकैरद्रिःपाटलैःकेतकैस्तथा । नानावल्लीवितानैश्च पुष्पितैःपद्मकैस्तथा।
नानावर्णैःसुपुष्पैश्च नानावृक्षैरलङ्कृतः । दिव्यवृक्षैःसमाकीर्णःस्फाटिकस्यशिलातलैः
योगि योगीन्द्रसंसिद्धैःकन्दरान्तर्निवासिभिः । निर्झरैश्चैव रम्यैश्च बहुप्रस्रवणैर्गिरिः
नदीप्रवाह संह्रष्टैःसङ्गमैरुपशोभते । ह्रदैश्च पल्वलैःकुण्डैर्निर्मलोदकधारिभिः ॥ १७।

गिरिराजो विभात्येकःसानुभिःसह संस्थितैः ।
शरभैश्चैवशार्दूलैर्मृगयूथैरलङ्कृतः ॥ १८ ॥

महामत्तैश्चमातङ्गैर्महिषै रुरुभिःसदा । अनेकैर्दिव्यभावैश्च गिरिराजो विभाति सः।
अयोध्याधिपतिर्वीर इक्ष्वाकुर्मनुनन्दनः । तयासुभार्ययायुक्तश्चतुरङ्ग बलेन च ॥२०।

पुरतोलुब्धका यान्ति शूराःश्वानश्च शीघ्रगाः ।
यत्रास्ते शूकरःशूरो भार्यया सहितो बली ॥ २१ ॥

बहुभिःशूकरैर्गुप्तो गुरुभिःशिशुभिस्ततः । मेरुभूमिं समाश्रित्य गङ्गातीरं समन्ततः।

सुकलोवाच ।

तामुवाच वराहस्तु सुप्रियां हर्षसंयुतः । प्रिये पश्यसमायातःकोशलाधिपतिर्बली।
मामुद्दिश्य महाप्राज्ञो मृगयां क्रीडते नृपः । युद्धमेव करिष्यामि सुरासुरप्रहर्षकम्।
अथभूपो महातेजा बाणपाणिर्धनुर्धरः । सुदेवां सत्यधर्माङ्गीं तामुवाच प्रहर्षितः।

पश्यप्रिये महाकोलं गर्जमानं महाबलम् ।
परिवारसमायुक्तं दुःसहं मृगघातिभिः ॥ २६ ॥

अद्यैवाहं हनिष्यामि सुबाणैर्निशितैःप्रिये । मामेव हि महाशूरो युद्धाय समुपाश्रयेत्
एवमुक्त्वा प्रियोभार्यां लुब्धकान्वाक्यमब्रवीत् । यथाशूरो महाशूराःप्रेषयध्वं हिशूकरम्
अथते प्रेषिताःशूरा बलतेजःपराक्रमाः । गर्जमानाःप्रधावन्ति बलतेजःपराक्रमाः।
कोलंप्रति गताःसर्व वायुवेगेन साम्प्रतम् । विध्यन्तिबाणजालैस्ते निशितैर्वनचारकं

नानाशस्त्रैरथास्त्रैश्च वाराह वीररूपिणम् ॥ ३१ ॥

सुकलोवाच ।

पतन्ति बाणतोमरा विमुक्तलुब्धकैःशरा

घनोगिरिंप्रवर्षिणो यथा तथा धरान्तरे ।

हतो दृढ़प्रहारिभिःसनिर्जितस्तस्तथाशतैस्तुयूथपालकःसकोलःसङ्गरंगतः ॥ ३२ ॥

स्वपुत्र पौत्रबान्धवैःपरांश्च संहरंत्स वै

पतन्ति ते स्वदंष्ट्रया हताहवेऽव लुब्धकाः ।

पतन्ति पादहस्तकाःस्थितस्यवेगभ्रामणैः

सलुब्धगर्जमेवतं वराहोऽपश्यदागतम् ॥ ३३ ॥

स्वतेजसा विनाशितं मुखाग्रदंष्ट्रयाहतं ।

गतःसयत्र भूपतिःसवाञ्छते न सङ्गरम् ॥ ३४ ॥

इक्ष्वाकुनाथं सुमहत्प्रसह्य सन्त्रास्यक्रुद्धःसहि शूकरेशः ।

युद्धं वने वाञ्छति तेनसार्द्धमिक्ष्वाकुणा सङ्गरहर्षयुक्तः ॥ ३५ ॥

वाराहःपुनरेव युद्धकुशलःसंवाञ्छते सङ्गरं

तुण्डाग्रेणसुतीक्ष्णदन्त नखरैःक्रुद्धो धरांक्षोभयन् ।

हुङ्कारोच्चारगर्वात्प्रहरतिविमलं भूपतिं तं च राजञ्ज्ञात्वा

विष्णुपराक्रमं मनुसुतस्त्वानन्दरोमाञ्चितः ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा शूकरपौरुषं यमतुलं मेनेपतिर्देवराड्

देवारिंमनसाविचिन्त्य सहसा वाराहरुपेण वै ।

सम्प्रेक्ष्यैव महाबलं बहुतरं युक्तंत्वरेर्वारणं

सैन्यंकोलविनाशनाय सहसा सङ्गृह्य सङ्गृह्यताम् ॥ ३७ ॥

प्रेषिताश्च वारणा रथाश्च वेगवत्तराः

सुबाणखड्ग धारिणो भृशुण्डिभिश्च मुद्गरैः ।

सपाशपाणि लुब्धकानदन्तितत्रतत्परा

निवारितो नतिष्ठते हयागजाश्च यद्गताः ॥ ३८ ॥

क्वचित्क्वचिन्नदृश्यते क्वचित्क्वचित्प्रदृश्यते
क्वचिद्भयंप्रदर्शयेत्क्वचिद्भयान्प्रमर्दयेत् ॥ ३६ ॥
मर्दयित्वा भटान्वीरान्वाराहो रणदुर्जयः । शब्दं चकार दुर्धर्षं क्रोधारुणविलोचन
कोसलाधिपतिर्वीरस्तं दृष्ट्वा रणदुर्जयम् । युध्यमानं महाकायं मुञ्चन्तं मेघवत्स्वन
गर्जति समरं विचरति विलसति वीरान्स्वतेजसा धीरः ।
तडिदिव मुखेषु दंष्ट्रा तस्यविभात्युल्लसत्येव ॥ ४२ ॥
मनुपुत्रस्तथा दृष्ट्वा कोलं च निशितैःशरैः । प्रतिभिन्नमेकैकं शस्त्राहतं च बन्धुभि
नरपतिरुवाच-सैन्याःकिमिह न गृह्णन्तु ओजसा शूराः ।
युध्यध्वं तत्र निशितैर्बाणैस्तीक्ष्णैरनेनापि ॥ ४४ ॥
समाकर्ण्य ततोवाक्यं क्रुद्धस्यापिमहात्मनः । ततस्तेसैनिकाःसर्वे युद्धायसमुपस्थित
अनेकैर्भटसाहस्रैर्वने तं समरेस्थितम् । दिक्षु सर्वासुसंहत्य बिभिदुःशूकरं रणे ॥ ४६
विद्धश्चकैश्चित्तदा वाणजालैःसुयोधैश्च सङ्ग्रामभूमौ विशालैः ।
क्वचिच्चक्रघातैःक्वचिद्वज्रपातैर्हतंदुर्जयं सङ्गरेतं महान्तैः ॥ ४७ ॥
ततःपौरुषैक्रोधयुक्तःसकोलःसुविच्छिद्य पाशान्रणे प्रस्थितः सः ।
महाशूकरैःसार्द्धमेव प्रयातस्ततःशोणितस्यापि धाराभिषिक्तः ॥ ४८ ॥
करोति प्रहारं च तुण्डेन वीरहयानां द्विपानां च चिच्छेद वीरः ।
स्वदंष्ट्राग्रभागेन तीक्ष्णेन वीरान्पदातीन्हि सम्पातयेद्रोषभावैः ॥ ४६ ॥
जघानास्य शुण्डं गजस्यापि रुष्टो भटान्हतान्पादनखैस्तुहृष्टः ॥ ५० ॥
ततस्तेशूकराःसर्वे लुब्धकाश्च परस्परम् । युयुधुःसङ्गरं कृत्वा क्रोधारुणविलोचन
लुब्धकैश्च हताःकोलाःकोलैश्चापि सुलुब्धकाः ।
निहताःपतिता भूमौ क्षतजेनापिसारुणाः ॥ ५२ ॥
जीवंत्यक्त्वा हताःकोलैर्लुब्धकाःपतितारणे । मृताश्चशूकरास्तत्रश्वानःप्राणांश्चतत्यजुः
यत्रतत्र मृताभूमौ पतिता मृगघातकाः । बहवःशूकरा राज्ञा खड्गपातैर्निपातिताः
कतिनष्टा हताःकोला भीतादुर्गेषु संस्थिताः । कुञ्जेषु कन्दरान्तेषु गुहान्तेपु नृपोत्त

लुब्धकाश्च मृताःकेचिच्छिन्नादंष्ट्राग्रसूकरैः ।
प्राणांस्त्यक्त्वा गतास्वर्गं खण्डशोविदलीकृताः ॥ ५६ ॥

वागुराःपाशजालाश्च कुटकाःपञ्जरास्तथा । नाड्यश्च पतिताभूमौ यत्रतत्र समन्ततः ॥
एकोदयितयासार्धं वाराहःपरितिष्ठति । पौत्रकैःपञ्चसप्तभिर्युद्धार्थं वलदर्पितः ॥ ५८ ॥
तमुवाच तदाकान्तं शूकरं शूकरी पुनः । गच्छकान्त मयासार्द्धमेभिस्तु वालकैःसह ॥

प्राहप्रीतो वराहस्तां विवस्तां सुप्रियामिति ।
क गच्छामि प्रभग्नोऽहं स्थानंनास्ति महीतले ॥ ६० ॥

मयिनष्टे महाभागे कोलयूथं विनङ्क्ष्यति । द्वयोश्च सिंहयोर्मध्ये जलं पिवति शूकरः
द्वयोःशूकरयोर्मध्ये सिंहोनैव पिवत्यपः । एवं शूकरजातिषु दृश्यते वलमुत्तमम् ॥ ६२ ॥
तदहं नाशयाम्येव यदाभग्नो व्रजाम्यहम् । जाने धर्मं महाभागे वहुश्रेयो विधायकम् ॥
कस्माल्लोभाद्भयाद्वापि युध्यमानःप्रणश्यति । रणतीर्थंपरित्यज्य सस्यात्पापी न संशयः
निशितं शस्त्रसंव्यूहं दृष्ट्वा हर्षं प्रगच्छति । अवगाह्यामरींसिन्धु तीर्थपारं प्रगच्छति ॥
स याति वैष्णवंलोकं पुरुषांश्च समुद्धरेत् । समायान्तं च तदहं कथं भग्नो व्रजामि वै ॥

योधनं शस्त्रसङ्कीर्णं प्रवीरानन्ददायकम् ।
दृष्ट्वा प्रयाति संहृष्टस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ६७ ॥

पदेपदे महत्स्नानं भागीरथ्याः प्रजायते । रणाद्भग्नो गृहंयाति योलोभाच्च प्रिये शृणु
मातृदोषं प्रकाशेत स्त्रीजातःपरिकथ्यते । अत्र यज्ञाश्च तीर्थाश्च अत्रदेवा महौजसः ॥

पश्यन्ति कौतुकं कान्ते मुनयःसिद्धचारणाः ।
त्रैलोक्यं वर्तते तत्र यत्र वीरप्रकाशनम् ॥ ७० ॥

समराङ्गनं प्रपश्यन्ति सर्वे त्रैलोक्यवासिनः । शपन्ति निर्घृणं पापं प्रहसन्ति पुनःपुनः
दुर्गतिं दर्शयेत्तस्य धर्मराजो न संशयः । सम्मुखःसमरे युद्धे स्वशिरःशोणितं पिबेत् ॥

अश्वमेध फलंभुङ्क्ते इन्द्रलोकं प्रगच्छति ।
यदा जयति सङ्ग्रामे शत्रूञ्छूरो वरानने ॥ ७३ ॥

तदा प्रभुञ्जते लक्ष्मीं नानाभोगान्नसंशयः । यदा तत्र त्यजेत्प्राणान्सम्मुखःसन्निराश्रयः

सगच्छेत्परमंस्थानं देवकन्यां प्रभुञ्जते। एवं धर्मं विजानामि कथंभग्नो व्रजाम्यहम्।
अनेन समरेयुद्धं करिष्ये नात्र संशयः। मनोःपुत्रेण धीरेण राज्ञा इक्ष्वाकुणासह।
डिम्भान्गृहीत्वा याहि त्वं सुखं जीव वरानने।
तस्य श्रुत्वा वचःप्राह बद्धाहं तवबन्धनैः॥ ७७॥
स्नेह मानरसाख्यैश्च रतिक्रीडनकैःप्रिय। पुरतस्ते सुतैःसार्द्धं प्राणांस्त्यक्ष्यामि मान
एवमेतौ सुसम्भाष्य परस्पर हितैषिणौ। युद्धाय निश्चितौभूत्वा समालोकयतो नृप
कोशलाधिपतिं वीरं तमिक्ष्वाकुं महामतिम्॥ ८०॥
यथैव मेघःपरिगर्जतेदिवि प्रावृट्सुकालेषु तडित्प्रकाशैः।
तथैव सङ्गर्जति कान्तयासमं समाह्वयेद्राजवरं खुराग्रैः॥ ८१॥
तं गर्जमानं ददृशो महात्मा वाराहमेकं पुरुषार्थयुक्तम्।
ससार अश्वस्य जवेन युक्तःससम्मुखं तस्य नृवीरधीरः॥ ८२॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डेवेनोपाख्यानेसुकलाचरित्रेत्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

शूकरस्यसह मनुपुत्रस्ययुद्धकरणम्।

सुकलोवाच।

स्वसैन्यं दुर्धरंदृष्ट्वा निर्जितं दुर्धरेणं तत्। चुकोप भूपतिःक्रूरं दुःसहं शूकरं प्रति
धनुरादायवेगेन वाणं कालानलोपमम्। तस्याभिमुखमेवासौ हयेनाभिससार सः॥
स यदा नृपतिः हयपृष्ठगतं वरपौरुषयुक्तममित्रहणम्।
परिपश्यति शूकरयूथपतिःप्रगतोऽभिमुखं रणभूमितले॥ ३॥
निशितेन शरेण हतो हि यदा नृपतेर्हयपादतले प्रगतः।
तमिहैव विलङ्घ्य च वेगमनाःप्रखरेण जवेन च कोलवरः॥ ४॥

व्यथितस्तुरगःसकिरिःकिरिना न हि याति क्षितौ स हि विद्धगतिः ।
तुरगःपतितो भुवि तुण्डहतो लघुस्यन्दनमेवगतो नृपतिः ॥ ५ ॥
स हि गर्जति शूकरजातिरवैरथसंस्थित कोशलपेनजवात् ।
गदया निहतःकिलभूपतिना रणमध्यगतःसहि यूथपतिः ॥ ६ ॥
परित्यज्य तनुं च स्वकांहि तदा गतएव हरेर्गृहमेव वरम् ॥ ७ ॥
कृत्वा हि युद्धं समरेहि तेन राज्ञासमं शूकरराजराजः ।
पपात भूमौ च हतो यदा तु ववर्षिरे देववराः सुपुष्पैः ॥ ८ ॥
तस्योर्ध्वगःपुष्पचयःसुजातःसन्तानकानामिव सौरभश्च ।
सकुङ्कुमैश्चन्दनवृष्टिमेव कुर्वन्ति देवाःपरितुष्यमाणाः ॥ ९ ॥
विमृश्यमानःसहितेन राज्ञा चतुर्भुजःसोऽपि बभूव राजन् ।
दिव्याम्बरो भूषणदिव्यरूपःस्वतेजसाभाति दिवाकरो यथा ॥ १० ॥
दिव्येनयानेन दिवंगतो यदा सुपूज्यमानःसुरराज देवैः ।
गन्धर्वराजःसबभूव भूयःपूर्वं स्वकं कायमिहैव हित्वा ॥ ११ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डेवेनोपाख्यानेसुकलाचरित्रेंचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

मनुपुत्रस्य सैनिकैसह शूकर्यायुद्धकरणम् ।

सुकलोवाच ।

अथ ते लुब्धकाःसर्वे शूकरींप्रति जग्मिरे । शूराश्च दारुणाःप्राप्ताःपाशहस्ताश्च भीषणाः
चतुरश्च ततोडिम्भान्वृत्वा स्थित्वा च शूकरी । कुटुम्बेनसमं कान्तं हतं दृष्ट्वामहाहवे
भर्तुर्मे चिन्तितं प्राप्तमृषिदेवैश्च पूजितः । गतःस्वर्गं महात्मासौ वीर्येणानेन कर्मणा ॥
अनेनापि पथायास्ये स्वर्गं भर्त्ता सतिष्ठति ।

तथा सुनिश्चितं कृत्वा पुत्रान्प्रति विचिन्तितम् ॥ ४ ॥

यदाजीवन्ति मेबालाश्चत्वारोवंशधारकाः। भवत्यस्य सुवीरस्य कोलस्यापिमहात्मनः
केनोपायेन पुत्रान्वै रक्षायुक्तान्करोम्यहम्। इतिचिन्ता पराभूत्वा दृष्ट्वा प्रर्वतसङ्कटम्
तत्रमार्गंसुविस्तीर्णंनिष्कासायप्रयास्यते। तयासुनिश्चितंकृत्वा पुत्रान्प्रतिविचिन्तितम्
तानुवाच महाराज पुत्रान्प्रति सुमोहितान्। यावत्तिष्ठाम्यहं पुत्रास्तावद्गच्छत शीघ्रगाः

तेषांमध्ये सुतोज्येष्ठःकथं यास्यामि मातरम्।

संत्यज्य जीवलोभाच्च धिङ् मे मातःसुजीवितम् ॥ ६ ॥

पितृवैरंकरिष्यामि साधयिष्येरणेरिपून्। गृहीत्वात्वं कनीयसोभ्रातॄन्त्रीन्दुर्गकन्दरम्
पितरंमातरं त्यक्त्वा यो याति हि सपापधीः। नरकंचप्रयात्येव कृमिकोटिसमाकुलम्

तमुवाच सुदुःखार्ता त्वां त्यक्त्वाहं कथं सुत।

संयास्यामि महापापा त्रयोगच्छन्तु मे सुताः ॥ १२ ॥

कनीयसस्त्रयस्त्वेव गतागिरि वनान्तरम्। तौ जग्मतू रणभुवं तेषामेव सुपश्यताम्।
तेजसा सुबलेनापि गर्जन्तौ च पुनः पुनः। अथ ते लुब्धकाःशूराःसम्प्राप्ता वातरंहसः
तथातेनापि दुर्गेण त्रयस्तेप्रेषिता नृप। तिष्ठतःस्मपथंरुद्धा द्वावेतौ जननीसुतौ।
लुब्धकाश्च ततःप्राप्ताःखड्गबाण धनुर्धराः। प्रजघ्नुस्तोमरैस्तीक्ष्णैश्चक्रैश्चमुसलैस्तथा
मातरं पृष्ठतःकृत्वा तनयोयुध्यतेसतैः। दंष्ट्रयानिहताःकेचित्केचित्तुण्डेन घातिताः
सञ्जघान खुराग्रैश्च शूराश्च पतितारणे। युयुधे शूकरःसङ्ख्ये दृष्टो राज्ञा महात्मना।
पितुःसकाशाच्छूरोऽयमितिज्ञात्वा ससम्मुखः। बाणपाणिर्महातेजा मनुसूनुःप्रतापवान्

निशितेनापि बाणेन अर्द्धचन्द्रानुकारिणा।

राज्ञाहतःपपातोर्व्यां विद्धोरस्को महात्मना ॥ २० ॥

ममार सहसा भूमौ पपात स हि शूकरः। पुत्रमोहं परं प्राप्ता तस्योपरिगता स्वयम्
तया च निहताःशूरास्तुण्डघातैर्महीतले। निपेतुर्लुब्धकाःशूराःकतिनष्टा मृतान्नृप ॥२२

द्रावयन्ती महत्सैन्यं दंष्ट्रया सूकरीततः।

यथाकृत्या समुद्भूता महाभय विधायिका ॥ २३ ॥

तमुवाच ततोराज्ञी देवराज सुतोपमम्। अनया निहतं राजन्महत्सैन्यं तवैव हि ॥२४॥
कस्मादुपेक्षसेकान्त तन्मे त्वं कारणंवद। तामुवाचमहाराजो नाहं हन्मि इमां स्त्रियम्
महादोषं प्रियेदृष्टं स्त्रीवधे दैवतैःकिल। तस्मान्नघातयेन्नारीं प्रेषयेऽहं न कंचन ॥२६॥

अस्यावध निमित्तार्थे पापाद्विभेमि सुन्दरि।

एवमुक्त्वा तदा राजा विरराम महीपतिः ॥ २७ ॥

लुब्धको झार्झरोनाम ददृशे स तु सूकरीम्। कुर्वन्तीं कदनं तेषां दुःसहां सुभटैरपि ॥
आविव्याध सुवेगेन वाणेन निशितेन हि। संलग्ने न तु वाणेन शोणितेन परिप्लुता

शोभमाना त्वरां प्राप्ता वीरश्रिया समाकुला।

तुण्डेनापि हतःसङ्ख्ये झाझरःस तया पुनः ॥ ३० ॥

पतमानेन तेनापि झार्झरेण तदाहता। खड्गेन निशितेनापि,पपात विद्ली कृता ॥३१॥
श्वसमाना रणेनापि मूर्च्छनाभिपरिप्लुता। दुःखेन महताविष्टा जीवमाना महीतले ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्वसन्त्याशूकर्याः सुदेवयाशीतलजलेन मुखसेचनम्।

सुकलोवाच।

श्वसन्तींशूकरींदृष्ट्वा पतितांपुत्रवत्सलाम्। सुदेवाकृपयाविष्टा गत्वा तां दुःखितांप्रति

अभिषिच्य मुखं तस्याःशीतलेनोदकेन च।

पुनःसर्वाङ्गमेवापि दुःखितां रणशालिनीम् ॥ २ ॥

पुण्येन शीततोयेन सा उवाचाभिषिञ्चतीम्। उवाच मानुषींवाचं सुस्वरं नृपतिप्रियाम्
सुखं भवतु ते देवि अभिषिक्ता त्वया यदि। सम्पर्कादृर्शनात्तेऽद्य गतो मे पापसञ्चयः

तदाकर्ण्य महद्वाक्यमद्भुताकारसंयुतम्। चित्रमेतन्मयादृष्टं कृत तेऽनामयंवचः ॥ ५
पशुजातिमतीचेयं सौष्ठवं भाषतेस्फुटम्। स्वरव्यञ्जनसम्पन्नं संस्कृतमुत्तमं मम ॥ ६

हर्षेण विस्मयेनापि कृत्वा साहसमुत्तमम्।

तत्रस्था सा महाभागा तं पतिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

पश्यराजन्नपूर्वेयं संस्कृतं भाषते महत्। पशुयोनिगताचेयं यथा वै मानुषो वदेत्
तदाकर्ण्य ततोराजा सर्वज्ञानवतांवरः। अद्भुतमद्भुताकारं यन्नदृष्टं श्रुतं मया ॥ ९ ॥

तामुवाच ततोराजा सुदेवां सुप्रियां तदा।

पृच्छचैनां शुभांकान्ते काचेयं तु भविष्यति ॥ १० ॥

श्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं सा पप्रच्छ च सूकरीम्।

का भविष्यसि त्वं भद्रे चित्रं ते दृश्यते बहु ॥ ११ ॥

पशुयोनिगता त्वं वै भाषसे मानुषंवचः। सौष्ठवं ज्ञानसम्पन्नं वद मे पूर्वचेष्टितम्
भर्तुश्चापि महाराज भटस्यास्य महात्मनः। कोऽयं धर्मो महावीर्यो गतःस्वर्गं परा
आत्मनश्च स्वभर्तुश्च सर्वं पूर्वानुगं वद। एवमुक्त्वा महाभागा विरराम नृपप्रिया

शूकर्युवाच।

यदिपृच्छसि मां भद्रे ममास्य च महात्मनः। तत्सर्वं ते प्रवक्ष्यामि चरितं पूर्वचेष्टि
अयमेष महाप्राज्ञो गन्धर्वो गीतपण्डितः। रङ्गविद्याधरोनाम सर्वशास्त्रार्थकोविदः
मेरुं गिरिवरश्रेष्ठं चारुकन्दर निर्झरम्। तमाश्रित्य महातेजाःपुलस्त्यो मुनिसत्तमः
तपश्चचार तेजस्वी निर्व्यलीकेन चेतसा। विद्याधरस्तत्रगतःस्वेच्छया स महाप्रभो
तमाश्रित्य गिरिश्रेष्ठं गीतमभ्यसते तदा। स्वरताल समोपेतं सुस्वरं चारुहासिनि

गीतं श्रुत्वा मुनिस्तस्य ध्यानाच्चलित मानसः।

गायन्तं तमुवाचेदं गीतविद्याधरं प्रति ॥ २० ॥

भवद्गीतेन दिव्येन देवामुह्यन्ति नान्यथा। सुस्वरेण सुपुण्येन तालमानेन पण्डित
लययुक्तेन भावेन मूर्च्छनासहितेन च। मे मनश्चलितं ध्यानाद्गीतेनानेन सुव्रत॥ २

इदंस्थानं परित्यज्य अन्यस्थानं व्रजस्वतत् ॥ २३ ॥

गीतविद्याधर उवाच ।

आत्मज्ञानसमंगीतमहमंत्र प्रसाधये । दुखंददे न कस्यापि सुखदो नृषु सर्वदा ॥ २४ ॥

गीतेनानेन दिव्येन सर्वास्तुष्यन्ति देवताः ।
शम्भुश्चापि समातीतो गीतध्वनिरतो द्विज ॥ २५ ॥

गीतं सर्वरसं प्रोक्तं गीतमानन्ददायकम् । श्रृङ्गाराद्यारसाःसर्वे गीतेनापि प्रतिष्ठिताः ॥
शोभामायान्तिगीतेन वेदाश्चत्वार उत्तमाः । गीतेनदेवताःसर्वास्तोषमायान्ति नान्यथा
तदेवं निन्दसे गीतं मामेवं परिचालयेः । अन्यायोऽयं महाभाग तवैव इहदृश्यते ॥२८॥

पुलस्त्य उवाच ।

सत्यमुक्तं त्वयाद्यैव गीतार्थं बहुपुण्यदम् । श्रृणुत्वं मामकं वाक्यं मानं त्यज महामते ॥
नाहं गीतं प्रकुत्सामि गीतंवन्दामि नान्यथा । विद्याश्चतुर्दशैवैता एकीभावेन भावदाः

प्राणिनां सिद्धिमायान्ति मनसा निश्चलेन च ।
तपश्च तद्वन्मन्त्राश्चसुसिद्धयन्त्येक चिन्तया ॥ ३१ ॥

हृषीकाणां महावर्गश्चपलो मम संमतः । विषयेष्वेव सर्वेषु नयत्यात्मानमुच्चकैः॥३२॥
चालयित्वा मनस्तस्माद्ध्यानादेव न संशयः । यत्रशब्दं न रूपं च युवतीनैव तिष्ठति ॥

मुनयस्तत्र गच्छन्ति तपःसिद्यर्थमेव हि ।
अयंगीतःपवित्रस्ते बहुसौख्यप्रदायकः ॥ ३४ ॥

पश्येम वयं वीर तिष्ठामोवनसंस्थिताः । अन्यत्स्थानंप्रयाहि त्वं नो वा वयं व्रजामहे

गीतविद्याधर उवाच

इन्द्रियाणां बलंवर्गं जितं येन महात्मना ।
स जयी कथ्यते योगी स च वीरःस साधकः ॥ ३६ ॥

शब्दंश्रुत्वाथ वा दृष्ट्वा रूपमेवं महामते । चलतेनैव यो ध्यानात्सधीरस्तपसाधकः ॥
भवांस्तु तेजसाहीन इन्द्रियैर्विजितोयतः । स्वर्गेऽपि नास्ति सामर्थ्यं ममगीतस्यधर्षणे
वर्जयन्ति वनं सर्वे हीनवीर्या न संशयः । अयं साधारणोविप्र वनदेशो न संशयः ॥

वेदानां सर्वजीवानां यथामम तथातव ।

कथं गच्छाम्यहं त्यक्त्वा वनमेवमनुत्तमम् ॥ ४० ॥
यूयं गच्छन्तु तिष्ठन्तु यद्भव्यं तत्तु नान्यथा । एवमाभाष्य तं विप्रं गीतविद्याधरस्तः
समाकर्ण्य ततस्तेन मुनिना तस्य उत्तरम् ।
चिन्तयामास मेधावी किंकृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ ४२ ॥
क्षमांकृत्वा जगामाथ अन्यत्स्थानं द्विजोत्तमः । तपश्चचार धर्मात्मा योगासनगतःस्
कामंक्रोधं परित्यज्य मोहंलोभं तथैव च । सर्वेन्द्रियाणि संयम्य मनसा सममेवः
एवं स्थितस्तदायोगी पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥
सुकलोवाच ।
गतेतस्मिन्महाभागे पुलस्त्ये मुनिपुङ्गवे । कालादिष्टेन तेनापि गीतविद्याधरेण
चिन्तितं सुचिरं कालं न दृष्टोऽयं भयान्मम । क्वगतस्तिष्ठते वापि कुरुते किं कथं च
ज्ञात्वा पद्मात्मज सुतमेकान्त वनशालिनम् । गतो वराहरूपेण तस्याश्रममनुत्तमम्
आसनस्थं महात्मानं तेजोज्वालासमाविलम् ।
दृष्ट्वा चकार वै क्षोभं तस्यविप्रस्य भामिनि ॥ ४८ ॥
धर्षयेन्नियतं विप्रं तुण्डाग्रेण कुचेष्टया । पशुंज्ञात्वा महाराज क्षमते तस्यदुष्कृतम्
मूत्रयेत्पुरतःकृत्वा विष्ठां च कुरुते ततः । नृत्यते क्रीडते तत्र पततिप्रोच्चलेत्पुनः
पशुंज्ञात्वा परित्यक्तो मुनिनातेन भूपते । एकदा तु तथाऽऽयाते तेनरूपेण वै पुनः
अट्टाट्टहासेन पुनर्हास्यमेवं कृतं तदा ।
रोदनं च कृतं तत्र गीतं गायति सुस्वरम् ॥ ५२ ॥
तथातमागतं विप्रो गीतविद्याधरं नृप । चेष्टितं तस्य वै दृष्ट्वा घोणीह्येष भवेन्न
ज्ञात्वा तस्य तु वृत्तान्तं मामेवं परिचालयेत् । पशुंज्ञात्वा मयात्यक्तो दुष्टएषसुनिर्घृ
एवंज्ञात्वा महात्मानं गन्धर्वाधममेव हि । चुकोप मुनिशार्दूलस्तं शशाप महामतिः
यस्मात्शूकररूपेण मामेवं परिचालयेः ।
तस्माद्व्रज महापापं पापयोनिं तु शौकरीम् ॥ ५६ ॥
शप्तस्तेनापि विप्रेण गतोदेवं पुरन्दरम् । तमुवाच महात्मानं कम्पमानो वरानने

शृणुवाक्यं सहस्राक्ष तवकार्यं कृतंमया। तपएव हि कुर्वन्सन्दारुणं मुनिपुङ्गवः॥
तस्मात्तपःप्रभावात्तु चालितःक्षोभितो मया। शप्तस्तेनास्मि विप्रेणदेवरूपं प्रणाशितम्
पशुयोनिं गतंशक्रमामेवं परिरक्षय। ज्ञात्वा तस्य स वृत्तान्तं गीतविद्याधरस्य च॥

तेनसार्द्धं गतश्चेन्द्रस्तं मुनिं पर्यभाषत।
दीयतामनुग्रहो नाथ सिद्धज्ञोऽसिद्विजोत्तमः॥ ६१॥
क्षम्यतां मुनिवर्यास्मिन्क्रियतां शापमोक्षणम्॥ ६२॥

पुलस्त्य उवाच।

इतिसम्प्रार्थितोविप्रो महेन्द्रेणाह हृष्टधीः। वचनात्तव देवेश क्षन्तव्यं च मयापि हि
भविष्यति महाराज मनुपुत्रो महाबलः॥ ६३॥
इक्ष्वाकुर्नाम धर्मात्मा सर्वधर्मानुपालकः। तस्यहस्ताद्यदामृत्युरस्यैव च भविष्यति
तदैष वैस्वकं देहं प्राप्स्यते नात्रसंशयः। एतत्ते सर्ववृत्तान्तं शूकरस्यनिवेदितम्॥
आत्मनश्च प्रवक्ष्यामि पत्यासार्द्धं शृणुष्व हि। मया च पातकं घोरं कृतंयत्पापयापुरा

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शूकर्याआत्मनःपूर्वजन्मचरित्रवर्णनम्

सुकलोवाच।

सुदेवाचारुसर्वाङ्गी तामुवाचाथ सूकरीम्। पशुयोनिं गतात्वं हि कथंवदसि संस्कृतम्
एवं विधं महाज्ञानं कस्माद्भूतं वदस्व मे। कथं जानासि वै भर्तुश्चरित्रमात्मनःशुभे॥

शूकर्युवाच।

पशोर्भावेन मोहेन मुष्टाहं वरवर्णिनी। निहता खड्गबाणैश्च पतितारण मूर्द्धनि॥ २॥

मूर्च्छयामि परिक्लिन्ना ज्ञानहीना वरानने। त्वयाभिषिक्ता येनाहं पुण्यहस्तेन सुन्दरि
पुण्योदकेन शीतेन तव हस्तगतेन वै। अभिषिक्ते हि मे काये मोहोनष्टो विहायमाम्॥
यथाविनाशं तेजोभिरन्धकारःप्रयाति सः। तथातवाभिषेकेन मम पापंगतं शुभे॥
प्रसादात्तवचार्वङ्गि लब्धं ज्ञानं पुरातनम्। पुण्यांगतिं प्रयास्यामि इति ज्ञातंमया शुभे

श्रूयतामभिधास्यामि पूर्ववृत्तान्तमात्मनः।
यत्कृतं तु मया भद्रे पापया दुष्कृतं बहु॥ ८॥

कलिङ्गाख्य महादेशे श्रीपुरं नामपत्तनम्। सर्वसिद्धि समाकीर्णं चतुर्वर्णनिषेवितम्॥
वसतिस्म द्विजःकोऽपि वसुदत्त इतिश्रुतः। ब्रह्माचारपरोनित्यं सत्यधर्मपरायणः॥

वेदवेत्ता ज्ञानवेत्ता शुचिमान्गुणवान्धनी।
धनधान्य समाकीर्णःपुत्रपौत्रैरलङ्कृतः॥ ११॥

तस्याहं तनया भद्रे सोदरैःस्वजनवान्धवैः। अलङ्कारैस्तु शृङ्गारैर्भूषितास्मिवरानने
सुदेवानाम मे तातश्चकार स महामतिः। तस्याहं दयिता नित्यं पितुश्चापि महामते॥
रूपेणा प्रतिमाजाता संसारैनास्ति तादृशी। रूपयौवनगर्वेण मत्ताहं चारुहासिनी॥

अहंकन्या सुरूपा वै सर्वालङ्कारशोभिता।
मां च दृष्ट्वा ततोलोकाःसर्वे स्वजनवर्गकाः॥ १५॥

मामेवं याचमानास्तेविवाहार्थे वरानने। याचिताहं द्विजैःसर्वैर्नददाति पितामम॥
स्नेहाच्चैव महाभागे मुमोह स महामतिः। न दत्ताहं तदातेन पित्राचैव महात्मना॥
सम्प्राप्तं यौवनं बाले मयि भावसमन्वितम्। रूपमेतादृशं दृष्ट्वा मममाता सुदुःखिता

पितरंमउवाचाथ कस्मात्कन्या न दीयते।
त्वं कस्मै सुद्विजायैव ब्राह्मणाय महात्मने॥ १६॥

देहि कन्यां महाभाग सम्प्राप्ता यौवनंत्वियम्। वसुदत्तो द्विजश्रेष्ठःप्रत्युवाचद्विजोत्तमः
मातरं मे महाभागे श्रूयतां वचनं मम। महामोहेन मुग्धोऽस्मि सुताया वरवर्णिनी॥

यो मे गृहस्थो विप्रो वै भविष्यति शुभे शृणु।
तस्मै कन्यां प्रदास्यामि जामात्रे तु न संशयः॥ २२॥

ममप्राणप्रियाचैषा सुदेवानात्र संशयः। एवमूचे मदर्थेस वसुदत्तःपिता मम ॥ २३ ॥
कौशिकस्य कुलेजातःसर्वविद्याविशारदः। ब्राह्मणानांगुणैर्युक्तःशीलवान्गुणवाञ्छुचिः

वेदाध्ययनसम्पन्नं पठमानं हि सुस्वरम्।
भिक्षार्थं द्वारमायान्तं पितृमातृ विवर्जितम् ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तंरूपंवीक्ष्यमहामतिः। तं प्रोवाच पिताएवं को भवान्वैभविष्यति
किं तेनाम कुलं गोत्रमाचारं वद साम्प्रतम्। समाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वसुदत्तमुवाच सः
कौशिकस्यान्वयेजाते वेदवेदाङ्गपारगः। शिवशर्मेति मे नाम पितृमातृविवर्जितः ॥

सन्ति मे भ्रातरश्चान्ये चत्वारोवेदपारगाः।
एवं कुलसमाख्यातमाचारःकुलसम्भवः ॥ २९ ॥

एवं सर्वं समाख्यातं पितरं शिवशर्मणा। शुभलग्ने तिथौप्राप्ते नक्षत्रे भगदैवते ॥
पित्रादत्तास्मि सुभगे तस्मै विप्राय वै तदा। पितृगेहे वसाम्येका तेनसार्द्धं महात्मना

नैव शुश्रूषितो भर्ता मया स पापया तदा।
पितृमातृ सुद्रव्येण गर्वेणापि प्रमोहिता ॥ ३२ ॥

अङ्गसंवाहनं तस्य नकृतं हि मयाकदा। रतिभावेन स्नेहेन वचने न मयाशुभे ॥ ३३ ॥

क्रूरबुद्ध्याहि दृष्टोऽसौ सर्वदा पापया मया।
पुंश्चलीनां प्रसङ्गेन तद्भावं हि गताशुभे ॥ ३४ ॥

मातापित्रोश्च भर्तुश्च भ्रातॄणां हितमेव च। न करोम्यहमेवापि यत्रयत्र व्रजाम्यहम् ॥
दृष्ट्वा मे दुष्कृतं दृष्ट्वा शिवशर्मा पतिर्मम। स्नेहाच्छ्वशुरवर्गस्य ममभर्ता महामतिः ॥
न किंचिद्वक्ति मां सोऽपि क्षमते दुष्कृतं मम। वार्यमाणा कुटुम्बेन अहमेवं सुपापिनी

तस्यशील विदित्वा ते साधुत्वं शिवशर्मणः।
पितामाता च मे सर्व ममपापेन दुःखिताः ॥ ३८ ॥

यदा मे दुष्कृतं दृष्ट्वा स्वगृहान्निर्गतोबहिः। तं देशं ग्राममेनं च परित्यज्य गतस्ततः
गते भर्तरि मे तातःसञ्जातश्चिन्तयान्वितः। ममदुःखेन दुःखात्मा यथारोगेणपीडितः ॥
मे माता उवाचैनं भर्तारं दुःखपीडितम्। कस्माच्चिन्तयसे कान्त वददुखं ममाग्रतः ॥

वसुदत्त उवाचैनां मातरं मम नन्दने ।
सुतां त्यक्त्वा गतोविप्रो जामाता शृणु वल्लभे ॥ ४२ ॥
इयं पापसमाचारा निर्घृणा पापचारिणी । अनया हि परित्यक्तःशिवशर्मा महामति
समस्तस्य कुटुम्बस्य दाक्षिण्येन महामतिः । मामायं सद्विजःकान्ते सुदेवां नैवभ
वसते सौम्यभावेन नैवनिन्दति कुत्सति ।
सुदेवां पापसञ्चारां स वै पण्डितबुद्धिमान् ॥ ४५ ॥
भविष्यतित्वियं दुष्टा सुदेवा कुलनाशिनी । अहमेनां परित्यज्य व्रजामि गृहवा
ब्राह्मण्युवाच ।
अद्यज्ञातं त्वया कान्त सुताया गुणदूषणम् । तवमोहेन स्नेहेन नष्टेयं शृणु सा
तावद्विलाडयेत्पुत्रं यावत्स्यात्पञ्चवार्षिकः । शिक्षाबुद्धया सदाकान्त पुनर्मोहेन पो
स्नानाच्छादनकैर्भक्ष्यैर्भोज्यैःपेयैर्नसंशयः । गुणेषु योजयेत्कान्त सद्विद्यासु च तं
गुणशिक्षार्थं निर्मोहः पिताभवति सर्वदा ।
पालने पोषणे कान्त संमोहःपरिजायते ॥ ५० ॥
सगुणं न वदेत्पुत्रं कुत्सयेच्च दिनेदिने । काठिन्यं च वदेन्नित्यं वचनैःपरिपीड
यथा हि साधयेन्नित्यं सुविद्यां ज्ञानतत्परः । अभिमाने छलेनापि पापंत्यक्त्वा प्र
नैपुण्यं जायते नित्यं विद्यासु च गुणेषु च ।
माता च ताडयेत्कन्यां स्नुषां श्वश्रूर्विताडयेत् ॥ ५३ ॥
गुरुश्चताडयेच्छिष्यंततःसिध्यन्तिनान्यथा । भार्यां चताडयेत्कान्त अमात्यंनृपति
हयं च ताडयेद्धीरो गजं मात्रोदिनेदिने । शिक्षाबुद्ध्या प्रसिध्यन्ति ताडनात्पालना
त्वयेयं नाशिता नाथ सर्वदैव न संशयः ।
सार्धं सुब्राह्मणेनापि भवता शिवशर्मणा ॥ ५६ ॥
निरङ्कुशाकृतागेहे तेन नष्टा महामते । तावद्धिधारयेत्कन्यां गृहे कान्तवचःशृणु
अष्टवर्षान्विता यावत्प्रवलांनैव धारयेत् । पितुर्गेहस्थितापुत्री यत्पापं हि प्रकु
उभाभ्यामपितत्पापं पितृभ्यामपि विन्दति । तस्मान्नधार्यते कन्या समर्था निज

यस्य दत्तासवेत्सा च तस्यगेहे प्रपोषयेत् ।
तत्रस्था साधयेत्कान्तं सगुणं भक्तिपूर्वकम् ॥ ६० ॥
कुलस्य जायते कीर्तिःपिता सुखेन जीवति । तत्रस्था कुरुतेपापं तत्पापं भुञ्जतेपतिः ॥
तत्रस्था वर्द्धतेनित्यं पुत्रैःपौत्रैःसदैव सा । पिताकीर्तिमवाप्नोति सुतायाःसुगुणैःप्रिय
तस्मान्नधारयेत्कान्त गेहेपुत्रीं सभर्तृकाम् । इत्यर्थे श्रूयते कान्त इतिहासो भविष्यति
अष्टाविंशतिकेप्राप्ते युगेद्वापरके महान् । उग्रसेनस्यवीरस्य यदुज्येष्ठस्य यत्प्रभो ॥६४॥
चरित्रं ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ६५ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

उग्रसेनराजतनयाया पद्मावत्याश्चरित्रवर्णनम् ।

ब्राह्मण्युवाच ।

माथुरे विषयेरम्ये मथुरायां नृपोत्तमः । उग्रसेनेति विख्यातो यादवःपरवीरहा ॥ १ ॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञो वेदज्ञःश्रुतवान्बली । दाता भोक्ता गुणग्राही सद्गुणान्वेत्ति भूपतिः
राज्यं चकार मेधावी प्रजाधर्मेण पालयेत् । एवं स च महातेजाउग्रसेनःप्रतापवान् ॥
वैदर्भे विषयेपुण्ये सत्यकेतुःप्रतापवान् । तस्यकन्या महाभागा पद्माक्षी कमलानना ॥
नाम्ना पद्मावतीनाम सत्यधर्मपरायणा ।
सा तु स्त्रीणांगुणैर्युक्ता द्वितीयेव समुद्रजा ॥ ५ ॥
वैदर्भीं शुशुभे राजन्स्वगुणैःसत्यकारणैः । माथुरउग्रसेनस्तु उपयेमे सुलोचनाम् ॥ ६ ॥
तयासह महाभाग सुखंरेमे प्रतापवान् । अतिप्रीतो गुणैस्तस्यास्तयासह सुखी भवेत् ॥
तस्याःस्नेहेन प्रीत्या च संमुग्धो माथुरेश्वरः ।

पद्मावती महाभागा तस्य प्राणप्रियाऽभवत् ॥ ८ ॥
तयाविना न बुभुजे तयासह प्रक्रीडयेत् । तयाविना न सेवेत परमं सुखमेव सः ॥ ९ ॥
एवं प्रीतिकरौ जातौ परस्परमनुत्तमौ । स्नेहवन्तौ द्विजश्रेष्ठ सुखसम्प्रीतिदायकौ॥१०॥
सत्यकेतुश्च राजेन्द्रःसस्मार सपद्मावतीम् ।
स्वसुतां तां महाभागो माता तस्याःसुदुःखिता ॥ ११ ॥
सदूतान्प्रेषयामास वैदर्भो मथुरांप्रति । उग्रसेनं नृवीरेन्द्रं सादरेण द्विजोत्तम ॥ १२ ॥
उग्रसेनं महाराजं सदूतो वाक्यमब्रवीत् । विदर्भाधिपतिर्वीरो भक्त्यास्नेहेन नन्दयन् ॥
आत्मनःकुशलंब्रूते भवतां परिपृच्छति । सत्यकेतुर्महाराज त्वामेवं परिपृष्टवान् ॥१४॥
दर्शनाय प्रेषयस्व सुतांपद्मावतीं मम । यदि त्वं मन्यसेनाथ प्रीतिस्नेहं हि तस्य च ।
प्रेषयस्व महाभागां प्रियां प्रीतिकरां तव । औत्कण्ठ्येन महाराज सशोकेनानुवर्तते ।
समाकर्ण्यं ततोवाक्यमुग्रसेनो नृपोत्तमः ।
प्रीत्यास्नेहेन तस्यापि सत्यकेतोर्महात्मनः ॥ १७ ॥
दाक्षिण्येन च विप्रेन्द्र प्रेषयामास भूपतिः । पद्मावतीं प्रियांभार्यामुग्रसेनःप्रतापवान् ।
प्रेषितानेन राजेन्द्र गतापद्मावती स्वकम् । पूर्वं गृहं सती सा तु महाहर्षेण सङ्कुला ।
पितृपूर्वं कुटुम्बं तु ददृशे चारुमङ्गला । पितुःपादौ ननामाथ शिरसा सत्यतत्परा ।
आगतायां महाराजःपद्मावत्यां द्विजोत्तम । हर्षेण महताविष्टो विदर्भाधिपतिर्नृपः ।
वर्द्धिता दानमानैश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः । पद्मावती सुखेनापि पितुर्गेहे प्रवर्तते ॥ २२ ॥
सखीभिःसहिता सा तु निःशङ्का परिवर्तते । रमते सा तदा तत्र यथापूर्वं तथैव च ।
गृहेवने तडागेषु प्रासादे च तथैव सा । पुनर्बालेव भूतासा निर्लज्जा सम्प्रवर्तते ॥ २४ ॥
निःशङ्का वर्ततेविप्र सखीभिःसह सर्वदा । पतिव्रता महाभागा हर्षेणमहतान्विता ।
सुखं तु पितृगेहस्य दुर्लभं श्वाशुरेगृहे । एवं ज्ञात्वा तदारेमे कदाईदृग्भविष्यति ॥ २६ ॥
अनेन मोहभावेन क्रीडालुब्धा वरानना । सखीभिःसहिता नित्यं वनेषूपवने तदा ।
इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पद्मावत्याश्चरित्रवर्णनम् ।

ब्राह्मण्युवाच ।

एकदा तु महाभाग गता सा पर्वतोत्तमे । रमणीयं वनं दृष्ट्वा कदलीखण्डमण्डितम् ॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेरैस्तथोत्कटैः ।
पूगीफलैर्मातुलिङ्गैर्नारङ्गैश्चारुजम्बुकैः ॥ २ ॥
चम्पकैःपाटलैःपुण्यैःपुष्पितैःकुटकैर्वटैः । अशोकबकुलोपेतं नानावृक्षैरलङ्कृतम् ॥ ३ ॥
पर्वतंपुण्यवन्तंतं पुष्पितैश्च नरोत्तमैः । सर्वत्र दृश्यतेरम्यो नानाधातु समाकुलः ॥ ४ ॥
तडागं सर्वतोभद्रं पुण्यतोयेन पूरितम् । कमलैःपुष्पितैश्चान्यैः सुगन्धैः कनकोत्पलैः
श्वेतोत्पलैर्विभासन्तं रक्तोत्पल सुपुष्पितैः। नीलोत्पलैश्चकह्लारैर्हंसैश्च जलकुक्कुटैः ॥
पक्षिभिर्जलजैश्चान्यैर्नानाधातुसमाकुलः । तडागं सर्वतःशुभ्रं नानापक्षिगणैर्युतम् ॥ ७ ॥
कोकिलानांरुतैःपुण्यैःसुस्वरैःपरिशोभितः । मधुराणां तथा शब्दैः सर्वत्रमधुरायते ॥८॥
षट्पदानां सुनादेन सर्वत्र परिशोभते । एवंविधंगिरिरम्यं तदेववनमुत्तमम् ॥ ९ ॥
तडागं सर्वतोभद्रं ददृशेनृपनन्दिनी । वैदर्भीक्रीडमाना सा सखीभिः सहिता तदा ॥
समालोक्य वनंपुण्यं सर्वत्र कुसुमाकुलम् । चापल्येन प्रभावेन स्त्रीभावेन च लीलया
पद्मावती सरस्तीरे सखीभिःसहिता तदा । जलक्रीडा समालीना हसते गायते पुनः ॥
सुखेन रममाणा सा तस्मिन्सरसि भामिनी । एवं विप्र तदा सा तु सुखेन परिवर्तयेत्
गोभिलोनाम वै दैत्यो भृत्यो वैश्रवणस्य च । दिव्येनापि विमानेनसर्वभोग परिप्लुतः
याति चाकाशमार्गेण गोभिलोदैत्यसत्तमः ।
तेनदृष्टा विशालाक्षी वैदर्भीनिर्भया तदा ॥ १५ ॥
सर्वयोषिद्वरा सा हि उग्रसेनस्य वै प्रिया । रूपेणाप्रतिमालोके सर्वाङ्गेषु विराजते ॥
रतिर्वैमन्मथस्यापि किंवापियं हरिप्रिया । किंवापि पार्वतीदेवी शची किंवाभविष्यति

यादृशीदृश्यते चेयं नारीणां प्रवरोत्तमा । अन्यापि ईदृशीनास्ति द्वितीया क्षितिमण्डले
नक्षत्रेषु यथाचन्द्रः सम्पूर्णोभाति शोभनः । गुणरूपकलाभिस्तु तथाभातिवरानना
पुष्करेषु यथाहंसस्तथेयं चारुहासिनी । अहोरूपमहोभाव अस्यास्तु परिदृश्यते

का कस्य शोभनाबाला चारुवृत्तपयोधरा ।
व्यमृशद्गोभिलो दैत्यःपद्मावतीं वराननाम् ॥ २१ ॥

चिन्तयित्वा क्षणंविप्र का कस्यापि भविष्यति । ज्ञानेन महताज्ञात्वावैदर्भीतिनसंशः
दयिता उग्रसेनस्य पतिव्रतपरायणा । आत्मबलेन तिष्ठन्ती दुष्प्राप्या पुरुषैरपि
उग्रसेनो महामूर्खःप्रेषिता येन वै वरा । पितुर्गेहमियं बाला सतु भाग्येन वर्जितः
अनया विनासजीवेच्च कथं कूटमतिःसदा । किं वा नपुंसकोराजा एनांयोहिपरित्यजे

तां दृष्ट्वा स तु कामात्मा सञ्जातस्तत्क्षणादपि।
इयं पतिव्रता बाला दुष्प्राप्या पुरुषैरपि ॥ २६ ॥
कथं भोक्ष्याम्यहं गत्वा कामोमामतिपीडयेत् ।
अभुक्त्वैनां यदायास्ये तत्स्यान्मृत्युर्ममैव हि ॥ २७ ॥

अद्यैव हि न सन्देहो यतःकामो महाबलः । इतिचिन्ता परीभूत्वा गोभिलो मनसैः
कृत्वा मायामयंरूपमुग्रसेनस्य भूपतेः । यादृशस्तूग्रसेनश्च साङ्गोपाङ्गो महानृपः
गोभिलस्तादृशोभूत्वा गत्याच स्वरभाषया । यथावस्त्रो यथावेशो वयसा चतथापुच
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः । सर्वाभरणशोभाङ्गो यादृशो माथुरेश्वरः
भूत्वाऽथ तादृशोदैत्य उग्रसेनमयस्तदा । मायया परयायुक्तो रूपलावण्य सम्पदा

पर्वताग्रे अशोकस्य च्छायामाश्रित्य संस्थितः ।
शिलातलस्थोदुष्टात्मा वीणादण्डेन वीरकः ॥ ३३ ॥

सुस्वरं गायमानस्तु गीतं विश्वप्रमोहनम् । तालमान क्रियोपेतं सप्तस्वरविभूषि
गीतं गायति दुष्टात्मा तस्यारूपेणमोहितः । पर्वताग्रेस्थितो विप्र हर्षेणमहतान्वितः

सखीमध्यगता सा तु पद्मावती वरानना ।
शुश्रुवे सुस्वरं गीतं तालमानलयान्वितम् ॥ ३६ ॥

कोऽयं गायति धर्मात्मामहत्सौख्यप्रदायकम्। गीतंहिसत्क्रियोपेतंसर्वभावसमन्वितम्

सखीभिःसहिता गत्वा औत्सुक्येन नृपात्मजा।
अशोकच्छायामाश्रित्य विमले सुशिलातले ॥ ३८ ॥

ददर्श भूपवेषेण गोभिलं दानवाधमम्। पुष्पमालाम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥
सर्वाभरणशोभाङ्गं पद्मावती पतिव्रता। मथुरेशःसमायातःकदा धर्मपरायणः॥

ममनाथो महात्मा वै राज्यंत्यक्त्वा प्रदूरतः।
यावद्धि चिन्तयेत्सा च तावत्पापेन तेन सा ॥ ४१ ॥
समाहूताऽऽतुरीभूय एहित्वं हि प्रिये मम।
चकिता शङ्किता सा च कथंभर्त्ता समागतः ॥ ४२ ॥

लज्जिता दुःखिताजाता अधःकृत्वा ततोमुखम्। अहं पापादुराचारा निःशङ्कापरिवर्तिता
कोपमेवं महाभागःकरिष्यति न संशयः। यावद्धिचिन्तयेत्साच तावत्तेनापि पापिना
समाहूताऽऽतुरीभूय एह्येहि त्वं मम प्रिये। त्वयाविना कुतोदेवि प्राणान्धर्तुं वरानने

न हि शक्नोम्यहं कान्ते जीवितं प्रियमेव च।
तपस्नेहेन लुब्धोऽस्मि त्वां त्यक्त्वा नोत्सहे भृशम् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मण्युवाच।

एवमुक्ता गताऽपश्यत्सुमुखं लज्जयान्विता। समालिङ्ग्य ततोदैत्यःसतीं पद्मावतींतदा
एकान्तं तु समानीता सुभुक्ता इच्छयाततः। दैत्येन गोभिलेनापि सत्यकेतोःसुतातदा

सुकलोवाच।

एकस्थानेऽस्यसङ्केतं नाविन्दत वरानना। स्ववस्त्रं सापरिगृह्यशङ्किता दुःखिताह्यभूत्
सा सक्रोधावचःप्राह गोभिलं दानवाधमम्। कस्त्वंपापसमाचारोनिर्घृणोदानवाकृतिः
पृष्टुकामा समुद्युक्ता दुःखेना कुलितेक्षणा। वेपमाना रुदारजन्दुःखभारेण पीडिता
मकान्तच्छलेनैव त्वयाऽगत्य दुरात्मवन्। नाशितं धर्ममेवाग्र्यं पातिव्रत्यमनुत्तमम्

सुस्वरं रुदितंकृत्वा ममजन्म त्वयाहृतम्।
पश्य मे बलमत्रैव शापं दास्ये सुदारुणम् ॥ ५३ ॥

एवं सम्भाषमाणा तं शप्तुकामा तु गोभिलम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे-
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पद्मावत्याश्चरित्रवर्णनम् ।

सुकलोवाच ।

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा गोभिलो वाक्यमब्रवीत् ।
भवती शप्तुकामासि कस्मान्मे कारणं वद ॥ १ ॥
केनदोषेण लिप्तोऽस्मि यस्मात्त्वं शप्तुमुद्यता ।
गोभिलोनामदैत्योऽस्मि पौलस्त्यस्यभटःशुभे ॥ २ ॥

दैत्याचारेण वर्तामि जानेविद्यामनुत्तमाम् । वेदशास्त्रार्थ वेत्तास्मि कलासुनिपुण
एवं सर्वं विजामामि दैत्याचारं शृणुष्वमे । परस्वं परदारांश्च बलाद्भुञ्जामि ना
वयं दैत्याःसमाकर्ण्य दैत्याचारेणसाम्प्रतम् । वर्तामोज्ञातिभावेन सत्यंसत्यंवदा

ब्राह्मणानां हि च्छिद्राणि विपश्यामो दिने दिने ।
तेषां हि तपसोनाशं विघ्नैःकुर्मो न संशयः ॥ ६ ॥

छिद्रं प्राप्य वयं देवि नाशयामो न संशयः । ब्राह्मणाच्छ्रूयतां भद्रे देवयज्ञं वरा
नाशयामो वयंयज्ञान्धर्मयज्ञं न संशयः । सुब्राह्मणान्परित्यज्य देवंनारायणं प्र
पतिव्रतां महाभागां सुमतिं भर्तृतत्पराम् । दूरेणापि परित्यज्य तिष्ठामो नात्र
तेजो देवि सुविप्रस्य हरेश्चैव महात्मनः । नार्याःपतिव्रतायाश्च सोढुं दैत्याश्च न

पतिव्रताभयेनापि विष्णोःसुब्राह्मणस्य च ।
नश्यन्ति ब्राह्मणाःसर्वे दूरं राक्षस पुङ्गवाः ॥ ११ ॥

अहं दानवधर्मेण विचरामि महीतलम्। कस्मात्त्वं शप्तुकामासि ममदोषोविचार्यताम्
पद्मावत्युवाच।
मधर्मःसुकायश्च त्वयैव परिनाशितः। अहं पतिव्रतासाध्वी पतिकामा तपस्विनी॥
स्वमार्गे संस्थिता पापमायया परिनाशिता।
तस्मात्त्वामप्यहं दुष्ट आधक्ष्यामि न संशयः॥ १४॥
गोभिल उवाच।
र्ममेव प्रवक्ष्यामि भवती यदि मन्यते। अग्निचिद्ब्राह्मणस्यापि श्रूयतां नृपनन्दिनि॥
गृह्णन्देवं द्विकालं यो न त्यजेदग्निमन्दिरम्। सचाग्निहोत्री भवति यजत्येव दिनेदिने
न्यच्चैवं प्रवक्ष्यामि भृत्यधर्मं वरानने। मनसाकर्मणावाचा विशुद्धोयोऽपि नित्यशः
नित्यमादेशकारीयः पश्चातिष्ठति चाग्रतः। स भृत्यःकथ्यते देवि पुण्यभागी नसंशयः
: पुत्रो गुणवाञ्ज्ञाता पितरं पालयेच्छुभः। मातरं च विशेषेण मनसा कायकर्मभिः
तस्यभागीरथी स्नानमहन्यहनि जायते।
अन्यथा कुरुते योहि स पापीस्यान्न संशयः॥ २०॥
न्यच्चैवं प्रवक्ष्यामि पतिव्रतमनुत्तमम्। वाचासुमनसाचैव कर्मणा शृणु भामिनि
श्रूषां कुरुते याहि भर्तुश्चैव दिने दिने। तुष्टेभर्त्तरि या प्रीता न त्यजेत्क्रोधनं पुनः॥
तस्य दोषं न गृह्णाति ताडिता तुष्यते पुनः।
भर्त्तुःकर्म सुसर्वेषु पुरतस्तिष्ठते सदा॥ २३॥
। चापि कथ्यते नारी पतिव्रतपरायणा। पतितोऽपि पितापुत्रैर्बहुदोषसमन्वितः॥
कस्मादपि च न त्याज्यःकुष्ठितःक्षुधितोऽपि वा।
एवं पुत्राःशुश्रूषन्ति पितरं मातरं किल॥ २५॥
यान्ति परमंलोकं तद्विष्णोःपरमं पदम्। एवं हि स्वामिनं येवै उपाचरन्तिभृत्यकाः
युर्लोकं प्रयान्त्येते प्रसादात्स्वामिनस्तदा। अग्निनैव त्यजेद्विप्रो ब्रह्मलोकंप्रयातिसः
ग्नित्यागकरोविप्रोवृषलीपतिरुच्यते। स्वामिद्रोहीभवेद्भृत्यःस्वामित्यागान्नसंशयः
ग्निं च पितरं चैव न त्यजेत्स्वामिनं शुभे। सदाविप्रःसुतोभृत्यःसत्यंसत्यंवदाम्यहम्

परित्यज्यप्रगच्छन्ति ते यान्ति नरकार्णवम् । पतितं व्याधितंदेवि विकलं कुष्ठिनं
सर्वकर्मविहीनं च गतवित्तादि सञ्चयम् । भर्तारं न त्यजेन्नारी यदिश्रेयइहेच्छ
त्यक्त्वा कान्तं व्रजेन्नारी अन्यत्कार्यमिहेच्छति ।
सा माता पुंश्चलीलोके सर्वधर्मबहिष्कृता ॥ ३२ ॥
गते भर्तरि या ग्रामं भोगं शृङ्गारमेव च । लौल्याच्च कुरुते नारी पुंश्चली वदते
एवं धर्मं विजानामि वेदशास्त्रैश्च संमतम् । दानवा राक्षसाःप्रेता धात्रा सृष्टा यदा
तत्रेह कारणं सर्वं प्रवक्ष्यामि न संशयः । ब्राह्मणा दानवाश्चैव पिशाचाश्चैवराक्षसा
धर्मार्थं सकलं प्रोक्तमधीतंस्तैस्तु सुन्दरि । विन्दन्तिसकलं सर्वं आचरन्ति न दान
विधिहीनं प्रकुर्वन्ति दानवा ज्ञानवर्जिताः । अन्यायेन व्रजन्त्येते मानवा विधिवर्जि
तेषां शासनहेत्वर्थं कृता एतेऽपिनान्यथा । विधिहीनं प्रकुर्वन्ति ये हि धर्मं नराध
तान्वयं शासयामो वै दण्डेन महता किल । भवत्या दारुणं कर्म कृतमेव सुनिर्घृणा
गार्हस्थ्यं च परित्यज्य अत्रायाता किमर्थतः । वदत्येवं मुखेनापि अहं हि पतिदे
कर्मणानास्ति तद्दृष्टं पतिदैवत्यमेव ते ।
भर्तारं तं परित्यज्य किमर्थं त्वमिहागता ॥ ४१ ॥
शृङ्गारं भूषणं वेषं कृत्वा तिष्ठसि निर्घृणा । किमर्थं हि कृतं पापे कस्य हेतोर्वद
निःशङ्का वर्त्तसेचापि प्रमत्ता गिरिकानने । मया त्वं साधिता पाप दण्डेन महता
अधर्मचारिणी दुष्टा पतिं त्यक्त्वा समागता । क्वास्ते तत्पतिदैवत्वं दर्शयत्वं मम
भवती पुंश्चलीनाम ययात्यक्तःस्वकःपतिः । पृथक्छय्या यदानारी तदा सा पुंश्चली
योजनानां शतैकस्य सोऽन्तरेण प्रवर्त्तते । क्वास्ति ते पतिदैवत्यं पुंश्चल्याचारचा
निर्लज्जेनिर्घृणे दुष्टे किं मे वदसिसंमुखी । तपसःक्वास्ति ते भावः क्व तेजो बलं
दर्शयस्व ममाद्यैव बलवीर्यं पराक्रमम् ॥ ४८ ॥

पद्मावत्युवाच ।

स्नेहेनापिसमानीता श्रूयतामसुराधम । भर्तुर्गेहादहं पित्रा क्वास्ते तत्र च पातक
नैवकामान्नलोभाच्च न मोहान्न च मत्सरात् ।

आगताऽहं पतिंत्यक्त्वा पतिभावेन संस्थिता ॥ ५० ॥
भर्तृरूपच्छलेनापि त्वयैव परिवञ्चिता । भवन्तं माथुरंज्ञात्वा गताऽहं सम्मुखं तव ॥
मायाविनं यदाजाने त्वामेवं दानवाधम । एकेन हुङ्कृतेनैव भस्मीभूतं करोम्यहम् ॥

गोभिल उवाच ।

चक्षुर्हीना न पश्यन्ति मानवाः शृणु साम्प्रतम् । धर्मनेत्रविहीनात्वंकथंजानासिमामिह
यदा ते भावउत्पन्नः पितुर्गेहं प्रतिशृणु । पतिध्यानं परित्यज्य मुक्ताध्यानेनत्वं तदा ॥
ज्ञाननेत्रं तदानष्टं स्फुटं च हृदये तव । कथं मां त्वं विजानासि ज्ञानचक्षुर्हता भुवि ॥
कस्या माता पिता भ्राता कस्याः स्वजनबान्धवाः ।
सर्वस्थाने पतिर्ह्येको भार्यायास्तु न संशयः ॥ ५६ ॥
इत्युक्त्वा हि प्रहस्यैव गोभिलोदानवाधमः । न भयंविद्यते तेऽद्य ममापि शृणु पुंश्चलि
किं भवेत्तव शापेन वृथैव परिकम्पसे ।
ममगेहं समाश्रित्य भुङ्क्ष्वभोगान्मनोऽनुगान् ॥ ५८ ॥

पद्मावत्युवाच ।

गच्छ पापसमाचार किं त्वं वदसि निर्घृणः ।
सतीभावेन संस्थास्मि पतिव्रतपरायणा ॥ ५९ ॥
क्ष्यामि त्वां महापाप यद्येवं तु वदिष्यसि । एवमुक्त्वा तथैकान्ते निषसाद महीतले
ःखेन महताविष्टां तामुवाच सगोभिलः । तवोदरे मयान्यस्तं स्ववीर्यं सुकृतं शुभे ॥
स्मादुत्पत्स्यते पुत्रस्त्रैलोक्यक्षोभकारकः । एवमुक्त्वाजगामाथ गोभिलोदानवस्तदा
ते तस्मिन्दुराचारे दानवे पापचारिणी । दुःखेन महताविष्टा नृपकन्या रुरोदह ॥६३॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्ञातदोषायाः पद्मावत्याः पतिगृहंप्रतिप्रेषणम् ।

ब्राह्मण्युवाच ।

गते तस्मिन्दुराचारे गोभिले पापचेतसि । पद्मावती रुरोदाथ दुःखेन महतान्विता
तस्यास्तु रुदितं श्रुत्वा सख्यःसर्वा द्विजोत्तम ।
पप्रच्छुस्तां राजकन्यां ताःसर्वाश्च वराननाः ॥ २ ॥
कस्माद्रोदिषिभद्रं ते कथयस्व हि चेष्टितम् । क्व गतोऽसौ महाराजोमाथुराधिपतिस
येन त्वं हि समाहूता प्रियेत्युक्त्वावदस्व नः । ता उवाच सुदुःखेन रोदमाना पुनःपु
तया आवेदितं सर्वं यज्जातं दोषसम्भवम् । ताभिर्नीता पितुर्गेहं वेपमाना सुदुःखित
मातुःसमक्षं तस्यास्तु आचचक्षुस्तदा स्त्रियः ।
समाकर्ण्य ततो देवी गता सा भर्तृमन्दिरम् ॥ ६ ॥
भर्तारं श्रावयामास सुता वृतान्तमेवं हि । समाकर्ण्य ततोराजा महादुःखी व्यजा
यानाच्छादनकं दत्त्वा परिवार समन्विताम् । मथुरां प्रेषयामास गता सा प्रियमन्दि
सुतादोषं समाच्छाद्य पितामाताद्विजोत्तमः । उग्रसेनस्तुधर्मात्मा पद्मावतीं समाग
स दृष्ट्वा मुमुदेचाशु उवाचेदं वचः पुनः ।
त्वया विना न शक्तोऽस्मि जीवितुं हि वरानने ॥ १० ॥
बहुप्रभासि मे प्रीतागुणशीलैस्तुसर्वदा । भक्त्यासत्येन ते कान्ते पतिदैवत्यकैर्गुणै
समाभाष्य प्रियां भार्यां पद्मावतीं नरेश्वरः । तयासार्धं स वै रेमे उग्रसेनो नृपोत्तम
ववृधे दारुणो गर्भःसर्वलोक भयप्रदः । पद्मावती विजानाति तस्य गर्भस्य कारण
स्वोदरे वर्द्धमानस्य चिन्तयन्ती दिवानिशम् । अनेन किमुजातेन लोकनाशकरेण
अनेनापि न मे कार्यं दुष्टपुत्रेण साम्प्रतम् ।
ओषधीं पृच्छते सा तु गर्भपातस्य सर्वतः ॥ १५ ॥

नारी महौषधीं सा हि विन्दन्ती च दिनेदिने। गर्भस्य पातनायैव उपाया बहुशःकृताः॥
ववृधे दारुणोगर्भःसर्वलोक भयङ्करः। तामुवाच ततो गर्भःपद्मावतीं च मातरम् ॥१७॥
कस्मात्त्वं व्यथसे मातरोषधीभिर्दिनेदिने। पुण्येन वर्द्धतेचायुःपापेनाल्पं तु जीवितम्

आत्मकर्म विपाकेन जीवन्ति च म्रियन्ति च।

आमगर्भाःप्रयान्त्यन्ये अपकास्तु महीतले ॥ १९ ॥

जातमात्राम्रियन्तेऽन्येकति ते यौवनान्विताः। बालावृद्धाश्चतरुणा आयुषोवशतांगताः

सर्वे कर्मविपाकेन जीवन्ति च म्रियन्ति च।

औषध्यो मन्त्रदेवाश्च निमित्ताःस्युर्न संशयः ॥ २१ ॥

मामेव हि न जानासि भवती यादृशो ह्यहम्। दृष्टःश्रुतस्त्वया पूर्वकालनेमि महाबलः॥
दानवानां महावीर्यस्त्रैलोक्यस्य भयप्रदः। देवासुरे महायुद्धे हतोऽहं विष्णुना पुरा॥
साधयितुं च तद्वैरमागतोऽस्मि तवोदरम्। साहसं च श्रमं मातर्माकुरुष्व दिनेदिने॥
एवमुक्त्वा द्विजश्रेष्ठ मातरं विरराम सः। मातोद्यमं परित्यज्य महादुःखादभूत्तदा॥
दशाब्दाश्च गता यावत्तावद्वृद्धिमवाप्तवान्। पश्चाज्जज्ञे महातेजाःकंसोऽभूत्समहाबलः

येन सन्त्रासिता लोकास्त्रैलोक्यस्य निवासिनः।

यो हतो वासुदेवेन गतो मोक्षं न संशयः ॥ २७ ॥

एवं श्रुतं मयाकान्त भविष्यं तु भविष्यति। पुराणेष्वेव सर्वेषु निश्चितं कथितं तव॥
पितृगेहेस्थिताकन्या नाशमेवंप्रयाति सा। गृहावासाय मे कान्तकन्यामोहं न कारयेत्
इमां दुष्टां महापापां परित्यज्य स्थिरोभव। प्राप्तव्यं तु महापापं दुःखं दारुणमेव च॥

लोके श्रेयस्करं कान्त तद्भुङ्क्ष्व त्वं मयासह ॥ ३१ ॥

शूकर्युवाच।

एतद्वाक्यंसुमन्त्रं तु श्रुत्वा स हि द्विजोत्तमः। त्यागेमतिं चकारासौ समाहूता ह्यहंतदा
सकलं वस्त्रशृङ्गारं ममदत्तं शुभे शृणु। तवैव दुर्नयैर्विप्रःशिवशर्माद्विजोत्तमः ॥ ३३ ॥

गतो वै मतिमान्दुष्टे कुलदुष्ट प्रचारिणि।

यत्र ते तिष्ठते भर्ता तत्र गच्छ न संशयः ॥ ३४ ॥

तव यद्रोचते स्थानं यथादिष्टं तथा कुरु। एवमुक्त्वा महाभागे पितृमातृ कुटुम्बकै
परित्यक्ता गताशीघ्रं निर्लज्जाहं वरानने। न लभाम्यहमेवापि वासस्थानं सुखं शुभे
भर्त्सयन्ति च मां लोकाःपुंश्चलीयं समागता। अटमाना गतादेशात्कुलमानेन वर्जि

देशे गुर्जरके पुण्ये सौराष्ट्रे शिवमन्दिरे।
वनस्थलेति विख्यातं नगरं वृद्धिसङ्कुलम् ॥ ३८ ॥

अतीव पीडिता देवि क्षुधयाहं तदा शृणु। कर्परं हि करेगृह्य भिक्षार्थमुपचक्रमे ॥
गृहिणां द्वारदेशेषु प्रविशामिसुदुःखिता। ममरूपं विपश्यन्ति लोकाःकुत्सन्ति भा
न ददते च मे भिक्षां पापाचेयं समागता। एवं दुःख समाहारा दारिद्र्य परिपीि
अटन्त्या च मयादृष्टं गृहमेकमनुत्तमम्। तुङ्ग प्राकार संवेष्टं वेदशालासमन्वित
वेदध्वनि समाकीर्णं बहुविप्र समाकुलम्। धनधान्य समाकीर्णं दासीदासैरलङ्
प्रविवेश गृहं रम्यं लक्ष्मीमुदितमेवतत्। तद्गृहं सर्वतोभद्रं तस्यैव शिवशर्मणः ॥

भिक्षां देहीत्युवाचाथ सुदेवा दुःखपीडिता।
शिवशर्माथ शुश्राव भिक्षाशब्दं द्विजोत्तमः ॥ ४५ ॥

मङ्गलांनाम वै भार्यां लक्ष्मीरूपांवराननाम्। तां हसन्प्राह धर्मात्मा शिवशर्मामहा
इयं हि दुर्बलाप्राप्ता भिक्षार्थं द्वारमागता। समाहूय प्रिये चैनां देहि त्वं भोजनं शु

कृपया परयाऽऽविष्टा ज्ञात्वा मां तु समागताम्।
प्रोवाच मङ्गला कान्तं दास्यामि प्रियभोजनम् ॥ ४८ ॥

एवमुक्त्वा च भर्तारं मङ्गला मङ्गलान्विता। पुनर्मां भोजयामास मिष्टान्नेन सुदुर्ब
मामुवाचसधर्मात्मा शिवशर्मामहामुनिः। का त्वमत्र समायाताकस्य वा भ्रमसेऽ

केन कार्येण सर्वत्र कथयस्व ममाग्रतः।
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं भर्तुश्चैव महात्मनः ॥ ५१ ॥
स्वरेण लक्षितःकान्तो मया वै पापया तदा।
व्रीडयाधोमुखी जाता दृष्टो भर्ता यदा मया ॥ ५२ ॥
मङ्गला चारुसर्वाङ्गी भर्तारमिदमब्रवीत्।

काचेयं हि समाचक्ष्व त्वांदृष्ट्वा हि विलज्जति ॥ ५३ ॥
कथयस्व प्रसादेन का च एषा भविष्यति ॥ ५४ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

———

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्वसपत्न्याः पातिव्रत्यदर्शनेन व्रीडितायाः सुदेवायामरणम् ।

शिवशर्मोवाच ।

मङ्गले श्रूयतां वाक्यं यदिपृच्छसि साम्प्रतम् । यदर्थं हि त्वया पृष्टं तन्निबोधवरानने
यं हि साम्प्रतं प्राप्ता वराकी भिक्षुरूपिणी । वसुदत्तस्य विप्रस्य सुतेयं चारुलोचने
सुदेवानाम भद्रेयं मम जाया प्रिया सदा । केनापि कारणेनैव देशंत्यक्त्वा समागता
मदुःखेन दग्धेयं वियोगेन वरानने । मां ज्ञात्वा तु समायाता भिक्षुरूपेण तेगृहम्
एवं ज्ञात्वा त्वया भद्रे आतिथ्यं परिशोभितम् ॥
कर्त्तव्यं न च सन्देह इच्छन्त्या मम सुप्रियम् ॥ ५ ॥
र्तुवाक्यं निशम्यैव मङ्गलापतिदेवता । हर्षेण महताविष्टा स्वयमेव सुमङ्गला ॥
नानाच्छादन भोज्यं च मम चक्रे वरानने । रत्नकाञ्चनयुक्तैश्चाभरणैश्च पतिव्रता ॥
अहं हि भूषिता भद्रे तथैव पतिकाम्यया ।
तयाहं भूषिता देवि मानस्नानैश्च भोजनैः ॥ ८ ॥
र्त्राहं मानिता देवि जातंदुःखमनन्तकम् । ममोरसि महातीव्रं सर्वप्राणि विनाशनम्
स्यामानो मयादृष्टो दुःखमात्मगतं तथा । चिन्ता मे दारुणाजातायया प्राणाव्रजन्तिमे
दापि वचनं दत्तं न मया पापया शुभम् । अस्यैव विप्रवर्यस्य आचरन्त्याचदुष्कृतम्
दप्रक्षालनंनैव अङ्गसंवाहनं न हि । एकान्तं न मयादत्तं तस्यैव हि महात्मनः ॥

सम्भाषां कथमस्यैव करिष्ये पापनिश्चया।
रात्रौचैव तदा तत्र पतिता दुःखसागरे॥ १३॥
एवं हि चिन्तमानायाःस्फुटितं हृदयं मम। गताःप्राणास्तदा कायं परित्यज्यवरा
तत्र दूताःसमायाता धर्मराजस्य वै तदा। वीराश्च दारुणाःक्रूरा गदाचक्रासिधा
तैस्तु बद्धा महाभागे श्रृङ्खलैर्दृढबन्धनैः।
नीता यमपुरं तैस्तु रुदमाना सुदुःखिता॥ १६॥
मुद्गरैस्ताड्यमानाहं दुर्गमार्गेण पीडिता। भर्त्स्यमाना यमस्याग्रे तैस्तत्राहं प्रवे
दृष्टाहं यमराजेन सक्रोधेन महात्मना। अङ्गारसञ्चये क्षिप्ताक्षिप्ता नरकसङ्क
लोहस्य पुरुषं कृत्वा अग्निना परितापितः। ममोरसि समुत्क्षिप्तो निजभर्तुश्चवञ्च
नानापीडातिसन्तप्ता नरकाग्नि प्रतापिता। तैलद्रोण्यां परिक्षिप्ता करम्भ वालुको
असिपत्रैश्च संच्छिन्ना जलयन्त्रेण वाहिता।
कूटशाल्मलि वृक्षेषु क्षिप्ता तेन महात्मना॥ २१॥
पूयशोणित विष्ठायां पतिता कृमिसङ्कुले। सर्वेषुनरकेष्वेवं क्षिप्ताहं नृपनन्दिनि॥
पीडायुक्तेषु तीव्रेषु तेनैवापि महात्मना। करपत्रैःपाटिताहं शक्तिभिस्ताडिताभृ
अन्येष्वेव नरकेषु पातिता नृपनन्दिनि। योनिगर्तेषु क्षिप्तास्मि पतितादुःखसङ्क
धर्मराजेन तेनाहं नरकेषु निपातिता। वल्गुलीयोनिमासाद्य भुक्तं दुःखं सुदारुण
गताहं क्रौष्टुकीं योनिं शुनीयोनिं पुनर्गता।
स कुक्कुटीं च मार्जारीमाखुयोनिं गताह्यहम्॥ २६॥
एवं योनि विशेषेषु पापयोनिषु तेन च। क्षिप्तास्मि धर्मराजेन पीडिता सर्वयो
तेनैवाहं कृताभूमौ शूकर नृपनन्दिनि। दवहस्ते महाभागे सन्ति तीर्थान्यनेक
तेनोदकेन सिक्तास्मि त्वयैव वरवर्णिनि।
मम पापं गतं देवि प्रसादात्तव सुन्दरि॥ २९॥
तवैव तेजःपुण्येन जातं ज्ञानं वरानने। इदानीं मामुद्धरस्व पतितां नरकसङ्क
यदानोद्धरसे देवि पुनर्यास्यामि दारुणम्। नरकं च महाभागेत्राहि मां दुःखभागि

गताहं पापभावेन दीनाहं च निराश्रया ॥ ३२ ॥

सुदेवोवाच ।

किं कृतं हि मया भद्रे सुकृतं पुण्यसम्भवम् । येनाहमुद्धरे त्वां वै तन्मेत्वंवदसाम्प्रतम्

शूकर्यु वाच ।

अयं राजा महाभाग इक्ष्वाकुर्मनुनन्दनः । विष्णुरेष महाप्राज्ञो भवती श्रीर्हि नान्यथा ॥

पतिव्रता महाभागा पतिव्रतपरायणा । त्वं सती सर्वदा भद्रे सर्वतीर्थमयी प्रिया ॥

देवि सर्वमयी नित्यं सर्वदेव मयीं सदा ।

महापतिव्रतालोक एकात्वं नृपतेःप्रिया ॥ ३६ ॥

यथाशुश्रूषितो भर्ता भवत्याहि अहर्निशम् । एकस्य दिवसस्यापि पुण्यं देहि वरानने ॥

पतिशुश्रूषणस्यापि यदि मे कुरुषे प्रियम् । मम मातापितात्वं वै त्वं मे गुरुःसनातनः

अहं पापा दुराचारा असत्याज्ञानवर्जिता । मामुद्धर महाभागे भीताहं यमताडनैः ॥

सुकलोवाच ।

एवंश्रुत्वा तयाप्रोक्तं समालोक्य नृपं तदा । किं करोमि महाराज एष किं वदते पशुः

इक्ष्वाकुरुवाच ।

एनां दुःखां वराकीं वै पापयोनिं गतां शुभे । समुद्धरस्व पुण्यैस्त्वंमहच्छ्रेयोभविष्यति

एवमुक्तावरा नारी सुदेवा चारुमङ्गला । उवाचैकाब्द पुण्यं ते मयादत्तं वरानने ॥४२॥

एवमुक्तेन वाक्येन तयादेव्या हि तत्क्षणात् । रूपयौवनसम्पन्ना दिव्यमाला विभूषिता

दिव्यदेहा च सम्भूता तेजोज्वालासमावृता । सर्वभूषणशोभाढ्या नानारत्नैश्चशोभिता

सञ्जाता दिव्यरूपा सा दिव्यगन्धानुलेपना । दिव्यं विमानमारूढा अन्तरिक्षं गतासती

तामुवाच ततो राज्ञीं प्रणता नतकन्धरा । स्वस्त्यस्तु ते महाभागे प्रसादात्तव सुन्दरि

व्रजामि पातकान्मुक्ता स्वर्गं पुण्यतमं शुभम् । प्रणम्यैवं गता स्वर्गं सुदेवा शृणुसत्तम

एतत्ते सर्वमाख्यातं सुकलाया निवेदितम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डेवेनोपाख्यानेसुकलाचरित्रेसुदेवास्वर्गारोहणंनाम

द्विपञ्चासत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुकलायाः पातिव्रत्यभङ्गार्थं इन्द्रस्यश्रमवैफल्यम् ।

सुकलोवाच ।

एवं धर्मं श्रुतं पूर्वं पुराणेषु तदामया । पतिहीना कथं भोगं करिष्ये पापनिश्चया।
कान्ते न तु विना तेन जीवं कायेन धारये ॥ २ ॥

विष्णुरुवाच ।

एवमुक्त्वा परंधर्मं पतिव्रतमनुत्तमम् । तास्तुसख्यो वरानार्यो हर्षेण महतान्विताः।
श्रुत्वा धर्मं परं पुण्यं नारीणां गतिदायकम् । स्तुवन्तितांमहाभागांसुकलांधर्मवत्सलाः
ब्राह्मणाश्च सुराःसर्वे पुण्यस्त्रियो नरोत्तम। तस्याध्यानं प्रकुर्वन्ति पतिकामप्रभावत
अत्यर्थं दृढतामिन्द्रःसुविचिन्त्य सुरेश्वरः। सुकलायाःपरंभावं सुविचार्यामरेश्वरः
चालये धैर्यमस्याश्च पतिस्नेहं न संशयः।
सस्मार मन्मथंदेवं त्वरमाणः सुराधिपः ॥ ७ ॥
पुष्पचापं ससङ्गृह्य मीनकेतुःसमागतः। प्रियया च तयायुक्तो रत्याद्वृष्टो महाबलः
बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा सहस्राक्षमुवाच सः। कस्मादहं त्वया नाथ अधुना संस्मृतोवि
आदेशो दीयतां मेऽद्य सर्वभावेन मानद ॥ ६ ॥

इन्द्र उवाच ।

सुकलेयं महाभागा पतिव्रतपरायणा। शृणुष्व कामदेवत्वं कुरुसाहाय्यमुत्तमम्
निष्कर्षय महाभागां सुकलां पुण्यमङ्गलाम् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रस्य तमथाब्रवीत् ॥ ११॥
एवमस्तु सहस्राक्ष करिष्यामि न संशयः। साहाय्यं देवदेवेश तवकौतुक कारणात्
एवमुक्त्वा महातेजाःकन्दर्पो मुनिदुर्जयः। देवाज्ञेतुं समर्थोऽहं समुनीनृषिसत्तमान्
किं पुनःकामिनीं देव यस्या अङ्गेन वै बलम्।

कामिनीनामहं देव अङ्गेषु निवसाम्यहम् ॥ १४ ॥
भाले कुचेषु नेत्रेषु कचाग्रेषु च सर्वदा । नाभौ कट्यां पृष्ठदेशे जघने योनिमण्डले ॥
अधरे दन्तभागेषु कक्षायां हि न संशयः । अङ्गेष्वेवं प्रत्यङ्गेषु सर्वत्र निवसाम्यहम् ॥
नारी ममगृहं देव सदातत्र वसाम्यहम् ।
तत्रस्थःपुरुषान्सर्वान्मारयामि न संशयः ॥ १७ ॥
स्वभावेनाबलादेव सन्तप्ता मम मार्गणैः । पितरं मातरं दृष्ट्वा अन्यंस्वजनबान्धवम् ॥
सुरूपं सुगुणं देव मम बाणाहता सती । चलते नात्रसन्देहो विपाकंनैव चिन्तयेत् ॥
योनिःस्पन्देत नारीणां स्तनाग्रौ च सुरेश्वरः ।
नास्तिधैर्यं सुरेशान सुकलां नाशयाम्यहम् ॥ २० ॥

इन्द्र उवाच

पुरुषोऽहं भविष्यामि रूपवान्गुणवान्धनी । कौतुकार्थमिमां नारीं चालयामि मनोभव
नैव कामान्नसन्त्रासान्नवा लोभान्न कारणात् ।
न वै मोहान्न वै क्रोधात्सत्यंसत्यं रतिप्रिय ॥ २२ ॥
कथं मे दृश्यतेतस्या महत्सत्यंपतिव्रतम् । निष्कर्षिष्यइतोगत्वा भवन्मोहोऽत्रकारणम्
एवं कामं च सन्दिश्य जगाम सुरराट् स्वयम् ।
आत्मविकृति सम्भूतो रूपवान्गुणवान्स्वयम् ॥ २४ ॥
सर्वाभरणशोभाङ्गः सर्वभोगसमन्वितः । भोगलीला समाकीर्णः सर्वदौदार्यसंयुतः
यत्र सा तिष्ठते देवी कृकलस्य प्रियानृप । आत्मलीलां स्वरूपं च गुणं भावं प्रदर्शयेत्
नैव पश्यति सा तं तु पुरुषं रूपसम्पदम् । यत्र यत्र व्रजेत्सा हि तत्र तां पश्यते नृप ॥
साभिलाषेण मनसा तामेवं परिपश्यति । कामचेष्टां सहस्राक्षोऽदर्शयत्सर्वभावकैः ॥
चतुष्पथे पथेतीर्थे यत्रदेवी प्रयाति सा । तत्रतत्र सहस्राक्षस्तामेव परिपश्यति ॥ २६ ॥
इन्द्रेण प्रेषिता दूती सुकलां प्रति सा गता ।
सुकलां सुमहाभागां प्रत्युवाच प्रहस्य वै ॥ ३० ॥
अहो सत्यमहो धैर्यमहो कान्तिरहो क्षमा । अस्यारूपेण संसारे नास्ति नारी वरानना

का त्वं भवसि कल्याणि कस्यभार्या भविष्यसि।
यस्य त्वं सगुणा भार्या सधन्यःपुण्यभाग्भुवि ॥ ३२ ॥
तस्यास्तुवचनंश्रुत्वातामुवाचमनस्विनी। वैश्यजात्यांसमुत्पन्नोधर्मात्मासत्यवत्स
तस्याहं हि प्रियाभार्या सत्यसन्धस्य धीमतः। कृकलस्यापिवैश्यस्य सत्यमेववदामि
ममभर्ता सधर्मात्मा तीर्थयात्रां गतःसुधीः। तस्मिन्गते महाभागे ममभर्तरि सत्
अतिक्रान्ताःश्रृणुष्वत्वं त्रयश्चैवापिवत्सराः। ततोऽहंदुःखिताजाता विनातेन महात्म
गतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तान्तमेवच। भवती पृच्छते मां का भविष्यति वदस्व मे
सुकलाया वचःश्रुत्वा दूत्या आभाषित पुनः। मामेवं पृच्छसे भद्रे तत्ते सर्वं वदाम्य
अहं तवान्तिकं प्राप्ता कार्यार्थं वरवर्णिनि।
श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा च वावधार्यताम् ॥ ३६ ॥
गतस्तेनिर्घृणो भर्तात्वांत्यक्त्वा तु वरानने। किं करिष्यसि तेनापिप्रियाघातकरेण
यस्त्वां त्यक्त्वा गतःपापी साध्व्याचार समन्विताम्।
किं वा सते गतोवाले तत्र जीवति वै मृतः ॥ ४१ ॥
किं करिष्यति तेनैवं भवती खिद्यते वृथा। कस्मान्नाशयते चाङ्गं दिव्यं हेमसमप्र
बाल्ये वयसि सम्प्राप्ते मानवो न च विन्दति।
एकं सुखं महाभागे बालक्रीडां विनाशुभे ॥ ४३ ॥
वार्द्धके दुःखसम्प्राप्तिर्जराकायं प्रहिंसयेत्। तारुण्ये भुज्यते भोगःसुखात्सर्वो वरान
यावत्तिष्ठति तारुण्यं तावद्भुञ्जन्ति मानवाः। सुखभोगादिकं सर्वं स्वेच्छया रमते
यावत्तिष्ठतितारुण्य तावद्भोगान्प्रभुञ्जते। वयस्यपिगते गतेभद्रे तारुण्ये किं करिष्
सम्प्राप्ते वार्द्धके देवि किंचित्कार्यं न सिध्यति।
स्थविरश्चिन्तयेन्नित्यं सुखकार्यं न गच्छति ॥ ४७ ॥
पयस्यपि गतेबाले क्रियते सेतुबन्धनम्। तादृशोऽयं भवेत्कायस्तारुण्ये तु गतेशु
तस्माद्भुङ्क्ष्वसुखेनापि पिबस्वमधुमाधवीम्। कामबाणादहन्त्यङ्गं तवेमे चारुलो
अयमेकःसमायातःपुरुषोरूपवान्गुणी। अयं हि पुरुषव्याघ्रःसर्वज्ञो गुणवान्धनी ॥

तवार्थे नित्यसंयुक्तःस्नेहेन वरवर्णिनि ॥ ५१ ॥

सुकलोवाच ।

बाल्यं नास्त्यपि जीवस्य तारुण्यंनास्ति जीविते ।
वृद्धत्वं नास्ति चैवास्य स्वयंसिद्धःसुसिद्धिदः ॥ ५२ ॥

अमरो निर्जरोव्यापी सुसिद्धःसर्ववित्तमः । अकामःकामदोलोके आत्मरूपेण वर्तते ॥
यथा गेहस्य संस्थानं तथाकायस्य दृश्यते । यथावार्द्धकिनाकायस्तथा सूत्रेण मन्दिरम्
अनेक काष्ठसङ्घातैर्नानादारुसमुच्चयैः । मृत्तिकयोदकेनापि समन्तात्परिणामयेत् ॥
विलिप्तं लेपकैःकाष्ठं चित्रं भवति चित्रकैः । प्रथमं रूपमायाति गृहं सूत्रेण सूत्रितम् ॥
पुष्णन्ति च स्वयं तत्तु लेपनाद्वै दिनेदिने । वायुनादोलितं नित्यं गृहं च मलिनायते ॥
मध्यमोवर्तुतःकालो गृहस्य परिकथ्यते । रूपहानिर्भवेत्तस्य गृहस्वामी विलेपयेत् ॥

स्वेच्छया च गृहस्वामी रूपवत्त्वं नयेद्गृहम् ।
तारुण्यं तस्यगेहस्य दूतिके परिकथ्यते ॥ ५९ ॥

काष्ठसङ्घैश्च जीर्णत्वं बहुकालःप्रयाति सः । स्थानभ्रष्टाःप्रजायन्ते मूलाग्रे प्रचलन्तिते ॥
न सहेल्लेपनाभारमाधारेण प्रतिष्ठति । एतद्गृहस्य वार्द्धक्यं कथितं शृणु दूतिके ॥
पतमानं गृहं दृष्ट्वा गृहस्वामी परित्यजेत् । गृहमन्यं प्रवेशाय प्रयात्येव हि सत्वरम्

तथाबाल्यं च तारुण्यं नृणां वृद्धत्वमेव च ।
सबाल्ये बालरूपश्च ज्ञानहीनं प्रकारयेत् ॥ ६३ ॥

चित्रयेत्कायमेवापि वस्त्रालङ्कारभूषणैः । लेपनैश्चन्दनैश्चान्यैताम्बूलप्रभवादिभिः ॥६४॥

कायस्तरुणतां याति अतिरूपो विजायते ।
बाह्याभ्यन्तरमेवापि रसैः सर्वैः प्रपोषयेत् ॥ ६५ ॥

नपोषण भावेन परिपुष्टः प्रजायते । जायते मांसवृद्धिस्तु रसैश्चापि नवोत्तमा ॥६६॥

यान्ति विस्तरतां राजन्नङ्गान्याप्यायितान्यपि ।
प्रत्यङ्गानि रसैश्चैव स्वं स्वं रूपं प्रयान्ति वै ॥ ६७ ॥

न्ताधरौ स्तनौ बाहू कटि पृष्ठमुरूउभे । हस्तपाद तलौतद्वद्वृद्धत्वं प्रतिपेदिरे ॥६८॥

उभाभ्यामपि तान्येव वृद्धिमायान्ति तानि वै ।
अङ्गानि रसमांसाभ्यां सुरूपाणि भवन्ति ते ॥ ६९ ॥

तैःस्वरूपैर्भवेन्मर्त्यो रसवद्भश्च दूतिके । सुरूपः कथ्यतेमर्त्यो लोकेकेनप्रियो भवेत् ।
विष्ठामूत्रस्य वै कोशः काय एष च दूतिके । अपवित्र शरीरोऽयं सदास्रवति निर्घृण
तस्य किं वर्ण्यते रूपं जलबुद्‌बुदवच्छुभे । यावत्पञ्चाशद्वर्षाणि तावत्तिष्ठति वै दृढः ।

पश्चाच्चं जायते हानिस्तस्यैवापि दिने दिने ।
दन्ताः शिथिलतां यान्ति तथालालायते मुखम् ॥ ७३ ॥

चक्षुर्भ्यामपि पश्येन्न कर्णाभ्यां न शृणोति च । गतिंकर्तुं नशक्नोतिहस्तपादैश्चदूति
अक्षमो जायते कायो जरा कालेन पीडितः । तद्रसःशोषमायाति जराग्नितापशोषितः
अक्षमो जायते दूति केनरूपत्वमिष्यते । यथाजीर्णं गृहं याति क्षयमेवं न संशय ॥७
तथा संक्षयमायाति वार्द्धके तु कलेवरम् । ममरूपं समायातं वर्णस्यैवं दिने दिने॥७
केनाहं रूपसंयुक्ता केनरूपत्वमिष्यते । यथाजीर्णं गृहं याति केनासौ पुरुषोबली
यस्यार्थमागता दूति भवती केन संसति । किमुचैव त्वयादृष्टं ममाङ्गे वद साम्प्रतम्

तस्याङ्गादीह हीनं च दूतिनास्त्यधिकं तथा ।
यथा त्वं च तथाऽसौ वै तथाहं नात्र संशयः ॥ ८० ॥

कस्यरूपं न विद्येत रूपवान्नास्ति भूतले । उच्छ्रायाः पतनान्ताश्च नगास्तु गिरयःशु
कालेनपीडितायान्ति तद्वद्भूताश्च नान्यथा । अरूपो रूपवान्दिव्यआत्मासर्वगतःशु
स्थावरेष्वेव सर्वेषु जङ्गमेषु च दूतिके । एको निवसतो शुद्धो घटेष्वेकं यथोदकम्
घटनाशात्प्रयात्येकमेकत्वं त्वं न बुध्यसे । पिण्डनाशादयंचात्मा एकरूपो विजा

एकं रूपं मयादृष्टं संसारेवसतां सदा ।
एवं वदस्व वं ज्ञात्वा यस्यार्थमिहचागता ॥ ८५ ॥

दर्शयस्व अपूर्वं मे यदि भोक्तुमिहेच्छसि । व्याधिनापीड्यमानस्य कफेनापिवृतस्य
अङ्गाद्विचलते शोणःस्थानभ्रष्टोऽभि जायते । अङ्गसन्धिषु सर्वासु पलत्वं चान्तरङ्ग

एकतो नाशमायाति स्वंहिरूपं परित्यजेत् ।

विष्ठात्वं जायते शीघ्रं कृमिभिश्च भवेत्किल ॥ ८८ ॥
तद्वद्दुःखकरंवापि निजरूपं परित्यजेत् । श्रूयतां जायते पश्चात्कृमिदुर्गन्धसङ्कुलम् ॥
जायन्ते तत्र वै यूकाः कृमयो वा न संशयः ।
सकृमिः कुरुते स्फोटं कण्डूं च परिदारुणाम् ॥ ९० ॥
व्यथामुत्पादयेद्यूका सर्वाङ्गं परिचालयेत् । नखाग्रैर्घृष्यमाणा सा कण्डूःशान्ताप्रजायते
तद्वृत्तैश्च शृणुष्वैव सुरतस्य न संशयः । भुनक्त्येवरसान्मर्त्यः सुभक्षान्पिवते पुनः ॥
वायुना तेनप्राणेन पाकस्थानं प्रणीयते । यद्भुक्तं प्राणिभिर्दूति पाकस्थानं गतं पुनः
सर्वं तत्पिहितं तत्र वायुर्वैपातयेन्मलम् । सारभूतो रसस्तत्र तद्रक्तश्च प्रजायते ॥९४॥
निर्मलःशुद्धवीर्यस्तु ब्रह्मस्थानं प्रयाति च । आकृष्टःस समानेन नीतस्तेनापि वायुना ॥
स्थानं न लभते वीर्यं चञ्चलत्वेन वर्तते ।
प्राणिनां हि कपालेषु कृमयः सन्तिपञ्च वै ॥ ९६ ॥
द्वावेतौ कर्णमूले तु नेत्रस्थाने ततः पुनः । कनिष्ठाङ्गुलिमानेन रक्तपुच्छाश्च दूतिके ॥
नवनीतस्य वर्णेन कृष्णपुच्छान संशयः । तेषां नामापि भद्रे त्वं मत्तौनिगदितं शृणु ॥
पिङ्गलीशृङ्खलीनाम द्वौ कृमी कर्णमूलयोः । चपलः पिप्पलश्चैव द्वावेतौ नासिकाग्रयोः
शृङ्गली जङ्गली चान्यौ नेत्रयोरन्तरस्थितौ । कृमीणांशतपञ्चाशत्तादृग्भूता न संशयः ॥
भालान्तेऽवस्थिताः सर्वे राजिकायाः प्रमाणतः ।
कपालरोगिणःसर्वे विकुर्वन्ति न संशयः ॥ १०१ ॥
केशद्वयं मुखे तस्य विद्यते शृणु दूतिके । प्राणिनां संक्षयं विद्धि तत्क्षणे हि न संशयः
स्वस्थाने संस्थितस्यापि प्राजापत्यस्य वै मुखे । तद्वीर्यं रसरूपेण पततेनात्र संशयः ॥
मुखेन पिवते वीर्यं तेनमत्तः प्रजायते । तालुमध्यप्रदेशे च चञ्चलत्वेन वर्तते ॥१०४
इडा च पिङ्गला नाडी सुषुम्नाख्या च संस्थिता ।
सुबलेनापि तस्यैव नाडिका जालपञ्जरे ॥ १०५ ॥
कामकण्डूर्भवेद्दूति सर्वेषां प्राणिनां किल । पुंसश्चस्फुरते लिङ्गं नार्यायोनिश्चदूतिके
स्त्रीपुंसौसम्प्रमत्तौ तु व्रजतः सङ्गमं ततः । कायेन कायसङ्घृष्टिर्मैथुनेन हि जायते ॥

क्षणमात्रं सुखं काये पुनः कण्डूश्च तादृशी । सर्वत्र दृश्यते दूति भाव एवं विधः कि
व्रजत्वमात्मनः स्थानं नैवास्त्यत्र अपूर्वता । अपूर्वंनास्ति मे किंचित्करोम्येवनसंशय

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रतिकन्दर्पैसह इन्द्रं दृष्ट्वा सुकलया स्वगृहमध्ये प्रवेशकरणम् ।

विष्णुरुवाच ।

एवमुक्त्वा गता दूती तया सुकलया तदा । समासेन सुसम्प्रोक्तमवधार्य पुरन्दरः ॥ १
तदर्थं भाषितं तस्याः सत्यधर्मसमन्वितम् । आलोच्य साहसंधैर्यंज्ञानमेव पुरन्दरः
ईदृशं हि वदेत्का हि नारीभूत्वा महीतले । योगंरूपं सुसंशिष्टंन्यायोदैःक्षालितं वचः
पवित्रेयं महाभागा सत्यरूपा न संशयः । त्रैलोक्यस्य समस्तस्य धुरंधर्तुं भवेत्क्षमा
एतदर्थं विचार्यैव जिष्णुःकन्दर्पमब्रवीत् । त्वयासह गमिष्यामि द्रष्टुंतां कृकलप्रिया
प्रत्युवाच सहस्राक्षं मन्मथोबलदर्पितः । गम्यतां तत्र देवेश यत्रास्ते सा पतिव्रता
मानं वीर्यं बलं धैर्यंतस्याःसत्यं पतिव्रतम् । गत्वाहं नाशयिष्यामि कियन्मात्रासुरेश्व
समाकर्ण्य सहस्राक्षो वचनं मन्मथस्य च । भो भोऽनङ्ग श्रृणुष्वत्वमधिकंभाषितंमु
सुदृढा सत्य वीर्येण सुस्थिरा धर्मकर्मभिः । सुकले यमजेया वै तत्र ते पुरुषं न हि

इत्याकर्ण्य ततः क्रुद्धोमन्मथस्त्विन्द्रमब्रवीत् ।
ऋषीणां देवतानां च बलंमायाप्रणाशितम् ॥ १० ॥
अस्याबलं कियन्मात्रं भवता मम कथ्यते ।
पश्यतस्तव देवेश नाशयिष्यामि तां स्त्रियम् ॥ ११ ॥

नवनीतं यथावाग्नेस्तेजो दृष्ट्वा द्रवं व्रजेत् । तथे मां द्रावयिष्यामि स्वेनरूपेणतेज

गच्छ तत्र महत्कार्यमुत्पाद्यं साम्प्रतं ध्रुवम्।
कस्मात्कुत्ससि मे तेजस्त्रैलोक्यस्यविनाशनम् ॥ १३ ॥

विष्णुरुवाच।

आकर्ण्य वाक्यं तु मनोभवस्य एतामसाध्यां तव कामजाने।
धैर्यंसमुद्यम्य च पुण्यदेहां पुण्येन पुण्यां बहुपुण्यचाराम् ॥ १४ ॥
पश्यामि ते पौरुषमुग्रवीर्यमितो हि गत्वा तु धनुष्मता वै।
तेनापिसार्धं प्रजगाम भूयो रत्या च दूत्या च पतिव्रतां ताम् ॥ १५ ॥
एकां सुपुण्यां स्वगृहस्थितां तां ध्यानेनपत्युश्चरणेनियुक्ताम्।
यथासुयोगी प्रविधाय चित्तं विकल्पहीनं न च कल्पयेत् ॥ १६ ॥
अत्यद्भुतंरूपमनन्ततेजो श्रुतंचकाराथ सखी प्रमोहम्।
नीलाञ्चितं भोगयुतं महात्मा झषध्वजश्चैव पुरन्दरश्च ॥ १७ ॥
दृष्ट्वासुलीलं पुरुषं महान्तं चरन्तमेवं परिकामभावम्।
जाया हि वैश्यस्य महात्मनस्तु मेनेनसारूपयुतं गुणज्ञम् ॥ १८ ॥
अम्भोयथा पद्मदलेगतं वै प्रयाति मुक्ताफलकस्य कीर्तिम्।
तद्वत्स्वभावःपरिसत्ययुक्तो जज्ञे च तस्यास्तु पतिव्रतायाः ॥ १९ ॥
अनेनदूती परिप्रेषिता पुरा या मां युवत्याह गुणज्ञ मेनम्।
लीलास्वरूपं बहुधात्मभावं ममैष सर्वं परिदर्शयेच्च ॥ २० ॥
ममैवकालं प्रबलं विचिन्त्या गतो हि मे कान्त गुणैश्च सत्खलः।
रत्यासमेतस्तु कथं च जीवेत्सत्याश्मभारेण प्रमर्दितश्च ॥ २१ ॥
ममापिभावं परिगृह्यकान्तो जीवेत्कियान्वापि सुबुद्धियुक्तः।
शून्यो हि कायो ममचास्ति सद्यश्चेष्टाविहीनो मृतकल्प एव ॥ २२ ॥
कायस्य ग्रामस्य प्रजाःप्रनष्टाःसुविक्रियाख्यं परिगृह्यकर्म।
ममाधिकेनापि समं सुकान्त सउद्धर्द्धशोभामनयच्चकामः ॥ २३ ॥
यदा मृतो बलवान्हर्षयुक्तःस्वयंदृशा वै परिनित्यमानः।

तथा अनेनापि प्रभाषयेद्ध्रुतं यो मां हि वाञ्छत्यपि भोक्तुकामः ॥ २४ ॥
एवं विचार्यैव तदामहासती सत्याख्यरज्ज्वा द्रढबद्धचेतना ।
गृहं स्वकीयं प्रविवेश सा तदा तत्तस्यभावं नियमेनवेत्तुम् ॥ २५ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सुकलासाधनेशक्रमदनयोः विवादवर्णनम् ।

विष्णुरुवाच ।

भावं विदित्वा सुरराट् च तस्याः प्रोवाच कामं पुरतःस्थितं सः ।
न चास्ति शक्या स्मर ते जयाय सत्यात्मकध्यान सुदंशितासती ॥ १ ॥
धर्माख्यचापं स्वकरे गृहीत्वा ज्ञानाभिधानं वरमेव बाणम् ।
योद्धुं रणे सम्प्रति संस्थिता सती वीरो यथा दर्पित वीर्यभावः ॥ २ ॥
जिगीषयेयं पुरुषार्थमेव त्वमात्मनः कुरुषे पौरुषं तु ।
त्वामद्यजेतुं समरे समर्था यद्भाव्यमेवं तदिहैव चिन्त्यम् ॥ ३ ॥
दग्धोऽसि पूर्वं त्वमिहैव शम्भुना महात्मना तेन समं विरोधम् ।
कृत्वाफलं तस्य विकर्मणश्च जातोऽस्यनङ्गःस्मरसत्यमेव ॥ ४ ॥
यथा त्वयाकर्मकृतं पुरास्मरं फलंतु प्राप्तं तु तथैव तीव्रम् ।
सुकुत्सितां योनिमवाप्स्यसि ध्रुवं साध्व्यानया सार्धमिहैव कथ्यसे ॥
ये ज्ञानवन्तःपुरुषा जगत्त्रये वैरं प्रकुर्वन्ति महात्मभिःसमम् ।
भुञ्जन्ति ते दुष्कृतमेवतत्फलं दुःखान्वितं रूपविनाशनं च ॥ ६ ॥
व्याघुष्य आवां तु व्रजावकाम एतांपरित्यज्य सतीं प्रयुज्य ।

सत्याःप्रसङ्गेन पुरामया तु लब्धं फलं पापमयं त्वसह्यम् ॥ ७ ॥
त्वमेव जानासि चरित्रमेतच्छप्तोऽस्मि तेनापि च गौतमेन ।
जातश्च मेषवृषणःसदाह्यहं भवान्गतो मां तु विहाय तत्र ॥ ८ ॥
तेजःप्रभावो ह्यतुलःसतीनां धाता समर्थःसहितुं न सूर्यः ।
सुकुत्सितं रूपमिदं तु रक्षेत्पुरानसूया मुनिना हि शप्तम् ॥ ९ ॥
निरुध्य सूर्यं परिवेगवन्तमुद्यन्तमेवं प्रभया सुदीप्तम् ।
भर्तुश्च मृत्युं परिबाधमानं माण्डव्य शापस्य च कौण्डिनस्य ॥ १० ॥
अत्रेःप्रिया सत्यपतिव्रताय स्वपुत्रतां देवत्रयं हि नीतम् ।
न किं पुरा मन्मथते श्रुतं सदा संस्कारयुक्ताःप्रभवन्ति सत्यः ॥ ११
साःवित्रीनाम्नी द्युमत्सेनपुत्री नीतंप्रियं सापुनरानिनाय ।
यस्मादिहैवाश्वपतेःसुपुत्रं सतीत्वमेवं परिसंश्रुतं च ॥ १२ ॥
अग्नेःशिखां कःपरिसंस्पृशेद्वैतरेद्धिकःसागरमेव मूढः ।
गले तु बद्ध्वा सुशिलां भुजाभ्यां कोवासतीं वश्यतिवीतरागाम् ॥ १३ ॥
उक्ते तु वाक्ये वहुनीतियुक्ते इन्द्रेणकामस्य सुशिक्षणार्थम् ।
आकर्ण्यवाक्यं मकरध्वजस्तु उवाचदेवेन्द्रमथैनमेव ॥ १४ ॥
तवातिदेशादहमागतो वै धैर्यं सुहृत्वं पुरुषार्थमेव ।
त्यक्त्वा तदर्थं परिभाषसे मां निःसत्त्वरूपं वहुभीतियुक्तम् ॥ १५ ॥
व्यावृद्धि यास्यामि यदा सुरेश स्याल्लोकमध्ये मम कीर्तिनाशः ।
ऊढिङ्करो मानविहीन एव सर्वे वदिष्यन्त्यनयाजितं माम् ॥ १६ ॥
ये वै जिता देवगणाश्च दानवाःपूर्वंमुनीन्द्रास्तपसाप्रयुक्ताः ।
हास्यं करिष्यन्ति ममापि सर्वे नार्याजितोमन्मथ एषभीमः ॥ १७ ॥
तस्मात्प्रयास्यामि त्वयैव सार्धमस्याबलं मानतमःसुरेशः ।
तेजश्च धैर्यं परिणाशयिष्ये कस्मान्वानत्र बिभेति शक्रः ॥ १८ ॥
सम्बोध्यचैवं स सुराधिनाथं चापं गृहीतं सशरं सुपुष्पम् ।

उवाचक्रीडां पुरतःस्थितां तां विधायमायां भवती प्रयातु ॥ १९ ॥
वैश्यस्य भार्यां सुकलां सुपुण्यां सत्येस्थितां धर्मविदां गुणज्ञाम्।
इतो हि गत्वा कुरुकार्यमुक्तं रूपाद्ययरूपं च प्रियेसखे शृणु ॥ २० ॥
क्रीडां समाभाष्य ततो मनोभवस्त्वन्तेस्थितां प्रीतिमथाह्वयत्पुनः।
कार्यंभवत्या मम कार्यमुत्तममेतां सुस्नेहैः परिभावयत्वम् ॥ २१ ॥
इन्द्रं हि दृष्ट्वा सुकला यथा भवेत्स्नेहानुगा चारुविलोचनेयम्।
तैस्तैःप्रभावैर्गुणवाक्ययुक्तैर्नयस्व वश्यं च प्रियेसखे शृणु ॥ २२ ॥
भोभोःसखे साधय गच्छशीघ्रं मायामयं नन्दनरूपयुक्तम्।
पुष्पोपयुक्तं च फलप्रधानं घुष्टंरुतैःकोकिल षट्पदानाम् ॥ २३ ॥
आह्वय वीरं मकरन्दमेव रसायनं स्वादुगुणैरूपेतम्।
सहानिलाद्यैर्निजकर्मयुक्तैःसम्प्रेषयित्वा पुनरेव कामम् ॥ २४ ॥
एवंसमादिश्य महत्ससैन्यं त्रैलोक्यसंमोहकरं तु कामः।
चक्रे प्रयाणं सुरराजसार्धं संमोहनायैव महासतीं ताम् ॥ २५ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मदनेन्द्रचरित्रंदृष्ट्वा सत्यधर्मादीनांसंवादवर्णनम्।

विष्णुरुवाच।

तस्याःसत्यविनाशाय मन्मथःससुराधिपः। प्रस्थितःसुकलांतर्हि सत्योधर्ममथा[illegible]
पश्य धर्म महाप्राज्ञ मन्थस्यविचेष्टितम्। तवार्थमात्मनश्चैव पुण्यस्यापि महात्म[illegible]
विसृजामि महास्थानं वास्तुरूपं सुखोदयम्।
सत्याख्यं स च विप्राख्यं सुदेवाख्यं गृहोत्तमम् ॥ ३ ॥

तमेव नाशयेद्गत्वा कामएष प्रमत्त धीः। रिपुरूपःसुदुष्टात्मा अस्माकं हि न संशयः॥
पतिस्तपोधनो विप्रःसुसती या पतिव्रता। सुसत्यो भूपतिर्धर्मं ममगेहा न संशयः॥
यत्राहं वृद्धिसम्पुष्टस्तत्रवासो हि ते भवेत्। तत्रपुण्यं समायाति श्रद्धया सह क्रीडते॥
क्षमा शान्ति समायुक्ता आयाति मम मन्दिरम्। यथा सत्योदमश्चैव दयासौहृदमेव च
प्रज्ञायुक्तःसनिर्लोभोयत्राहं तत्र संस्थितः। शुचिःस्वभावस्तत्रैव अमी च ममवान्धवाः
अस्तेयमप्यहिंसा च तितिक्षा वृद्धिरेव च। ममगेहे समायाता धन्य तां शृणु धर्मराट्

गुरूणांचापि शुश्रूषा विष्णुर्लक्ष्म्या समावृतः।
मद्गेहं तु समायान्ति देवाश्चाग्निपुरोगमाः॥ १०॥
मोक्षमार्गं प्रकाशेद्यो ज्ञानी दीप्त्यासमन्वितः।
एतैःसार्धं वसाम्येव सतीषु धर्मवत्सु च॥ ११॥

साधुष्वेतेषु सर्वेषु गृहरूपेषु मे सदा। उक्तेनापि कुटुम्वेन वसाम्येव त्वयासह॥ १२॥
ससत्त्वाःसाधुरूपास्ते वेधसा मे गृहीकृताः। सञ्चरामिमहाभाग स्वच्छन्देन च लीलया
ईश्वरश्च जगत्स्वामी त्रिनेत्रो वृषवाहनः। ममगेहे स्वरूपेण वर्तते शिवयायुतः॥१४॥
तदिदं संश्रुतेःसारं गृहरूपं महेश्वरम्। सदनं शङ्करेत्याख्यं नाशितं मन्मथेन वै॥ १५॥

विश्वामित्रं महात्मानं तपन्तं तप उत्तमम्।
मेनकां हि समाश्रित्य कामोऽयं जितवान्पुरा॥ १६॥

सती पतिव्रताहल्या गौतमस्य प्रियाशुभा। सुसत्याच्चालिता तेन मन्मथेन दुरात्मना॥
मुनयःसत्यधर्मज्ञा नानास्त्रियःपतिव्रताः। मद्गृहास्ता इमाःसर्वा दीपिताःकामवह्निना

दुर्धरो दुःसहो व्यापी योऽतिसत्येषु निष्ठुरः।
मामेवं पश्यते नित्यं क्वसत्यःपरितिष्ठति॥ १६॥

न मां ज्ञात्वा समायाति बाणपाणिर्धनुर्धरः। नाशयेन्मद्गृहं पापो वीतिहोत्रैश्चनामकैः
पलेशाश्च ये क्रूराअन्येपाषण्डसंश्रयाः। ते तु बुद्ध्याऽहि ताःसर्वे सत्यगेहंविशन्तिहि
नाध्यक्षैरसत्यैस्तु च्छन्ना तेन साधितः। पातयेदर्दयेद्गेहं पापःशस्त्रैर्दुरात्मभिः॥
मेवं ताडयेत्पापो महाबल मनोभवः। अस्यधाम्ना प्रदग्धोऽहं शून्यतां हि व्रजामि वै

नूतनं गृहमिच्छामि स्त्रियाख्यं पतिभूपतिम्।
कृकलस्यापि पुण्यस्य प्रियेयं शिवमङ्गला ॥ २४ ॥

तद्गृहं सुकलाख्यं मे दग्धुं पापःसमुद्यतः। अयमेष सहस्राक्षःकामेन सहितो व
कामस्य कारणात्कस्मात्पूर्ववृत्तं न विन्दति। अहल्यायाः प्रसङ्गेन मेषोपस्थोव्यजा
पौरुषं हि मुनेर्द्रष्ट्वा सत्याश्चैवप्रधर्षणात्। नष्टःकामस्यदोषेण सुरराट् तत्रसंस्

भुक्तवान्दारुणं शापं दुःखेनमहतान्वितः।
कृकलस्य प्रियामेनां सुकलां पुण्यचारिणीम् ॥ २८ ॥

एष हन्तुं सहस्राक्ष उद्यतःकामसंयुतः। यथाचेन्द्रेण नायाति काम एष तथा कु

धर्मराज महाप्राज्ञ भवान्मतिमतां वरः ॥ ३० ॥

धर्मराज उवाच।

ऊनं तेजःकरिष्यामि कामस्य मरणं तथा। एकोपायो मया दृष्टस्तमिहैव प्रपश्य
प्रज्ञाचैषा महाप्राज्ञा शकुनी रूपचारिणी। भर्तुरागमनं पुण्यं शब्देनाख्यातु खेच
शकुनस्य प्रभावेन भर्तुश्चागमनेन च। दुष्टैर्नष्टा न भूयेत स्वस्थचित्ता न संशयः ॥
प्रज्ञा संप्रेषिता तेन गता सा सुकला गृहम्। प्रकुर्वती महच्छब्दं दृष्टदेवेव सा व
पूजिता मानिता प्रज्ञा धूपदीपादिभिस्तदा। ब्राह्मणं सुकलाऽपृच्छत्किमेषा च वदे

ब्राह्मण उवाच।

भर्तुश्चागमनं ब्रूते तवैव सुभगे स्थिरा। दिनसप्तकमध्ये स आगमिष्यति नान्यथ

इत्येवमाकर्ण्य सुमङ्गलं वचःप्रहर्षयुक्ता सहसा बभूव।
धर्मज्ञमेकं सगुणं हि कान्तं शकुनात्प्रदिष्टं हि समागतं तम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रीडया सुकलांप्रत्यागत्य तां मोहयित्वा तयासहोपवनंप्रतिगमनम् ।

विष्णुरुवाच ।

क्रीडा सतीरूपधरा प्रभूत्वा गेहंगता चारुपतिव्रतायाः ।
तामागतां सत्यस्वरूपयुक्ता सा सादरं वाक्यमुवाच धन्या ॥ १ ॥
वाक्यैःसुपुण्यैः परिपूजिता सा उवाच क्रीडा सुकलां विहस्य ।
मायानुगं विश्वविमोहनं सती प्रत्युत्तरं सत्यप्रमेयमुक्तम् ॥ २ ॥
ममापि भर्ता प्रबलो गुणज्ञो धीरःसविद्यो महिमाप्रयुक्तः ।
त्यक्त्वा गतःपापतरां सुपुण्यो मामेव नाथःश्रृणु पुण्यकीर्तिः ॥ ३ ॥
वाक्यैस्तु पुण्यैरबलास्वभावादाकर्ण्य सर्वं सुकला समुक्तम् ।
संशुद्धभावां च विचिन्त्य चाह कस्माद्गतःसुन्दरि तेऽद्यनाथः ॥ ४ ॥
विहाय ते रूपमतीव सत्यमाचक्ष्व सर्वं भवती सुभर्तुः ।
ध्यानोपयुक्ता सकलं करोति सखीस्वरूपा गृहमागता मे ॥ ५ ॥
क्रीडा बभाषे श्रृणु सत्यमेतं चरित्रभावं मम भर्त्तुरस्य ।
अहं प्रिये यस्य सदैवयुक्ता यमिच्छते तं प्रति सान्त्वयामि ॥ ६ ॥
कर्तुःसुपुण्यं वचनं सुभर्तुर्ध्यानोपयुक्ता सकलं करोमि ।
एकान्तशीला सगुणानुरूपा शुश्रूषयैकस्तमिहैव देवि ॥ ७ ॥

मम पूर्वविपाकोऽयं सम्प्रत्येवंप्रवर्तते । यतस्त्यक्त्वा गतो भर्त्ता मामेवंमन्दभागिनीम्
सखेन धारये जीवं स्वकीयं कायमेव च । पत्याहीनाःकथंनार्यःसुजीवन्ति च निर्घृणाः

रूपश्रृङ्गारसौभाग्यं सुखं सम्पत्तिरेव च ।
नारीणां हि महाभागो भर्ताशास्त्रेषु गीयते ॥ १० ॥

तया सर्वंसमाकर्ण्य यदुक्तं क्रीडया तदा । सत्यभावंविदित्वा सा मेने सम्भाषितं तदा

विश्वस्ता सा महाभागा सुकला पतिदेवता। तामुवाच पुनःसर्वमात्मचेष्टानुगं वचः
समासेन समाख्यातं पूर्ववृत्तान्तमात्मनः। यथाभर्ता गतोयात्रां पुण्यसाधनतत्परः
आत्मदुःखं सुसत्यं च तपं एव मनस्विनि।
बोधिता क्रीडया सा तु समाश्वास्य पतिव्रता॥ १४॥
एकदा तु तयाप्रोक्तं क्रीडया सुकलांप्रति। सखे पश्य वनं सौम्यं दिव्यवृक्षैरलङ्कृतम्
तत्रतीर्थं परंपुण्यमस्ति पातकनाशनम्। नानावल्लीवितानैश्च सुपुष्पैःपरिशोभितम्
आवाभ्यामपि गन्तव्यं पुण्यहेतोर्वरानने। समाकर्ण्य तयासार्द्धं सुकला मायया तदा
प्रविवेश वनंदिव्यं नन्दनोपममेव सा। सर्वर्तुकुसुमोपेतं कोकिला शतनादितम्॥१
गीयमानं सुमधुरैर्नादैर्मधुकरैरपि। कूजद्भिःपक्षिभिःपुण्यैःपुण्यध्वनि समाकुलम्॥१
चन्दनादिकवृक्षैश्च सौरभैश्च विराजितम्। सर्वभोगैःसुसम्पूर्णं माधव्या माधवेन
रचितं मोहनायैव सुकलायाश्च कारणात्। तयासार्धं प्रविष्टा सा तद्वनं सर्वभाव
ददर्श सौख्यदं पुण्यं मायाभावं न विन्दति। वीक्षमाणा वनं दिव्यं तयासहजनेश्वर
शक्रोऽपि चाभ्ययात्तत्र देवमूर्ति विराजितः। तया दूत्या समं प्राप्तःकामस्तत्र समाग
सर्वभोगपतिर्भूत्वा कामलीलासमाकुलः। काममाह समाभाष्य पश्य सा सुकुलाऽऽग
प्रहरस्वमहाभाग क्रीडायाःपुरतःस्थिताम्। मायां कृत्वा समानीतांक्रीडयातवसन्नि
पौरुषं दर्शयाद्यैव यद्यस्ति कुरु निश्चितम्।

काम उवाच

आत्मरूपं दर्शयस्व चतुरं लीलायान्वितम्। येनाहं प्रहराम्येतां पञ्चबाणैःसहस्त्रदृक्

इन्द्र उवाच।

कास्तेते पौरुषंमूढ येनलोकं विडम्बसे। मामाधार परीभूत्वा योद्धुमिच्छसिसाम्प्रत

काम उवाच।

तेनापि देवदेवेन महादेवेन शूलिना। पूर्वमेव हृतंरूपं ममकायो न विद्यते॥ २१
इच्छाम्यहं यदानारीं हन्तुं शृणु गुरु साम्प्रतम्। पुंसां कायं समाश्रित्य आत्मरूपं प्रदर्श
पुमांसं वा सहस्राक्ष नार्याःकायं समाश्रये। पूर्वं दृष्ट्वा यदानारीं तामेव परिचिन्तये

चिन्त्यमानस्य पुंसस्तु नार्यारूपं पुनःपुनः । अदृष्टं तु समाश्रित्य पुंसमुन्मादयाम्यहम्
तथाप्युन्मादयाम्येवं नारीरूपंनसंशयः । संस्मरणात्स्मरोनाम ममजातं सुरेश्वर ॥३३॥
तां दृष्ट्वा तादृशोरङ्ग वस्तुरूपं समाश्रय । आत्मतेजःप्रकाशेन वाध्यवाधकतां व्रजेत्
नारीरूपं समाश्रित्य धीरं पुरुषंप्रमोहयेत् पुरुषंतुसमाश्रित्य भावयामि सुयोषितम्
रूपहीनोऽस्मि हे इन्द्र अस्मद्रूपंसमाश्रयेत् । तद्रूपंसमाश्रित्य तां साधये यथेप्सिताम्
एवमुक्त्वा स देवेन्द्रंकार्यंतस्यमहात्मनः । सखाऽसौमाधवस्यापिसमाश्रित्यसुमायुधः

तामेव हन्तुं कुसुमायुधोऽपि साध्वीं सुपुण्यां कृकलस्यभार्याम् ।
समुत्सुकस्तिष्ठति बाणलक्ष्यं तस्याश्चकायं नयनैर्विलोक्य ॥ ३८ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रसुकलयोःसंवादे सुकलयेन्द्रस्य निराशीकरणम् ।

विष्णुरुवाच ।

क्रीडाप्रयुक्ता सुवनंप्रविष्टा वैश्यस्यभार्या सुकलासुतन्वी ।
ददर्श सर्वं गहनं मनोरमं तामेव पप्रच्छ सखीं सती सा ॥ १ ॥
अरण्यमेतत्प्रवरंसुपुण्यं दिव्यं सखे कस्यमनोभिरामम् ।
सिद्धं सुकामैःप्रवरैःसमस्तैःपप्रच्छ हर्षात्सुकलासखीं ताम् ॥ २ ॥

क्रीडोवाच

एतद्वनं दिव्यगुणैःप्रयुक्तं सिद्धस्वभावैःपरिभावनेन ।
पुष्पाकुलं कामफलोपयुक्तं विपश्य सर्वं मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥
एवं वाक्यं ततःश्रुत्वा हर्षेणमहतान्विता । समालोक्य महद्वृत्तं कामस्य च दुरात्मनः

वायुना नीयमानं तं समाघ्राति न सौरभम् । वातिवायुःस्वभावेन सौरभेणसम
तद्घ्राणेविशतेनासा यथा तथा सुलीलया । स गन्धंनैव गृह्णाति पुष्पाणां च वर
न चास्वादयते सातु सुरसान्सा महासती । स सखा कामदेवस्यरममाणो विनि
लज्जितःपराङ्मुखोभूत्वा भूपालवचनच्छदैः । फलेभ्योहि सुपक्वेभ्यःपुष्पमञ्जरिसं
लवरूपोऽपतद्भूमौ रसस्त्वेष तयाजितः । मकरन्दःसुदीनात्मा फलाद्भूमिं तत
भक्ष्यते मक्षिकाभिश्च यथामृतो रणे तथा । मक्षिका भक्ष्यमाणस्तुप्रवाहेन प्रयाति
मन्दंमन्दं प्रयात्येव तं हसन्ति च पक्षिणः । नानारुतैः प्रचलन्ति सुखमानन्द निर्भ
प्रीत्या शकुनयस्तत्र वनमध्य नगस्थितः । सुकलया जितोह्येष निम्नंपन्थानमा

प्रीत्यासमेता रतिःकामभार्या गत्वा ब्रवीत्सा सुकलां विहस्य ।
स्वस्त्यस्तु ते स्वागतमेव भद्रे रमस्व प्रीत्या नयनाभिरामम् ॥ १३॥

ते रूपमिष्टममलमिन्द्रस्यापि महात्मनः । यदेष्टं ते तदाब्रूहि समानेष्ये न संशयः॥

सूत उवाच ।

वदन्त्यौ ते स्त्रियौ दृष्ट्वा श्रुत्वोवाच सुभाषितम् ।
रतिंप्रति गृहीत्वा मे गतो भर्त्ता महामति ॥ १५ ॥

यत्र मे तिष्ठते भर्त्ता तत्राहं पतिसंयुता । तत्रकामश्च मे प्रीतिरयंकायोनिराश्र
द्वे अप्ययुक्तं समाकर्ण्य रतिप्रीतिविलज्जिते । क्रीडमाने गते ते द्वे यत्रकामो मह
ऊचतुस्तं महावीरमिन्द्रकायसमाश्रितम् । चापमाकर्षमाणं तं नेत्रलक्ष्यं महाब
दुर्जयेयं महाप्राज्ञ त्यज पौरुषमात्मनः । पतिकामा महाभागा पतिव्रता सदैव स

काम उवाच ।

अनयालोक्य ते रूपमिन्द्रस्यास्य महात्मनः । यदि देवि तदाचाहं हनिष्यामि न सं
अथ वेषधरोदेवो महारूपःसुराधिपः । स तयानुगतस्तूर्णं परया लीलया तदा ॥
सर्वभोगसमाकीर्णःसर्वाभरणशोभितः। दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः॥
तयारत्यासमायातो यत्रास्तेपतिदेवता । प्रत्युवाचमहाभागां सुकलां सत्यचारि
पूर्वं दूतीसमक्षं ते प्रीत्या च प्रहिता मया । कस्मान्नमन्यसे भद्रे भजन्तं त्वामिह

सुकलोवाच ।

रक्षायुक्तास्मि भद्रं ते भर्तुःपुत्रैर्महात्मभिः । एकाकिनीसहायैश्च नैवकस्यभयं मम ॥
शूरैश्च पुरुषाकारैःसर्वत्र परिरक्षिता । नाति प्रस्तावयेवक्तुं व्यग्राकर्मणि तस्य च ॥२६॥
यावत्प्रस्पन्दते नेत्रं तावत्कालं महामते । भवानलज्जते कस्माद्रममाणो मया सह ।
भवान्को हि समायातो निर्भयो मरणादपि ॥ २७ ॥

इन्द्र उवाच ।

त्वामेवं हि प्रपश्यामि वनमध्ये समागताम् ।
समाख्यातास्त्वया शूरा भर्तुश्च तनयाः पुनः ॥ २८ ॥
कथं पश्याम्यहं तावद्दर्शयस्व ममाग्रतः ॥ २६ ॥

सुकलोवाच ।

स निजसकलवर्गस्याधिपत्येनिवेश्य धृतिमतिगतिवुद्ध्याख्यैस्तुसन्यस्यसत्यम् ।
अचलसकलधर्मो नित्ययुक्तो महात्मा मदन सवल धर्मात्मा सदा मां जुगोप ॥ ३० ॥
मामेवं परिरक्षतेदमगुणैःशौचैस्तु धर्मःसदा
सत्यंपश्य समागतं ममपुरःशान्ति क्षमाभ्यांयुतम् ।
वोधश्चाति महावलःपृथुयशा यो मां न मुञ्चेत्कदा
वद्धाहंदृढवन्धनैःस्वगुणजःसान्निध्यमेवंगतः ॥ ३१ ॥

रक्षायुक्ताःकृत्वाःसर्वे सत्याद्या मम साम्प्रतम् । धर्मलाभादिकासर्वे दमबुद्धि पराक्रमाः
मामेवं हि प्ररक्षन्ति किं मां प्रार्थयसेवलात् । कोभवान्निर्भयोभूत्वादूत्यासार्धंसमागतः
सत्यं धर्मस्तथापुण्यं ज्ञानाद्याःप्रबलास्तथा । ममभर्तुःसहायाश्च ते मां रक्षन्ति वेश्मनि
अहं रक्षायुतामित्यं दमशान्तिपरायणा । न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः
यदिवा मन्मथोवापि समागच्छति वीर्यवान् । दंशिताहं सदासत्यं सत्यकेनैव नान्यथा
निरर्थकास्तस्यवाणा भविष्यन्ति न संशयः। त्वामेवं हि हनिष्यन्ति धर्मादयोमहाभटाः
दूरं गच्छ पलायत्वमत्रमातिष्ठ साम्प्रतम् । वार्यामाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि
भर्त्राविना निरिक्षेत ममरूपं यदा भवान् ।

यथा दारुदहेदग्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा ॥ ३९ ॥
एवं श्रुत्वा सहस्राक्षो मन्मथस्यापि संमुखम् ।
पश्य पौरुषमेतस्या युध्यस्व निजपौरुषैः ॥ ४० ॥
यथा गतास्तथा सर्वे महाशापभयातुराः । स्वं स्वंस्थानं महाराज इन्द्राद्याःप्रयुय
गतेषु तेषु सर्वेषु सुकला सा पतिव्रता । स्वगृहं पुण्यसंयुक्ता पतिध्यानेनचागता॥
स्वगृहं पुण्यसंयुक्तं सर्वतीर्थमयं तदा । सर्वयज्ञमयं राजन्सम्प्राप्ता पतिदेवता ॥ ४
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने सुकलाचरित्रे
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

तीर्थयात्रांकृत्वा गृहंप्रतिप्रयातुकामस्य कृकलस्य धर्मेणपितृबन्धदर्शनम्।

विष्णुरुवाच ।

कृकलःसर्वतीर्थानि साधयित्वा गृहंप्रति । प्रस्थितःसार्थवाहेन महानन्द समन्वितः॥
एवं चिन्तयते नित्यं संसारःसफलो मम ।
तृप्ताःस्वर्गं प्रयास्यन्ति पितरो मम नान्यथा ॥ २ ॥
तावत्प्रत्यक्षरूपेण बद्ध्वा तस्य पितामहान् ।
पुरतस्तस्य सम्ब्रूते न हि ते पुण्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥
दिव्यरूपो महाकायःकृकलं वाक्यमब्रवीत् । तव तीर्थफलं नास्ति श्रममेव वृथा
स्वयंसन्तोषमाप्नोषि न हि ते पुण्यमुत्तमम् । एवंश्रुत्वा ततो वैश्यःकृकलोदुःखपी
भवान्कःसंवदस्येवं कस्माद्बद्धाःपितामहाः । केनदोष प्रभावेण तन्मे त्वं कारणं व
कस्मात्तीर्थ फलंनास्ति मम यात्रा कथं न हि ।
सर्वमेव समाचक्ष्व यदि जानासि संस्फुटम् ॥ ७ ॥

धर्म उवाच ।

पूतां पुण्यतमां स्वीयां भार्यां त्यक्त्वा प्रयाति यः ।
तस्य पुण्यफलं सर्वं वृथा भवति नान्यथा ॥ ८ ॥

धर्माचारपरां पुण्यां साधुव्रतपरायणाम् । पतिव्रतरतां भार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम्
तामेवापि परित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति यः । वृथा तस्य कृतः सर्वो धर्मो भवतिनान्यथा
सर्वाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा । पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला ॥

एवंगुणा भवेद्भार्या यस्य पुण्या महासती ।
तस्यगेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः ॥ १२ ॥

पितरोगेहमध्यस्थाःश्रेयो वाञ्छन्ति तस्यच । गङ्गाद्याःपुण्यनद्यश्च सागरास्तत्रनान्यथा
पुण्यासती यस्यगेहे वर्तते सत्यतत्परा । तत्र यज्ञाश्च गावश्च ऋषयस्तत्र नान्यथा ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।
भार्यायोगेन तिष्ठन्ति सर्वाण्येतानि नान्यथा ॥ १५ ॥

पुण्यभार्या प्रयोगेण गार्हस्थ्यंसम्प्रजायते । गार्हस्थ्यात्परमोधर्मो द्वितीयोनास्तिभूतले
गृहस्थस्य गृहं पुण्यं सत्यपुण्यसमन्वितम् । सर्वतीर्थमयं वैश्य सर्वदेवसमन्वितम् ॥
गार्हस्थ्यं च समाश्रित्यसर्वे जीवन्ति जन्तवः । तादृशं नैवपश्यामि अन्यमाश्रममुत्तमम्

मन्त्राग्निहोत्रं देवाश्च सर्वे धर्माःसनातनाः ।
दानाचाराःप्रवर्तन्ते यस्य पुंसश्च वै गृहे ॥ १६ ॥

एवं यो भार्ययाहीनस्तस्य गेहं वनायते । यज्ञाश्चवै न सिध्यन्ति दानानि विविधानि च

भार्याहीनस्य पुंसोऽपि न सिध्यति महाव्रतम् ।
धर्मकर्माणि सर्वाणि पुण्यानि विविधानि च ॥ २१ ॥

नास्ति भार्या समंतीर्थं धर्मसाधनहेतवे । शृणुष्वत्वं गृहस्थस्य नान्योधर्मो जगत्त्रये ॥
यत्रभार्या गृहं तत्र पुरुषस्यापि नान्यथा । ग्रामे वाप्यथवारण्ये सर्वधर्मस्यसाधनम् ॥

नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमंसुखम् ।
नास्ति भार्यासमंपुण्यं तारणाय हिताय च ॥ २४ ॥

धर्मयुक्तां सतीं भार्यां त्यक्त्वा यासि नराधम ।
गृहं धर्मं परित्यज्य क्वास्ते धर्मस्य ते फलम् ॥ २५ ॥
तयाविना यदातीर्थे श्राद्धदानं कृतं त्वया । तेन दोषेण वै बद्धास्तवपूर्वपितामहाः
भवांश्चौरो ह्यमीचौरा यैस्तु भुक्तं सुलोलुपैः । त्वया दत्तस्यश्राद्धस्य अन्नमेवंतयाविना
सुपुत्रःश्रद्धयायुक्तःश्राद्धदानं ददाति यः । भार्यादत्तेन पिण्डेन तस्य पुण्यं वदाम्यहम्
यथाऽमृतस्यपानेन नृणां तृप्तिर्हि जायते । तथापितॄणां श्राद्धेन सत्यं सत्यं वदाम्यहम्
गार्हस्थ्यस्य च धर्मस्य भार्या भवति स्वामिनी ।
त्वयैषा वञ्चिता मूढ चौरकर्म कृतं वृथा ॥ ३० ॥
अमी पिता महाश्चौरा यैर्भुक्तं तु तयाविना । भार्या पचति चेदन्नं स्वहस्तेनामृतोपमम्
तदन्नमेव भुञ्जन्ति पितरो हृष्टमानसाः । तेनैव तृप्तिमायान्ति सन्तुष्टाश्च भवन्ति ते
तस्माद्भार्यां विना धर्मःपुरुषस्य न सिध्यति ।
नास्तिभार्यासमं तीर्थं पुंसां सुगतिदायकम् ॥ ३३ ॥
भार्यां विना च यो धर्मःस एव विफलो भवेत् ॥ ३४ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेसुकलाचरित्रंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः

षष्टितमोऽध्यायः

धर्मोपदेशाद् पत्नीहस्तेनान्नंविपाच्य श्राद्धकरणेतत्पितृमुक्तिवर्णनम् ।

कृकल उवाच ।

कथं मे जायते सिद्धिःकथं पितृविमोचनम् । एतन्मे विस्तरेणापि धर्मराज वदाधुना
धर्म उवाच ।
गच्छगेहंमहाभाग त्वां विनादुःखमाचरत् । सम्बोधयत्वंसुकलां स्वपत्नीं धर्मचारिणीम्
श्राद्ध दानं गृहं गत्वा तस्या हस्तेन वै कुरु ।

स्मृत्वा पुण्यानि तीर्थानि यजस्वत्व सुरोत्तमान् ॥ ३ ॥
तीर्थयात्राकृतासिद्धिस्तव चैवभविष्यति । भार्याविना तु यो लोकेधर्मंसाधितुमिच्छति
महा॥ गार्हस्थ्यं विलोप्यैव एकाकीविचरेद्वनम् ।विफलोजायतेलोके तं न मन्यन्ति देवताः
यान्ति सिद्धिं तद्वायान्ति यदास्याद्गृहिणी गृहे । एकाकी स समर्थोनधर्मार्थसाधनाय च

विष्णुरुवाच ।

एवमुक्त्वा च तंवैश्यं गतोधर्मोयथागतम् । कृकलोपि सधर्मात्मा स्वगृहंप्रति प्रस्थितः
स्वगृहं प्राप्य मेधावी दृष्ट्वा तां च पतिव्रताम् ।
सार्थवाहेन तेनापि स्वस्थानं प्राप्य बुद्धिमान् ॥ ८ ॥
या समागतं दृष्ट्वा भर्तारं धर्मकोविदम् । कृतं सुमङ्गलं पुण्यं भर्तुरागमने तदा ॥९॥
समाचष्ट स धर्मात्मा धर्मस्यापिविचेष्टितम् ।
समाकर्ण्य महाभागा भर्तुर्वाक्यं मुदावहम् ॥ १० ॥
मंवाक्यं प्रशस्याथ अनुमेने च तं तथा । अथो स कृकलो वैश्यस्तयासार्धं सुपुण्यकम्
कार श्रद्धया श्राद्धं देवता गृह संस्थितः । पितरो देवगन्धर्वा विमानैश्च समागताः ॥
ष्टुवुस्तौ महात्मानौ दम्पती मुनयस्तथा । अहंचाऽपि तथा ब्रह्मा देव्यायुक्तो महेश्वरः
र्वे देवाःसगन्धर्वा विमानैश्च समागताः । ऽहमेव ततो ब्रह्मा देव्यायुक्तो महेश्वरः ॥
सर्वेदेवाःसगन्धर्वास्तस्याःसत्येन तोषिताः ।
ऊचुश्च तौ महात्मानौ धर्मज्ञौ सत्यपण्डितौ ॥ १५ ॥
भार्ययासह भद्रंते वरं वरय सुव्रत ॥ १६ ॥

कृकल उवाच ।

स्य पुण्यप्रसङ्गेन तपसश्च सुरोत्तमाः । सभार्याय वरं दातुं भवन्तो हि समागताः ॥

इन्द्र उवाच ।

ा सती महाभागा सुकला चारुमङ्गला । अस्याःसत्येन तुष्टाःस्म दातुकामा वरं तव
ासेन तु तत्प्रोक्तं पूर्ववृत्तान्तमेव च । तस्याश्चरितं महात्म्यं श्रुत्वा भर्ता सहर्षितः
ासह सधर्मात्मा हर्षव्याकुललोचनः । ननाम देवताःसर्वा उवाच च पुनःपुनः॥२०॥

यदि तुष्टा महाभागा त्रयो देवाःसनातनाः। अन्ये च ऋषयःपुण्याःकृपां कृत्वाममो
जन्म जन्मनि देवानां भक्तिमेवं करोम्यहम्।
धर्मे सत्यरतिःस्यान्मे भवतां हि प्रसादतः ॥ २२ ॥
पश्चाद्धि वैष्णवंलोकं सभार्यश्च पितामहैः। गन्तुमिच्छाम्यहं देवा यदितुष्टा महा
देवाऊचुः।
एवमस्तु महाभाग सर्वमेव भविष्यति। सुकलेयं महापुण्या तवपत्नी यशस्विनी॥
विष्णुरुवाच।
पुष्पवृष्टिं ततश्चक्रुस्तयोरुपरि भूपते। जगुर्गीतं महापुण्यं ललितं सुस्वरं ततः ॥
गन्धर्वा गीततत्त्वज्ञा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ततोदेवाःसगन्धर्वाःस्वं स्वंस्थानं नृपोत्तम ॥ २६ ॥
वरं दत्वा प्रजग्मुस्तेस्तूयमानाःपतिव्रताम्। नारीतीर्थं समाख्यातमन्यत्किंचिद्वदा
एतत्ते सर्वमाख्यातं पुण्याख्यानमनुत्तमम्। यःशृणोति नरोराजन्सर्वपापैःप्रमुच्य
श्रद्धया शृणुते नारी सुकलाख्यानमुत्तमम्।
सौभाग्येन तु सत्येन पुत्रपौत्रैर्न मुच्यते॥ २९ ॥
मोदते धनधान्येन सहभर्त्रा सुखी भवेत्। पतिव्रता भवेत्सा च जन्मजन्ममि नान
ब्राह्मणोवेदविद्वांश्च क्षत्रियो विजयी भवेत्। धनधान्यं भवेच्चैव वैश्यगेहे नसंश
धर्मज्ञो जायतेराजन्सदाचारःसुखी भवेत्। शूद्रःसुखमवाप्नोति पुत्रपौत्रैःप्रवर्धते॥
विपुला जायते लक्ष्मीर्धनधान्यैरलङ्कृता ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्या
सुकलाचरित्रे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

पितृतीर्थवर्णनम् ।

वेन उवाच ।

भार्यातीर्थं समाख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
पितृतीर्थं समाख्याहि पुत्राणां तारणं परम् ॥ १ ॥

विष्णुरुवाच ।

रुक्षेत्रे महाक्षेत्रे कुण्डलो नामब्राह्मणः । सुकर्मानाम सत्पुत्रःकुण्डलस्य महात्मनः ॥

गुरू तस्य महावृद्धौ धर्मज्ञौ शास्त्रकोविदौ ।
द्वावेतौ तु महात्मानौ जरया परिपीडितौ ॥ ३ ॥

योःशुश्रूषणं चक्रे भक्त्या च परया ततः । धर्मज्ञो भावसंयुक्तो अहर्निशमनारतम् ॥४॥
स्माद्वेदानधीते स पितुःशास्त्राण्यनेकशः । सर्वाचारपरो दक्षो धर्मज्ञो ज्ञानवत्सलः ॥
ङ्गसंवाहनं चक्रे गुर्वोश्च स्वयमेव सः । पादप्रक्षालनं चैव स्नान भोजनकां क्रियाम् ॥
क्त्याचैव स्वभावेन तद्ध्याने तन्मयो भवेत् । मातापित्रोश्च राजेन्द्रउपचर्यां प्रकारयेत्
द्वर्तमानकाले तु बभूव नृपसत्तम । पिप्पलोनाम वै विप्रःकश्यपस्य महात्मनः ॥ ८ ॥
पस्तेपे निराहारो जितात्मा जितमत्सरः । दयादान दमोपेतःकामं क्रोधं विजित्य सः
शारण्यगतो धीमाञ्ज्ञानशान्तिपरायणः । सर्वेन्द्रियाणि संयम्य तपस्तेपे महामनाः॥
पःप्रभावतस्तस्य जन्तवो गतविग्रहाः । वसन्ति सुयुगु तत्र एकोदर गताइव ॥ ११ ॥
तपस्तस्य मुनयो दृष्ट्वा विस्मयमायथु । नेदृशं केनचित्तप्तं यथासौ तप्यते मुनिः॥
ाश्च इन्द्रप्रमुखाःपरं विस्मयमायग्रुः । अहो अस्य तपस्तीव्रं शमश्चेन्द्रियसंयमः ॥
र्विकारो निरुद्वेगःकामक्रोधविवर्जितः । शीतवातातपसहो धराधर इवस्थितः ॥१४॥

विषये विमुखो धीरो मनसोऽतीत सङ्ग्रहम् ।
न शृणोति यथाशब्दं कस्यचिद्विजसत्तमः ॥ १५ ॥

संस्थानां तादृशं गत्वा स्थित्वाएकाग्रमानसः । ब्रह्मध्यानमयोभूत्वा सानन्दमुखपङ्कज
अश्मकाष्ठमयो भूत्वा निश्चेष्टोगिरिवत्स्थितः ।
स्थाणुवद्दृश्यते चासौ सुस्थिरो धर्मवत्सलः ॥ १७ ॥
तपक्लिष्ट शरीरोऽतिश्रद्धावाननसूयकः । एवं वर्षसहस्रैकं सञ्जातं तस्य धीमतः ॥
पिपीलिकाभिर्वल्लीभिःकृतं मृद्भारसञ्चयम् । तस्योपरिमहाकायं वल्मीकं निजमन्दिरा
वल्मीकोदरमध्यस्थो जडीभूत इवस्थितः ।
स एवं पिप्पलो विप्रस्तपते सुमहत्तपः ॥ २० ॥
कृष्णसर्पैस्तु सर्वत्र वेष्टितो द्विजसत्तमः । तमुग्रतेजसं विप्रं प्रदशन्ति विषोल्वणः
सम्प्राप्य गात्रमर्माणि विषं तस्य न भेदयेत् ।
तेजसा तस्य विप्रस्य नागाःशान्तिमथागमन् ॥ २२ ॥
तस्य कायात्समुद्भूता अर्चिषो दीप्ततेजसः ।
नानारूपाःसुवहुशो दृश्यन्ते च पृथक्पृथक् ॥ २३ ॥
यथावह्नेःखरतरास्तथाविधा नरोत्तम । यथामेघोदरे सूर्यःप्रविष्टो भाति रश्मिभिः ॥
वल्मीकस्थस्तथा विप्रःपिप्पलो भातितेजसा । सर्पा दशन्ति विप्रं तंसक्रोधादश
न भिन्दन्ति च दंष्ट्राग्राच्चर्मभित्वा नृपोत्तम ।
एवं वर्षसहस्रैकं तप आचरतस्ततः ॥ २६ ॥
गतं तु राजराजेन्द्र मुनेस्तस्य महात्मनः । त्रिकालं साध्यमानस्य शीतवर्षातपा
गतःकालो महाराज पिप्पलस्य महात्मनः ।
तद्वच्चवायुभक्षं तु कृतं तनमहात्मना ॥ २८ ॥
त्रीणिवर्षसहस्राणि गतानितस्य तप्यतः । तस्य मूर्ध्नि ततोदेवैःपुष्पवृष्टिःकृता
ब्रह्मज्ञोऽसि महाभाग धर्मज्ञोऽसि न संशयः । सर्वज्ञानमयोऽसित्वंसञ्जातःस्वेन
यं यं त्वं वाञ्छसे कामं तं तं प्राप्स्यसि नान्यथा ।
सर्वकामप्रसिद्धस्त्वं स्वतएव भविष्यसि ॥ ३१ ॥
समाकर्ण्य महद्वाक्यं पिप्पलोऽपि महामनाः । प्रणम्यदेवताःसर्वा भक्त्यानमितक

र्वेणमहताविष्टो वचनं प्रत्युवाच सः। इदंविश्व जगत्सर्वं ममवश्यं यथाभवेत्॥
था कुरुध्वं देवेन्द्रा विद्याधरोभवाम्यहम्। एवमुक्त्वा स मेधावी विरराम नृपोत्तम
वमस्त्विवति ते प्रोचुर्द्विजश्रेष्ठं सुरास्तदा। दत्त्वावरं महाभाग जग्मुस्तस्मै महात्मने॥
॥ तेषु तेषु देवेषु पिप्पलो द्विजसत्तमः। ब्रह्मण्यं साधयेन्नित्यं विश्ववश्यं प्रचिन्तयेत्
न्द्रिप्रभृति राजेन्द्र पिप्पलो द्विजसत्तमः। विद्याधर पदंलब्ध्वा कामगामी महीयते

एवं स पिप्पलोविप्रो विद्याधरपदंगतः।
सञ्ज्ञातो देवलोकेशःसर्वशास्त्रविशारदः॥ ३८॥

कदा तु महातेजाःपिप्पलःपर्यचिन्तयत्। विश्वंवश्यं भवेत्सर्वं ममदत्तो वरोत्तमः॥
इत्थं प्रत्ययं कर्तुमुद्यतो द्विजपुङ्गवः। यं यं चिन्तयते कर्तुं तं तं हि वशमानयेत्॥

एवं स प्रत्ययेजाते मनसा पर्यकल्पयत्।
द्वितीयोनास्ति वै लोके मत्समः पुरुषोत्तमः॥ ४१॥

हि:कल्पमानस्य पिप्पलस्य महात्मनः। ज्ञात्वा मानसिकं भावं सारसस्तमुवाचह
रस्तीरगतो राजन्सुस्वरं व्यञ्जनान्वितम्। स्वनंसौष्ठवसंयुक्तमुक्तवान्पिप्पलं प्रति॥

कस्मादुद्वहसे गर्वमेवं त्वं परमात्मकम्।
सर्ववश्यात्मिकींसिद्धिं नाहंमन्ये तवैव हि॥ ४४॥

यावश्यमिदं कर्म अर्वाचीनं प्रशस्यते। पराचीनं न जानासि पिप्पलत्वं हि मूढधीः

वर्षाणां तु सहस्राणि यावत्त्रीणि त्वया तपः।
समाचीर्णं ततो गर्वं कुरुषे किं मुधाद्विज॥ ४६॥
कुण्डलस्य सुतो धीरःसुकर्मानाम यःसुधीः।
वश्यावश्यं जगत्सर्वं तस्यासीच्छृणुसाम्प्रतम्॥ ४७॥

र्वाचीनं पराचीनं स वै जानाति बुद्धिमान्। लोकेनास्तिमहाज्ञानीतत्समःशृणुपिप्पल
कुण्डलस्य पुत्रेण सदृशस्त्वं सुकर्मणा। न दत्तं तेन वै दानं न ज्ञानं परिचिन्तितम्

हुतयज्ञादिकं कर्म न कृतं तेन वै कदा।
न गतस्तीर्थयात्रायां न च वह्नेरुपासनम्॥ ५०॥

स कदा कृतवान्विप्र धर्मसेवार्थमुत्तमम्। स्वच्छन्दचारी ज्ञानात्मा पितृमातृसुहृ
वेदाध्ययनसम्पन्नःसर्वशास्त्रार्थकोविदः। यादृशं तस्य वै ज्ञानं बालस्यापि सुत
तादृशंनास्ति तेज्ञानं वृथात्वं गर्वमुद्वहेः ॥ ५३ ॥

पिप्पल उवाच।

काभवान्पक्षिरूपेण मामेवं परिकुत्सयेत्। कस्मान्निन्दति मे ज्ञानं पराचीनंतु कीं
तन्मेविस्तरतोब्रूहि त्वयिज्ञानं कथं भवेत्। अर्वाचीनगतिं सर्वां पराचीनस्य सा
वदत्वमण्डजश्रेष्ठ ज्ञानपूर्वंतु विस्तरम्। किंवा ब्रह्मा च विष्णुश्च किंवारुद्रो भवि

सारस उवाच।

नास्ति ते तपसो भावःफलंनास्ति च तस्य तु।त्वया न परितप्तस्य तपसःसाम
कुण्डलस्यापि पुत्रस्य बालस्यापि यथागुणः।
तथा तेनास्ति वैज्ञानं परिज्ञातं न तत्पदम् ॥ ५८ ॥
इतोगत्वापि पृच्छत्वं ममरूपं द्विजोत्तम। स वदिष्यति धर्मात्मा सर्वज्ञानंतवै

विष्णुरुवाच।

एवमाकर्ण्यतत्सर्वं सारसेन प्रभाषितम्। निर्जगाम स वेगेन दशारण्यं महाश्र
इति श्रीपाद्म पुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेएकषष्टितमोऽध्यायः।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

सुकर्मपिप्पलसंवादवर्णनम्।

विष्णुरुवाच।

कुण्डलस्याश्रमं गत्वा सत्यधर्मसमाकुलम्। सुकर्माणं ततोदृष्ट्वापितृमातृप
शुश्रूषन्तं महात्मानं गुरुसत्यपराक्रमम्। महारूपं महातेजं महाज्ञान समा
मातापित्रोःपदान्तेतमुपविष्टं ददर्श सः। महाभक्त्यान्वितं शान्तं सर्वज्ञान महा

कुण्डलस्यापि पुत्रेण सुकर्मणा महात्मना ।
आगतं पिप्पलं दृष्ट्वा द्वारदेशे महामतिम् ॥ ४ ॥
आसनात्तूर्णमुत्थाय अभ्युत्थानं कृतं पुनः । आगच्छत्वं महाभाग विद्याधरमहामते ॥
आसनं पाद्यमर्घं च ददौ तस्मै महामतिः । निर्विघ्नोऽसिमहाप्राज्ञ कुशलेन प्रवर्त्तसे ॥
निरामयं च पप्रच्छ पिप्पलं तं समागतम् । यस्मादागमनं तेऽद्य तत्सर्वं प्रवदाम्यहम् ॥
वर्षाणां च सहस्राणि त्रीणि यावत्त्वया तपः ।
तप्तमेव महाभाग सुरेभ्यःप्राप्तवान्वरम् ॥ ८ ॥
श्यत्वं च त्वयाप्राप्तं कामचारस्तथैव च । तेनमत्तो न जानासि गर्वमुद्वहसेवृथा ॥
ष्ट्वा ते चेष्टितं सर्वं सारसेन महात्मना । ममाभिधानं कथितं ममज्ञानमनुत्तमम् ॥

पिप्पल उवाच ।

ोऽसौमांसारसोविप्र सरित्तीरे प्रयुक्तवान् । सर्वंज्ञानं वदेन्मांहि स तु कःप्रभुरीश्वरः

सुकर्मोवाच ।

वन्तमुक्तवान्यो वै सरित्तीरे तु सारसाः। ब्रह्माणं त्वं महाज्ञानं तं विद्धि परमेश्वरम् ॥
न्यत्किं पृच्छसे ब्रूहि तमेवं प्रवदाम्यहम् । एवमुक्तःसधर्मात्मा सुकर्मा नृपनन्दन ॥

पिप्पल उवाच ।

यिवश्यंजगत्सर्वमिति शुश्रुम भूतले । तन्मे त्वं कौतुकं विप्र दर्शयस्व प्रयत्नतः ॥
श्यकौतुकमेवाद्य त्वं वश्यावश्यकारणम् । तमुवाच सधर्मात्मासु कर्मा पिप्पलंप्रति
थ सस्मार वै देवान्सुकर्मा प्रत्ययाय वै । इन्द्राद्यालोकपालाश्च देवाश्चाग्निपुरोगमाः
समागताःसमाहूता नानाविद्याधरास्तथा ।
सुकर्माणं ततःप्रोचुर्देवाश्चाग्निपुरोगमाः ॥ १७ ॥
स्मात्स्मृतास्त्वया विप्र ततोऽर्थकारणं वद ॥ १८ ॥

सुकर्मोवाच ।

यमेष सुसम्प्राप्तो विद्याधरोहि पिप्पलः । मामेवं भाषते विप्र वश्यावश्यत्वकारणम्
ययार्थं समाहूता अस्यैव च महात्मनः । स्वं स्वंस्थानंप्रगच्छध्वमित्युवाचसुरान्प्रति

तमूचुस्ते ततोदेवाःसुकर्माणं महामतिम्। अस्माकं दर्शनं विप्र नमोघं जायते
वरंवरय भद्रं ते मनसायद्धि रोचते। तत्तेदद्मो न संदेहस्त्वेवमूचुःसुरोत्तमाः॥
भक्त्या प्रणम्य तान्देवान्ययाचे स द्विजोत्तमः।
अचलां दत्तदेवेन्द्राःसुभक्तिभावसंयुताम्॥ २३॥
मातापित्रोश्च मे नित्यं तद्वैवरमनुत्तमम्। पिता मे वैष्णवं लोकं प्रयात्वेतद्वरोत्त
तद्वन्माता च देवेशा वरमन्यं न याचये॥ २४॥

देवाऊचुः।

पितृभक्तोऽसि विप्रेन्द्रा भक्त्या तव वयं द्विज।
सुकर्मञ्छ्रूयतां वाक्यं प्रीत्यायुक्ताःसदैव ते॥ २५॥
एवमुक्त्वा गतादेवाःस्वर्लोकं नृपनन्दन। सर्वमैश्वर्यमेतेन तस्याग्रे परिदर्शितम्॥
दृष्टं तु पिप्पलेनापिकौतुकं च महाद्भुतम्। तमुवाच सधर्मात्मा पिप्पलंकुण्डला
अर्वाचीनं त्विदंरूपं पराचीनं च कीदृशम्। प्रभावमुभयोश्चैव वदस्व वदतां

सुकर्मोवाच।

पराचीनस्यरूपस्य लिङ्गमेव वदामि ते।
येन लोकाःप्रमोदन्ते इन्द्राद्याःसचराचरा॥ २६॥
अयमेव जगन्नाथःसर्वगो व्यापकःप्रभु। अस्यरूपं न दृष्टं हि केनाप्येव हि योगि
श्रुतिरेव वदत्येवं तंवक्तुं शङ्कितेवसा। अपाणिपादनासश्च अकर्णौ मुखवर्जितः
सर्वं पश्यति वै कर्म कृतं त्रैलोक्यवासिनाम्। तेषामुक्तमकर्णश्च स शृणोतिसुसा
गतिहीनो व्रजेत्सोऽपि स हि सर्वत्र दृश्यते।
पाणिहीनोऽपि गृह्णाति पादहीनःप्रधावति॥ ३३॥
सर्वत्र दृश्यते विप्र व्यापकःपादवर्जितः। यं न पश्यन्ति देवेन्द्रा मुनयस्तत्त्वदर्शि
स च पश्यति तान्सर्वान्सत्यासत्यपदेस्थितान्।
व्यापकं विमलं सिद्धं सिद्धिदं सर्वनायकम्॥ ३५॥
यं जानाति महायोगी व्यासो धर्मार्थकोविदः। तेजोमूर्तिःस चाकाशमेकवर्णमनन्त

तद्देतन्निर्मलंरूपं श्रुतिराख्याति निश्चितम् । व्यासश्चैव हि जानाति मार्कण्डेयश्चतत्पदम्
अर्वाचीनं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः । यदा संहृत्य भूतात्मा स्वयमेकःप्रगच्छति
अप्सुशय्यांसमास्थाय शेषभोगासनस्थितः । तमाश्रित्यस्वपित्वेको बहुकालंजनार्दनः

जलान्धकार सन्तप्तो मार्कण्डेयो महामुनिः ।
स्थानमिच्छन्सयोगात्मा निर्विण्णो भ्रमणेन सः ॥ ४० ॥

भ्रममाणःसदद्दृशे शेषपर्यङ्कशायिनम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ४१॥
दिव्यमाल्यांम्बरधरं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । योगनिद्रां गतं कान्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥
एकानारी महाभागा कृष्णाञ्जनचयोपमा । दंष्ट्राकरालवदना भीमरूपा द्विजोत्तम ॥

तयोक्तोऽसौ मुनिश्रेष्ठो माभैरिति महामुनिः ।
पद्मपत्रं सुविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम् ॥ ४४ ॥

तस्मिन्पत्रे महादेव्या मार्कण्डेयो निवेशितः। केशवेसतिसुप्तेऽपि नास्त्यत्र च भयं तव

तामुवाच स योगीन्द्रःका त्वं भवसि भामिनि ।
अस्मिन्विनिर्जितेचैका भवती परिवृंहिता ॥ ४६ ॥

पृष्टैवं मुनिना देवी सादरं प्राह भूसुर । नागभोगाङ्कपर्यङ्के स यःस्वपिति केशवः ॥४७॥

अस्याहं वैष्णवी शक्तिःकालरात्रिरिहोच्यते ।
मामेवं विद्धि विप्रेन्द्र सर्वमायासमन्वितम् ॥ ४८ ॥

महामाया पुराणेषु जगन्मोहायकथ्यते । इत्युक्त्वा सा गता देवी अन्तर्धानं हि पिप्पल
देव्यामनुगतायां तु मार्कण्डेयस्य पश्यतः । तस्यनाभ्यां समुत्पन्नं पङ्कजं हाटकप्रभम्
तस्याज्जज्ञे महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः । तस्माद्विजज्ञिरे लोकासर्वे स्थावरजङ्गमाः

इन्द्राद्यालोकपालाश्च देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।
अर्वाचीनं स्वरूपं तु दर्शितं हि मया नृप ॥ ५२ ॥

र्वाचीन स्वरूपोऽयं पराचीनो निराश्रयः । यदास दर्शयेत्कायं कायरूपा भवन्ति ते ॥

ब्रह्माद्याःसर्वलोकाश्च अर्वाचीना हि पिप्पल ।
अर्वाचीना अमीलोका ये भवन्ति जगत्त्रये ॥ ५४ ॥

पराचीनःसंभूतात्मा यं सुपश्यन्ति योगिनः । मोक्षरूपं परंस्थानं परब्रह्मस्वरूपक
अव्यक्तमक्षरं हंसं शुद्धं सिद्धिसमन्वितम् । पराचीनस्य यद्रूपं विद्याधरंतवाग्र
सर्वमेव मयाख्यातमन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥ ५७ ॥

पिप्पल उवाच ।

कस्मादेतन्महाज्ञानमुद्‌भूतं तव सुव्रत । अर्वाचीनगतिं विद्वान्पराचीनगतिं तथा ॥
त्रैलोक्यस्य परंज्ञानं त्वय्येवं परिवर्त्तते । तपसोनैव पश्यामि परांनिष्ठां हि सुव्र
यजनं याजनं तीर्थं तपो वा कृतवानसि । तत्प्रभावं वदस्वैवं केनज्ञानं तवाखिल

सुकर्मोवाच ।

तप एव न जानामि न कृतं कायशोषणम् ।
यजनं याजनं वापि न जाने तीर्थसाधनम् ॥ ६१ ॥

न मया साधितं ध्यानं पुण्यकालं सुकर्मजम् । स्फुटमेकं प्रजानामि पितृमातृ प्रपूज
उभयोरपि हस्तेन मातापित्रोस्तु नित्यशः । पादप्रक्षालनं पुण्यं स्वयमेव करोम्यह
अङ्गसंवाहनं स्नानं भोजनादिकमेव च । त्रिकाले ध्यानसंलीनःसाधयामि दिनेदि
पादोदकं तयोश्चैव मातापित्रोर्दिनेदिने । भक्तिभावेन विन्दामि पूजयामि सुभाव

गुरूमे जीवमानौ तु यावत्कालं हि पिप्पल ।
तावत्कालं हि मे लाभो ह्यतुलश्च प्रजायते ॥ ६६ ॥

त्रिकालं पूजयाम्येतौ शुद्धभावेनचेतसा । स्वच्छन्दलीलासञ्चारी वर्ताम्येव हि पि

किं मे चान्येन तपसा किं मे कायस्य शोषणैः ।
किं मे सुतीर्थयात्राभिरन्यैःपुण्यैश्च साम्प्रतम् ॥ ६८ ॥

मखानामेव सर्वेषां यत्फलं प्राप्यते द्विज । तत्फलं तु मयोद्दृष्टं पितुःशुश्रूषणाद
मातुःशुश्रूषणं तद्वत्पुत्राणां गतिदायकम् । सर्वकर्मसु सर्वस्वं सारभूतं जगत्त्रये ॥
पुत्रस्य जायते लोको मातुःशुश्रूषणाद्दपि । पितुःशुश्रूषणे तद्वन्महत्पुण्यं प्रजायते ॥
तत्रगङ्गा गयातीर्थं तत्र पुष्करमेव च । यत्र मातापिता तिष्ठेत्पुत्रस्यापि न संशय

अन्यानि तत्रतीर्थानि पुण्यानि विविधानि च ।

भवन्त्येतानि पुत्रस्य पितुःशुश्रूषणादपि ॥ ७३ ॥
पितुःशुश्रूषणात्तस्य दानस्य तपसःफलम्। सत्पुत्रस्य भवेद्विप्र अन्यधर्मःश्रमायते ॥
पितुःशुश्रूषणात्पुण्यं पुत्रःप्राप्नोत्यनुत्तमम्। स्वकर्मणस्तु सर्वस्वमिहैव च परत्र च ॥
जीवमानौ गुरूत्वेतौ स्वमातापितरौ तथा। शुश्रूषते सुतोभूत्वा तस्य पुण्य फलंश्रृणु
देवास्तस्यापि तुष्यन्ति ऋषयःपुण्यवत्सलाः।
त्रयोलोकास्तु तुष्यन्ति पितुःशुश्रूषणादिह ॥ ७७ ॥
मातापित्रोस्तुयःपादौ नित्यमेव हि क्षालयेत्। तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते
पुण्यैर्मिष्टान्नपानैर्यःपितरंमातरं तथा। भक्त्या भोजयते नित्यं तस्य पुण्यंवदाम्यहम्
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं पुत्रस्य जायते।
ताम्बूलैश्छादनैश्चैव पानैश्च शनकैस्तथा ॥ ८० ॥
भक्त्याचान्नेन पुण्येन गुरूयेनाभिपूजितौ।
सर्वज्ञानी भवेत्सोऽपि यशःकीर्तिमवाप्नुयात् ॥ ८१ ॥
मातरंपितरं दृष्ट्वा हर्षात्सम्भाषयेत्सुतः। निधयस्तस्य सन्तुष्टास्तस्यगेहे वसन्ति ते ॥
गावःसोहृद्यमायान्ति पुत्रस्य सुखदाः सदा ॥ ८३ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातृपितृतीर्थमाहात्म्ये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

मातृपितृतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्।

सुकर्मोवाच।

तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयोः।
पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा ॥ १ ॥

सर्वतीर्थसमंस्नानं पुत्रस्यापि सुजायते। पतितं विकलं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु ॥
व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्।
उपाचरति यःपुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायतेनात्र संशयः।
प्रयाति वैष्णवंलोकं यदाप्राप्यं हि योगिभिः ॥ ४ ॥
पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धावेतौ गुरूसुतः। महागदेन सम्प्राप्तौ परित्यजति पापधी
पुत्रो नरकमाप्नोति दारुणंकृमिङ्कुसलम्। वृद्धाभ्यां च समाहूतो गुरुभ्यामिहसाम्प्र
न प्रयातिसुतो भूत्वा तस्यपापं बदाम्यहम्।
विष्ठाशीजायते मूढो ग्रामघोणी न संशयः ॥ ७ ॥
यावज्जन्मसहस्रं तु पुनःश्वा चाभिजायते।
पुत्रगेहेस्थितौ वृद्धौ माता च जनकस्तथा ॥ ८ ॥
अभोजयित्वा तावन्नं स्वयमत्ति च यःसुतः। मूत्रं विष्ठां स भुञ्जीत यावज्जन्मसहस्रक
कृष्णसर्पो भवेत्पापी यावज्जन्मशतद्वयम्। मातरंपितरं वृद्धमवज्ञा य प्रवर्त्तते ॥ १
ग्राहोऽपि जायते दुष्टो जन्मकोटिशतैरपि। तावेतौ कुत्सते पुत्रःकटुकैर्वचनैरपि ॥ १
स च पापी भवेद्व्याघ्रःपश्चाद्दृक्षःप्रजायते।
मातरंपितरं पुत्रो यो न मन्येत दुष्टधीः ॥ १२ ॥
कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युग सहस्रकम्। नास्ति मातृसमंतीर्थं पुत्राणां च पितुःसम
तारणाय हि तावैव इहैव च परत्र च। तस्मादहं महाप्राज्ञ पितृदेवं प्रपूजये ॥ १४
मातृदेवं सर्वदेव योगयोगी तथाभवम्। मातृपितृ प्रसादेन सञ्जातं ज्ञानमुत्तमम् ॥ १
त्रिलोकीयं समस्ता तु संयाता ममवश्यताम्।
अर्वाचीन गतिं जानेदेवस्यास्य महात्मनः ॥ १६ ॥
वासुदेवस्य तस्यैव पराचीना महामते। सर्वज्ञानं समुद्भूतं पितृमातृ प्रसादतः ॥ १
को न पूजयते,विद्वान्पितरं मातरं तथा। साङ्गोपाङ्गैरधीतैस्तैःश्रुतिशास्त्रसमन्वितैः
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः।

माता न पूजिता येन तस्य वेदानिरर्थकाः ॥ १९ ॥
यज्ञैश्च तपसा विप्र किं दानैःकिं चपूजनैः । प्रयाति तस्यवैफल्यं न माता येनपूजिता ॥
न पिता पूजितो येन जीवमानो गृहेस्थितः ।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथातीर्थं नरेष्विह ॥ २१ ॥
एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्मफलं शुभम् । एष पुत्रस्य वै यज्ञो दानमेव न संशयः॥
पितरं पूजयेन्नित्यं भक्त्याभावेनतत्परः । तस्यजातं समस्तं तद्यदुक्तं पूर्वमेव हि ॥२३॥
दानस्यापि फलंतेन तीर्थस्यापिन संशयः। यज्ञस्यापि फलंप्राप्तंमातायेनाप्युपासिता
पितायेन सुभक्त्या च नित्यमेवाप्युपासितः ।
तस्य सर्वास्सुसंसिद्धा यज्ञाद्याःपुण्यदाःक्रियाः ॥ २५ ॥
एतदर्थं समाज्ञातं धर्मशास्त्रं श्रुतं मया । पितृभक्तिपरोनित्यं भवेत्पुत्रो हि पिप्पल ॥
तुष्टे पितरि सम्प्राप्तं यदुराज्ञा पुरासुखम् । रुष्टेपितरि च प्राप्तं महत्पापं पुरा शृणु ॥
रुरुणा पौरवेणापि पित्राशप्तेन भूतले । एवं ज्ञानंमयाचाप्तं द्वावेतौयदुपासितौ ॥
एतयोश्चप्रसादेन प्राप्तं फलमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थमाहात्म्ये
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

मातृपितृतीर्थमाहात्म्ये नहुषस्य ययातेश्चचरित्रवर्णनम् ।

पिप्पल उवाच ।

पितुःप्रसादभावाद्वै यदुना सुखमुत्तमम् । कथंप्राप्तं सुभुक्तं च तन्मे विस्तरतो वद॥१॥
कस्मात्पापप्रभावं च रुरुर्भुङ्क्ते द्विजोत्तम ।
सकलं विस्तरेणापि वद मे कुण्डलात्मज ॥ २ ॥

सुकर्मोवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं पापनाशनम् । नहुषस्य सुपुण्यस्य ययातेश्च महात्मनः ।
सोमवंशात्प्रभूतो हि नहुषो मेदिनीपतिः । दानधर्माननेकांश्च चकार ह्यतुलानपि ॥४॥
मखानामश्वमेधानामियाजशतमुत्तमम् । वाजपेयशतंचापि अन्यान्यज्ञाननेकधा ॥ ५ ॥
आत्मनःपुण्यभावेन इन्द्रलोकमवाप सः । पुत्रं धर्मगुणोपेतं प्रजापालं चकार सः ॥६॥

ययातिं सत्यसम्पन्नं धर्मवीर्यं महामतिम् ।
ऐन्द्रंपदं गतोराजा तस्य पुत्रःपदे स्वके ॥ ७ ॥

ययातिःसत्यसम्पन्नःप्रजाधर्मेण पालयेत् । स्वयमेव प्रपश्येत्स प्रजाकर्माणि तान्यपि ।
याजयामास धर्मज्ञःश्रुत्वाः धर्मनुत्तमम् । यज्ञतीर्थादिकं सर्वं दानपुण्यं चकार सः ॥९॥
राज्यं चकार मेधावी सत्यधर्मेण वै तदा । यावदशीतिसहस्राणि वर्षाणां नृपनन्दन ।
तावत्कालं गतं तस्य ययातेस्तु महात्मनः । तस्य पुत्राश्च चत्वारस्तद्वीर्यबलविक्रमाः ।

तेषां नामानि वक्ष्यामि श्रृणुष्वैकाग्रमानसः ।
तस्यासीज्ज्येष्ठपुत्रस्तु रुरुर्नाम महाबलः ॥ १२ ॥

पुरुर्नाम द्वितीयोऽभूत्कुरुश्चान्यस्तृतीयकः । यदुर्नाम सधर्मात्मा चतुर्थो नृपतेःसुतः ।
एवं चत्वारःपुत्राश्च ययातेस्तु महात्मनः । तेजसापौरुषेणापि पितृतुल्य पराक्रमाः ।

एवं राज्यं कृतं तेन धर्मेणापि ययातिना ।
तस्यकीर्तिर्यशोभावस्त्रैलोक्ये प्रचुरोऽभवत् ॥१५ ॥

विष्णुरुवाच ।

एकदा तु द्विजश्रेष्ठो नारदो ब्रह्मनन्दनः । ऐन्द्रलोकं गतो राजन्द्रष्टुं चैव पुरन्दरम् ।
सहस्राक्षस्ततोऽपश्यद्धुताशन समप्रभम् । देवो विप्रं समायान्तं सर्वज्ञं ज्ञानपण्डितम् ।
पूजितं मधुपर्काद्यैर्भक्त्या नमितकन्धरः । निवेश्य चासनेपुण्ये पप्रच्छमुनिपुङ्गवम्॥१८॥

इन्द्र उवाच ।

कस्माद्रागमनं तेऽद्य किमर्थमिह चागतः ।
किं ते हि सुप्रियं विप्र करोम्यद्य महामुने ॥ १९ ॥

नारद उवाच ।

देवराज कृतं सर्वं भक्त्यायच्च प्रभाषितम् । सन्तुष्टोऽस्मि महाप्राज्ञप्रश्नोत्तरं वदाम्यहम्
महीलोकात्सुसम्प्राप्तःसाम्प्रतं तव मन्दिम् ।
त्वामन्वेष्टुं समायातो दृष्ट्वा नाहुषमेव च ।

इन्द्र उवाच ।

सत्यधर्मेण को राजा प्रजाःपालयते सदा । सर्वधर्मसमायुक्तःश्रुतवाञ्ज्ञानवान्गुणी ॥
पृथिव्यामस्ति को राजा वेदज्ञो ब्राह्मणप्रियः ।
ब्रह्मण्यो वेदविच्छूरो यज्वा दाता सुभक्तिमान् ॥ २३ ॥

नारद उवाच ।

एभिर्गुणैस्तुसंयुक्तो नहुषस्यात्मजोबली । यस्य सत्येन वीर्येण सर्वेलोकाःप्रतिष्ठिताः
भवादृशो हि भूलोके ययातिर्नहुषात्मजः । भवान्स्वर्गेसचैवास्ति भूतले भूतिवर्धनः ॥
पितुःश्रेष्ठो महाराज ह्यश्वमेधशतं तथा । वाजपेयशतं चक्रे ययातिःपृथिवीपतिः ॥
दत्तान्यनेकरूपाणि दानानि तेन भक्तितः ।
गवां लक्षसहस्राणि गवां कोटिशतानि च ॥ २७ ॥
कोटिहोमांश्चकाराथ लक्षहोमांस्तथैव च । भूमिदानानि दानानिब्राह्मणेभ्योऽददाच्च यः
सर्वंयेन स्वरूपं हि धर्मस्य परिपालितम् । एवं गुणैःसमायुक्तो ययातिर्नहुषात्मजः ॥
वर्षाणां तु सहस्राणि अशीतिर्नृपसत्तमः । राज्यं चकार सत्येन यथादिवि भवानिह

सुकर्मोवाच ।

एवमाकर्ण्य देवेन्द्रो नारदात्समुनीश्वरात् ।
समालोच्य स मेधावी सम्भीतो धर्मपालनात् ॥ ३१ ॥
शतयज्ञ प्रभावेन नहुषो हि पुरा मम । ऐन्द्रं पदं गतो वीरो देवराजोऽभवत्पुरा ॥३२ ॥
शचीबुद्धि प्रभावेन पदभ्रष्टो व्यजायत । तादृशोऽयं महाराजःपितुस्तुल्यपराक्रमः ॥
प्राप्स्यते नात्रसन्देहःपदमैन्द्रं न संशयः । येनकेनाप्युपायेन तं भूपं दिवमानये ॥ ३४ ॥
इत्येवं चिन्तयामास तस्माद्भीतःसुरेश्वरः । भूपालस्य नृपश्रेष्ठ ययातेःसुमहद्भयात् ॥

तमानेतुं ततो दूतं प्रेषयामास देवराट्। नहुषस्य विमानं तु सर्वकामसमन्वितम्।

सारथिं मातलिं नाम विमानेन समन्वितम्।

गतो हि मातलिस्तत्र यत्रास्ते नहुषात्मजः ॥ ३७ ॥

प्रहितःसुरराजेन समानेतुं महामतिम्। सभायां वर्त्तमानस्तु यथाइन्द्रःप्रशोभते ॥३८॥

यथा ययाति धर्मात्मा स्वसभायां विराजते। तमुवाच महात्मानं राजानं सत्यभूषणम्।

सारथिर्देवराजस्य शृणु राजन्वचो मम। प्रहितो देवराजेन सकाशं तव साम्प्रतम्।

यद्ब्रूते देवराजस्तु तत्सर्वं सुमनाःकुरु। आगन्तव्यं त्वया देव ऐन्द्रं लोकं हि नान्यथा

पुत्रे राज्यं विसृज्यैव कृत्वा चान्त्येष्टिमुत्तमाम्। इलोराजा महातेजा वसते नहुषात्मज

पुरूरवा महावीर्यो विप्रचित्तिर्महामनाः। शिविर्वसति तत्रैव मनुरिक्ष्वाकु भूपतिः।

सगरोनाम मेधावी नहुषश्च पिता तव। ऋतवीर्यःकृतज्ञश्च शन्तनुश्च महामनाः ॥ ४४ ॥

भरतोयुवनाश्वश्च कार्तवीर्यो नरेश्वरः। यज्ञानाहृत्य बहुधा मोदन्ते दिवि भूभृतः ॥४५॥

अन्येचैव तु राजानो यज्ञकर्मसुतत्पराः। सर्वे ते दिवि चेन्द्रेण मोदन्ते स्वेनकर्मणा

त्वं पुनःसर्वधर्मज्ञःसर्वधर्मषु संस्थितः। शक्रेण सहमोदस्व स्वर्गलोके महीपते ॥ ४७ ॥

ययातिरुवाच।

किं मया तत्कृतं कर्म येन मय्यर्थिता तव।

इन्द्रस्य देवराजस्य तत्सर्वं मे वदस्व च ॥ ४८ ॥

मातलिरुवाच।

यदशीतिसहस्राणि वर्षाणां हि त्वया नृप। दानपुण्यादिककर्म यज्ञैस्तु परिसाधितम्

दिवंगच्छ महाराज कर्मणास्वैन भूपते। सखित्वं देवराजेन कुरु गच्छ सुरालयम्।

पञ्चात्मकंशरीरं च भूमौत्यज महामते।

दिव्यरूपं समास्थाय भुङ्क्ष्व भोगान्मनोनुगान् ॥ ५१ ॥

यथा यथा कृता भूमौ यज्ञादानं तपश्च ते। तथा तथा स्वर्गभोगाःप्रार्थयन्ते नरेश्वर

ययातिरुवाच।

येन कायेन सिध्येत सुकृतं दुष्कृतंभुवि। मातलेतत्कथं त्यक्त्वा गच्छेल्लोकमुपार्जितम्

मातलिरुवाच ।

यत्रैवोपार्जितं कायं पञ्चात्मकमिदं नृप । तत्तत्रैव परित्यज्य दिव्येनैव व्रजन्ति तम् ॥
इतरे मानवाःसर्वे पापपुण्यप्रसाधकाः । तेऽपि कायं परित्यज्य अधऊर्ध्वं व्रजन्ति वै

ययातिरुवाच ।

पञ्चात्मकेन कायेन सुकृतं दुष्कृतं नराः । उत्पाद्यैव प्रयान्त्येव अधऊर्ध्वं तु मातले ॥
को विशेषो हि धर्मज्ञ भूमौ कायं परित्यजेत् । पापपुण्यप्रभावाद्वै कायस्य पतनंभवेत्
दृष्टान्तो दृश्यते सूत प्रत्यक्षं मर्त्यमण्डले । विशेषंनैव पश्यामि पापपुण्यस्य चाधिकम्
सत्यधर्मादिकं कर्म येनकायेन मानवः । समर्जयति वै मर्त्यस्तं कस्माद्विप्रसर्जयेत् ॥
आत्माकायश्चद्वावेतौ मित्ररूपावुभावपि । कायंमित्रं परित्यज्य आत्मायातिसुनिश्चितः

मातलिरुवाच ।

सत्यमुक्तं त्वयाराजन्कायं त्यक्त्वा प्रयाति सः ॥
सम्वन्धोनास्ति तेनापि समंकायेन चात्मनः ॥ ६१ ॥

यस्मात्पञ्चत्वरूपोऽयंसन्धिजर्जरितःसदा । जरयापीड्यामानस्तुव्याधिभिर्दूषितःसदा
वरादोषैःप्रभग्नोऽसौ अत्रस्थातुं सनेच्छति ।
आकुल व्याकुलो भूत्वा जीवस्त्यक्त्वा प्रयाति सः ॥ ६३ ॥

सत्येन धर्मपुण्यैश्च दानैर्नियमसंयमैः । अश्वमेधादिभिर्यज्ञैस्तीर्थैःसंयमनैस्तथा ॥६४॥
सुपुण्यैःसुकृतैश्चान्यैर्जरानैव प्रधार्यते । पातकैश्च महाराज द्रवते कायमेव सा ॥ ६५ ॥

ययातिरुवाच ।

कस्माज्जरा समुत्पन्ना कस्मात्कायं प्रपीडयेत् । मम विस्तरतस्त्वं च वक्तुमर्हसिसत्तम

मातलिरुवाच ।

हन्त ते वर्णयिष्यामि जरायाःपरिकारणम् । यस्माच्चेयंसमुद्भूता कायमध्ये नृपोत्तम
पञ्चभूतात्मकःकायो विषयैःपञ्चभिःश्रितः । यदात्मा त्यजते राजन्सकायःपरिधक्ष्यते
वह्निना दीप्यमानस्तु संरसो ज्वलते नृप । तस्माद्विजायते धूपो धूमान्मेघाश्च जज्ञिरे
मेघादापःप्रवर्तन्ते अद्भ्यःपृथ्वी प्रकल्पते । जलमायाति साध्वी सा यथानारीरजस्वला

तस्मात्प्रजायते गन्धो गन्धाद्रसो नृपोत्तम। रसात्प्रभवतेचान्नमन्नाच्छुक्रं न संश
शुक्राद्विजायते कायःकुरूपःकाय एव च। यथा पृथ्वी सृजेद्गन्धान्सैश्चरति भूतले
तथाकायश्चरैन्नित्यं रसाधारो हि सर्वसः।
गन्धश्च जायते तस्माद्गन्धाद्रसोभवेत्पुनः॥ ७३॥
तस्माज्जज्ञे महावह्निर्दृष्टान्तं पश्य भूपते। यथाकाष्ठाद्भवेद्वह्निःपुनःकाष्ठं प्रकाशयेत्
कायमध्ये रसादग्निस्तद्वदेव प्रजायते। तत्र सञ्चरते नित्यं कायं पुष्णाति भूपते
यावद्रसस्यचाधिक्यं तावज्जीवःप्रशान्तिमान्। चरित्वा तादृशं वह्निःक्षुधारूपेणक
अन्नमिच्छत्यसौतीव्रःपयसा च समन्वितम्। प्रदानं लभतेचान्नमुदकंचापि भूपते
शोणितं चरिते वह्निस्तद्वद्वीर्यं न संशयः। यक्ष्मरोगो भवेत्तस्मात्सर्वकायप्रणाश
रसाधिक्यं भवेद्राजन्नथ वह्निःप्रशाम्यति। रसेन पीड्यमानस्तु ज्वररूपोऽभिजायते
ग्रीवा पृष्ठं कटिं पायुं सर्वास्वेव तु सन्धिषु।
आरुध्य तिष्ठतेवह्निःकाये वह्निःप्रवर्तते॥ ८०॥
तस्याऽधिक्यं चरैन्नित्यं कायं पुष्णाति सर्वतः। रसस्तु बन्धमायाति बलरूपोभवेत्
अतिरिक्तो बलेनैव वीर्यान्मर्माणि चालयेत्। तेनैव जायते कामःशल्यरूपोभवेन्नृप
सकामाग्निःसमाख्यातो बलनाशकरो नृप। मैथुनस्यप्रसङ्गेन विनाशत्वं कलेवरं
नारीं च संश्रयेत्प्राणी पीडितःकामवह्निना।
मैथुनस्यप्रसङ्गेन मूर्छितःकामकर्शितः॥ ८४॥
तेजोहीनो भवेत्कायो बलहानिश्च जायते। बलहीनो यदास्याद्वै दुर्बलो वह्निनेरितः
सवह्निःप्रचरेत्काये शोणितंशुक्रमेव च। शुक्रशोणितयोर्नाशाच्छून्यदेहोऽभिजायते
अतीवजायते वायुःप्रचण्डोदारुणाकृतिः। विवर्णो दुःखसन्तप्त शून्यबुद्धिस्ततोभवेत्
दृष्टा श्रुता तु या नारी तच्चित्तोभ्रमते सदा।
तृप्तिर्न जायते काये लोलुपे चित्तवर्त्मनि॥ ८८॥
विरूपश्च सुरूपश्च ध्यानान्मध्ये प्रजायते। बलहीनो यदाकामी मांसशोणितसंक्षय
पलितं जायते काये नाशिते कामवह्निना। तस्मात्सञ्जायते कामी वृद्धोभूत्वा दिनै

सुरते चिन्ततेनारीं यथा वार्द्धुषिकोनरः । तथा तथा भवेद्धानिस्तेजसोऽस्यनरेश्वर
तस्मात्प्रजायते कायो नाशरूपं समृच्छति । अग्निःप्रजायते भूयो जरारूपो न संशयः
प्राणिनां क्षयरूपेण ज्वरोभवति दारुणः । स्थावराजङ्गमाःसर्वे ज्वरेणपरिपीडिताः ॥
नाशमायान्ति ते सर्वे वहुपीडाप्रपीडिताः । एतत्तेसर्वमाख्यातमन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥
एवमुक्तो महाराजो मातलिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्याने मातापितृतीर्थकथने
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

शरीरदोषवर्णनम् ।

ययातिरुवाच ।

धर्मस्यरक्षकःकायो मातलेचात्मनासह । नाकमेषन प्रयाति तन्मेत्वं कारणंवद ॥१॥

मातलिरुवाच ।

पञ्चानामपिभूतानां सङ्गतिर्नास्तिभूपते । आत्मनासहवर्तन्ते सङ्गत्यानैवपञ्च ते ॥ २ ॥
सर्वेषां तत्रसङ्घातःकायग्रामे प्रवर्तते । जरयापीडिताःसर्वैःस्वं स्वं स्थानं प्रयान्ति ते ॥
यथा रसाधिकापृथ्वी महाराज प्रकल्पिता ।
रसैःक्लिन्ना ततःपृथ्वी मृदुत्वं याति भूपते ॥ ४ ॥
भिद्यते पिपीलिकाभिर्मूषिकाभिस्तथैव च । छिद्राण्येव प्रजायन्ते वल्मीकाश्चमहोदराः
तद्वत्काये प्रजायन्ते गण्डमाला विचर्चिकाः । कृमिभिर्भिद्यमानश्च कायएष नरोत्तम ॥
गुल्मास्तत्र प्रजायन्ते सद्यःपीडाकरास्तदा । एभिर्दोषैःसमायुक्तःकायोऽयं नहुषात्मज
कथं प्राणसमा योगाद्दिवंयाति नरेश्वर । काये पार्थिवभागोऽयं समानार्थं प्रतिष्ठितः
न कायःस्वर्गमायाति यथापृथ्वी तथास्थितः ।

एतत्ते सर्वमाख्यातं दोषौघैः पार्थिवस्य यः ॥ ९ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृमाहात्म्ये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

प्रथमतः शरीरोत्पत्तिपूर्वकशरीरवर्णनम् ।

ययातिरुवाच ।

पापात्पतति कायोऽयं धर्माच्चश्शृणु मातले । विशेषं न च पश्यामि पुण्यस्यापि मही
पुनः प्रजायते कायो यथाहि पतनं पुरा । कथमुत्पद्यते देहस्तन्मे विस्तरतो वद ॥

मातलिरुवाच ।

अथ नारकिणां पुंसामधर्मादेव केवलात् । क्षणमात्रेण भूतेभ्यः शरीरमुपजायते ॥
तद्वद्धर्मेण चैकेन देवानामौपपादिकम् । सद्यः प्रजायते दिव्यं शरीरं भूतसारतः ॥

कर्मणाव्यतिमिश्रेण यच्छरीरं महात्मनाम् ।
तद्रूप परिणामेन विज्ञेयं हि चतुर्विधम् ॥ ५ ॥

उद्भिज्जाः स्थावरा ज्ञेयास्तृणगुल्मादिरूपिणः । कृमीकीट पतङ्गाद्याः स्वेदजानाम दे
अण्डजाः पक्षिणः सर्वे सर्पानक्राश्च भूपते । जरायुजाश्च विज्ञेया मानुषाश्च चतुष्प

तत्र सिक्ताजलैर्भूमिरर्कस्योष्मविपाचिता ।
वायुना धम्यमाना च क्षेत्रतां तु प्रपद्यते ॥ ८ ॥

तत्रचोप्तानि बीजानि संसिक्तान्यम्भसा पुनः । उपगम्य मृदुत्वं च मूलभावं व्रजन्ति

तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिरङ्कुरात्पर्णसम्भवः ।
पर्णान्नालं ततः काण्डं काण्डाच्च प्रभवः पुनः ॥ १० ॥

प्रभवाच्च भवेत्क्षीरं क्षीरात्तण्डुल सम्भवः । तण्डुलाच्च ततः पक्वा भवन्त्योषधय

यवाद्याः शालीपर्यन्ताः श्रेष्ठास्सप्तदश स्मृताः ।

औषध्यःफलासोराढ्याशेषाःक्षुद्राःप्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥

एताल्लूनामर्दिताश्च मुनिभिःपूर्वसंस्कृताः । शूर्पोलूखल पात्राद्यैःस्थालिकोदक वह्निभिः॥
षड्विधा हि स्वभेदेन परिणामं व्रजन्ति ताः । अन्योन्य रससंयोगादनेकस्वादतांगताः
भक्ष्यं भोज्यं पेयलेह्यं चोष्यं खाद्यं च भूपते । तासां भेदाःषडङ्गाश्च मधुराद्याश्च षड्गुणः
तदन्नं पिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तं च देहिभिः । अन्तःस्थूलाशये सर्वप्राणान्स्थापयति क्रमात्

अपक्वं भुक्तमाहारं सवायुःकुरुते द्विधा ।
सम्प्रविश्यान्नमध्ये च पक्वं कृत्वा पृथग्गुणम् ॥ १७ ॥
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं च जलोपरि ।
जलस्याधःस्वयं प्राणःस्थित्वाग्निं धमते शनैः ॥ १८ ॥

वायुनाधम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णयोगेन समन्तात्पच्यते पुनः ॥
द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टंपृथग्रसः । मलैर्द्वादशभिःकिट्टं भिन्नंदेहाद्बहिर्व्रजेत् ॥
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्तोष्ठप्रजनं गुदम् । मलान्स्रवेदथस्वेदो विण्मूत्रं द्वादशस्मृतः
हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यःसमन्ततः । तासां मुखेषुतं सूक्ष्मं प्राणःस्थापयते रसम्॥
रसेन तेन ता नाडीःप्राणःपूरयते पुनः । सन्तर्पयन्ति तानाड्यःपूर्णादेहं समन्ततः ॥२३॥
तत सनाडीमध्यस्थःशारीरेणोष्मणा रसः । पच्यते पच्यमानश्च भवेत्पाकद्वयं पुनः ॥

त्वग्मांसास्थिमज्जा मेदोरुधिरं च प्रजायते ।
रक्ताल्लोमानि मांसं च केशाःस्नायुश्च मांसतः ॥ २५ ॥
स्नायोर्मज्जा तथास्थीनि निवसामज्जास्थि सम्भवा ।
मज्जाकारेण वैकल्यं शुक्रं च प्रसवात्मकम् ॥ २६ ॥

इति द्वादशचान्नस्य परिणामाःप्रकीर्तिताः । शुक्रं तस्यपरीणामःशुक्राद्देहस्य सम्भवः ॥
ऋतुकाले यदाशुक्रं निर्दोषं योनिसंस्थितम् । तदा तद्वायुसंसृष्टं स्त्रीरक्तेनैकतांव्रजेत् ॥
विसर्गकाले शुक्रस्य जीवःकारणसंयुतः । नित्यंप्रविशते योनिं कर्मभिस्वैर्नियन्त्रितः

शुक्रस्यसहरक्तस्य एकाहात्कललं भवेत् ।
पञ्चरात्रेण कलले बुद्बुदत्वं ततो भवेत् ॥ ३० ॥

मांसत्वं मासमात्रेण पञ्चधा जायतेपुनः। ग्रीवाशिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवंशस्तथो
पाणीपादौ तथापार्श्वौ कटिर्गात्रं तथैव च। मासद्वयेन पर्वाणि क्रमशःसम्भव
त्रिभिर्मासैःप्रजायन्ते शतशोऽङ्कुर सन्धयः। मासैश्चतुर्भिर्जायन्तेअङ्गुल्यादियथा

मुखं नासा च कर्णौ च मासैर्जायन्ति पञ्चभिः।
दन्तपङ्क्तिस्तथाजिह्वा जायते तु नखाः पुनः॥ ३४॥

कर्णयोश्च भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरे पुनः। पायुर्मेढ्रमुपस्थं च शिश्नश्चाप्युपजाय
सन्धयो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः। अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णं शिरःकेशसमन्वित
विभक्ता वयवस्पष्टं पुनर्मासेऽष्टमे भवेत्। पञ्चात्मकसमायुक्तःपरिपक्वःसतिष्ठ

मातुराहार वीर्येण षड्विधेनरसेन च।
नाभिसूत्रानिबद्धेन वर्द्धते स दिने दिने॥ ३८॥

ततःस्मृतिं लभेज्जीवःसम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके। सुखंदुःखं विजानातिनिद्रांस्वप्नंपुरा
मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मयादृष्टान्यनेका

अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च।
ततःश्रेयःकरिष्यामि येन गर्भे न सम्भवः॥ ४१॥

गर्भस्थश्चिन्तयत्येवमहंगर्भाद्विनिःसृतः। अध्येष्यामि परंज्ञानं संसार विनिवर्तक
अवश्यं गर्भदुःखेन महता परिपीडितः। जीवःकर्मवशादास्ते मोक्षोपायं विचिन्त्य
यथागिरिवराक्रान्तःकश्चिद्दुःखेन तिष्ठति। तथाजरायुणा देही दुःखंतिष्ठति दुःखि
पतितः सागरे यद्वद्दुःखमास्ते समाकुलः। गर्भोदकेनसिक्ताङ्गस्तथास्ते व्याकुला
लोहकुम्भे यथान्यस्तःपच्यते कश्चिदग्निना। गर्भकुम्भे तथाक्षिप्तःपच्यतेजठरा

सूचीभिरग्निवर्णाभिर्भिन्नगात्रो निरन्तरम्।
यद्दुःखं जायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत्॥ ४७॥

गर्भवासात्परंवासं कष्टंनैवास्ति कुत्रचित्। देहिनां दुःखमतुलं सुघोरमपिसङ्क
इत्येतद्गर्भदुःखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम्। चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरू

गर्भात्कोटिगुणा पीडा योनियन्त्रनिपीडनात्।

संमूर्च्छि तस्य जायेत् जायमानस्य देहिनः ॥ ५० ॥
इक्षुवत्पीड्यमानस्य पापमुद्गर पेषणात् । गर्भानिष्क्रममाणस्य प्रबलैःसूतिवायुभिः ॥
जायते सुमहद्दुःखं परित्राणं न विन्दति । यन्त्रेण पीड्यमानाःस्युर्निःसाराश्चयथेक्षवः
तथा शरीरं योनिस्थं पात्यते यन्त्र पीडनात् ।
अस्थिमद्वर्तुलाकारं स्नायुबन्धन वेष्टितम् ॥ ५३ ॥
रक्तमांस वसालिप्तं विण्मूत्रद्रव्य भाजनम् । केशलोम नखाच्छन्नं रोगायतनमुत्तमम्
वदनैक महाद्वारं गवाक्षाष्टक भूषितम् । ओष्ठद्वयकपाटं तु दन्तजिह्वागलान्वितम् ॥
नाडीस्वेद प्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम् ।
जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानलेस्थितम् ॥ ५६ ॥
कामक्रोधसमाक्रान्तं श्वसनैःश्चोपमर्दितम् । भोगतृष्णातुरं गूढं रागद्वेषवशानुगम् ॥
सवर्णिताङ्ग प्रत्यङ्गं जरायुपरिवेष्टितम् । सङ्कटेनाविविक्तेन योनिमार्गेणनिर्गतम् ॥
विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्गं षट्कौशिक समुद्भवम् । अस्थिपञ्जरसङ्घातं यज्ञमस्मिन्कलेवरे ॥
शतत्रयं षष्ट्यधिकं पञ्चपेशी शतानि च ।
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः ॥ ६० ॥
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्याभिरन्ततः ।
एताभिर्मांसनाडीभिःकोटिभिस्तत्समन्वितम् ॥ ६१ ॥
स्वेदमशुचिताभिरन्तरस्थं च ते नहि । द्वात्रिंशद्दशनाःप्रोक्ता विंशतिश्च नखाःस्मृतः
पित्तस्य कुडवंज्ञेयं कफस्यार्धाढकं तथा । वसायाश्चपलत्रिंशत्तदर्धं कललस्य वा ॥
तार्बुदपलं ज्ञेयं पलानि दशमेदसः । पलत्रयं महारक्तं मज्जारक्ताश्चतुर्गुणा ॥ ६४ ॥
शुक्रार्धं कुडवं ज्ञेयं तदर्धं देहिनां बलम् । मांसस्यचैकं पिण्डेन पलसाहस्रमुच्यते ॥
रक्तंपलशतं ज्ञेयं विण्मूत्रंत्वप्रमाणतः ।
इति देह गृहे राजन्वासःस्यान्नित्यमात्मनः ॥ ६६ ॥
शुद्धं च विशुद्धस्य कर्मबन्ध विनिर्मितम् । शुक्रशोणित संयोगाद्देहःसञ्जायते क्वचित्
नित्यंविण्मूत्रसंयुक्तस्तेनायमशुचिःस्मृतः । यथा वै विष्ठापूर्णःशुचिःस्यान्तर्बहिर्घटः ॥

शौचेन शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिर्भवेत् ।
यं प्राप्याति पवित्राणि पञ्चगव्य हवींषि च ॥ ६९ ॥

अशुचित्वं प्रयान्त्याशु देहोऽयमशुचिस्ततः । हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्यसुरभी

अशुचित्वं प्रयान्त्याशु कोऽन्यःस्यादशुचिस्ततः ।
हे जनाःकिं न पश्यध्वं यन्निर्याति दिने दिने ॥ ७१ ॥

देहानुगो मलःपूतिस्तदाधारःकथं शुचिः । देहःसंशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्य कुशाम्बु घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति । स्रोतांसि यस्य सततं प्रवहन्तिगिरे कफमूत्राद्यमशुचिःसदेहःशुध्यते कथम् । सर्वाशुचि निधानस्य शरीरस्य न विद्य शुचिरेक प्रदेशोऽपि शुचिर्नस्याद्धृतेऽपि वा । दिवा वा यदिवारात्रौमृत्तोयैःशोध्यते

तथापिशुचिभाङ्नस्यान्नविरज्यन्ति ते नराः ।
कायोऽयमग्र्यधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ॥ ७६ ॥
न जहाति स्वभावं हि श्वपुच्छमिव नामितम् ।
तथाजात्यैव कृष्णोर्णा न शुक्लाजा तु जायते ॥ ७७ ॥

संशोध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला । जिघ्रन्नपिस्वदुर्गन्धं पश्यन्नपिमलं स्व न विरज्यतिलोकोऽयंपीडयन्नपिनासिकाम् । अहोमोहस्यमाहात्म्यंयेनव्यामोहितं जिघ्रन्पश्यन्स्वकान्दोषान्कायस्य न विरज्यते । स्वदेहस्यविगन्धेन विरज्येतनयो विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते । सर्वमेव जगत्पूतं देहमेवाशुचिःपर यन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्य शुचिर्भवेत् । गन्धलेपापनोदाय शौचं देहस्य कीर्ति

द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुध्या विशुध्यति ।
गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गात्रलेपनैः ॥ ८३ ॥

मर्त्यो दुर्गन्धदेहोऽसौभावदुष्टोनशुध्यति । तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शु स्वमूर्तिःक्षालितातीर्थे न शुद्धिमधिगच्छति । अन्तर्भाव प्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुता न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनंपरम् । भावशुद्धिःपरंशौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा । मनसाभिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि

अन्यथैव सतीपुत्रं चिन्तयेदन्यथापतिम् । यथा यथा स्वभावस्य महाभाग उदाहृतम् ॥
परिष्वक्तोऽपि यद्भार्यां भावहीनां न कारयेत् ।
नाद्याद्विविधमन्नाद्यं रस्यानि सुरभीणि च ॥ ८६ ॥
अभावेन नरस्तस्माद्भावःसर्वत्र कारणम् । चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः ॥
भावतःशुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति । ज्ञानमालम्भसा पुंसःसवैराग्यमृदापुनः
अविद्यारागविण्मूत्र लेपो नश्येद्विशोधनैः । एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचिं विदुः ॥
विद्यादसार निःसारं कदलीसारसन्निभम् ।
ज्ञात्वैवं दोषवद्देहं यःप्राज्ञःशिथिली भवेत् ॥ ६३ ॥
सोऽतिक्रामति संसारं दृढ़ग्राहोऽव तिष्ठति । एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्त्तितम् ॥
पुंसामज्ञान्दोषेण नाना कर्मवशेन च । गर्भस्थस्यमतिर्यासीत्साजातस्य प्रणश्यति ॥
सुमूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्र निपीडनात् ।
बाह्येन वायुनाचास्य मोहसङ्गेन देहिनाम् ॥ ६६ ॥
स्पृष्टमात्रस्य घोरेण ज्वरःसमुपजायते । तेन ज्वरेण महता महामोहःप्रजायते॥ ६७ ॥
संमूढस्य स्मृतिभ्रंशःशीघ्रं सञ्जायते पुनः । स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेन च ॥
रतिःसञ्जायते तस्य जन्तोस्तत्रैव जन्मनि । रक्तोमूढ़श्च लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्त्तते ॥
नचात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम् । न शृणोति परंश्रेयःसं चक्षुरपि नेक्षते ॥
स मे पथि शनैर्गच्छन्स्खलतीव पदेपदे । सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानोबुधैरपि॥
संसारे क्लिश्यते तेन नरो लोभवशानुगः ।
गर्भस्मृतेरभावे च शास्त्रमुक्तं शिवेन च ॥ २ ॥
तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्ष प्रसाधकम् । येन तस्मिञ्छिवेज्ञाते धर्मकामार्थसाधने ॥
न कुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् । अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्येदुःखं महत्पुनः ॥
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं न सत्कृती । दन्तजन्ममहद्दुःखं लौल्येनवायुना तथा
बालरोगैश्च विविधैःपीडा बालग्रहैरपि । तृड्बुभुक्षा परीताङ्गःक्वचित्तिष्ठति गच्छति ॥
विण्मूत्र भक्षणाद्यं च मोहाद्बालःसमाचरेत् ।

कौमारःकर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनैः ॥ १०७ ॥

अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखंगुर्वादि शासनात्। प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्च कामराग प्रपीडि
रोगार्दितस्य सततं कुतःसौख्यं हि यौवने। ईर्ष्ययासु महद्दुःखं मोहाद्दुःखं प्रजा
तत्रस्यात्कुपितस्यैव रागोदुःखाय केवलम्। रात्रौ न विन्दते निन्द्रांकामाग्निपरिखे

दिवावापि कुतःसौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया।
व्यवायाश्रितदेहस्य ये पुंसःशुक्रबिन्दवः ॥ १११ ॥

न ते सुखाय मन्तव्याःस्वेदजा इव बिन्दवः। क्रमिभिःपीड्यमानस्यकुष्ठिनःपामरस
कण्डूयनाग्नितापेन यत्सुखं स्त्रीषु तद्विदुः। यादृशं मन्यते सौख्यमर्थोपार्जनचि
तादृशं स्त्रीषु मन्तव्यमधिकंनैव विद्यते। मर्त्यस्यवेदनासैव यां विना चित्तनिर्वृ

ततोऽन्योन्यं पुराप्राप्तमन्ते सैवान्यथा भवेत्।
तदेवं जरयाग्रस्तमामयाव्यपि न प्रियम् ॥ ११५ ॥

अपूर्ववत्स्वमात्मानं जरयापरिपीडितम्। यःपश्यन्नविरज्येत कोऽन्यस्तस्मादचेत
जराभिभूतोऽपिजन्तुःपत्नीपुत्रादि बान्धवैः। अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूय
न धर्ममर्थं कामं च मोक्षं च जरयायुतः। शक्तःसाधयितुं तस्माद्युवाधर्मं समाचरे

वातपित्त कफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते।
वातादीनां समूहेन देहोऽयं परिकीर्तितः ॥ ११६ ॥

तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः। वाताद्यव्यतिरिक्तत्वाद्व्याधीनां पञ्चस्य

रोगैर्नानाविधैर्याति देहिदुःखान्यनेकधा।
तानि च स्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ १२१ ॥

एकोत्तरं मृत्युशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम्। तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवःस्मृता
येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः। जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्य
यदिवाऽपमृत्युर्नस्याद्विगास्वादादपङ्क्तितः। न चास्ति पुरुषस्तस्मादपमृत्योर्बिभेति

विविधा व्याधयस्तत्र सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा।
विषाणि चाभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ॥ १२५ ॥

पीडितं सर्वरोगाद्यैरपि धन्वन्तरिःस्वयम् ।
स्वस्थीकर्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं न चान्यथा ॥ १२६ ॥
नौषधं न तपोदानं नमाता न च वान्धवाः । शक्नुवन्तिपरित्रातुं नरं कालेनपीडितम् ॥
रसायन तपो जाप्य योगसिद्धैर्महात्मभिः ।
अवान्तरित शान्तिःस्यात्कालमृत्युमवाप्नुयात् ॥ १२८ ॥
जायते योनिकीटेषु मृतःकर्मवशात्पुनः । देहभेदेन यःपश्येद्वियोगं कर्म संक्षयात् ॥२६॥
मरणं तद्विनिर्दिष्टं न नाशःपरमार्थतः । महातमःप्रविष्टस्य छिद्यमानेषु मर्मसु ॥ १३० ॥
यद्दुःखं मरणेजन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् । हा तात मातःकान्तेति क्रन्दत्येवंसुदुःखितः
मण्डूक इव सर्पेण ग्रस्यते मृत्युना जगत् । वान्धवैःसपरित्यक्तःप्रियैश्च परिवारितः ॥
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यता । खट्वायां परिवृत्तो हि मुह्यते च मुहुर्मुहुः॥
संमूढःक्षिपतेऽत्यर्थं हस्तपादावितस्ततः ।
खट्वातो वाञ्छते भूमिं भूमेःखट्वां पुनर्महीम् ॥ १३४ ॥
विवशस्त्यक्तलज्जश्च मूत्रविष्ठानुलेपितः । याचमानश्च सलिलंशुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥
चिन्तमानःस्ववित्तानि कस्यैतानि मृतेमयि । यमदूतैर्नीयमानःकालपाशेनकर्षितः ॥
म्रियते पश्यतामेवं गलेघुरघुरायते । जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहं विशेषत्क्रमात् ॥३७॥
प्नोत्युत्तरमङ्गं च देहं त्यजति पूर्वकम् । मरणात्प्रार्थनाद्दुःखमधिकं हिविवेकिनाम्
क्षणिकं मरणे दुःखमनन्तं प्रार्थनाकृतम् । जगतांपतिरर्थित्वाद्विष्णुर्वामनतां गतः॥३६॥
अधिकःकोऽपरस्तस्माद्यो न यास्यति लाघवम् ।
ज्ञातं मयेदमधुना मृत्योर्भवति यद्गुरुः ॥ १४० ॥
न परं प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णा लाघवकारणम् ।
आदौ दुःखं तथामध्ये दुःखमन्ते च दारुणम् ॥ १४१ ॥
निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा । वर्तमानान्यतीतानि दुःखान्येतानि यानि तु ॥
नरःशोचयेज्जन्म न विरज्यति तेन वै । आत्याहारान्महद्दुःखमल्पाहारात्तदन्तरम् ॥
त्रुटते भोजने कण्ठो भोजने च कुतःसुखम् ।

क्षुधा हि सर्वरोगाणां व्याधिःश्रेष्ठतमःस्मृतः ॥ १४४ ॥

सकास्यौषधलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति । क्षुद्व्याधि वेदना तीव्राः निःशेष बल
तयाभिभूतोम्रियते यथान्यैर्व्याधिभिर्नरः । तद्रसेऽपिहि किं सौख्यं जिह्वाग्रपरि
तत्क्षणादर्धकालेन कण्ठं प्राप्य निवर्तते । इति क्षुद्व्याधि तप्तानामन्नमौषधवत्स

न तत्सुखाय मन्तव्यं परमार्थेन पण्डितैः ।
मृतोपमश्च यःशेते सर्वकार्यविवर्जितः ॥ १४८ ॥

तत्रापि च कुतःसौख्यं तमसा चोदितात्मनः । प्रबोधेऽपि कुतःसौख्यंकार्यैरुपहता
कृषिवाणिज्यसेवाद्य गोरक्षादि परिश्रमैः । प्रातर्मूत्रपुरीषाभ्यां मध्याह्ने क्षुत्पिपा

तृप्ताःकाम्येन बाध्यन्ते निद्रया निशि जन्तवः ।
अर्थस्योपार्जनेदुःखं दुःखमर्जितरक्षणे ॥ १५१ ॥

नाशेदुःखं व्ययेदुःखमर्थस्यैवकुतःसुखम् । चौरेभ्यःसलिलेभ्योऽग्नेःस्वजनात्पार्थि
भयमर्थवतांनित्यं मृत्योर्देहभृतामिव । खे यथा पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदै

जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान् ।
विमोहयन्ति सम्पत्सु वारयन्ति विपत्सु च ॥ १५४ ॥

खेदयन्त्यर्जनेकाले कदार्थाःस्युःसुखावहाः । प्रागर्थपतिरुद्विग्नःपश्चात्सर्वार्थ निःस्

तयोरर्थपतिर्दुःखी सुखीमन्ये विरक्त धीः ।
हेमन्ते शैशिरं दुःखं ग्रीष्मे तापस्य दारुणम् ॥ १५६ ॥

प्रावृष्यत्यल्पवृष्टिभ्यां कालेऽप्येवं कुतःसुखम् । विवाहविस्तरैर्दुःखं तद्गर्भोद्वहने
सूतिवैषम्यदुःखैश्च दुःखं विष्ठादि कर्मभिः । दन्ताक्षिरोगेपुत्रस्य हा कष्टं किं करो

गावो नष्टाःकृषिर्भग्ना भार्या च प्रपलायिता ।
अमीप्राघूर्णिकाःप्राप्ता भयं मे शंसिनो गृहान् ॥ १५९ ॥

बालापत्या च मे भार्याकःकरिष्यतिरन्धनम् । विवाहकालेकन्यायाःकीदृशश्चवर

एतच्चिन्ताभिभूतानां कुतःसौख्यं कुटुम्बिनाम् ॥ १६१ ॥
कुटुम्बचिन्ताकुलितस्य पुंसःश्रुतं च शीलं च गुणाश्च सर्वे ।

अपक्वकुम्भे निहिता इवापःप्रयान्ति देहेनसमं विनाशनम् ॥ १६२ ॥
राज्येऽपि हि कुतःसौख्यं सन्धिविग्रहचिन्तया ।
पुत्रादपि भयं यत्र तत्रसौख्यं हि कीदृशम् ॥ १६३ ॥
स्वजातीयाद्भयं प्रायःसर्वेषामेव देहिनाम् । एकद्रव्याभिलाषित्वाच्छुनामिव परस्परम्
न प्रविश्य वनं कश्चिन्नृपःख्यातोऽस्तिभूतले । निखिलंयस्तिरस्कृत्यसुखंतिष्ठतिनिर्भयः
युद्धे बाहुसहस्रं हि पातयामास भूतले । श्रीमतःकार्तवीर्यस्य ऋषिपुत्रःप्रतापवान् ॥
ऋषिपुत्रस्य रामस्य रामो दशरथात्मजः । जघान वीर्यमतुलमूर्ध्वगं सुमहात्मनः ॥
जरासन्धेन रामस्य तेजसानाशितं यशः ।
जरासन्धस्य भीमेन तस्यापि पवनात्मजः ॥ १६८ ॥
हनुमानपि सूर्येण विक्षिप्तःपतितःक्षितौ । निवातकवचान्सर्वे दानवान्बलदर्पिताम् ॥
हतवानर्जुनःश्रीमान्गोपालैःस विनिर्जितः । सूर्यःप्रतापयुक्तोऽपि मेघैःसंछाद्यते क्वचित्
क्षिप्यते वायुनामेघो वायोवीर्यं नगैर्जितम् ।
दह्यन्ते वह्निना शैलाःसवह्निःशाम्यते जलैः ॥ १७१ ॥
तज्जलं शोष्यते सूर्यैस्तेसूर्याःसहवारिणा । त्रैलोक्येन समस्ताश्च नश्यन्ति ब्रह्मणोदिने
ब्रह्मापि त्रिदशैःसार्धमुपसंह्रियते पुनः । परार्धद्वय कालान्ते शिवेन परमात्मना ॥७३॥
एवं नैवास्ति संसारे यच्च सर्वोत्तमंबलम् । विहायैकं जगन्नाथं परमात्मानमव्ययम् ॥
ज्ञात्वा सातिशयं सर्वं मतिमानं विवर्जयेत् । एवंभूतेजगत्यस्मिन्कःसुरःपण्डितोऽपिवा
नह्यस्ति सर्ववित्कश्चिन्न वा मूर्खोऽपि सर्वतः ।
यावद्यस्तु विजानाति तावत्तत्र सपण्डितः ॥ १७६ ॥
समाधाने तु सर्वत्र प्रभावःसदृशःस्मृतः । वित्तस्यातिशयत्वेन प्रभावःकस्यचित्क्वचित्
दानवैर्निर्जितादेवास्तेदेवैर्निर्जिताःपुनः । इत्यन्योन्यंश्रितो लोको भाग्यैर्जयपराजयैः ।
एवं वस्त्रयुगं राज्ञां प्रस्थमात्राम्बु भोजनम् ।
यानं शय्यासनंचैव शेषं दुःखाय केवलम् ॥ १७९ ॥
समेचापि भवने खट्वामात्र परिग्रहः । उदकुम्भ सहस्रेभ्यःक्लेशायतन प्रविस्तरः ॥

प्रत्यूषे तूर्यनिर्घोषःसमं पुरनिवासिभिः। राज्येऽभिमानमात्रं हि ममेदं वाद्यते गृ
सर्वमाभरणं भारःसर्वमालेपनं मलम्। सर्वं प्रलपितं गीतं नृत्यमुन्मत्त चेष्टित

इत्येवं राज्यसम्भोगैःकुतःसौख्यं विचारतः।
नृपाणां विग्रहेचिन्ता वान्योन्य विजिगीषया॥ १८३॥

प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्या महानृपाः। स्वर्गं प्राप्तानि पतिताःकःश्रिया विन्दतेसु

स्वर्गेऽपि च कुतःसौख्यं दृष्ट्वा दीप्तां परश्रियम्।
उपर्युपरि देवानामन्योन्यातिशयस्थिताम्॥ १८५॥

नरैःपुण्यफलं स्वर्गे मूलच्छेदेन भुज्यते। न चान्यत्क्रियते कर्म सोऽत्र दोषःसुदा
छिन्नमूल तरुर्यद्वद्दिवसैःपतति क्षितौ। पुण्यस्य संक्षयात्तद्वन्निपतन्ति दिवौकस

सुखाभिलाषनिष्ठानां सुखभोगादि सम्प्लवैः।
अकस्मात्पतितं दुःखं कष्टं स्वर्गे दिवौकसाम्॥ १८८॥

इतिस्वर्गेऽपिदेवानांनास्तिसौख्यंविचारतः। क्षयश्चविषयासिद्धौस्वर्गेभोगायकर्म
तत्रदुःखं महत्कष्टं नरकाग्निषु देहिनाम्। घोरैश्च विविधैर्भावैर्वाङ्मनः कायस
कुठारच्छेदनं तीव्रं वल्कलानां च तक्षणम्। पर्णशाखा फलानां च पातश्चण्डेनवा
उन्मूलनान्नदीभिश्च गजैरन्यैश्च देहिभिः। दावाग्नि हिमशोषैश्च दुःखं स्थावर जा

तद्वद्भुजङ्ग सर्पाणां क्रोधैः दुःखं च दारुणम्।
दुष्टानां घातनं लोके पाशेन च निवन्धनम्॥ १९३॥

अकस्माज्जन्ममरणं कीटानां च मुहुर्मुहुः। सरीसृप निकायानामेवं दुःखान्यनेक
पशूनामात्मशमनं दण्ड ताडनमेव च। नासावेधेन सन्त्रासःप्रतोदेन सुताडनम्
वेत्रकाष्ठादि निगडैरङ्कुशेनाङ्गबन्धनम्। भावेन मनसाक्लेशैर्भिक्षायुवादि पीड
आत्मयूथ वियोगैश्च बलान्नयन बन्धने। पशूनां सन्ति कायानामेवं दुःखान्यनेक
वर्षा शीतातपाद्दुखं सुकष्टं ग्रहपक्षिणाम्। क्लेशमानाति कायानामेवं दुःखान्य

गर्भवासे महद्दुखं जन्मदुःखं तथा नृणाम्।
बाल्यदुःखं चाज्ञानं कौमारे गुरुशासनम्॥ १९९॥

यौवने कामरागाभ्यां दुःखंचैवेर्ष्यया पुनः । कृषिवाणिज्य सेवाद्यैर्गोरक्षादिक कर्मभिः
वृद्धभावे च जरया व्याधिभिश्च प्रपीडनात् ।
मरणे च महद्दुखं प्रार्थनायां ततोऽधिकम् ॥ २०१ ॥
राजाग्नि जलदाघात चौरशत्रुभयं महत् । अर्थस्यार्जन रक्षायां भयं नाशे व्यये पुनः ॥
कार्पण्यंमत्सरोदम्भो धनाधिक्ये भयंमहत् । अकार्येसम्प्रवृत्तिश्च दुःखानि धनिनांसदा
भृत्यवृत्तिःकुसीदं च दासत्वं परतन्त्रता । इष्टानिष्टाभियोगश्च संयोगाश्च सहस्रशः ॥
दुर्भिक्षं दुर्भगत्वं च मूर्खत्वं च दरिद्रता । अधरोत्तरभागश्च नारकं राजविक्रमम् ॥ ५ ॥
अन्योन्याभिभवं दुःखमन्योन्यतोभयं महत् ।
अन्योन्याच्च प्रकोपश्च राज्ञोदुःखं महीभृताम् ॥ २०६ ॥
अनित्यतात्रभावानां कृतकाम्यस्य देहिनः । अन्योन्य मर्मभेदाच्च अन्योन्यकरपीडनात्
लुब्धाश्च पापभेदेन अन्योन्यस्य च भक्षणम् ।
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्माद्भीतं चराचरम् ॥ २०८ ॥
नरयादिमनुष्यान्तंतस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः । स्कन्धात्स्कन्धेनयन्भारं विश्राममंन्यतेयथा
तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखं दुःखेन शाम्यति । अन्योन्यातिशयोपेताःसर्वदा भोगसम्प्लवाः
धर्मक्षयाच्च देवानां दिवि दुःखमवस्थितम् ।
नानायोनि सहस्रेषु सम्भवःपुण्य संक्षयात् ॥ २११ ॥
रोगाश्च विविधाकारा देवलोकेऽपि संस्मृताः ।
यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नमश्विभ्यां संहितं पुनः ॥ २१२ ॥
तेन दोषेण यज्ञस्य शिरोरोगःसदैव हि । मार्तण्ड भानोःकुष्ठं च वरुणस्य जलोदरम् ॥
पूष्णोदशनवैकल्यं भुजस्तम्भःशचीपतेः । सुमहान्क्षयरोगश्च सोमस्य परिकीर्तितः ॥
ज्वरश्च सुमहानासीद्दक्षस्यापि प्रजापतेः । कल्पेकल्पे च देवानां महतामपि संक्षयः ॥
परार्धद्वय कालान्ते ब्रह्मणश्चाप्य नित्यता । दक्षस्य दुहितां पौत्रीं ब्रह्मा कामितवान्पुनः
क्रोधेन च जयां देवीं योगज्ञां शप्तवान्प्रभुः ।
कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तदात्मकाः ॥ २१७ ॥

दुःखानि च समस्तानिसंस्थितानि न संशय । विशीर्णजन्ममरणं सर्वाशित्वंह्वि

स्त्रीवधःकामसक्तिश्च सारथ्यं पाण्डवे बले ।

रुद्रेण त्रिपुरं दग्धं दक्षयज्ञो विनाशितः ॥ २१६ ॥

स्कन्दस्य जन्मवैशुक्रात्क्रीडादीनां सहस्रशः । एवं त्रयोऽपि रागाद्यैर्दोषैर्देवाःसम

एभ्यःपरःप्रभुःशान्तःपरिपूर्णःसमुक्तिदः । एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयेस्थितम्

दुःखैराकुलितं ज्ञात्वा निर्वेदं परमं व्रजेत् । निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानस

ज्ञानेनतत्परंज्ञानं शिवंमुक्तिमवाप्नुयात् । समस्तदुःख निर्मुक्तःस्वस्थात्मा स सुखं

सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ॥ २२३ ॥

मातलिरुवाच ।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् । धर्माधर्म विवेको हि सर्वज्ञानसमु

इन्द्रलोके प्रगन्तव्यं देवराजस्य शासनात् ॥ २२५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृमातृतीर्थमाहात्म्ये

षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

मनुष्यकृतानां सुकृतदुष्कृतकर्मणांविपाकः ।

ययातिरुवाच ।

अस्मद्भाग्यप्रसङ्गेन भवतो दर्शनं मम । सञ्जातं शक्रसंवाह एतच्छ्रेयो ममातुलम् ।

मानवा मर्त्यलोके च पापं कुर्वन्ति दारुणम् । तेषां कर्मविपाकं च मातले वदस्व

मातलिरुवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि पापाचारस्य लक्षणम् । श्रुतेसति महज्ज्ञानमत्रलोके प्रजा

वेदनिन्दां प्रकुर्वन्ति ब्रह्माचारस्य कुत्सनम् । महापातकमेवापि ज्ञातव्यं ज्ञानपा

साधूनामपि सर्वेषां यःपीडां हि समाचरेत् ।
महापातकमेवापि प्रायश्चित्तेन हि व्रजेत् ॥ ५ ॥
कुलाचारं परित्यज्य अन्याचारं व्रजन्ति च । एतच्चपातकं घोरं कथितं कृत्यवेदिभिः
मातापित्रोश्च या निन्दा ताडनं भगिनीषु च । पितृष्वसुर्निन्दनं च तदेवपातकं ध्रुवम्
सम्प्राप्ते श्राद्धकालेऽपि पञ्चक्रोशान्तरेस्थितम् ।
जामातरं परित्यज्य तथा च दुहितुःसुतम् ॥ ८ ॥
स्वसारंचैव स्वस्रीयं परित्यज्य प्रवर्तते । कामात्क्रोधाद्भयाद्वापि अन्यं भोजयते यदा
पितरोनैव भुञ्जन्ति देवाश्चैव न भुञ्जते । एतच्च पातकं तस्य पितृघात समंकृतम् ॥१०॥
दानकालेऽपि सम्प्राते आगते ब्राह्मणे किल । भूरिदानंपरित्यज्य कतिभ्यो हि प्रदीयते
कस्मै दीयते दानमन्येभ्योऽपि न दीयते । एतच्च पातकं घोरं दानभ्रंशकरं स्मृतम्
यजमानगृहे सेवा संस्थितान्ब्राह्मणान्निजान् ।
परित्यज्य हि यद्दानं न दानस्य च लक्षणम् ॥ १३ ॥
समाश्रितं हि यं विप्रं धर्माचार समन्वितम् । सर्वोपायैःसुपुष्येत्तं सुदानैर्बहुभिर्नृप ॥
समभ्यर्च्य विद्वांसं प्राप्तविप्रं सदार्हयेत् । तं हि त्यक्त्वा ददेद्दानमन्यस्मै ब्राह्मणायवै
तं हुतं भवेत्तस्य निष्फलं नात्र संशयः । ब्राह्मणःक्षत्रियो वैश्यःशूद्रश्चापि चतुर्थकः
श्राद्धकालेषु सर्वेषु संश्रितं पूजयेद्द्विजम् । मूर्खंवापि हि विद्वांसं तस्य पुण्यफलं शृणु
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलंतस्य प्रजायते ।
कस्माद्विकारणाद्राजञ्छ्क्यं प्राप्य न कारयेत् ॥ १८ ॥
अन्योविप्रःसमायातस्तत्कालं श्राद्धकर्मणि । उभौ तौ पूजयेत्तत्र भोजनाच्छादनैस्ततः
ताम्बूलदक्षिणाभिश्च पितरस्तस्य हर्षिताः । श्राद्धभुक्ताय दातव्यं सदादानं च दक्षिणा
न ददेच्छ्राद्धकर्ता यो गोहत्यादि समं भवेत् ।
द्वावेतौ पूजयेत्तस्माच्छ्रद्धया नृपसत्तम ॥ २१ ॥
राजार्द्धनत्व प्रभावाद्वै तमेकं हि प्रपूजयेत् । व्यतीपातेपिऽसम्प्राप्ते वैधृतौ च नृपोत्तम ॥
अमावास्यां तथा राजन्क्षयाहेऽपरपक्षके । श्राद्धमेवं प्रकर्तव्यं ब्राह्मणादि त्रिवर्णकैः ॥

यज्ञे तथा महाराज ऋत्विजश्च प्रकारयेत्। तथा विप्राःप्रकर्तव्याःश्राद्धदानाय
अविज्ञातःप्रकर्तव्यो ब्राह्मणोनैव जानता। यस्यापि ज्ञायतेवंशःकुलं त्रिपुरुषं त

आचाराश्च तथा राजन् स्तं विप्रं सन्निमन्त्रयेत्।
कुलं न ज्ञायते यस्य आचारेणविचारयेत्॥ २६॥

श्राद्धदाने प्रकर्त्तव्ये विशुद्धो मूर्खएव हि। अविज्ञातो भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपा
श्राद्धदानं प्रकर्त्तव्यं तस्माद्विप्रं निमन्त्रयेत्। आतिथ्यं तु प्रकर्तव्यमपूर्वं नृपसत्त

अन्यथा कुरुते पापी स याति नरकं ध्रुवम्।
तस्माद्विप्रःप्रकर्तव्यो दानेश्राद्धे च पर्वसु॥ २९॥

आदौ परीक्षयेद्विप्रं श्राद्धेदाने प्रकारयेत्। नाश्नन्ति तस्य वै गेहे पितरोविप्रवा
शापंदत्त्वा ततोयान्ति श्राद्धाद्विप्रं विवर्जितात्। महापापीभवेत्सोऽपिब्रह्महासच क
पैत्राचारं परित्यज्य यो वर्तेत नरोत्तम। महापापी स विज्ञेयःसर्वधर्म बहिष्

ये त्यजन्ति शिवाचारं वैष्णवं भोगदायकम्।
निन्दन्ति ब्राह्मणं धर्मं विज्ञेयाःपापवर्द्धनाः॥ ३३॥

ये त्यजन्ति शिवाचारं शिवभक्तान्द्विषन्ति च। हरिं निन्दन्ति ये पापा ब्रह्मद्वेषकरा
आचारनिन्दकाये ते महापातक कृत्तमाः। आद्यंपूज्यं परंज्ञानं पुण्यंभागवतं त

वैष्णवं हरिवंशं वा मत्स्यं वा कूर्ममेव च।
पाद्मं वा ये पूजयन्ति तेषांश्रेयो वदाम्यहम्॥ ३६॥

प्रत्यक्षं तेन वैदेवःपूजितो मधुसूदनः। तस्मात्प्रपूजयेज्ज्ञानं वैष्णवं विष्णुवल्ल
देवस्थाने च नित्यं वै वैष्णवं पुस्तकं नृप। तस्मिन्प्रपूजितेविप्र पूजितःकमल

असम्पूज्य हरेर्ज्ञानं येऽधीयते लिखन्ति च।
अज्ञाय तत्प्रयच्छन्ति शृणुवन्त्युच्चारयन्ति च॥ ३९॥

विक्रीडन्ति च लोभेन कुज्ञान नियमेन च। असंस्कृत प्रदेशेषु यथेष्टं स्थापयन्ति
हरिज्ञानं यथाक्षेमं प्रत्यक्षाच्च प्रकाशयेत्। अधीते च समर्थश्च यःप्रमादं करोति
अशुचिश्चाशुचौस्थाने यःप्रवक्ति शृणोति च। इतिसर्वं समासेनज्ञाननिन्दासमं

गुरुपूजामकृत्वैव यःशास्त्रं श्रोतुमिच्छति ।
न करोति च शुश्रूषामाज्ञाभङ्गं च भावतः ॥ ४३ ॥

नाभिनन्दति तद्वाक्यमुत्तरं सम्प्रयच्छति । गुरुकर्मणि साध्ये च तदुपेक्षां करोति च
गुरुमार्तमशक्तं च विदेशं प्रथितं तथा । अरिभिःपरिभूतं वा यःसन्त्यजति पापकृत् ॥
पठमानं पुराणं तु तस्यपापं वदाम्यहम् । कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

पठमानं गुरुं यो हि उपेक्षयति पापधीः ।
तस्यापिपातकं घोरं चिरंनरकदायकम् ॥ ४७ ॥

भार्या पुत्रेषु मित्रेषु यश्चावज्ञांकरोति च । इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं महत् ॥
ब्रह्महा स्वर्णस्तेयी च सुरापीगुरुतल्पगः । महापातकिनश्चैते तत्संयोगी च पञ्चमः ॥
क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्य विशेषतः । मर्मातिकृन्तकोयश्च ब्रह्मघ्नःसप्रकीर्तितः॥

ब्राह्मणं यःसमाहूय याचमानमकिञ्चनम् ।
पश्चान्नास्तीति योब्रूयात्स च वै ब्रह्महा नृप ॥ ५१ ॥

यस्तुविद्याभिमानेन निस्तेजयति वै द्विजम् । उदासीनं सभामन्ये ब्रह्महा सप्रकीर्तित
मिथ्यागुणैरथात्मानं नयत्युत्कर्षतां पुनः । गुरुं विरोधयेद्यस्तु स च वै ब्रह्महास्मृतः ॥

क्षुत्तृषातप्तदेहानामन्नभोजनमिच्छताम् ।
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ५४ ॥

पिशुनःसर्वलोकानां रन्ध्रान्वेषणतत्परः । उद्वेजनकरःक्रूरः स च वै ब्रह्महास्मृतः ॥
देवद्विजगवांभूमिं पूर्वदत्तां हरेत्तु यः । प्रनष्टामपि कालेन तमांहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ५६ ॥
द्विजवित्तापहरणं न्यासेन समुपार्जितम् । ब्रह्महत्यासमंज्ञेयं तस्यपातकमुत्तमम् ॥

अग्निहोत्रं परित्यज्य पञ्चयज्ञादिकर्म च ।
मातापित्रोर्गुरूणां च कूटसाक्ष्यं च यश्चरेत् ॥ ५८ ॥

अप्रियंशिवभक्तानामभक्ष्याणां च भक्षणम् । वनेनिरपराधानां प्राणिनां च प्रमारणम्

गवां गोष्ठे वने चाग्नेःपुरेग्रामे च दीपनम् ।
इति पापानि घोराणि सुरापान समानि तु ॥ ६० ॥

दीनसर्वस्वहरणं परस्त्री गजवाजिनाम् । गो भूरजत वस्त्राणामौषधीनां रसस्
चन्दना गुरुकर्पूर कस्तूरीपट्टवाससाम् । परन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृत
कन्याया वरयोग्याया अदानं सदृशेवरे । पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥
कुमारी साहसं घोरमन्त्यजस्त्री निषेवणम् । सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं

महापातक तुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ।
तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यूनमुपपातकम् ॥ ६५ ॥

द्विजायार्थं प्रतिज्ञाय न प्रयच्छति यः पुनः । तत्र विस्मरते विप्रस्तुल्यं तदुपपातक
द्विजद्रव्यापहरणं मर्यादाया व्यतिक्रमम् । अतिमानातिकोपश्च दाम्भिकत्वं कृत

अन्यत्र विषयासक्तिः कार्पण्यं शाठ्य मत्सरम् ।
परदाराभिगमनं साध्वी कन्याभिदूषणम् ॥ ६८ ॥

परिवित्तिःपरिवेत्ता ययाच परिविद्यते । तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजक

पुत्रमित्र कलत्राणामभावे स्वामिनस्तथा ।
भार्याणां च परित्यागःसाधूनां च तपस्विनाम् ॥ ७० ॥
गवां क्षत्रिय वैश्यानां स्त्रीशूद्राणां च घातनम् ।
शिवायतन वृक्षाणां पुष्पाराम विनाशनम् ॥ ७१ ॥

यःपीडामाश्रमस्थानामाचरेदल्पिकामपि । तद्भृत्यपरिवर्गस्य पशुधान्य वनस्य
वस्त्र धान्य पशुस्तेयमयाज्यानां च याजनम् । यज्ञारामतडागानां दारापत्यस्यवि

तीर्थयात्रोपवासानां व्रतानां च सुकर्मणाम् ।
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभवाद्यन्नजीविताः ॥ ७४ ॥

स्वधर्मं विब्रूयाद्यस्तु अधर्मं वर्णतेनरः । परदोषप्रवादी च परच्छिद्रावलोक
परद्रव्याभिलाषी च परदारावलोककः । एते गोघ्नसमानाश्च ज्ञातव्या नृपनन्द
यःकर्ता सर्वशास्त्राणां गोहर्तागोश्च विक्रयी । निर्दयोऽतीवभृत्येषु पशूनां दमक
मिथ्या प्रवदते वाचनाकर्णयतियः परैः । स्वामिद्रोही गुरुद्रोही मायावी चपल

यो भार्या पुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान् ।

भृत्यानतिथिवन्धूंश्च त्यक्त्वाऽश्नाति बुभुक्षितान् ॥ ७९ ॥
यस्तुमृष्टं समश्नाति नो चाप्यन्नं ददाति च ।
पृथक्पाकी सविज्ञेयो ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ ८० ॥
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः । प्रव्रज्यागमितायैश्च संयुक्ताये च मद्यपैः
ये चापि क्षयरोगार्तां गांपिपासा क्षुधातुराम् ।
न पालयन्ति यत्नेन ते गोघ्ना नारकाःस्मृताः ॥ ८२ ॥
सर्वपापरता ये च चतुष्पात्क्षेत्रभेदकाः । साधून्विप्रान्गुरूंश्चैव यश्चगां हि प्रताडयेत् ॥
ये ताडयन्त्य दोषां च नारीं साधु पदे स्थिताम् ।
आलस्यबद्ध सर्वाङ्गो यःस्वपिति मुहुर्मुहुः ॥ ८४ ॥
दुर्वलांश्च न पुष्णन्ति नष्टान्नान्वेषयन्ति च । पीडयन्त्यतिभारेण सक्षतान्वाहयन्ति च
सर्वपापरता ये च संयुक्ता ये च भुञ्जते । भग्नाङ्गीं क्षतरोगार्तां गोरूपां च क्षुधातुराम्
न पालयन्ति यत्नेन तेजना नारकाःस्मृताः। वृषाणां वृषणौ ये च पापिष्ठाघातयन्ति च
वाधयन्ति च गोवत्साम्महानारकिणो नराः ।
आशयासमनुप्राप्तं क्षुत्तृषाश्रमपीडितम् ॥ ८८ ॥
यश्चातिथिं न मन्यन्ते ते वै निरयगामिनः । अनाथं विकलं दीनं वालं वृद्धं भृशातुरम्
नानुकम्पन्तिये मूढास्ते यान्तिनरकार्णवम् । अजाविको माहिषिको यःशूद्रावृषलीपतिः
शूद्रो विप्रस्यक्षत्त्रस्य ये ओचारेण वर्तते । शिल्पिनःकारवोवैद्यास्तथादेवलकानराः ॥
भृतकामात्यकर्माणःसर्वे निरयगामिनः ।
यश्चोदितमतिक्रम्य स्वेच्छया आहरेत्करम् ॥ ९२ ॥
नरकेषु सपच्येत यश्च दण्डं वृथा नयेत् । उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्चप्रपीड्यते॥९३॥
यस्य राज्ञाःप्रजा राज्ये पच्यते नरकेषु सः । ये द्विजाःप्रतिगृह्णन्ति नृपस्यान्यायवर्तिनः
प्रयान्ति तेऽपि घोरेषु नरकेषु न संशयः । परदारिक चौराणां यत्पापं पार्थिवस्य च
भवत्यरक्षतो घोरो राज्ञस्तस्य परिग्रहः ।
अचोरं चौरवद्यश्च चौरं चाचौरवत्पुनः ॥ ९६ ॥

अविचार्य नृपःकुर्यात्सोऽपि वै नरकं व्रजेत् । घृत तैलान्नपानादि मधुमांस सुरास
गुडेक्षु क्षीर शाकादि दधिमूल फलानि च । तृणकाष्ठं पुष्पपत्रं कांस्यं रजतमेव च
उपानच्छत्र कटक शिविकामासनं मृदु । ताम्रं सीसं त्रपुकांस्यं शङ्खाद्यं च जलोद्भ
वादित्रं वेणुवंशाद्यं गृहोपस्करणानि च ।
ऊर्णाकार्पास कौशेय रङ्कुपद्मोद्भवानि च ॥ १०० ॥
तूलं सूक्ष्माणि वस्त्राणि ये लोभेन हरन्ति च ।
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणि विविधानि च ॥ १०१ ॥
नरकेषु द्रुतं गच्छेदपहृत्याल्पकान्यपि । यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम् ॥१०
अपहृत्य नरोयाति नरके नात्रसंशयः । बह्वल्पकाद्यपि तथा परस्य ममता कृतम्॥१०
अपहृत्य नरोयाति नरके नात्रसंशयः । एवमाद्यैर्नरःपापैरुत्क्रान्ति समनन्तरम् ॥१०
शरीर घातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ।
यमलोकं व्रजन्त्येते शरीरस्था यमाज्ञया ॥ १०५ ॥
यमदूतैर्महाघोरैर्नीयमानाःसुदुःखिताः । देवतीर्यङ् मनुष्याणामधर्मनियतात्मना
धर्मराजःस्मृतःशास्ता सुघोरैर्विविधैर्वधैः ।
विनयाचारयुक्तानां प्रमादान्मलिनात्मनाम् ॥ १०७ ॥
प्रायश्चितैर्गुरुःशास्ता न च तैरीक्ष्यते यमः । पारदारिकचौराणामन्याय व्यवहारिण
नृपतिःशासकःप्रोक्तःप्रच्छन्नानां च धर्मराट् । तस्मात्कृतस्यपापस्य प्रायश्चित्तंसमाच
नाभुक्तस्यान्यथा नाशःकल्पकोटिशतेरपि ।
यःकरोति स्वयंकर्म कारयेद्वानुमोदयेत् ॥ ११० ॥
कायेन मनसावाचा तस्यचाधोगतिःफलम् । इति संक्षेपतःप्रोक्ताःपापभेदास्त्रियाऽशु
कथ्यन्ते गतयश्चित्रा नराणां पापकर्मणाम् ।
एतत्ते नृपतेऽधर्म फलं प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥ ११२ ॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तन्मेब्रूहि नरोत्तम । अधर्मस्य फलं प्रोक्तं धर्मस्यापिवदाम्य
इत्याह मातलिस्तत्र राजानं सर्ववत्सलम् ।

तस्मिन्धर्मप्रसङ्गेन इत्याख्यातं महात्मना ॥ ११४ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

———

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

सुकृतकर्मफलकथनम् ।

ययातिरुवाच ।

अधर्मस्य फलं सूत श्रुतं सर्वं मया विभो । धर्मस्यापि फलं ब्रूहि श्रोतुं कौतूहलं मम

मातलिरुवाच ।

अथ पापैरिमे यान्ति यमलोकं चतुर्विधा । सन्त्रासजननं घोरं विवशाःसर्वदेहिनः ॥२॥

गर्भस्थैर्जायमानैश्च बालैस्तरुण मध्यमैः । पुंस्त्रीनपुंसकैर्वृद्धैर्यातव्यं जन्तुभिस्ततः ॥३॥

शुभाशुभफलं तत्र देहिनां प्रविचार्यते ।

चित्रगुप्तादिभिःसर्वैर्मध्यस्थैःसर्वदर्शिभिः ॥ ४ ॥

न तेऽत्रप्राणिनःसन्ति येन यान्तियमक्षयम् । अवश्यं हि कृतंकर्म भोक्तव्यंतद्विचारितम्

ये तत्र शुभकर्माणःसौम्यचित्तादयान्विताः । ते नरा यान्ति सौम्येन पथायमनिकेतनम्

यःप्रदद्याच्च विप्राणामुपानत्काष्ठपादुके । स विमानेन महता सुखंयाति यमालयम् ॥ ७॥

छत्रदानेन गच्छन्ति पथा साभ्रेणदेहिनः ।

दिव्यवस्त्र परीधाना यान्ति वस्त्रप्रदायिनः ॥ ८ ॥

शिबिकायाःप्रदानेन विमानेन सुखं व्रजेत् । सुखासन प्रदानेन सुखंयान्ति यमालयम् ।

आरामकर्ता छायासु शीतलासु सुखंव्रजेत् । यान्ति पुष्पकयानेन पुष्पाराम प्रदायिन

देवायतनकर्ता च यतीनामाश्रमस्य च । अनाथमण्डपानां च क्रीडन्याति गृहोत्तमैः ।

देवाग्नि गुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकः ॥ १२ ॥

विप्रेषु दीनेषु गुणान्वितेषु यच्छ्रद्धया स्वल्पमपि प्रदत्तम् ।
तत्सर्वकामान्समुपैति लोके श्राद्धे च दानं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥
श्रद्धादानेन विज्ञेयमपि वालाग्रमात्रकम् । यत्पात्रादि चतुष्टयं श्रद्धा तेषु सदाममः
श्रद्धीयतेसदातस्माच्छ्रद्धायास्तत्फलं भवेत् । गुणान्वितेषु दीनेषुयच्छक्त्यावसथान्
स प्रयाति सर्वकामं स्थानंपैतामहं नृप ।
श्रद्धया येन विप्राय दत्तं काकिणिमात्रकम् ॥ १६ ॥
स स्याद्दिव्यातिथिर्भूप देवानां कीर्तिवर्धनः । तस्माच्छ्रद्धान्वितैर्देयंतत्फलंभवतिध्रु
इति श्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातृपितृतीर्थवर्णने ययातिच
अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

विविधशिवधर्मकथनम् ।

मातलिरुवाच ।

अथ धर्माःशिवेनोक्ताःशिवधर्मागमोत्तमाः । ज्ञेया बहुविधास्ते च कर्मयोग प्रभेदतः
हिंसादिदोषनिर्मुक्ताःक्लेशायासविवर्जिता । सर्वभूतहिताःशुद्धाःसूक्ष्माया सा महत्फ
अनन्तशाखाकलिताःशिवमूलैकसंश्रिताः । ज्ञानध्यानसुपुष्पाढ्याःशिवधर्माःसनात
धारयन्ति शिवंयस्माद्धार्यते शिवभाषितैः ।
शिवधर्माःस्मृतास्तस्मात्संसारार्णवतारकाः ॥ ४ ॥
तथाऽहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीःश्रद्धेन्द्रियसंयमः । दानमिज्या तपोदानं दशकं धर्मसाध
अथव्यस्तैःसमस्तैर्वा शिवधर्मैरनुष्ठितैः । शिवैकरस्य सम्प्राप्तैर्गतिरेकैव कल्पिता
यथाभूःसर्वभूतानां स्थानं साधारणं स्मृतम् ।
तत्तथा शिवभक्तानां तुल्यं शिवपुरं स्मृतम् ॥ ७ ॥

यथेह सर्वभूतानां भोगाःसातिशयाःस्मृताः। नानापुण्यविशेषेण भोगाःशिवपुरे तथा
शुभाशुभफलंचापि भुज्यते सर्वदेहिभिः। शिवधर्मस्य चैकस्य फलं तत्रोपभुज्यते॥
यस्य यादृग्भवेत्पुण्यं श्रद्धापात्र विशेषतः। भोगाःशिवपुरे तस्य ज्ञेयाःसातिशयाःशुभाः

स्थानप्राप्तिःपरंतुल्या भोगाःशान्तिमयाःस्थिताः।
कुर्यात्पुण्यं महत्तस्मान्महाभोगजिगीषया॥ ११॥

सर्वातिशयमेवैकं भावितं च सुरोत्तमैः। आत्मभोगाधिपत्यंस्याच्छिवःसर्वजगत्पतिः
केचित्तत्रैव मुच्यन्ते ज्ञानयोगरता नराः। आवर्तन्ते पुनश्चान्ये संसारेभोगतत्पराः॥

तस्माद्विमुक्तिमिच्छंस्तु भोगासक्तिं च वर्जयेत्।
विरक्तःशान्तिचित्तात्मा शिवज्ञानमवाप्नुयात्॥ १४॥

ये चापीशान्यहृदया यजन्तीशं प्रसङ्गतः। तेषामपि ददातीशःस्थानं भावानुरूपतः॥
तत्रार्चयन्ति ये रुद्रं स कृदुच्छिन्न कल्मषाः। तेषां पिशाचलोकेषु भोगानीशःप्रयच्छति
सन्तप्ताद्दुःखभारेण म्रियन्तेसर्वदेहिनः। अन्नदःपुण्यदःप्रोक्तःप्राणदश्चापि सर्वदः॥१७॥

तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत्।
त्रैलोक्ये यानिरत्नानि भोगस्त्रीवाहनानि च॥ १८॥

अन्नदानप्रदःसर्वमिहामुत्रफलं लभेत्। यस्यान्नपान पुष्टाङ्गःकुरुते पुण्यसञ्चयम्॥
अन्नप्रदातुस्तस्यार्धं कर्तुश्चार्धं न संशयः। धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम्॥

स्थितिस्तस्यान्नपानाभ्यामतस्तत्सर्वसाधनम्।
अन्नं प्रजापतिःसाक्षादन्नंविष्णुःशिवःस्वयम्॥ २१॥

तस्मादन्नसमंदानं न भूतं न भविष्यति। त्रयाणामपि लोकानामुदकं जीवनंस्मृतम्॥
पवित्रमुदकंदिव्यं शुद्धंसर्वरसायनम्। अन्नपानाश्वगो वस्त्र शय्यासूत्रासनानि च॥

प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः।
एवंदानविशेषेण धर्मराज पुरं नरः॥ २४॥

यस्माद्याति सुखेनैव तस्माद्धर्मं समाचरेत्। ये पुनःक्रूरकर्माणःपापादानविवर्जिताः॥
भुञ्जते दारुणंदुःखं नरके नृपनन्दन। तथासुखं प्रभुञ्जन्ति दानकर्तार एव तु॥ २६॥

तेषां तु सम्भवेत्सौख्यं कर्मयोगरतात्मनाम् । अप्रमेयगुणैर्दिव्यैर्विमानैःसर्वकाम

असङ्ख्यैस्तत्पुरंव्याप्तं प्राणिनामुपकारकैः ।

सहस्रसोमदिव्यं वा सूर्यतेजःसमप्रभम् ॥ २८ ॥

रुद्रलोकमितिप्रोक्तमशेषगुणसंयुतम् । सर्वेषांशिवभक्तानां तत्पुरं परिकीर्तितम्

रुद्रक्षेत्रे मृतानां च जङ्गमस्थावरात्मनाम् । अप्येकदिवसं भक्त्या यः पूजयति श

सोऽपि याति शिवस्थानं किंपुनर्बहुशोऽर्चयन् ।

वैष्णवा विष्णुभक्ताश्च विष्णुध्यानपरायणाः ॥ ३१ ॥

तेऽपिगच्छन्ति वैकुण्ठे समीपं देवचक्रिणः। ब्रह्मवादी च धर्मात्मा ब्रह्मलोकंप्रयाति

पुण्यकर्तासु पुण्येन पुण्यलोकं प्रयाति च । तस्मादीशे सदाभक्तिं भावयेदात्मनात्

हरौवापि महाराज युक्तात्मा ज्ञानवान्स्वयम् ।

तस्मात्सर्वविचारेण भावदोष विचारतः ॥ ३४ ॥

एवं विष्णुप्रभावेन विशिष्टेनापि कर्मणा । नरैःस्थानमवाप्येत देशभावानुरूप

इत्येतदपरंप्रोक्त श्रीमच्छिवपुरंमहत् । देहिनां कर्मनिष्ठानां पुनरावर्त्तकं स्मृतम् ॥

ऊद्ध्र्वं शिवपुराज्ज्ञेयं वैष्णवंलोकमुत्तमम् ।

वैष्णवामानवा यान्ति विष्णुध्यानपरायणाः ॥ ३७ ॥

ब्राह्मणा ब्रह्मलोकं तु सदाचारा नरोत्तमाः। प्रयान्ति यज्विनःसर्वे पुरींतांतत्त्वकोवि

ऐन्द्रलोकं तथा यान्ति क्षत्त्रिया युद्धशालिनः ।

अन्ये च पुण्यकर्त्तारःपुण्यलोकान्प्रयान्ति ते ॥ ३६ ॥

इति श्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थे ययातिचरिते

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

महादारुणयमलोकपीड़ावर्णनम् ।

मातलिरुवाच ।

मपीडां प्रवक्ष्यामि महातीव्रां सुदारुणाम् । भुञ्जते पापिनःसर्वे क्रूरास्ते ब्रह्मघातकाः
क्वचित्पापाःप्रपच्यन्ते तीव्रेण करिषाग्निना । क्वचित्सिंहैर्वृकैर्व्याघ्रैर्दंशैःकीटैश्च दारुणैः
क्वचिन्महाजलौकाभिःक्वचिदाजगरैःपुनः । मक्षिकाभिश्च रौद्राभिःक्वचित्सर्पैर्विषोल्बणैः
मत्तमातङ्गयूथैश्च बलोत्कृष्टैःप्रमाथिभिः । पन्थानमुल्लिखद्भिश्च तीक्ष्णश्रृङ्ग महावृषैः ॥
महाश्रृङ्गैश्च महिषैर्दुष्टगात्र प्रबाधकैः ।
डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः ॥ ५ ॥
व्याधिभिश्च महाघोरैःपीड्यमाना व्रजन्ति ते । महातुलांसमारूढा दह्यमाना दवानलैः
महावेगप्रधूतास्ते महाचण्डेन वायुना । महापाषाणवर्षेण भिद्यमानाश्च सर्वतः ॥
तद्भिर्वज्रनिर्घोषैरुल्कापातैश्च दारुणैः । प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमाना व्रजन्ति ते ॥
महतापां सुवर्षेण पूर्यमाणा यमङ्गताः ।
ये नराःपापकर्माणःपापंभुञ्जन्ति दारुणम् ॥ ६ ॥
एवं पापविशेषेण पापिष्ठाःपापकारकाः ।
नरकं प्रतिभुञ्जन्ति बहुपीडा समाकुलम् ॥ १० ॥
ते तेसर्वमाख्यातं विवेकं पुण्यपापयोः । अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि धर्मशास्त्रमनुत्तमम्

इति श्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

देवलोकसंस्थानवर्णनम् ।

ययातिरुवाच ।

यत्त्वयासर्वमाख्यातं धर्माधर्ममनुत्तमम् । शृण्वतोऽथ ममश्रद्धा पुनरेव प्रवर्तते।
देवानां लोकसंस्थानां वदसङ्ख्याःप्रकीर्तिताः । यस्यपुण्यप्रसङ्गेन येनप्राप्तं च।

मातलिरुवाच ।

योगयुक्तं प्रवक्ष्यामि तपसायदुपार्जितम् । देवानां लोकसंस्थानं सुखभोगप्रदा
धर्मभावं प्रवक्ष्यामि आयासैरर्जितं पृथक् । उपरिष्टाच्च लोकानांस्वरूपंचाप्यु

तत्राष्टगुणमैश्वर्यं पार्थिवं पिशिताशिनाम् ।
तस्मात्सद्योगतानां च नराणां तत्समं स्मृतम् ॥ ५ ॥

रक्षसां षोडशगुणं पार्थिवानां च तद्विधम् । एवं निरवशेषं च यच्छेषं कुलते

गन्धर्वाणां च वायव्यं याक्षं च सकलं स्मृतम् ।
पाञ्चभौतिकमिन्द्रस्य चत्वारिंशद्गुणंमहत् ॥ ७ ॥

सोमस्य मानसं दिव्यंविश्वेशंपाञ्चभौतिकम् । सौम्यंप्रजापतीशानामहङ्कारगुणा
चतुष्षष्टिगुणंब्राह्मं बौधमैश्वर्यमुत्तमम् । विष्णोःप्राधानिकं तन्त्रमैश्वर्यं ब्रह्मणः
श्रीमच्छिवपुरेदिव्ये ऐश्वर्यं सर्वकामिकम् । अनन्तगुणमैश्वर्यं शिवस्यात्मगुणं

आदिमध्यान्तरहितं विशुद्धं तत्त्वलक्षणम् ।
सर्वावभासकं सूक्ष्ममनौपम्यं परात्परम् ॥ ११ ॥

सुसम्पूर्णं जगद्द्वेषं पशुपाश विमोक्षणम् । यो यत्स्थानमनुप्राप्तस्तस्य भोगस्त
विमानं तत्समानं च भवेदीश प्रसादतः । नानारूपाणि ताराणां दृश्यन्तेकोट्य

अष्टाविंशतिरेवं ते सन्दीप्ताःसुकृतात्मनाम् ।
ये कुर्वन्ति नमस्कारमीश्वराय कचित्कचित् ॥ १४ ॥

स्पर्कात्कौतुकाल्लोभात्तद्विमानं लभन्ति ते। नामसङ्कीर्तनाद्वापि प्रसङ्गेन शिवस्य यः
र्याद्वापि नमस्कारं न तस्य विलयो भवेत्। इत्येतागतयस्तत्र महत्यःशिवकर्मणि॥
र्मणाभ्यन्तरेणापि पुंसामीशानभावतः। प्रसङ्गेनापि ये कुर्युःशङ्करस्मरणंनराः॥१७॥
तैर्लभ्यंत्वतुलंसौख्यं किंपुनस्तत्परायणैः।
विष्णुचिन्तां प्रकुर्वन्ति ध्यानेन गतमानसाः॥ १८॥
यान्ति परमंस्थानं तद्विष्णोःपरमंपदम्। शैवं च वैष्णवं रूपमेकरूपं नरोत्तम॥१९॥
ग्रोश्च अन्तरंनास्ति एकरूप महात्मनोः। शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे॥
वस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयंशिवः। एकमूर्तिस्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
त्रयाणामन्तरंनास्ति गुणभेदाःप्रकीर्तिताः।
शिवभक्तोऽसि राजेन्द्र तथा भागवतोऽसि वै॥ २२॥
तेन देवाःप्रसन्नास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सुप्रीता वरदा राजन्कर्मणस्तव सुव्रत॥ २३॥
ादेशात्समायातःसन्निधौ तवमानद। ऐन्द्रमेनं पदंयाहि पश्चाद्ब्राह्मंमहेश्वरम्॥२४॥
णवं च प्रयाहि त्वं दाहप्रलयवर्जितम्। अनेनापि विमानेन दिव्येन सर्वगामिना॥
दिव्यमूर्तिरतोभुङ्क्ष्व दिव्यभोगान्मनोरमान्।
समारुह्य विमानं त्वं पुष्पकं सुखगामिनम्॥ २६॥

सुकर्मोवाच।

मुक्त्वा द्विजश्रेष्ठ मौनवान्मातलिस्तदा। राजानं धर्मतत्त्वज्ञं ययातिं नहुषात्मजम्॥

इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थेययातिचरित्रे
एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

ययातिनास्वशरीरप्रसंसापूर्वकं स्वर्गागमनास्वीकरणम् ।

पिप्पल उवाच ।

मातलेश्च वचःश्रुत्वा सराजा नहुषात्मजः । किंचकार महाप्राज्ञस्तन्मे विस्तरे

सर्वपुण्यमयीपुण्या कथेयं पापनाशिनी । श्रोतुमिच्छाम्यहं प्राज्ञ नैवतृप्यामिस

सुकर्मोवाच ।

सर्वधर्मभृतांश्रेष्ठो ययातिर्नृपसत्तमः । तमुवाचागतंदूतं मातलिं शक्रसारथिम्

शरीरंनैवत्यक्ष्यामि गमिष्ये न दिवं पुनः । शरीरेणविनादूत पार्थिवेन न संश

यद्यप्येवं महादोषाःकायस्यैव प्रकीर्तिताः । पूर्वंचापि समाख्यातंत्वयासर्वं गुण

नाहंत्यक्ष्ये शरीरं वै नागमिष्ये दिवंपुनः ।

इत्याचक्ष्व इतोगत्वा देवदेवं पुरन्दरम् ॥ ६ ॥

एकाकिना हि जीवेन कायेनापि महामते । नैवसिद्धि प्रयात्येवं सांसारिकिश

नैव प्राणंविनाकायो जीवःकायंविना न हि । उभयोश्चापि मित्रत्वं नयिष्येनात

यस्य प्रसादभावाद्वै सुखमश्नाति केवलम् ।

शरीरस्याप्ययं प्राणो भोगानन्यान्मनोऽनुगान् ॥ ९ ॥

एवंज्ञात्वा स्वर्गभोग्यं न भोज्यं देवदूतक ।

सम्भवन्ति महादुष्टा व्याधयो दुःखदायकाः ॥ १० ॥

मातले किल्विषाच्चैव जरादोषात्प्रजायते । पश्य मे पुण्यसंयुक्तं कायं षोडशवा

जन्मप्रभृति मे कायःशतार्धाब्दंप्रयाति च । तथापि नूतनोभावःकायस्यापि

ममकालोगतो दूत अब्दानांशतमुत्तमम् ।

यथा षोडशवर्षस्य कायःपुंसःप्रशोभते ॥ १३ ॥

यथा मे शोभतेदेहो बलवीर्यसमन्वितः । नैवग्लानिर्न मे हानिर्नश्रमो व्याध

तले ममकायोऽपि धर्मोत्साहेन वर्द्धते। सर्वामृतमयं दिव्यमौषधं परमौषधम्॥
पापव्याधि प्रणाशार्थं धर्माख्यंहि कृतम्पुरा।
तेन मे शोधितःकायो गतदोषस्तु जायते॥ १६॥
षीकेशस्य सन्धानं नामोच्चारणमुत्तमम्। एतद्रसायनं दूत नित्यमेवं करोम्यहम्॥
तेन मे व्याधयो दोषाः पापाद्याःप्रलयंगताः।
विद्यमाने हि संसारे कृष्णनाम्नि महौषधे॥ १८॥
नवा मरणंयान्ति पापव्याधि प्रपीडिताः। न पिबन्तिमहामूढाःकृष्णनामरसायनम्
ध्यानेन ज्ञानेन पूजाभावेन मातले। सत्येन दानपुण्येन ममकायो निरामयः॥२०॥
पापर्द्धरामयाःपीडाःप्रभवन्ति शरीरिणः।
पीडाभ्यो जातयेमृत्युःप्राणिनां नात्रसंशयः॥ २१॥
पुण्याद्धर्मःप्रकर्तव्यःपुण्यसत्याश्रयैर्नरैः। पञ्चभूतात्मकःकायःशिरासन्धिविजर्जरः॥
एवं सन्धीकृतोमर्त्यो हेमकारीव टङ्कणैः
तत्रभाति महानग्निर्द्धातुरेवचरःसदा॥ २३॥
कखण्डमये विप्रःय संधत्ते स बुद्धिमान्। हरेर्नाम्ना च दिव्येन सौभाग्येनापि पिप्पलः
नाशात्मकाहिये खण्डाशतसन्धिविजर्जराः। तेनसन्धारिताःसर्वे कायोधातुसमोभवेत्
हरेःपूजोपचारेण ध्यानेन नियमेन च।
सत्यभावेन दानेन नूतःकायो विजायते॥ २६॥
नश्यन्ति कायस्य व्याधयःश्रृणुमातले। वाह्याभ्यन्तरशोचं हि दुर्गन्धिर्नैवजायते
स्ततो भवेत्सूत प्रसादात्तस्य चक्रिणः। नाहं स्वर्गंगमिष्यामिस्वर्गमत्रकरोम्यहम्
इश्वाचैव भावेन स्वधर्मेण महीतलम्। स्वर्गरूपं करिष्यामि प्रसादात्तस्यचक्रिणः॥
एवं ज्ञात्वा प्रयाहि त्वं कथयस्व पुरन्दरम्॥ ३०॥

सुकर्मोवाच।

कर्ण्यततः सूतो नृपतेःपरिभाषितम्। आशीर्भिरभिनन्द्याथ आमन्त्र्य नृपतिंगतः
ायनिवेदयामास इन्द्राय च महात्मने। समाकर्ण्य सहस्राक्षो ययातेस्तु महात्मनः

तस्याथ चिन्तयामासानयनार्थं दिवंप्रति ॥ ३३ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थेययातिचरिते द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

ययातिना स्वराज्येविष्णुसेवाज्ञोद्घोषणम् ।

पिप्पल उवाच ।

गतेतस्मिन्महाभागे दूतइन्द्रस्य वै पुनः । किंचकार सधर्मात्मा ययातिर्नहुषात्म

सुकर्मोवाच ।

तस्मिन्गते देववरस्यदूते सचिन्तयामास नरेन्द्रसूनुः ।
आहूयदूतान्प्रवरान्ससत्वरं धर्मार्थयुक्तंवच आदिदेशः ॥ २ ॥
गच्छन्तुदूताःप्रवराःपुरोत्तमे देशेषु द्वीपेष्वखिलेषुलोके ।
कुर्वन्तुवाक्यं ममधर्मयुक्तं व्रजन्तु लोकाःसुपथा हरेश्च ॥ ३ ॥
भावैःसुपुण्यैरमृतोपमानैर्ध्यानैश्चज्ञानैर्यजनैस्तपोभिः ।
यज्ञैश्च दानैर्मधुसूदनैकमर्चन्तुलोकाविषयान्विहाय ॥ ४ ॥
सर्वत्र पश्यन्त्वसुरारिमेक शुष्केषुचार्द्रेष्वपि स्थावरेषु ।
अभ्रेषु भूमौ सचराचरेषु स्वीयेषु कायेष्वपि जीवरूपम् ॥ ५ ॥
देवंतमुद्दिश्य दिशन्तु दानमातिथ्यभावैःपरिपैत्रिकैश्च ।
नारायणं देववरंयजध्वं दोषैर्विमुक्ता अचिराद्भविष्यथ ॥ ६ ॥
यो मामकं वाक्यमिहैव मानवो लोभाद्विमोहादपिनैव कारयेत् ।
स शास्यतां यास्यति निर्घृणोध्रुवं ममापि चौरो हि यथानिकृष्टः ।
आकर्ण्यवाक्यं नृपतेश्चदूताःसंहृष्टभावाःसकलां च पृथ्वीम् ।

आचख्युरेवं नृपतेःप्रणीतमादेशभावं सकलं प्रजासु ॥ ८ ॥
विप्रादिमर्त्या अमृतंसुपुण्यमानीतमेवं भुवितेन राज्ञा ।
पिबन्तु पुण्यं परिवैष्णवाख्य दोषैर्विहीनं परिणाममिष्टम् ॥ ९ ॥
श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेवम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १० ॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणंसुरेशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ ११ ॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १२ ॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १३ ॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १४ ॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम् ।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १५ ॥
आदित्यरूपं तमसांविनाशं बन्धस्यनाशंमतिपङ्कजानाम् ।
नामामृतं दोषहरं सुराज्ञा आनीतमस्त्येव पिबन्तुलोकाः ॥ १६ ॥
नामामृतं सत्यमिदं सुपुण्यमधीत्य यो मानव विष्णुभक्तः ।
प्रभातकाले नियतो महात्मा सयातिमुक्तिं न हि कारणं च ॥ १७ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णनेययातिचरित्ते त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

———

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

नृपाज्ञाश्रवणोत्तरंसर्वैःप्रजाजनैर्भागवतधर्मस्वीकरणम् ।

सुकर्मोवाच ।

दूतास्तु ग्रामेषु वदन्ति सर्वे द्वीपेषु देशेष्वथपत्तनेषु ।
लोकाःशृणुध्वं नृपतेस्तदाज्ञां सर्वप्रभावैर्हरिमर्चयन्तु ॥ १ ॥
दानैश्चयज्ञैर्बहुभिस्तपोभिर्धर्माभिलाषैर्यजनैर्मनोभिः ।
ध्यायन्तुलोका मधुसूदनं तु आदेशमेवं नृपतेस्तु तस्य ॥ २ ॥
एवं सुघुष्टं सकलं तु पुण्यमाकर्ण्य तं भूमितलेषुलोकैः ।
तदाप्रभृत्येव जयन्ति विष्णुं ध्यायन्ति गायन्ति जपन्ति मर्त्याः ॥ ३ ॥
वेदप्रणीतैश्च सुसूक्तमन्त्रैःस्तोत्रैःसुपुण्यैरमृतोपमानैः ।
श्रीकेशवंतद्गतमानसास्ते व्रतोपवासैर्नियमैश्चदानैः ॥ ४ ॥
विहायदोषान्निजकायचित्त वागुद्भवान्प्रेमरताःसमस्ता ।
लक्ष्मीनिवासं जगतांनिवासं श्रीवासुदेवं परिपूजयन्ति ॥ ५ ॥

इत्याज्ञातस्यभूपस्य वर्ततेक्षितिमण्डले । वैष्णवेनापि भावेन जनाःसर्वेजया
नामभिःकर्मभिर्विष्णुं यजन्ते ज्ञानकोविदाः ।
तद्ध्यानास्तद्व्यवसिता विष्णुपूजापरायणाः ॥ ७ ॥

यावद्भूमण्डलं सर्वं यावत्तपतिभास्करः । तावद्धिमानवालोकाःसर्वेभागवता
विष्णोर्ध्यानप्रभावेनपूजास्तोत्रेणनामतः । आधिव्याधिविहीनास्तेसञ्जाता मानवा
वीतशोकाश्चपुण्याश्च सर्वेचैवतपोधनाः । सञ्जाता वैष्णवाविप्र प्रसादात्तस्यवि
आमयैश्च विहीनास्ते दोषैरोषैश्च वर्जिताः ।
सर्वैश्वर्यं समापन्नाःसर्वरोगविवर्जिताः ॥ ११ ॥

प्रसादात्तस्यदेवस्य [illegible] । अमराः निर्जरास्सर्वेधनधान्यसमन्वि

मर्त्याविष्णुप्रसादेन पुत्रपौत्रैरलङ्कृताः । तेषामेव महाभाग गृहद्वारेषु नित्यशः ॥
कल्पद्रुमाःसुपुण्यास्ते सर्वकामफलप्रदाः । सर्वकामदुधा गावःसचिन्तामणयस्तथा ॥
सन्ति तेषां गृहेपुण्याःसर्वकामप्रदायकाः । अमरामानवाजाताःपुत्रपौत्रैरलङ्कृताः ॥

सर्वदोषविहीनास्ते विष्णोश्चैव प्रसादतः ।
सर्वसौभाग्यसम्पन्नाः पुण्यमङ्गलसंयुताः ॥ १६ ॥

सुपुण्यादानसम्पन्ना ज्ञानध्यानपरायणाः । न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणंनृणाम्

तस्मिञ्शासति धर्मज्ञे ययातौ नृपतौ तदा ।
वैष्णवा मानवाःसर्वे विष्णुव्रतपरायणाः ॥ १८ ॥
तद्ध्यानास्तद्गताःसर्वे सञ्जाता भावतत्पराः ।
तेषां गृहाणि दिव्यानि पुण्यानि द्विजसत्तम ॥ १९ ॥
पताकाभिःसुशुक्लाभिःशङ्खयुक्तानि तानि वै ।
गदाङ्कितध्वजाभिश्च नित्यं चक्राङ्कितानि च ॥ २० ॥

पद्माङ्कितानि भासन्ते विमानप्रतिमानि च । गृहाणिभित्तिभागेषुचित्रितानि सचित्रकैः
सर्वत्रगृहद्वारेषु पुण्यस्थानेषु सत्तमाः । वनानिसन्ति दिव्यानि शाद्वलानि शुभानि च

तुलस्या च द्विजश्रेष्ठ तेषु केशवमन्दिरैः ।
भासन्ते पुण्यदिव्यानि गृहाणि प्राणिनां सदा ॥ २३ ॥

सर्वत्रवैष्णवोभावो मङ्गलो वहुदृश्यते । शङ्खशब्दाश्चभूलोके मिथःस्फोटरवैस्सखे ॥
श्रूयन्ते तत्र विप्रेन्द्र दोषपाप विनाशकाः । शङ्खस्वस्तिकपद्मानि गृहद्वारेषु भित्तिषु ॥

विष्णुभक्त्या च नारीभिर्लिखितानि द्विजोत्तम ।
गीतरागसुवर्णैश्च मूर्च्छनातानसुस्वरैः ॥ २६ ॥
गायन्ति केशवंलोका विष्णुध्यानपरायणाः ॥ २७ ॥
हरिं मुरारिं प्रवदन्ति केशवं प्रीत्याजितं माधवमेव चान्ये ।
श्रीनारसिंहं कमलेक्षणं तं गोविन्दमेकं कमलापतिं च ॥ २८ ॥
कृष्णं शरण्यं शरणं जपन्ति रामं च जप्यैःपरिपूजयन्ति ।

दण्डप्रणामैःप्रणमन्ति विष्णुं तद्ध्यानयुक्ताःपरिवैष्णवास्ते ॥ २१ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णने ययाति
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

वैष्णवधर्माचरणेन ययातेः सदातारुण्यं तत्प्रजानां च मृत्युराहित्यवर्णन

सुकर्मोवाच ।

विष्णुंकृष्णंहरिंरामंमुकुन्दंमधुसूदनम् । नारायणं विष्णुरूपंनारसिंहंतमच्युतम्॥
केशवं पद्मनाभं च वासुदेवं च वामनम् । वाराहंकमठंमत्स्यं हृषीकेशंसुराधि
विश्वेशं विश्वरूपं च अनन्तमनघंशुचिम् । पुरुषंपुष्कराक्षं च श्रीधरंश्रीपतिंहरि
श्रीदं श्रीशं श्रीनिवासं माधवं मोक्षदं प्रभुम् ।
इत्यवं हि समुच्चारं नामभिर्मानवाःसदा ॥ ४ ॥
प्रकुर्वन्ति नराःसर्वे बालवृद्धाःकुमारिकाः । स्त्रियो हरिंसुगायन्ति गृहकर्मरताःस
आसनेशयनेयाने ध्यानेवचसि माधवम् । क्रीडमानास्तथाबाला गोविन्दं प्रणम
दिवारात्रौ सुमधुरं ब्रुवन्ति हरिनाम च । विष्णूच्चारोहि सर्वत्र श्रूयते द्विजसत्तम
वैष्णवेन प्रभावेन मर्त्या वर्तन्ति भूतले ।
प्रासादकलशाग्रेषु देवतायतनेषु च ॥ ८ ॥
यथा सूर्यस्यबिम्बानि तथा चक्राणिभान्ति च ।
वैकुण्ठे दृश्यते भावस्तद्भावं जगतीतले ॥ ९ ॥
तेन आज्ञाकृतं विप्र पुण्यंचापि महात्मना । विष्णुलोकस्य समतां तथानीतं मही
नहुषस्यापि पुत्रेण वैष्णवेन ययातिना । उभयोर्लोकयोर्भावमेकीभूतं महीतलम्
भूतलस्यापि विष्णोश्च अन्तरंनैव दृश्यते । विष्णूच्चारं तु वैकुण्ठे यथाकुर्वन्तिवै

भूतले तादृशोच्चारं प्रकुर्वन्ति च मानवाः। उभयोर्लोकयोर्विप्र एकभावःप्रदृश्यते ॥१३॥

जरारोगभयंनास्ति मृत्युहीना नराविभुः।
दानभोगप्रभावश्च अधिको दृश्यते भुवि ॥ १४ ॥

पुत्राणां तु सुखं पुण्यमधिकं पौत्रजं नराः।
प्रभुञ्जन्ति सुखेनापि मानवा भुविसत्तम ॥ १५ ॥

विष्णोःप्रसाददानेन उपदेशेन तस्य च। सर्वव्याधिविनिर्मुक्ता मानवा वैष्णवाःसदा॥
स्वर्गलोकप्रभावो हि कृतोराज्ञा महीतले। पञ्चविंशप्रमाणेन वर्षाणि नृपसत्तम ॥१७॥
वेदविज्ञानराःसर्वे ज्ञानध्यानपरायणाः। यज्ञदानपराःसर्वे दयाभावाश्च मानवाः ॥१८॥
उपकाररताःपुण्या धन्यास्ते कीर्तिभाजनाः। सर्वेधर्मपराविप्र विष्णुध्यानपरायणाः ॥

राज्ञातेनोपदिष्टास्ते सञ्जाता वैष्णवा भुवि।
श्रूयतां नृपशार्दूल चरित्रं तस्य भूपतेः ॥ २० ॥

सर्वधर्मपरोनित्यं विष्णुभक्तश्च नाहुषिः।
अब्दानां तत्रलक्षं हि तस्याप्येवं गतंभुवि ॥ २१ ॥

तनो दृश्यते कायःपञ्चविंशाब्दिको यथा। पञ्चविंशाब्दिकोभाति रूपेणवयसा तदा
बलःप्रौढिसम्पन्नःप्रसादात्तस्यचक्रिणः। मानुषा भुवमास्थाय यमंनैव प्रयान्ति ते ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्ताःक्लेशपाशविवर्जिताः। सुखिनोदानपुण्यैश्च सर्वधर्मपरायणाः॥२४॥
विस्तारं ते जनाःसर्वे सन्तत्यापि गतान्नृप। यथादूर्वावटाश्चैव विस्तारं यान्ति भूतले

तथा ते मानवाःसर्वे पुत्रपौत्रैःप्रविस्तृताः।
मृत्युदोषविहीनास्ते चिरंजीवन्ति वै जनाः ॥ २६ ॥

स्थिरकायाश्च सुखिनो जरारोगविवर्जिताः।
पञ्चविंशाब्दिकाःसर्वे नरादृश्यन्ति भूतले ॥ २७ ॥

सत्याचारपराःसर्वे विष्णुध्यानपरायणः। एवं सर्वेच मर्त्यास्ते प्रसादात्तस्य चक्रिणः
सञ्जाता मानवाःसर्वे दानभोगपरायणः। मृतो न श्रूयते लोके मर्त्यःकोऽपि नरोत्तम॥
शोकं नैव प्रपश्यन्ति दोषंनैव प्रयान्ति ते। यद्रूपं स्वर्गलोकस्य तद्रूपंभूतलस्य च॥३०॥

सञ्जातं मानवश्रेष्ठ प्रसादात्तस्य चक्रिणः। विभ्रष्टा यमदूतास्ते विष्णुदूतैश्च ताडि

रुदमानागताःसर्वे धर्मराजं परस्परम्।

तत्सर्वं कथितं दूतैश्चेष्टितं भूपतेस्तु तैः ॥ ३२ ॥

अमृत्युभूतलंजातं दानभोगेन भास्करे।

नहुषस्यात्मजेनापि कृतंदेव ययातिना ॥ ३३ ॥

विष्णुभक्तेन पुण्येन स्वर्गरूपं प्रदर्शितम्। एवमाकर्णितंसर्वं धर्मराजेन वै

धर्मराजस्तदातत्र दूतेभ्यःश्रुतविस्तरः। चिन्तयामास सर्वार्थं श्रुत्वैवं नृपचेष्टि

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णनेययातिचरि

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

इन्द्राय ययातिकर्मनिवेदनपुरःसरं ययातेः स्वर्गानयनाय प्रार्थनम्।

सुकर्मोवाच।

सौरिर्दूतैस्तथासर्वैःसहस्वर्गं जगाम सः। द्रष्टुं तत्र सहस्राक्षं देववृन्दैःसमावृतम्

धर्मराजं समायान्तं ददर्श सुरराट् तदा। समुत्थाय त्वरायुक्तो दत्त्वाचार्घमनुत्तम

पप्रच्छागमनं तस्य कथयस्व ममाग्रतः। समाकर्ण्य महद्वाक्यं देवराजस्यभाषित

धर्मराजोऽब्रवीत्सर्वं ययातेश्चरितंमहत्। श्रूयतां देवदेवेश यस्मादागमनं मम

कथयाम्यहमत्रापि येनाहमागतस्तव। नहुषस्यात्मजेनापि वैष्णवेन महात्मना

वैष्णवाश्च कृतामर्त्या ये वसन्ति महीतले। वैकुण्ठस्यसमंरूपं मर्त्यलोकस्य वै

अमरामानवाजाता जरारोगविवर्जिताः।

पापमेव न कुर्वन्ति असत्यं न वदन्ति ते ॥ ७ ॥

कामक्रोधविहीनास्ते लोभमोहविवर्जिताः।

दानशीला महात्मानःसर्वे धर्मपरायणाः ॥ ८ ॥

सर्वधर्मैःसमर्चन्ति नारायणमनामयम् । तेन वैष्णवधर्मेण मानवा जगतीतले ॥ ९ ॥

निरामया वीतशोकाःसर्वे च स्थिरयौवनाः । दुर्वावटा यथादेव विस्तारंयान्ति भूतले

तथा ते विस्तरंप्राप्ताःपुत्रपौत्रैःप्रपौत्रकैः । तेषां पुत्रैःप्रपौत्रैश्च वंशाद्वंशान्तरंगताः॥११॥

एवं हि वैष्णवःसर्वो जरामृत्युविवर्जितः । मर्त्यलोकःकृतस्तेन नहुषस्यात्मजेन वै ॥

पदभ्रष्टोऽस्मि सञ्जातो व्यापारेण विवर्जितः ।

एतत्सर्वं समाख्यातं ममकर्म विनाशनम् ॥ १३ ॥

एवं ज्ञात्वा सहस्राक्ष लोकस्यास्य हितंकुरु ।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यथापृष्टोऽस्मि वै त्वया ॥ १४ ॥

एतस्मात्कारणादिन्द्र आगतस्तवसन्निधौ ॥ १५ ॥

इन्द्र उवाच ।

पूर्वमेव मयादूत आगमाय महात्मनः । प्रेषितो धर्मराजेन्द्र दूतेनास्यापि भाषितम् ॥

नाहं स्वर्गसुखस्यार्थी नागमिष्ये दिवंपुनः । स्वर्गरूपं करिष्यामि सर्वं तद्भुमिमण्डलम्

इत्याचचक्षे भूपालःप्रजापाल्यं करोति सः । तस्य धर्मप्रभावेण भीतस्तिष्ठामि सर्वदा

धर्म उवाच ।

येनकेनाप्युपायेन तमानय सुभूपतिम् । देवराज महाभाग यदीच्छसि ममप्रियम् ॥१९॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य धर्मस्यापि सुराधिपः । चिन्तयामास मेधावी सर्वतत्त्वेनभूपते॥

कामदेवं समाहूय गन्धर्वांश्च पुरन्दरः । मकरन्दं रतिंदेव आनिनाय महामनाः ॥ २१॥

तथाकुरु तवैयूयं यथाऽऽगच्छति भूपतिः । यूयं गच्छन्तु भूलोकं मयादिष्टा न संशयः

काम उवाच ।

युवयोस्तु प्रियंपुण्यं करिष्यामि न संशयः। राजानं पश्य मांचैव स्थितंचैव समायुधि

एवमुक्त्वा गता सर्वे यत्रराजा स नाहुषि । नटरूपेण ते सर्वे कामाद्याः कर्मणाद्विज ॥

आशीर्भिरभिनन्द्यैव ते च ऊचुःसुनाटकम् । तेषां तद्वचनंश्रुत्वा ययातिःपृथिवीपतिः ॥

प्रभांचकार मेधावी देवरूपांसुपण्डितैः । समायातःस्वयंभूपो ज्ञानविज्ञानकोविदः ॥

तेषां तु नाटकं राजा पश्यमानःसनाहुषिः । चरितं वामनस्यापि उत्पत्तिविप्ररूपि

रूपेणाप्रतिमालोके सुस्वरं गीतमुत्तमम् ।
गायमाना जराराजन्नार्यारूपेण वै तदा ॥ २८ ॥

तस्यांगीतविलासेन हास्येन ललितेन च । मधुरालापतस्तस्य कन्दर्पस्य च माय
मोहितस्तेनभावेन दिव्येन चरितेन च । बलेश्चैव यथारूपं विन्ध्यावल्या यथापु
वामनस्य यथारूपं चक्रेमारोथताद्वशम् । सूत्रधारःस्वयंकामो वसन्तः पारिपार्श्व
नटीवेष धराजाता सारतिर्ह्यूवल्लभा । नेपथ्यान्तश्चरी राजन्सातस्मिन्नृत्यकर्म

मकरन्दो महाप्राज्ञःक्षोभयामास भूपतिम् ।
यथायथा पश्यति नृत्यमुत्तमं गीतं समाकर्णति सक्षितीशः ।
तथातथामोहितवान्सभूपतिं नटीप्रणीतेन महानुभावः ॥ ३४ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थे ययातिचरि
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नृत्यगीतपरवशतयाऽशौचलेशमात्रेण ययातेः शरीरे जराप्रवेशः ।

सुकर्मोवाच ।

कामस्य गीतलास्येन हास्येन ललितेन च । मोहितो राजराजेन्द्रो नटरूपेण पिप्प
कृत्वा मूत्रंपुरीषं च सराजा नहुषात्मजः । अकृत्वा पादयोःशौचमासने उपविष्टवा
तदनन्तरं तु सम्प्राप्य सञ्चजार जरानृपम् । कामेनापि नृपश्रेष्ठं इन्द्रकार्यं कृतंहित
निवृत्ते नाटकेतस्मिन्गतेषुतेषु भूपतिः । जराभिभूतोधर्मात्मा कामसंसक्तमान

मोहितः काममोहेन विह्वलो विकलेन्द्रियः ।
अतीवमुग्धो धर्मात्मा विषयैश्चापवाहितः ॥ ५ ॥

एकदा तु गतोराजा मृगयाव्यसनातुरः । वने च क्रीडतेसोऽपि मोहरागवशंगतः ॥६॥
सरसंक्रीडमानस्य नृपतेश्च महात्मनः । मृगश्चैकः समायातश्चतुःशृङ्गोह्यनौपमः ॥ ७ ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो राजन्हेमरूप तनुरुहः । रत्नज्योतिः सुचित्राङ्गो दर्शनीयो मनोहरः ॥८॥
अभ्यधावत्सवेगेन वाणपाणिर्धनुर्द्धरः । इत्यमन्यत मेधावी कोऽपिदैत्यःसमागतः ॥
मृगेण च सतेनापि दूरमाकर्षितो नृपः । गतः सरथवेगेन श्रमेण परिखेदितः ॥ १० ॥
वीक्षमाणस्य तस्यापि मृगश्चान्तरधीयत । स पश्यति वनं तत्र नन्दनोपममद्भुतम् ॥
चारुवृक्षसमाकीर्णं भूतपञ्चकशोभितम् । गुरुभिश्चन्दनैः पुण्यैः कदलीखण्डमण्डितैः
बकुलाशोकपुन्नागैर्नालिकेरैश्च तिन्दुकैः । पूगीफलैश्च खर्जूरैःकुमुदैः सप्तपर्णकैः ॥१३॥
पुष्पितैः कर्णिकारैश्च नानावृक्षैः सदाफलैः । पुष्पितामोदसंयुक्तैः केतकैः पाटलैस्ततः
वीक्षमाणो महाराजो ददर्श सरउत्तमम् । पुण्योदकेन सम्पूर्णं विस्तीर्णं पञ्चयोजनम्
हंसकारण्डवाकीर्णं जलपक्षिविनादितम् । कमलैश्चापिमुदितं श्वेतोत्पलविराजितम्

रक्तोत्पलैः शोभमानं हाटकोत्पलमण्डितम् ।
नीलोत्पलैःप्रकाशितं कह्लारैरतिशोभितम ॥ १७ ॥

मत्तैर्मधुकरैश्चापि सर्वत्रपरिनादितम् । एवं सर्वगुणोपेतं ददर्श सरउत्तमम् ॥ १८ ॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दशयोजनदीर्घकम् । तडागं सर्वतोभद्रं दिव्यभावैरलङ्कृतम् ॥
रथवेगेन संखिन्नःकिंचिच्छ्रमनिपीडितः । निषसाद तटेतस्य चूतच्छायांसुशीतलाम् ॥
स्नात्वा पीत्वा जलं शीतं पद्मसौगन्ध्यवासितम् । सर्वश्रमोपशमनममृतोपममेवतत् ॥
वृक्षच्छाये ततस्तस्मिन्नुपविष्टेन भूभृता । गीतध्वनिःसमाकर्णि गीयमानो यथातथा ॥

यथा स्त्रीगायते दिव्या तथायं श्रूयतेध्वनिः ।
गीतप्रियो महाराज एवं चिन्तां परांगतः ॥ २३ ॥

चिन्ताकुलस्तुधर्मात्मा यावच्चिन्तयतेक्षणम् । तावन्नारीवराकाचित्पीनश्रोणीपयोधरा
नृपतेः पश्यतस्तस्य वनेतस्मिन्समागता । सर्वाभरणशोभाङ्गी शीललक्षणसम्पदा ॥
तस्मिन्वनेसमायाता नृपतेः पुरतः स्थिता । तामुवाच महाराजः काहिकस्यभविष्यसि
किमर्थं हि समायाता तन्मेत्वं कारणं वद । पृष्टासती तदातेन न किंचिदपि पिप्पल ॥

शुभाशुभं च भूपालं प्रत्यवोचद्वरानना । प्रहस्यैवगताशीघ्रं वीणादण्डकराऽङ्ग
विस्मयेनापि राजेन्द्रोमहताव्यापितस्तदा । मयासम्भाषिताचेयं मां न ब्रूतेस्मसो
पुनश्चिन्ता समापेदे ययातिःपृथिवीपतिः । यो वै मृगो मयादृष्टश्चतुःश्रृङ्गःसुवर्ण

तस्मान्नारी समुद्भूता तत्सत्यं प्रतिभाति मे ।

मायारूपमिदं सत्यं दानवानां भविष्यति ॥ ३१ ॥

चिन्तयित्वा क्षणंराजा ययातिर्नहुषात्मजः । यावच्चिन्तयते राजातावन्नारी महा
अन्तर्धानंगता विप्र प्रहस्य नृपनन्दनम् । एतस्मिन्नन्तरेगीतं सुस्वरं पुनरेवतत् ॥
शुश्रुवे परमंदिव्यं मूर्छनातानसंयुतम् । जगाम सत्वरं राजा यत्रगीतध्वनिर्महान् ॥

जलान्ते पुष्करंचैव सहस्रदलमुत्तमम् ।

तस्योपरिवरानारी शीलरूपगुणान्विता ॥ ३५ ॥

दिव्यलक्षणसम्पन्ना दिव्याभरणभूषिता । दिव्यैर्भावैःप्रभात्येका वीणादण्डकरा
गायन्ती सुस्वरंगीतंतालमानलयान्वितम् । तेनगीतप्रभावेनमोहयन्ती चराचर

देवान्मुनिगणान्सर्वान्दैत्यान्गन्धर्वकिन्नरान् ।

तां दृष्ट्वा सचिशालाक्षीं रूपतेजोपशालिनीम् ॥ ३८ ॥

संसारेनास्तिचैवान्या नारीदृशीचराचरे । पुरानटो जरायुक्तो नृपतेःकायमेव हि ॥

सञ्चारितो महाकामस्तदासौ प्रकटोऽभवत् ।

घृतंस्पृष्ट्वा यथावह्नी रश्मिवान्सम्प्रजायते ॥ ४० ॥

तां च दृष्ट्वा तथाकामस्तत्कायात्प्रकटोऽभवत् ।

मन्मथाविष्टचित्तोऽसौ तां दृष्ट्वा चारुलोचनाम् ॥ ४१ ॥

ईदृग्रूपा न दृष्टा मे युवतीविश्वमोहिनी । चिन्तयित्वाक्षणं राजा कामसंसक्तमान
तस्याःसविरहेणापि लुब्धोऽभून्नृपतिस्तदा । कामाग्निनादह्यमानःकामज्वरेणपीड़ि

कथंस्यान्मम चैवेयं कथंभावो भविष्यति ।

यदा मां गृहते बाला पद्मास्यो पद्मलोचना ॥ ४४ ॥

यदीयं प्राप्यते तर्हि सफलंजीवितं भवेत् । एवंविचिन्त्य धर्मात्माययातिःपृथिवीप

तामुवाच वरारोहा कात्वं कस्यापि वा शुभे ।
पूर्वंदृष्टा तु या नारी सादृष्टा पुनरेव च ॥ ४६ ॥

तां पप्रच्छ सधर्मात्मा काचेयं तवपार्श्वगा । सर्वंकथय कल्याणि अहं हि नहुषात्मजः
सोमवंशप्रसूतोऽहं सप्तद्वीपाधिपःशुभे । ययातिर्नाम मे देविख्यातोऽहं भुवनत्रये ॥
तवसङ्गमनेचेतो भावमेवं प्रवाञ्छते । देहि मे सङ्गमं भद्रे कुरु सुप्रियमेव हि ॥ ४६ ॥
यं यं हि वाञ्छसे भद्रे तद्ददामि न संशयः । दुर्जयेनापि कामेन हतोऽहं वरवर्णिनि ॥

तस्मात्त्राहि सुदीनं मां प्रपन्नं शरणं तव ।
राज्यं च सकलामुर्वीं शरीरमपि चात्मनः ॥ ५१ ॥

सङ्गमे तवदास्यामि त्रैलोक्यमिदमेव ते । तस्य राज्ञोवचःश्रुत्वा सास्त्री पद्मनिभानना
विशालां स्वसखींप्राह ब्रूहि राजानमागतम् । नामचोत्पत्तिस्थानं च पितरंमातरं शुभे

ममापि भावमेकाग्रमस्याग्रे च निवेदय ।
तस्याश्च वाञ्छितं ज्ञात्वा विशाला भूपतिं तदा ॥ ५४ ॥
उवाच मधुरालापैःश्रूयतां नृपनन्दन ॥ ५५ ॥

विशालोवाच ।

कामएष पुरादग्धो देवदेवेन शम्भुना । रुरोद सारतिर्दुःखाद्भर्त्राहीनाऽपि सुस्वरम् ॥
अस्मिन्सरसि राजेन्द्र सारतिर्न्यवसत्तदा । तस्यप्रलापमेवं सा सुस्वरं करुणान्वितम् ॥
समाकर्ण्य ततोदेवाःकृपया परयान्विताः । सञ्जाता राजराजेन्द्र शङ्करंवाक्यमब्रुवन् ॥
जीवयस्व महादेव पुनरेव मनोभवम् । वराकीयं महाभाग भर्तृहीनाहि कीदृशी ॥५६॥

कामेनापि समायुक्तामस्मत्स्नेहात्कुरुष्व हि ।
तच्छ्रुत्वा च वचःप्राह जीवयामि मनोभवम् ॥ ६० ॥

कायेनापि विहीनोऽयं पञ्चबाणोमयोभवः । भविष्यति न सन्देहो माधवस्य सखापुनः
दिव्येनापिशरीरेण वर्तयिष्यति नान्यथा । महादेव प्रसादाच्च मीनकेतुःसजीवितः ॥
आशीर्भिरभिनन्द्यैवं देव्याःकामं नरोत्तम । गच्छकाम प्रवर्तस्व प्रियया सह नित्यशः ॥
एवमाह महातेजाःस्थिति संहारकारकः । पुनःकामःसरःप्राप्तो यत्रास्ते दुःखितारतिः ॥

इदं कामसरो राजन्रतिरत्र सुसंस्थिता। दग्धेसति महाभागे मन्मथे दुःखधर्षिता
रत्याःकोपात्समुत्पन्नःपावको दारुणाकृतिः। अतीवदग्धा तेनापि सारतिर्मोहमूर्छिता
अश्रुपातं मुमोचाथ भर्तृहीना नरोत्तम।
नेत्राभ्यां हि जलेतस्याःपतिता अश्रुबिन्दवः॥ ६७॥
तेभ्योजातो महाशोकःसर्वसौख्यप्रणाशकः। जरापश्चात्समुत्पन्ना अश्रुभ्यो नृपसत्तम
वियोगोनाम दुर्मेधास्तेभ्योजज्ञे प्रणाशकः। दुःखसन्तापकौचोभौ जज्ञाते दारुणौ
मूर्छानाम ततोजज्ञे दारुणा सुखनाशिनी।
शोकाज्जज्ञे महाराज कामज्वरोऽथ विभ्रमः॥ ७०॥
प्रलापो विह्वलश्चैव उन्मादो मृत्युरेव च। तस्याश्च अश्रुबिन्दुभ्यो जज्ञिरे विश्वनाशन
रत्याःपार्श्वे समुत्पन्नाःसर्वेतापाङ्गधारिणः। मूर्तिमन्तो महाराज सद्भावगुणसंयुताः
कामएषसमायातःकेनाप्युक्तं तदानृप। महानन्देनसंयुक्ता दृष्ट्वा कामं समागतम्
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां पतिता अश्रुबिन्दवः। अप्सुमध्ये महाराज चापल्याज्जज्ञिरेप्र
प्रीतिर्नाम तदाजज्ञे ख्यातिर्लज्जा नरोत्तमः।
तेभ्योजज्ञे महानन्दःशान्तिश्चान्या नृपोत्तम॥ ७५॥
जज्ञाते द्वेशुभेकन्ये सुखसम्भोगदायिके। लीलाक्रीडा मनोभाव संयोगस्तु महान्नृप
रत्यास्तु वामनेत्राद्वै आनन्दादश्रुबिन्दवः। जलान्ते पतिताराजंस्तस्माज्जज्ञे सुपङ्कज
तस्मात्सुपङ्कजाज्जाता इयंनारी वरानना।
अश्रुबिन्दुमतीनाम रतिपुत्री नरोत्तम॥ ७८॥
तस्याःप्रीत्या सुखंकृत्वा नित्यंवर्त्ते समीपगा। सखीभावस्वभावेन संहृष्टा सर्वदाशु
विशालानाम मेख्यातं वरुणस्यसुता नृप।
अस्याश्चान्ते प्रवर्तामि स्नेहात्स्निग्धास्मि सर्वदा॥ ८०॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमस्याश्चात्मन एव ते। तपश्चचार राजेन्द्र पतिकामा वरानना॥

राजोवाच।

सर्वमेव त्वयाऽऽख्यातं मयाज्ञातं शुभे शृणु। मामेवं हि भजत्वेषा रतिपुत्री वरानने

यमेषा वाञ्छतेबाला तत्सर्वं तु ददाम्यहम् ।
तथा कुरुष्व कल्याणि यथामे वश्यतां व्रजेत् ॥ ८३ ॥

विशालोवाच ।

अस्याव्रतं प्रवक्ष्यामि तदाकर्णय भूपते । पुरुषं यौवनोपेतं सर्वज्ञं वीरलक्षणम् ॥८४॥
देवराजसमं राजन्धर्माचार समन्वितम् । तेजस्विनं महाप्राज्ञं दातारं यज्विनांवरम् ॥
गुणानां धर्मभावस्य ज्ञातारं पुण्यभाजनम् ।
लोकइन्द्रसमं राजन्सुयज्ञैर्धर्मतत्परम् ॥ ८६ ॥
सर्वैश्वर्यसमोपेतं नारायणमिवापरम् । देवानां सुप्रियं नित्यं ब्राह्मणानामतिप्रियम् ॥
ब्रह्मण्यं वेदतत्त्वज्ञं त्रैलोक्येख्यातविक्रमम् । एवंगुणैःसमुपेतं त्रैलोक्येन प्रपूजितम् ॥
सुमतिं सुप्रियंकान्तं मनसावरमीप्सति ॥ ८९ ॥

ययातिरुवाच ।

एवंगुणैःसमुपेतं विद्धि मामिहचागतम् । अस्यानुरूपोभर्त्ताहं सृष्टोधात्रा न संशयः ॥

विशालोवाच ।

भवन्तं पुण्यसंवृद्धं जानेराजञ्जगत्त्रये । पूर्वोक्ता ये गुणाःसर्वे मयोक्ताःसन्ति ते त्वयि
एकेनापि च दोषेण त्वामेषा हि न मन्यते । एष मे संशयोजातो भवान्विष्णुमयो नृप

ययातिरुवाच ।

समाचक्ष्व महादोषं यमेषा नानुमन्यते ।
तत्त्वेन चारुसर्वाङ्गी प्रसाद सुमुखीभव ॥ ९३ ॥

विशालोवाच ।

आत्मदोषं न जानासि कस्मात्त्वं जगतीपते । जरया व्याप्तकायस्त्वमनेनेयं न मन्यते ॥
एवंश्रुत्वा महद्वाक्यमप्रियं जगतीपतिः । दुःखेन महताविष्टस्तामुवाच पुनर्नृपः ॥९५॥
जरादोषो न मे भद्रे संसर्गात्कस्यचित्कदा ।
समुद्भूतं ममाङ्गे वै तं न जाने जरागमम् ॥ ९६ ॥
वरानयं हि वाञ्छते चैषा त्रैलोक्ये दुर्लभं शुभे । तमस्यैदातुकामोऽहं व्रियतां वरउत्तमः ॥

विशालोवाच ।

जराहीनो यदास्यास्त्वं तदा ते सुप्रियाभवेत् ।

एतद्विनिश्चितं राजन्सत्यंसत्यं वदाम्यहम् ॥ ९८ ॥

श्रुतिरेवं वदेद्राजन्पुत्रे भ्रातरिभृत्यके । जरासङ्क्रम्यते यस्य तस्याङ्गे परिसश्चरे

तारुण्यं तस्य वैगृह्य तस्मैदत्त्वा जरांपुनः । उभयोःप्रीतिसंवादःसुरुच्या जायते

तथात्मदानपुण्यस्य कृपया यो ददाति च ।

फलं राजन्हि तत्तस्य जायते नात्रसंशयः ॥ १०१ ॥

दुःखेनोपार्जितं पुण्यमन्यस्मै हि प्रदीयते । सुपुण्यंतद्भवेत्तस्य पुण्यस्य फलमश्नुं

पुत्रायदीयतां राजंस्तस्मात्तारुण्यमेव च । प्रगृह्यैव समागच्छ सुन्दरत्वेन भूप

यदात्वमिच्छसेभोक्तुं तदात्वं कुरुभूपते । एवमाभाष्य साभूपं विशाला विरराम

सुकर्मोवाच ।

एवमाकर्ण्य राजेन्द्रो विशालामवदत्तदा ॥ १०५ ॥

राजोवाच ।

एवमस्तु महाभागे करिष्ये वचनं तव । कामासक्तस्य मूढस्तु ययातिःपृथिवीपति

गृहंगत्वा समाहूय सुतान्वाक्यमुवाच ह । तुरुंपूरुंकुरुं राजा यदुं च पितृवत्सल

कुरुध्वं पुत्रकाःसौख्यं यूयं हि ममशासनात् ।

पुत्राऊचुः ।

पितृवाक्यं प्रकर्तव्यं पुत्रैश्चापि शुभाशुभम् । उच्यतां तात तच्छीघ्रं कृतंविद्धि नसं

एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं पुत्राणांपृथिवीपतिः । आचचक्षे पुनस्तेषु हर्षेणाकुलमान

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने ययाति

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

पितुराज्ञांश्रुत्वा त्रिभिःपुत्रैस्तदाज्ञाप्रत्याख्याने ययातिनातान्प्रतिशापदानम् ।

ययातिरुवाच ।

एकेन गृह्यतां पुत्रा जरा मे दुःखदायिनी ।
धीरेण भवतांमध्ये तारुण्यं ममदीयताम् ॥ १ ॥

स्वकीयं हि महाभागाःस्वरूपमिदमुत्तमम् । सन्तप्तं मानसंमेऽद्यस्त्रियांसक्तंसुचञ्चलम्
भाजनस्था यथापश्च आवर्त्तयति पावकः । तथामे मानसं पुत्राःकामानलसुचालितम् ॥
एकोगृह्णातु मे पुत्रा जरांदुःखप्रदायिनीम् । स्वकं ददातु तारुण्यं यथाकामंचराम्यहम्
यो मे जरापसरणं करिष्यति सुतोत्तमः । स च मे भोक्ष्यतेराज्यं धनुर्वंशं धरिष्यति ॥
तस्यसौख्यं सुसम्पत्तिर्धनंधान्यंभविष्यति । विपुलासन्ततिस्तस्ययशःकीर्तिर्भविष्यति

पुत्राऊचुः ।

भवान्धर्मपरो राजन्प्रजासत्येनपालकः । कस्मात्तेहीदृशोभावो जातःप्रकृतिचापलः ॥

राजोवाच ।

आगतानर्तकाःपूर्वं पुरंमे हि प्रनर्तकाः । तेभ्यो मे कामसंमोहे जातोमोहश्च ईदृशः ॥
जरयाव्यापितःकायो मन्मथाविष्टमानसः । सम्बभूव सुतश्रेष्ठाःकामेन च समाकुलः ॥
काचिद्दृष्टा मयानारी दिव्यरूपावरानना । मयासम्भाषितापुत्राःकिंचन्नोवाचमांसती

विशालानाम तस्याश्च सखीचारुविचक्षणा ।
सामामाह शुभंवाक्यं मम सौख्यप्रदायकम् ॥ ११ ॥

जराहीनो यदास्यास्त्वं तदाते सुप्रियाभवेत् । एवमङ्गीकृतं वाक्यं तयोक्तं गृहमागतः
मयाजरापनोदार्थं तदेवं समुदाहृतम् । एवंज्ञात्वा प्रकर्तव्यं मत्सुखं हि सुपुत्रकाः ॥

तुरुरुवाच ।

शरीरं प्राप्यते पुत्रैःपितुर्मातुःप्रसादतः । धर्मश्च क्रियते राजञ्छरीरेण विपश्चिता ॥

पित्रोःशुश्रूषणंकार्यं पुत्रैश्चापि विशेषतः। न च यौवनदानस्य कालोऽयं मे नरा

प्रथमेवयसि भोक्तव्यं विषयं मानवैर्नृप।

इदानीं तन्नकालोऽयं वर्तते तवसाम्प्रतम्॥ १६॥

जरां तातप्रदत्त्वा वै पुत्रेतातमहद्गताम्। पश्चात्सुखं प्रभोक्तव्यं न तुस्यात्तवजीवि

तस्माद्वाक्यं महाराज करिष्येनैव ते पुनः। एवमाभाषत नृपं तुरुर्ज्येष्ठसुतस्त

तुरोवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा क्रुद्धोराजा बभूवसः।

तुरुंशशाप धर्मात्मा क्रोधेनारुणलोचनः॥ १९॥

अपध्वस्तस्त्वयाऽऽदेशो ममायंपापचेतन। तस्मात्पापीभवस्वत्वं सर्वधर्मबहिष्कृ

शिखयात्वंविहीनश्च वेदशास्त्रविवर्जितः। सर्वाचारविहीनस्त्वं भविष्यसि नसं

ब्रह्मघ्नस्त्वं देवदुष्टःसुरापःसत्यवर्जितः। चण्डकर्मप्रकर्तात्वं भविष्यसि नराधम

सुरालीनःक्षुधीपापी गोघ्नश्च त्वं भविष्यसि।

दुश्चर्मामुक्तकच्छश्च ब्रह्मद्वेष्टा निराकृतिः॥ २३॥

परदाराभिगामित्वं महाचण्डःप्रलम्पटः। सर्वभक्षश्च दुर्मेधाःसदात्वं च भविष्य

सगोत्रां रमसेनारीं सर्वधर्मप्रणाशकः। पुण्यज्ञानविहीनात्मा कुष्ठवांश्च भविष्य

तवपुत्राश्च पौत्राश्च भविष्यन्ति न संशयः।

ईदृशाःसर्वपुण्यघ्ना म्लेच्छाःसुकलुषीकृताः॥ २६॥

एवं तुरुंसुशप्त्वैव यदुंपुत्रमथाब्रवीत्। जरां वैधारयस्वेह भुङ्क्ष्वराज्यमकण्टक

बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा यदू राजानमब्रवीत्। जराभारं नशक्नोमि वोढुं तात कृपां

शीतमध्वाकदन्नं च वयोऽतीताश्च योषितः।

मनसःप्रातिकूल्यं च जरायाःपञ्चहेतवः॥ २९॥

जरादुःखं न शक्नोमि नवेवयसि भूपते। कःसमर्थो हि वै धर्तुं क्षमस्वत्वं ममाधु

यदुं क्रुद्धोमहाराजःशशाप द्विजनन्दन। राजार्हो न च तेवंशःकदाचिद्वै भविष्य

बलतेजःक्षमाहीनःक्षात्रधर्म विवर्जितः।

भविष्यति न सन्देहो मच्छासन पराङ्मुखः॥ ३२॥

यदुरुवाच ।

निर्दोषोऽहं महाराज कस्माच्छप्तस्त्वयाधुना । कृपांकुरुष्व दीनस्य प्रसादसुमुखो भव

राजोवाच ।

महादेवःकुले ते वै स्वांशेनापि हि पुत्रकः । करिष्यति विसृष्टिं च तदापूतं कुलं तव ॥

यदुरुवाच ।

अहंपुत्रो महाराज निर्दोषःशापितस्त्वया । अनुग्रहो दीयतां मे यदिमेवर्त्ततेदया ॥

राजोवाच ।

यो भवेज्ज्येष्ठपुत्रस्तु पितुर्दुःखापहारकः । राज्यदायं सभुङ्क्ते च भारवोढा भवेत्सहि

त्वयाधर्मं न प्रवृत्तमभाष्योऽसि न संशयः । भवतानाशिताज्ञा मे महादण्डेनघातिन

तस्मादनुग्रहोनास्ति यथेष्टं च तथाकुरु॥ ३८ ॥

यदुरुवाच ।

यस्मान्मे नाशितंराज्यं कुलंरूपं त्वयानृप । तस्माद्दुष्टो भविष्यामि तववंशपतिर्नृप ॥

तववंशे भविष्यन्ति नानाभेदास्तु क्षत्रियाः । तेषांग्रामान्सुदेशांश्च स्त्रियोरत्नानियानिवै

भोक्ष्यन्ति च न सन्देहो अतिचण्डा महाबलाः ।

मम वंशात्समुत्पन्नास्तुरुष्का म्लेच्छरूपिणः ॥ ४१ ॥

त्वया ये नाशिताः सर्वे सप्ताःशापैःसुदारुणैः । एवं बभाषे राजानं यदुःक्रुद्धो नृपोत्तम

अथक्रुद्धो महाराजः पुनश्चैवं शशापह । मत्प्रजानाशकाः सर्वे वंशजास्ते शृणुष्व हि ॥

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च पृथ्वीनक्षत्रतारकाः । तावन्म्लेच्छाः प्रपक्ष्यन्ते कुम्भापाके च रौरवे

कुरुंदृष्ट्वा ततोवालं क्रीडमानं सुलक्षणम् । समाह्वयति तं राजा न सुतं नृपनन्दनः

शिशुंज्ञात्वा परित्यक्तःसकुरुस्तेन वै तदा । शर्मिष्ठायाःसुतंपुण्यं तं पूरुं जगदीश्वरः ॥

समाहूय बभाषे च जरामे गृह्यतापुनः । भुङ्क्ष्वराज्यं मयादत्तं सुपुण्यं हतकण्टकम् ॥

पूरुरुवाच ।

राज्यंदेवेनभोक्तव्यं पित्राभुक्तं यथातव । त्वदादेशं करिष्यामि जरा मे दीयतां नृप ॥

तारुण्येन ममाद्यैव भूत्वा सुन्दररूपधृक् ।

भुङ्क्ष्व भोगान्सुकर्माणि विषयासक्तचेतनः ॥ ४६ ॥

यावदिच्छा महाभाग विहरस्व तयासह । यावज्जीवाम्यहं तात जरांतावद्धरास्यहम्

एवमुक्तस्तु तेनापि पूरुणा जगतीपतिः । हर्षेणमहताविष्टस्तंपुत्रं प्रत्युवाच सः ॥ ५

यस्माद्वत्स ममाज्ञा वै नहता कृतवानिह । तस्मादहं विधास्यामि बहुसौख्यप्रदायक

यस्माज्जरागृहीता मे दत्तं तारुण्यकं स्वकम् ।

तेनराज्यं प्रभुङ्क्ष्वत्वं मयादत्तं महामते ॥ ५३ ॥

एवमुक्तःसपूरुश्च तेनराज्ञा महीपते । तारुण्यं दत्तवानस्मै जग्राहास्माज्जरां नृप ॥५

ततःकृते विनिमये वयसोस्तातपुत्रयोः । तस्माद्वृद्धतरःपूरुःसर्वाङ्गेषु व्यदृश्यत ॥५

नूतनत्वं गतोराजा यथाषोडशवार्षिकः । रूपेणमहताविष्टो द्वितीयइवमन्मथः ॥ ५

धनूराज्यं च छत्रं च व्यजनंचासनं गजम् । कोशंदेशंबलंसर्वं चामरंस्यन्दनं तथा

ददौ तस्य महाराजःपूरोश्चैव महात्मनः । कामासक्तश्च धर्मात्मा तां नारीमनुचिन्त

तत्सरःसागरप्रख्यं कामाख्यं नहुषात्मजः । अश्रुबिन्दुमतीयत्र जगाम लघुविक्रम

तांदृष्ट्वा तु विशालाक्षीं चारुपीनपयोधराम् । विशालां च महाराजकन्दर्पाकृष्टमान

राजोवाच ।

आगतोऽस्मि महाभागे विशालेचारुलोचने । जरात्यागःकृतोभद्रे तारुण्येनसमन्वित

युवाभूत्वा समायातो भवत्वेषा ममाधुना ।

यं यं हि वाञ्छतेचैषा तं तं दद्मि न संशयः ॥ ६२ ॥

विशालोवाच ।

यदाभवान्समायातो जरांदुष्टां विहाय च । दोषेणैकेनलिप्तोऽसि भवन्तं नैवमन्य

राजोवाच ।

ममदोषं वदस्वत्वं यदिजानासि निश्चितम् । तं तु दोषंपरित्यक्ष्ये गुणरूपं न संशय

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने मातापितृतीर्थवर्णने ययातिचरितं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

ययातिनात्वन्मनोरथान्पूरयिष्यामीतिप्रतिज्ञांकृत्वातयासहगान्धर्वविवाहेनवरणम

विशालोवाच ।

शर्मिष्ठा यस्य वै भार्या देवयानी वरानना । सौभाग्यं तत्र वै दृष्टमन्यथानास्ति भूपते॥

तत्कथं त्वं महाभाग अस्याःकार्यवशोभवेः । सपत्नजेनभावेन भवान्भर्ताप्रतिष्ठितः ॥

ससर्पोऽसि महाराज भूतले चन्दनं यथा ।
सर्पैश्चवेष्टितो राजन्महाचन्दन एव हि ॥ ३ ॥

तथात्वं वेष्टितःसर्पैःसपत्नीसंज्ञकैर्नृप । वरमग्निप्रवेशश्च शिखाग्रात्पतनं वरम् ॥ ४ ॥

रूपतेजःसमायुक्तं सपत्नीसहितं प्रियम् । न वरं तादृशं कान्तं सपत्नीविषसंयुतम् ॥५॥

तस्मान्नमन्यते कान्तं भवन्तं गुणसागरम् ॥ ६ ॥

राजोवाच ।

देवयान्यानमेकार्यं शर्मिष्ठया वरानने । इत्यर्थं पश्य मेकोशं सत्त्वधर्मसमन्वितम् ॥७॥

अश्रुबिन्दुमत्युवाच ।

अहंराज्यस्यभोक्त्री च तवकायस्य भूपते । यद्यद्वदाम्यहं भूप तत्तत्कार्यं त्वयाध्रुवम्

इत्यर्थे ममदेहि स्वंकरं त्वं धर्मवत्सल । बहुधर्मसमोपेतं चारुलक्षणसंयुतम् ॥ ९ ॥

राजोवाच ।

अन्यभार्यां नविन्दामि त्वांविना वरवर्णिनि । राज्यं च सकलामुर्वीममकायं वरानने

सकोशंभुङ्क्ष्व चार्वङ्गि एषदत्तःकरस्तव ।
यदेवभाषसे भद्रे तदेवं तु करोम्यहम् ॥११॥

अश्रुबिन्दुमत्युवाच ।

अनेनापि महाभाग तवभार्या भवाम्यहम् ।
एवमाकर्ण्य राजेन्द्रो हर्षव्याकुललोचनः ॥ १२ ॥

गान्धर्वेणविवाहेन ययातिः पृथिवीपतिः । उपयेमेसुतांपुण्यां मन्मथस्य नरोत्तम॥१
तयासार्द्धं महात्मा वै रमते नृपनन्दनः । सागरस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ॥ १
पर्वतेषु च रम्येषु सरित्सु च तयासह । रमते राजराजेन्द्रस्तरुण्येन महीपतिः ॥ १
एवं विंशत्सहस्राणि गतानि निरतस्य च । भूपस्य तस्यराजेन्द्र ययातेस्तु महात्मन

विष्णुरुवाच ।

एवं तया महाराजो ययातिर्मोहितस्तदा । कन्दर्पस्यप्रपञ्चेन इन्द्रस्यार्थे महामते ॥१

सुकर्मोवाच ।

एवं पिप्पलराजासौ ययातिःपृथिवीपतिः । तस्यामोहेनकामेन रतेनललितेन च ॥१
न जानाति दिनंरात्रिं मुग्धःकामस्य कन्यया । एकदामोहितं भूपं ययातिं कामनन्दि
उवाच प्रणत्तं नम्रं वशगं चारुलोचना ।

अश्रुबिन्दुमत्युवाच ।

सञ्जातं दोहदंकान्त तन्मे कुरु मनोरथम् । अश्वमेधं मखश्रेष्ठं यजस्व पृथिवीपते ॥२

राजोवाच ।

एवमस्तु महाभागे करोमि तवसुप्रियम् । समाहूय सुतश्रेष्ठं राज्यभोगे विनिःस्पृह
समाहूतःसमायातो भक्त्यानमितकन्धरः । बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा प्रणाममकरोत्तद
तस्याःपादौ ननामाथ भक्त्यानमितकन्धरः । आदेशोदीयतां राजन्येनाहूतःसमागतः
किंकरोमि महाभाग दासस्ते प्रणतोऽस्मि च ॥ २४ ॥

राजोवाच ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य सन्भारंकुरु पुत्रक । समाहूय द्विजान्पुण्यानृत्विजो भूमिपाल
एवमुक्तो महातेजाःपूरुःपरमधार्मिकः । सर्वं चकार सम्पूर्णं यथोक्तं तु महात्मना॥२
तयासार्धं स जग्राह सुदीक्षां कामकन्यया ।
अश्वमेधयज्ञवाटे दत्त्वा दानान्यनेकधा ॥ २७ ॥
ब्राह्मणेभ्यो महाराज भूरिदानमनन्तकम् । दीनेषु च विशेषेण ययातिःपृथिवीपति
यज्ञान्ते च महाराजस्तामुवाच वरानना । अन्यत्ते सुप्रियंबाले किंकरोमि वदस्व

तत्सर्वं देवि कर्तास्मि साध्यासाध्यं वरानने ॥ २६ ॥

सुकर्मोवाच ।

इत्युक्तातेन साराज्ञा भूपालंप्रत्युवाच ह। जातोमे दोहदोराजंस्तत्कुरुष्व ममानघ ॥३०॥
इन्द्रलोकं ब्रह्मलोकं शिवलोकं तथैव च। विष्णुलोकं महाराज द्रष्टुमिच्छामि सुप्रियम्
दर्शयस्व महाभाग यदहं सुप्रिया तव । एवमुक्तस्तयाराजा तामुवाच ससुप्रियाम् ॥

साधुसाधु वरारोहे पुण्यमेव प्रभाषसे ।

स्त्रीस्वभावाच्च चापल्यात्कौतुकाच्च वरानने ॥ ३३ ॥

यत्त्वोक्तं महाभागे तदसाध्यं विभाति मे । तत्साध्यं पुण्यदानेन यज्ञेनतपसापि च ॥
अन्यथा न भवेत्साध्ययत्त्वयोक्तंवरानने । असाध्यं तु भवत्या वै भाषितंपुण्यमिश्रितम्
मर्त्यलोकाच्छरीरेण अनेनापि च मानवः । सुतोदृष्टो न मेऽद्यापि गतःस्वर्गं सुपुण्यकृत्
ततोऽसाध्यं वरारोहे यत्त्वयाभाषितं मम । अन्यदेवकरिष्यामि प्रियं ते तद्वदप्रिये ॥

देव्युवाच ।

अन्यैश्चमानुषै राजन्नसाध्यंस्यान्नसंशयः । त्वयिसाध्यं महाराज सत्यंसत्यं वदाम्यहम्
तपसायशसाक्षात्रैर्दानैर्यज्ञैश्च भूपते । नास्तिभवादृशश्चान्यो मर्त्यलोके च मानवः ॥
क्षात्रंबलंसुतेजश्च त्वयिसर्वं प्रतिष्ठितम् । तस्मादेवं प्रकर्तव्यं मत्प्रियं नहुषात्मज ॥
इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णनेययातिचरित्रे

एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अशीतितमोऽध्यायः ।

शर्मिष्ठादेवयान्योर्वर्तनवर्णनम् ।

पिप्पल उवाच ।

कामकन्यां यदाराज्ञ उपयेमे द्विजोत्तम । किंचक्राते तदातेद्वे पूर्वभार्ये सुपुण्यके ॥ १ ॥

देवयानी महाभागा शर्मिष्ठावार्षपर्वणी । तयोश्चरित्रं तत्सर्वं कथयस्व ममाग्रतः ।

सुकर्मोवाच ।

यदानीता कामकन्या स्वगृहं तेन भूभुजा । अत्यर्थं स्पर्धते सा तु देवयानी मनस्वि
तस्यार्थे तु सुतौशप्तौ क्रोधेनकुलितात्मना । शर्मिष्ठां च समाहूय शब्दंचक्रे यशस्वि
रूपेण तेजसादानैःसत्यपुण्यव्रतैस्तथा । शर्मिष्ठा देवयानी च स्पर्धेतेस्म तयासह ।

दुष्टभावं तयोश्चापि साऽज्ञासीत्कामजा तदा ।
राज्ञे सर्वंतया विप्र कथितं तत्क्षणादिह ॥ ६ ॥

अथक्रुधो महाराजःसमाहूयाब्रवीद्यदुम् । शर्मिष्ठावध्यतांगत्वा शुक्रपुत्री तथापुनः ।
सुप्रियंकुरु मे वत्स यदिश्रेयो हि मन्यसे । एवमाकर्ण्य तत्तस्य पितुर्वाक्यं यदुस्तदा
प्रत्युवाच नृपेन्द्रं तं पितरंप्रति मानद । नाहंतु घातयेतात मातरौदोषवर्जिते ॥
मातृघाते महादोषःकथितो वेदपण्डितैः । तस्माद्घातं महाराज एतयोर्न करोम्यहम्
दोषाणां तु सहस्रेण मातालिप्ता यदा भवेत् । भगिनी च महाराज दुहिता च तथा
पुत्रैर्वा भ्रातृभिश्चैव नैववध्या भवेत्कदा । एवंज्ञात्वा महाराज मातरौनैव घातये
यदोर्वाक्यं तदाश्रुत्वा राजाक्रुद्धो बभूवह । शशाप तं सुतं पश्चाद्ययातिःपृथिवीपतिः

यस्मादाज्ञाहतात्वद्य त्वया पापिसमोऽपि हि ।
मातुरंशं भजस्व त्वं मच्छाप कलुषीकृतः ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा यदुं पुत्रं ययातिःपृथिवीपतिः । पुत्रंशप्त्वा महाराजस्तयासार्द्धंमहायशाः
रमते सुखभोगेन विष्णोर्ध्यानेनतत्परः । अश्रुबिन्दुमती सा च तेनसार्द्धं सुलोचना
बुभुजेचारुसर्वाङ्गी पुण्यान्भोगान्मनोऽनुगान् । एवंकालेगतस्तस्य ययातेस्तुमहात्मनः

अक्षयानिर्जराःसर्वा अपरास्तु प्रजास्तथा ।
सर्वेलोका महाभाग विष्णुध्यानपरायणाः ॥ १८ ॥

तपसा सत्यभावेन विष्णोर्ध्यानेन पिप्पल । सर्वेलोका महाभागसुःखिनःसाधुसेवि
इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णनेययातिचरित्
ऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

इन्द्राज्ञयामेनिकाप्सरसोऽश्रुविन्दुमतींप्रत्यागमनम् ।

सुकर्मोवाच ।

यथेन्द्रोऽसौ महाप्राज्ञःसदाभीतो महात्मनः । ययातेर्विक्रमंदृष्ट्वा दानपुण्यादिकंबहु॥
मेनकां प्रेषयामास अप्सरां दूतकर्मणि । गच्छभद्रे महाभागे ममादेशं वदस्व हि॥ २ ॥
कामकन्यामितोगत्वा देवराज वचोवद । येनकेनाप्युपायेन राजानं त्वमिहानय ॥ ३ ॥

एवंश्रुत्वा गतासा च मेनका तत्रप्रेषिता ।
समाचष्ट तु तत्सर्वं देवराजस्य भाषितम् ॥ ४ ॥

एवमुक्ता गतासा च मेनका तत्प्रचोदिता । गतायां मेनकायां तु रतिपुत्री मनस्विनी
राजानं धर्मसङ्केतं प्रत्युवाच यशस्विनी । राजंस्त्वयाहमानीता सत्यवाक्येन वै पुरा॥
स्वकरश्चान्सरैर्दत्तो भवनं च समाहृता । यद्यद्वदाम्यहं राजंस्तत्तत्कार्यं हि वै त्वया ॥

तदेवं हि त्वयावीर नकृतं भाषितं मम ।
त्वामेवं तु परित्यक्ष्ये यास्यामि पितृमन्दिरम् ॥ ८ ॥

राजोवाच ।

यथोक्तं हि त्वयाभद्रे तत्तेकर्त्ता न संशयः । असाध्यं तु परित्यज्य साध्यंदेवि वदस्वमे

अश्रुबिन्दुमत्युवाच ।

एतदर्थं महीकान्त भवानिह मयावृतः । सर्वलक्षणसम्पन्नःसर्वधर्मसमन्वितः ॥ १० ॥
एवंसाध्यमितिज्ञात्वा सर्वधर्तारमेव च । कर्त्तारं सर्वधर्माणां स्रष्टारं पुण्यकर्मणाम् ॥

त्रैलोक्यसाधकंज्ञात्वा त्रैलोक्यऽप्रतिमं च वै ।
विष्णुभक्तमहंजाने वैष्णवानां महावरम् ॥ १२ ॥

इत्याशयामयाभर्त्ता भवानङ्गीकृतः पुरा । यस्यविष्णुप्रसादोऽस्ति स सर्वत्र परिव्रजेत्
दुर्लभंनास्ति राजेन्द्र त्रैलोक्ये सचराचरे । सर्वेष्वेवसुलोकेषु विद्यते तवसुव्रत ॥१४॥

विष्णोश्चैव प्रसादेन गगनेगतिरुत्तमा। मर्त्यलोकं समासाद्य त्वयैव वसुधाधि
जरापलितहीनास्तु मृत्युहीनाजनाःकृताः। गृहद्वारेषु सर्वेषु मर्त्यानां च नरर्षभ।

कल्पद्रुमा अनेकाश्च त्वयैव परिकल्पिताः।

एषांगृहेषु मर्त्यानां मुनयःकामधेनवः॥ १७॥

त्वयैवप्रेषिता राजन्स्थिरीभूताःसदाकृताः। सुखिनःसर्वकामैश्च मानवाश्च त्वया
गृहैकमध्ये साहस्रं कुलीनानां प्रदृश्यते। एवं वंशविवृद्धिश्च मानवानां त्वयाकृ
यमस्यापि विरोधेन इन्द्रस्य च नरोत्तम। व्याधिपापविहीनस्तु मर्त्यलोकस्त्वया

स्वतेजसाऽहङ्कारेण स्वर्गरूपं तु भूतलम्।

दर्शितं हि महाराज त्वत्समोनास्ति भूपतिः॥ २१॥

नरोनैव प्रसूतो हि नोत्पत्स्यति भवादृशः। भवन्तमित्यहंजाने सर्वधर्मप्रभाकरम्॥
तस्मान्मयाकृतोभर्ता वदस्वैवं ममाग्रतः। नर्ममुक्त्वा नृपेन्द्रत्वं वदसत्यं ममाग्र
यदि ते सत्यमस्तीह धर्मश्चास्ति नराधिप। देवलोकेषु मे नास्ति गगनेगतिरुत्त

सत्यं त्यक्त्वा यदा च त्वं नैव स्वर्गं गमिष्यसि।

तदाकूटं तववचो भविष्यति न संशयः॥ २५॥

पूर्वंकृतं हि यच्छ्रेयो भस्मीभूतं भविष्यति॥ २६॥

राजोवाच।

सत्यमुक्तं त्वयाभद्रे साध्यासाध्यंन चास्तिमे। सर्वंसाध्यंसुलोकं मे सुप्रसादाज्जग
स्वर्गं देवि यतोनैमि तत्र मे कारणं श्रृणु। भागं तु तेन दास्यन्ति ममऋत्युश्च देव
ततो मे मानवाःसर्वे प्रजाःसर्वावरानने। मृत्युयुक्ता भविष्यन्ति मयाहीना न संश

गन्तुं स्वर्गं न वाञ्छामि सत्यमुक्तं वरानने॥ ३०॥

देव्युवाच।

लोकान्दृष्ट्वा महाराजआगमिष्यसिवै पुनः। पूरयस्व ममाद्यत्वं जातांश्रद्धांमहोतु

राजोवाच।

सर्वमेवं करिष्यामि यत्त्वयोक्तं न संशयः। समालोक्य महातेजा ययातिर्नहुषात्मज

एवमुक्त्वा प्रियांराजाचिन्तयामास वै तदा। अन्तर्जलचरोमत्स्यःसोऽपिजालेन वध्यते
मरुत्समानवेगोऽपि मृगःप्राप्नोति वन्धनम्। योजनानां सहस्रस्थमामिषं वीक्षतेखगः॥
सकण्ठलग्नपाशं च न पश्यद्दैवमोहितः।
सवैषम्यकरःकालःकालःसम्मानहानिदः ॥ ३५ ॥
परिभावकरःकालो यत्रकुत्रापि तिष्ठतः। नरंकरोति दातारं याचितारं च वै पुनः॥
भूतानि स्थावरादीनि दिवि वा यदि वा भुवि। सर्वं कलयतेकालःकालोह्येक इदंजगत्
अनादिनिधनोधाता जगतःकारणंपरम्। लोकान्कालःसपचति वृक्षेफलमिवाहितम् ॥
न मन्त्रा न तपोदानं न मित्राणि न बान्धवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥ ३६ ॥
त्रयःकालकृताःपाशाःशक्यन्ते नातिवर्तितुम्। विवाहोजन्ममरणं यदायत्र तु येन च॥
यथा जलधाराव्योम्नि भ्राम्यन्ते मातरिश्वना। तथेदंकर्मयुक्तेन कालेन भ्राम्यते जगत्

सुकर्मोवाच।

कालोऽयं कर्मयुक्तस्तु योनरैःसमुपासितः। कालस्तुप्रेरयेत्कर्म तं तं कालःकरोतिसः॥
उपद्रवा घातदोषाःसर्पाश्चव्याधयस्ततः। सर्वेकर्मनियुक्तास्ते प्रचरन्ति च मानुषे ॥४३॥
सुखस्यहेतवो ये च उपायाःपुण्यमिश्रिताः। ते सर्वे कर्मसंयुक्ता नपश्येयुःशुभाशुभम्॥
कर्मदा यदि वा लोके कर्मसम्बन्धि बान्धवाः।
कर्माणि चोदयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः ॥४५॥
सुवर्णरजतंवापि यथारूपंविनिश्चितम्। तथानिबध्यते जन्तुःस्वकर्मणिवशानुगः॥४६॥
पञ्चैतानीहसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः। आयुःकर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥
यथामृत्पिण्डतःकर्ता कुरुते यद्यदिच्छति। तथापूर्वकृतंकर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ ४८ ॥
देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षिता तथा।
तिर्यक्त्वं स्थावरत्वं च प्राप्यते च स्वकर्मभिः ॥ ४९ ॥
सएवतत्तथाभुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना। आत्माविहितंदुःखं चात्मनाविहितंसुखम्॥
गर्भशय्यामुपादाय भुञ्जते पूर्वदैहिकम्। सन्त्यजन्तिस्वकंकर्म न कंचित्पुरुषा भुवि॥

बलेन प्रज्ञयावापि समर्थाःकर्तुमन्यथा ।
सुकृतान्युपभुञ्जन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥ ५२ ॥
हेतुंप्राप्य नरोनित्यं कर्मबन्धैस्तु बध्यते । यथाधेनुसहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम्
तथाशुभाशुभंकर्म कर्तारमनुगच्छति । उपभोगादृतेयस्य नाशएव न विद्यते ॥ ५
प्राक्तनं बन्धनंकर्म कोऽन्यथाकर्तुमर्हति । सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति ॥ ५
शेतेसहशयानेन पुराकर्म यथाकृतम् ।
उपविष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति ॥ ५६ ॥
करोति कुर्वतःकर्म च्छायेवानुविधीयते । यथाछाया तपौनित्यं सुसम्बद्धौपरस्परम्
तद्वत्कर्म च कर्ता च सुसम्बद्धौपरस्परम् ।
ग्रहारोगाविषाःसर्पाःशाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥ ५८ ॥
पीडयन्ति नरंपश्चात्पीडितं पूर्वकर्मणा । येन यत्रोपभोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेव वा
स तत्रवद्ध्वारज्ज्वा वै बलाद्दैवेन नीयते । दैवःप्रभुर्हिभूतानां सुखदुःखोपपादने ॥ ६
अन्यथा चिन्त्यतेकर्म जाग्रता स्वपतापि वा ।
अन्यथा स तथा प्राज्ञ दैवएवं जिघांसति ॥ ६१ ॥
शस्त्राग्नि विषदुर्गेभ्यो रक्षितव्यं च रक्षति । अरक्षितं भवेत्सत्य तद्दैवं दैवरक्षितम्
दैवेन नाशितंयत्तु तस्यरक्षा न दृश्यते । यथापृथिव्यां बीजानि उप्तानि च घनानि च
तथैवात्मनि कर्माणि तिष्ठन्ति प्रभवन्ति च । तैलक्षयाद्यथादीपो निर्वाणमधिगच्छ
कर्मक्षयात्तथाजन्तुःशरीरान्नाशमृच्छति ।
कर्मक्षयात्तथामृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहृतः ॥ ६५ ॥
विविधाःप्राणिनस्तस्य मृत्योरोगाश्च हेतवः । तथाममविपाकोऽयं पूर्वंकृतस्यनान्य
सम्प्राप्तो नात्रसन्देहःस्त्रीरूपोऽयं न संशयः । क्व मे गेहं समायाता नाटका नटनर्तक
तेषां सङ्गप्रसङ्गेन जरादेहं समाश्रिता ।
सर्वं कर्मकृतंमन्ये यन्मे सम्भावितं ध्रुवम् ॥ ६
तस्मात्कर्मप्रधानं च उपायाश्च निरर्थकाः । पुरा वै देवराजेन मदर्थे दूतसत्तमः ॥ ६

प्रेषितो मातलिर्नाम नक्तं तस्यतद्वचः । तस्यकर्मविपाकोऽयं दृश्यते साम्प्रतं मम ॥

इति चिन्तापरोभूत्वा दुःखेनमहतान्वितः ।
यद्यस्याहिवचःप्रीत्या न करोमि हि सर्वथा ॥ ७१ ॥

सत्यधर्माबुभावेत्तौ यास्यतस्तौ न संशयः । सदृशं च समायातं यद्दृष्टं ममकर्मणा ॥

भविष्यति न सन्देहो दैवो हि दुरतिक्रमः । एवंचिन्तापरोभूत्वा ययातिःपृथिवीपतिः

कृष्णं क्लेशापहंदेवं जगाम शरणंहरिम् ।
ध्यात्वा नत्वा ततःस्तुत्वा मनसा मधुसूदनम् ॥ ७४ ॥
त्राहि मां शरणंप्राप्तस्त्वामहं कमलाप्रिय ॥ ७५ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णनेययातिचरित्रे
एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

———

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

श्रुबिन्दुमत्याःस्वर्गगमनायात्याग्रहं दृष्ट्वा पूरुपुत्रायराज्यंसमर्प्य जराग्रहणम्

सुकर्मोवाच ।

वं चिन्तयतेयावद्राजा परमधार्मिकः । तावत्प्रोवाच सा देवी रतिपुत्री वरानना॥१॥

किमुचिन्तयसे राजंस्त्वमिहैव महामते । प्रायेणापि स्त्रियःसर्वाश्चपलाःस्युर्नसंशयः

नाहंचापल्यभावेन त्वामेवं प्रविचालये ।
नाहं हि कारयाम्यद्य भवत्पार्श्वं नृपोत्तम ॥ ३ ॥
अन्यस्त्रियो यथालोके चपलत्वाद्वदन्ति च ।
अकार्यं राजराजेन्द्र लोभान्मोहाच्च लम्पटाः ॥ ४ ॥

कानांदर्शनायैव जाताश्रद्धा ममोरसि । देवानां दर्शनंपुण्यं दुर्लभं हि सुमानुषैः ॥

षां च दर्शनं राजन्कारयामि वदस्व मे । दोषंपापकरंयत्तु मत्सङ्गादिह चेद्भवेत् ॥ ६ ॥

कथंचिन्तयसेदुःखं यथान्यःप्राकृतोजनः। महाभयाद्यथाभीतो मोहगर्ते गतोय
त्यजचिन्तां महाराज न गन्तव्यं त्वयादिवि। येन ते जायतेदुःखं तन्नकार्यं मयान
एवमुक्तस्तथाराजा तामुवाच वराननाम्। चिन्तितंयन्मयादेवि तच्छृणुष्व हि सा
मानभङ्गो मयादृष्टो नैवस्वस्यमनः प्रिये। मयिस्वर्गगते कान्ते प्रजादीना भविष्य

त्रासयिष्यति दुष्टात्मा यमस्तु व्याधिभिःप्रजाः।
त्वयासार्धं प्रयास्यामि स्वर्गलोकं वरानने॥ ११॥
एवमाभाष्य तां राजा समाहूय सुतोत्तमम्।
पूरुं तं सर्वधर्मज्ञं जरायुक्तं महामतिम्॥ १२॥

एह्येहि सर्वधर्मज्ञ धर्मंजानासि निश्चितम्। ममाज्ञयाहि धर्मात्मन्धर्मःसम्पालितस्
जरा मे दीयतां तात तारुण्यं गृह्यतां पुनः। राज्यंकुरु ममेदं त्वं सकोश बलवाह
आसमुद्रां प्रभुङ्क्ष्वत्वं रत्नपूर्णां वसुन्धराम्। मयादत्तां महाभाग सग्रामवनपत्त

प्रजानां पालनंपुण्यं कर्तव्यं च सदानघ।
दुष्टानां शासनंनित्यं साधूनां परिपालनम्॥ १६॥

कर्तव्यं च त्वयावत्स धर्मशास्त्रप्रमाणतः। ब्राह्मणानां महाभाग विधिनापिस्वक

भक्त्या च पालनंकार्यं यस्मात्पूज्या जगत्त्रये।
पञ्चमे सप्तमे घस्रे कोशंपश्य विपश्चितः॥ १८॥

बलं च नित्यं सम्पूज्यं प्रसादधनभोजनैः। चारचक्षुर्भवस्वत्वं नित्यंदानपरोभव।
भवस्व नियतोमन्त्रे सदागोप्यःसुपण्डितैः। नियतात्मा भवस्वत्वं मागच्छ मृगय

विश्वासःकस्य नोकार्यःस्त्रीषुकोशे महाबले।
पात्राणां त्वं तु सर्वेषां कलानां कुरुसङ्ग्रहम्॥ २१॥

यजयज्ञैर्हृषीकेशं पुण्यात्माभव सर्वदा। प्रजानां कण्टकान्सर्वान्मर्दयस्व दिने
प्रजानां वाञ्छितंसर्वमर्पयस्व दिनेदिने। प्रजासौख्यं प्रकर्तव्यं प्रजाःपोषय पुत्रक
स्वस्त्रीवंशःप्रकर्तव्यःपरदारेषु माकृथाः। मतिदुष्टां परस्वेषु पूर्वानन्वेहि सर्वदा॥

वेदानां हि सदाचिन्ता शास्त्राणां हि च सर्वदा।

कुरुष्वैवं सदावत्स शस्त्राभ्यासरतो भव ॥ २५ ॥

सन्तुष्टःसर्वदावत्स स्वशय्यानिरतोभव। गजस्यवाजिनोऽभ्यासं स्यन्दनस्य च सर्वदा एवमादिश्य तं पुत्रमाशीर्भिरभिनन्द्य च। स्वहस्तेन च संस्थाप्य करेदत्तं स्वमायुधम् स्वांजरां तु समागृह्य दत्त्वातारुण्यमस्य च। गन्तुकामस्ततःस्वर्गं ययातिःपृथिवीपतिः

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डेवेनोपाख्यानेमातापितृतीर्थवर्णने ययातिचरित्रे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ययातेः बहुभिः प्रजाजनैः सह तयाश्रुबिन्दुमत्याच सह वैष्णवलोकंप्रतिगमनम्।

सुकर्मोवाच ।

समाहूय प्रजाःसर्वा द्वीपानां वसुधाधिपः। हर्षेणमहताविष्ट इदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

इन्द्रलोकं ब्रह्मलोकं रुद्रलोकमतःपरम्। वैष्णवं सर्वपापघ्नं प्राणिनां गतिदायकम् ॥

व्रजाम्यहं न सन्देहो ह्यनयासह सत्तमाः। ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसशूद्राश्च प्रजामम ॥

सुखेनापि सकुटुम्बैःस्थातव्यं तु महीतले। पूरुरेष महाभागो भवतां पालकस्त्विह ॥

स्थापितोऽस्ति मयालोका राजाधीशःसदण्डकः।

एवमुक्तास्तु ताःसर्वाःप्रजा राजानमब्रुवन् ॥ ५ ॥

श्रूयते सर्ववेदेषु पुराणेषु नृपोत्तम। धर्मएवं यतोलोके न दृष्टःकेन वै पुरा ॥ ६ ॥

दृष्टोऽस्माभिरसौधर्मो दशाङ्गःसत्यवल्लभः। सोमवंशसमुत्पन्नो नहुषस्य महागृहे ॥

हस्तपादमुखैर्युक्तःसर्वाचारप्रचारकः। ज्ञानविज्ञानसम्पन्नःपुण्यानां च महानिधिः ॥८॥

गुणानां हि महाराज आकरःसत्यपण्डितः। कुर्वन्ति च महाधर्मं सत्यवन्तो महौजसः

तंधर्मं दृष्टवन्तःस्म भवन्तं कामरूपिणम्। भवन्तं कामकर्तारमीदृशं सत्यवादिनम् ॥

कर्मणा त्रिविधेनापि वयंत्यक्तुं न शक्नुमः।

यत्र त्वं तत्रगच्छामःसुसुखं पुण्यमेव च ॥ ११ ॥

नरकेऽपि भवान्यत्र वयंतत्र नसंशयः । किंदारैर्धनभोगैश्च किंजीवैर्जीवितेन च ॥

त्वां विना सुमहाराज तेननास्त्यत्र कारणम् ।

त्वयैवसह राजेन्द्र वयं यास्याम नान्यथा ॥ १३ ॥

एवंश्रुत्वा वचस्तासां प्रजानां पृथिवीपतिः । हर्षेणमहताविष्टःप्रजावाक्यमुवाच

आगच्छन्तु मयासार्द्धं सर्वेलोकाःसुपुण्यकाः ।

नृपोरथं समारुह्य तया वै कामकन्यया ॥ १५ ॥

रथेनहंसवर्णेन चन्द्रबिम्बानुकारिणा । चामरैर्व्यजनैश्चापि वीज्यमानो गतव्यथः ॥

केतुना तेनपुण्येन शुभ्रेणापि महीयसा । शोभमानो यथादेवो देवराजःपुरन्दरः ॥

ऋषिभिःस्तूयमानस्तु बन्दिभिश्चारणैस्तथा । प्रजाभिःस्तूयमानश्च ययातिर्नहुषात्म

प्रजाःसर्वास्ततोयानैःसमायाता नरेश्वरम् । गजैरश्वैरथैश्चान्यैःप्रस्थिताश्च दिवंप्र

ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याःशूद्राश्चान्ये पृथग्जनाः ।

सर्वे च वैष्णवालोका विष्णुध्यानपरायणाः ॥ २० ॥

तेषां तु केतवःशुक्ला हेमदण्डैरलङ्कृताः । शङ्खचक्राङ्किताःसर्वेसदण्डाःसपताकि

प्रजावृन्देषु भासन्ते पताका मारुतेरिताः । दिव्यमालाधरास्सर्वे शोभितास्तुलसीभ्यो

दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गा दिव्यगन्धानुलेपनाः । दिव्यवस्त्रकृताशोभा दिव्याभरणभूषिता विष्

सर्वेलोकःसुरूपास्ते राजानमुपजग्मिरे । प्रजाशतसहस्राणि लक्षंकोटिशतानि च ॥

अर्वंखर्वसहस्राणि तेजनाःप्रतिजग्मिरे । ते तु राज्ञासमंसर्वे वैष्णवाःपुण्यकारिण

विष्णुध्यानपराःसर्वे जपदानपरायणाः ॥ २६ ॥

सुकर्मोवाच ।

एवं ते प्रस्थिताःसर्वे हर्षेणमहतान्विताः । पूरुंपुत्रं महाराज स्वराज्ये परिषिच्यत

ऐन्द्रंलोकं जगामाथ ययातिःपृथिवीपतिः । तेजसा तस्यपुण्येन धर्मेणतपसा त

ते जनाःप्रस्थिताःसर्वे वैष्णवंलोकमुत्तमम् । ततोदेवाःसगन्धर्वाःकिन्नराश्चारणास्त

सहितादेवराजेन आगताःसंमुखं तदा । तस्यैवापि नृपेन्द्रस्य पूजयन्तो नृपोत्तम ॥

इन्द्र उवाच ।

स्वागतं ते महाराज ममगेहं समाविश ।
अत्रभोगान्प्रभुङ्क्ष्वत्वं दिव्यान्कामान्मनोऽनुगान् ॥ ३१ ॥

राजोवाच ।

सहस्राक्ष महाप्राज्ञ तवपादाम्बुजद्वयम् । नमस्करोम्यहंदेव ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम् ॥३२॥
देवैःसंस्तूयमानश्च ब्रह्मलोकं जगामह । पद्मयोनिर्महातेजाःसार्धंमुनिवरैस्तथा ॥ ३३ ॥
आतिथ्यं च चकारस्य पाद्यार्घादिसुविष्टरैः ।
उवाच विष्णुलोकं हि प्रयाहि त्वं स्वकर्मणा ॥ ३४ ॥
एवमाभाषिते धात्रा जगामशिवमन्दिरम् । चक्रे आतिथ्यपूजां च उमयासह शङ्करः ॥
तस्यैवापि नृपेन्द्रस्य राजानमिदमब्रवीत् ।
कृष्णभक्तोऽसि राजेन्द्र ममापि सुप्रियो भवान् ॥ ३६ ॥
ततो ययातेराजेन्द्र वसत्वं मममन्दिरे । सर्वान्भोगान्प्रभुङ्क्ष्वत्वं दुःखप्राप्यान्हिमानुषैः
अन्तरंनास्ति राजेन्द्र ममविष्णोर्नसंशयः ।
योऽसौ विष्णुस्वरूपेण स वै रुद्रो न संशयः ॥३८ ॥
यो रुद्रो विद्यते राजन्स च विष्णुःसनातनः। उभयोरन्तरंनास्ति तस्माच्चैव वदाम्यहम्
विष्णुभक्तस्यपुण्यस्य स्थानमेव ददाम्यहम् । तस्मादत्रमहाराज स्थातव्यं हि त्वयानघ
एवमुक्तःशिवेनापि ययातिर्हरिवल्लभः । भक्त्याप्रणम्य देवेशं शङ्करं नतकन्धरः ॥
यदेतत्सर्वं महादेव त्वयोक्तमिह साम्प्रतम् । युवयोरन्तरंनास्ति एकामूर्तिर्द्विधा भवत् ॥
वैष्णवं गन्तुमिच्छामि पादौतव नमाम्यहम् ।
एवमस्तु महाराज गच्छलोकं तु वैष्णवम् ॥ ४३ ॥
समादिष्टःशिवेनापि प्रतस्थे वसुधाधिपः । पृथ्वीशस्तैर्महापुण्यैर्वैष्णवैर्विष्णुवल्लभैः ॥
नृत्यमानैस्ततस्तैस्तु पुरतस्तस्य भूपतेः । शङ्खशब्दैःसुपापघ्नैःसिंहनादैःसुपुष्कलैः ॥
जगाम निःस्वनै राजा पूज्यमानःसुचारणैः ।
सुस्वरैर्गीयमानस्तु पाठकैःशास्त्रकोविदैः ॥ ४६ ॥

गायन्ति पुरतस्तस्य गन्धर्वा गीततत्पराः । ऋषिभिः स्तूयमानश्च वेदवृन्दैः समन्वितै
अप्सरोभिः सुरूपाभिः सेव्यमानः सनाहुषिः । गन्धर्वैः किन्नरैः सिद्धैश्चारणैः पुण्यमङ्गलै

साध्यैर्विद्याधरै राजा मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ।
रुद्रैश्चादित्यवर्गैश्च लोकपालैर्दिगीश्वरैः ॥ ४६ ॥

स्तूयमानो महाराजस्त्रैलोक्येन समन्ततः । ददृशे वैष्णवं लोकमनौपम्यमनामयम्
विमानैः काञ्चनै राजा सर्वशोभा समाविलैः । हंसकुन्देन्दुधवलैर्विमानैरुपशोभितै
प्रासादैः शतभौमैश्च मेरुमन्दरसन्निभैः । शिखिरैरुल्लिखद्भिश्च स्वर्व्योममहाटकान्वितै

जाज्वल्यमानैः कलशैः शोभते सुपुरोत्तमम्
तारागणैर्यथाऽऽकाशं तेजःश्रिया प्रकाशते ॥ ५३ ॥

प्रज्वलत्तेजोज्वालाभिर्लोचनैरिवलोकते । नानारत्नैर्हरैर्लोकःप्रहसद्दशनैरिव ॥ ५

समाह्वयति तान्पुण्यान्वैष्णवान्विष्णुवल्लभान् ।
ध्वजव्याजेन राजेन्द्र चलिताग्रैः सुपल्लवैः ॥ ५५ ॥

श्वसनान्दोलितैस्तैश्च ध्वजाग्रैश्चमनोहरैः । हेमदण्डैश्च घण्टाभिः सर्वत्र समलङ्कृत
सूर्यतेजःप्रकाशैश्च गोपुराट्टालकैस्ततः । गवाक्षैर्जालमालैश्च वातायनमनोहरैः ॥ ५

प्रतोलीनां प्रकाशैश्च प्राकारैर्हेमरूपकैः ।
तोरणैः सुपताकाभिर्नानाशब्दैः सुमङ्गलैः ॥ ५८ ॥
कलशाग्रैश्चक्रबिम्बै रविबिम्बसमप्रभैः ।
सुभोगैः शतकक्षैश्च निर्जलाम्बुदसन्निभैः ॥ ५९ ॥

दण्डच्छत्रसमाकीर्णैः कलशैरुपशोभितैः । प्रावृट्कालाम्बुदाकारैर्मन्दिरैरुपशोभित
कलशैः शोभमानैस्तैर्ऋक्षैर्द्यौरिव भूतलम् । दण्डजालपताकाभिर्ऋक्षजालसमप्रभैः

तादृशैः स्फाटिकाकारैः कान्तिशङ्खेन्दुसन्निभैः ।
हेमप्रासादसम्बाधैर्नानाधातुमयैस्ततः ॥ ६२ ॥

विमानैरर्बुदसङ्ख्यैः शतकोटिसहस्रकैः । सर्वभोगयुतैश्चैव शोभते हरिपत्तनम् ॥ ६
यैः समाराधितो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । ते प्रसादात्तस्यतेषु निवसन्ति गृहेषु

परासनं परान्नंच परशय्यांपराङ्गनाम्। सर्वदा वर्जयेद्विप्र कार्त्तिके च विशेषतः ॥
सौवीरकं तथा माषानामिषं च तथा मधु। राजमाषादिकंनित्यं वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती
जम्बीरमामिषं चूर्णमन्नंपर्युषितं द्विज ! । धान्येमसूरिका प्रोक्ता गवांदुग्धमनामिषम्।
लवणं भूमिजंविप्र ! प्राण्यङ्गमामिषंखलु। द्विजक्रीता रसाःसर्वे जलंचाल्पसरस्थितम्
ब्रह्मचर्यं तुर्यकाले पत्रावल्यां च भोजनम्। कुर्याद्वैद्विजशार्दूल तैलाभ्यङ्गं च वर्जयेत्

छत्राकं नालिकं हिङ्गुं पलाण्डुं पूतिकादलम्।
लशुनं मूलकं शिग्रुं तथैव तुम्बिकाफलम् ॥ २२ ॥
कपित्थं चैव वृन्ताकं कूष्माण्डं कांस्यभोजनम्।
द्विष्पाचितं सूतिकान्नं मत्स्यं शय्यां रजस्वलाम् ॥ २३ ॥
द्विस्त्रिश्चान्नं स्त्रियः सङ्गं वर्जयेत्कार्त्तिकव्रती।
धात्रीफलं गृही विप्र रवौ तत्सर्वदा त्यजेत् ॥ २४ ॥
कूष्माण्डे धनहानिः स्याद् वृहत्यां न स्मरेद्धरिम्।
पटोले तु न वृद्धिःस्याद् वलहानिश्च मूलके ॥ २५ ॥

कलङ्की जायते विल्वे तिर्यग्योनिश्च निम्बुके। ताले शरीरनाशःस्यान्नारिकेले चमूर्खता

तुम्बी गोमांसतुल्या स्याद् गोवधं स्यात्कलिन्दके।
शिम्बी पापकरा प्रोक्ता पूतिका ब्रह्मघातिका ॥ २७ ॥

ार्ताक्यां सुतनाशःस्याच्चिररोगीच माषके। मांसेच बहुपापं स्यात्त्यजेत्प्रतिपदादिषु
ात्किञ्चिद्वर्जयेद्योऽन्नं श्रीहरेःप्रीतये द्विज। तत्पूनर्भूसुरे दत्त्वा व्रतान्ते तस्य भोजनम्
ार्त्तिकव्रतिनं विप्र यथोक्तकारिणं नरम्। यमदूताःपलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथागजाः।

श्रेष्ठं विष्णुव्रतं विप्र तत्तुल्या न शतं मखाः।
कृत्वा क्रतुं व्रजेत्स्वर्गं वैकुण्ठं कार्त्तिकव्रती ॥ ३१ ॥
यत्किञ्चिद् दुष्कृतं विप्र मनोवाकायकर्मजम्।
दृष्ट्वा तु विलयं याति कार्त्तिकव्रतिनं क्षणात् ॥ ३२ ॥

र्त्तिक व्रतिनःपुण्यं ब्रह्माचैव चतुर्मुखः। न समर्थोभवेद्वक्तुं यथोक्तव्रतकारिणः ॥

एकविंशतितमोऽध्यायः

कार्तिकमासव्रतविधाननियमकथनम् ।

शौनक उवाच ।

कथयस्व मुने! सूत! सर्वमासोत्तमस्य च । कार्त्तिकस्य विधिंसम्यङ्नियमान्वकुमर्ह

सूत उवाच ।

आश्विनस्यद्विजश्रेष्ठ! पौर्णमास्यां समाहितः। कार्त्तिकस्यव्रतंकुर्याद्यावदुद्बोधिनी
दिवा विप्र नरः कुर्यान्मलमूत्रमुदङ्मुखः। भवेन्मौनी च सर्वत्र रात्रौचेद्दक्षिणामुख
पथ्यम्भसि च गोष्ठेषु श्मशाने वल्मिके द्विज ! । कुर्यादुत्सर्जनंनैव व्रतीमूत्रपुरीष
अत्युत्तमेषुस्थानेषु मलमूत्रं न कारयेत् । शुद्धांमृदं गृहीत्वाऽथ वामंप्रक्षालयेत्क

अद्भिर्मृदापि शुद्ध्यर्थं पूर्वं विंशतिसङ्ख्यया ।
एका लिङ्गे गुदे पञ्च तथा वामकरे दश ॥ ६ ॥

उभयोर्दश दातव्या पादयोश्च त्रिभिस्त्रिभिः। मुखशुद्धिं ततः कुर्यात्सङ्कल्पंस्नपनस्
हृदि दामोदरं ध्यात्वा इमं मन्त्रं ततोवदेत । कार्त्तिकेऽहंकरिष्यामिप्रातःस्नानंज
दामोदरस्य प्रीत्यर्थं राधया पापनाशनम् । नमः पङ्कजनाभाय कृष्णाय जलशायि
नमस्ते राधया सार्द्धं गृहाणार्घं प्रसीदमे । स्नानंकुर्यात्ततो विप्र तिलकं तु यथा

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु किञ्चित्कर्म करोति यः ।
निष्फलं कर्म तत्सर्वं सत्यमेतन्मयोच्यते ॥ ११ ॥

यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रविनाकृतम् । तद्दर्शनं न कर्तव्यं दृष्ट्वा सूर्यंनि
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदाशुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते । चाण्डालोऽपिविशुद्धात्मा पूज्यएव
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः । तेषां ललाटे सततं शुनःपादो न
प्रातःकालोदितं कर्म समाप्य हरिवल्लभाम् । पूजयेद्भक्तितो विप्र तुलसीं पापना
पौराणीं तु कथां श्रुत्वा श्रीहरेःस्थिरमानसः । ततोविप्रं व्रतीभक्त्यापूजयेत्तंय

कलिप्रियोवाच ।

हा ! नाथ किं कृतं कर्म मया हन्तातिदारुणम् ।
कं लोकं वा गमिष्यामि वद स्वामिन्मनाग्गिरम् ॥ २१ ॥

भर्त्सनां तु यथाकाममंकुर्य्यां चाहं सुनिन्दिता। किञ्चिन्नवदसिस्वामिन्नेनोयन्मेनविद्यते

सूत उवाच ।

ननाम चरणे तस्य गतान्यनगरं प्रति। तत्र प्रविष्टा सायोषिद्दृष्ट्वापुण्यजनान्बहून्
ऊर्जस्नानपरान्प्रातर्नर्मदायां च वैष्णवान्। तत्र नद्यां स्त्रियश्चापि राधादामोदरं द्विज !
सपर्यां च कृतां चैव शङ्खनादैर्महोत्सवैः। गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्नानाविधैः फलैः ॥
सुखवासैर्भक्तियुक्ता दृष्ट्वा सा विनयान्विता। पप्रच्छब्रूतयूयंमे किमेतत्क्रियतेस्त्रियः

स्त्रिय ऊचुः ।

र्वमासोत्तमे चोर्जे राधादामोदरौ शुभौ। पूजयामो वयं मातः सर्वपापहरौशुभौ ॥
ोटिजन्मार्जितं पापं नष्टं प्राप्तं निकेतनम्। सपर्यामामिषं त्यक्त्वाकृत्वासाचहरेर्दिने
धनं वै पौर्णमास्यां गता सा निर्मला द्विज !। किङ्कराश्चागतातूर्णं यमस्यनिलयंप्रति

नेतुं तां क्रोधसंयुक्ता बबन्धुश्चर्मरज्जुभिः ।
तदाऽऽगता विष्णुदूता विमानं स्वर्णनिर्मितम् ॥ ३० ॥

शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः। निजघ्नुश्चक्रधाराभिर्यमदूताः पलायिताः ॥
जहंसयुते विप्र ! विमाने स्वर्णनिर्मिते। आरूढा सा गतातैस्तु वेष्टिताविष्णुमन्दिरम्

तत्र तस्थौ चिरं भोगं कृत्वा सा वै यथेप्सितम् ।
या कुर्यात्कार्त्तिके विप्र ! राधादामोदरार्चनम् ॥ ३३ ॥
याति पूजा त्यक्तपापा गोलोकाख्यं मनोहरम् ।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या या च नारी समाहिता ।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य तस्या विनश्यति ॥ ३४ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे राधादामोदरपूजा-
माहात्म्यकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

यत्किञ्चिद्यच्छति ब्रह्मन्कार्तिके च द्विजातये।
राधादामोदरप्रीत्यै तस्यापुण्योऽक्षयोभवेत् ॥ ८ ॥
या नारी कार्त्तिके भक्त्या राधादामोदरं द्विज ! ।
प्रातः सपर्यां सा याति न कुर्यान्निरयं चिरम् ॥ ९ ॥
कदाचिज्जन्मभूमौ सा विधवा प्रति जन्मनि।
भवेच्चासाद्य पूर्वं वै चाप्रिया स्वामिनोऽपि च ॥ १० ॥

पुरा त्रेतायुगे विप्र वृषलो नाम शङ्करः। सौराष्ट्रदेशवासी च तस्य जाया कलिं

जारकामा सदा नाम्ना तृणवन्मन्यते पतिम्।
असौ पतिर्न मे योग्यो मे स्वामी परपूरुषः ॥ १२ ॥

इति मत्वा सदा तस्मै चोच्छिष्टं तु ददाति वै। नीचसङ्गान्महामूढा मद्यमांसं च

स्वामिनो भर्त्सनां नित्यं कुर्यात्कामं तु निष्ठुरा।
पापरज्जुर्भवेच्चासौ कस्माद्वै न मृतोऽपि च ॥ १४ ॥

मृते तस्मिन्नहं भोगं करिष्यामि यदृच्छया। विचार्यैति हृदामूढा जारेणैकेन सा
अन्यदेशं गमिष्यावःसङ्केतमकरोद् द्विज। सुप्तस्यस्वामिनो रात्रौचासिना तद्गलं

छित्त्वा जारकृते सापि सङ्केतस्य स्थलं गता।
आगतं जारपुरुषं द्वीपिना भक्षितं द्विज ! ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा सा रोदनं कृत्वा मूर्च्छिता निपपात ह।
चिरादाश्वस्य सा मूढा करुणं विललाप ह ॥ १८ ॥

कलिप्रियोवाच।

स्वकीयं स्वामिनं हत्वा चागता परपूरुषम्।
तं जारं स्वामिनं दैवाच्छार्दूलोऽभक्षयन्मम।
किं करोमि क्व गच्छामि विधात्रा वञ्चिताऽस्म्यहम् ॥ १९ ॥

सूत उवाच।

ततः कलिप्रिया ब्रह्मन्नागता स्वगृहम्प्रति। लपने स्वामिनोदत्त्वा मुखं च विल

यत्कृत्वा कलुषं सर्वं व्रजेद्विप्र दिशो दश।
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कार्त्तिकव्रतिनो भयात् ॥ ३४ ॥
पौर्णमास्यां यथाशक्ति चान्नवस्त्रादिकं द्विज।
दद्याद्वै श्रीहरेः प्रीत्यै ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥ ३५ ॥
रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिभिर्व्रती।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या तस्य पापं प्रणश्यति ॥ ३६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे कार्तिकव्रतविधान कथनं कथनंनामैकविंशोध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

तुलसीधात्रीमाहात्म्यकथनम्।

शौनक उवाच।

माहात्म्यं ब्रूहि सर्वज्ञ शृण्वतां पापनाशनम्।
सर्वप्राणिहितार्थाय तुलस्या अनुकम्पया ॥ १ ॥

सूत उवाच।

तुलस्याःपरिसरे यस्य काननं तिष्ठति द्विज। गृहस्य तीर्थरूपत्वान्नायान्ति यमकिङ्कराः
तुलस्याः काननं विप्र सर्वपापहरं शुभम्। रोपयन्ति नराःश्रेष्ठास्ते न पश्यन्तिभास्करिम्
रोपणं पालनं सेवां दर्शनं स्पर्शनं तु यः।
कुर्यात्तस्य प्रनष्टं स्यात्सर्वपापं द्विजोत्तम! ॥ ४ ॥
कोमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयन्ति हरिं तु ये। कालस्य सदनं विप्र! तेन यान्ति महाशयाः ॥
गङ्गाद्याःसरितःश्रेष्ठा विष्णुब्रह्म महेश्वराः। देवैस्तीर्थैःपुष्कराद्यैस्तिष्ठन्ति तुलसीदले
यो युक्तस्तुलसीपत्रैः पापी प्राणान्विमुञ्चति।
स विष्णोर्निकेतनं याति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७ ॥

तुलसी मृत्तिकालिप्तो युक्तःपापशतैरपि । विमुञ्चति नरःप्राणान्स याति हरिमन्दि
यो नरो धारयेद्विप्र तुलसिकाष्ठ चन्दनम् । तस्याङ्गं न स्पृशेत्पापं सयाति परमं पद

तुलसीकाष्ठमालां तु कण्ठस्थां वहते तु यः ।
अप्यशौचोऽप्यनाचारो भक्त्या याति हरेर्गृहम् ॥ १० ॥

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा । दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो न

तुलसीदलजां मालां कण्ठस्थां वहते तु यः ।
विष्णूच्छिष्टां विशेषेण स नमस्यो दिवौकसाम् ॥ १२ ॥
यः पुनस्तुलसीमालां कण्ठे कृत्वा जनार्दनम् ।
पूजयेत्पुण्यमाप्नोति प्रतिपुष्पं गवायुतम् ॥ १३ ॥

धारयन्ति न ये मालां हैतुकाःपापबुद्धयः । नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाःकोपाग्निनाहरे
नजह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम्

स्पृशेद्यावन्ति लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणाम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि वसते केशवालये ॥ १६ ॥
निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ १७ ॥

तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः । दृष्ट्वा नश्यन्तिदूरेण वातोद्धूतं यथादल

तुलस्या विपिने धात्र्याश्छायासु यो नरोत्तमः ।
पिण्डं ददाति पितरो मुक्तिं यान्ति द्विजोत्तम ! ॥ १९ ॥
पाणौ मूर्ध्नि गले चैव कर्णयोश्च मुखे द्विज ! ।
धात्रीफलं यस्तु धत्ते स विज्ञेयो हरिः स्वयम् ॥ २० ॥

धात्रीपत्रैःफलैर्विप्र श्रीहरिंचार्चयेद्द्विज । कोटिजन्मार्जितं पापंपूजयानश्यति क्षणात्
यज्ञा देवाश्च मुनयस्तीर्थानि कार्त्तिके द्विज । धात्रीवृक्षं समाश्रित्य तिष्ठन्तिकार्त्तिकेसदा

धात्रीपत्रं कार्त्तिके च द्वादश्यां तुलसी दलम् ।
चिनोति यो नरो गच्छेन्निरयं यातनामयम् ॥ २३ ॥

धात्रीच्छायासु यो विप्र चान्नं भुनक्ति कार्त्तिके।
अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यति ॥२४॥
तुलसीवनमध्ये च धात्रीमूले च कार्तिके। कुर्याद्धर्यर्चनं विप्र वैकुण्ठंयाति सध्रुवम् ॥
तुलसीमूलदेशेऽपि स्थितं वारि द्विजोत्तम।
गृह्णाति मस्तके भक्त्या पापी याति हरेर्गृहम् ॥ २६ ॥
तुलसीपत्रगलितं यस्तोयं शिरसावहेत्। सर्वतीर्थेषु स स्नातश्चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥
पुरा कश्चिद्द्विजश्रेष्ठो द्वापरेऽभून्महामुने। स्नात्वैकदा तुलस्यै स वनं दत्त्वा गृहंगतः।
आदित्योवर्चसा नाम्नामार्त्तण्ड इव पुण्यतः। तृषार्तो भक्षकःकश्चिदागतो बहुकल्मषः।
तुलस्या मूलतस्तोयं पीत्वाऽसौ हतकल्मषः।
त्वरयाप्यागतो व्याधो नाम्ना यश्चासिमर्दनः ॥३० ॥
उवाच भुक्तं चान्नं च भुक्त्वा भग्नं गतः किमु।
कृत्वा मे पाकभाण्डस्थं चागतो हिंसकस्य ते ॥ ३१ ॥
विव्याध तं गतप्राणं नेतुंवै शमनाज्ञया। आगताः किङ्कराः क्रुद्धाः पाशमुद्गरपाणयः।
बद्ध्वानेतुं मनश्चक्रुरागता विष्णुकिङ्कराः। यदा छित्त्वा चर्मपाशं स्यन्दने तं मनोहरे।
तूर्णमारोहयामासुः पप्रच्छुर्विनयान्विताः।
तेऽपि पुण्येन भोःसन्तःकेन वै नीयतेऽप्यसौ ॥ ३४ ॥
ऊचुस्तेऽसौ पुरा राजा पुण्यं बहुतरं कृतम्। अहरत्सुन्दरींकाञ्चिच्चाङ्गनामेव वै तदा ॥
अनेन चांहसा राजा गतो वै शमनक्षयम्। तत्र क्लेशं तु युष्माभिर्दत्तं वै शमनाज्ञया
ताम्रमय्या स्त्रिया सुप्त्वा सार्द्धं क्रीडां चकार सः।
तप्तायां लोहशय्यायां वैक्लव्यं कर्मणा नृप ॥ ३७ ॥
तप्तायोभीषणं तप्तं लोहस्तम्भं यमाज्ञया।
ततःस्थितः समालिङ्ग्य भुक्त्वा दुःखं चिरं नृपः ॥ ३८ ॥
सिक्तःक्षाराम्बुधाराभिरन्यैर्वै शमनालये। ततो नरकशेषे च पापयोनौ मुहुर्मुहुः ॥ ३९
जन्मासाद्यचिरं दुःखमभूत्स्वकर्मणा। तुलसीमूलजं वारि पीत्वा याति हरेर्गृहम् ॥

इदानीं तद्वचःश्रुत्वा गता दूता यथागता। तेन सार्द्धं विष्णुदूता गता वैकुण्ठमन्दि

माहात्म्यं कथितं ब्रह्मंस्तुलस्याः पापनाशनम्।

कुर्वन्ति सेवां ये भक्त्या न जाने किं भवेन्मुने! ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे तुलस्यामाहात्म्यं नाम

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः।

विष्णुपञ्चकमाहात्म्यवर्णनम्।

शौनक उवाच।

कथयस्व मुने सूत! माहात्म्यंकलुषक्षयम्। शेषपञ्चदिनस्यापि कार्त्तिकस्यानुक्रम

सूत उवाच।

शृणु शौनक यत्पृष्टं माहात्म्यं पापनाशनम्। वक्ष्याम्यहं वै चोर्जस्य शेषपञ्चदिनस्य

व्रतानां मुनिशार्दूल प्रवरं विष्णुपञ्चकम्। तस्मिन्यःपूजयेद्भक्त्या श्रीहरिं राधयासह

गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्नानाविधैःफलैः।सयाति विष्णुसदनं सर्वपापविवर्जितः॥ ४

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।

न प्राप्नोति परं स्थानमकृत्वा विष्णुपञ्चकम् ॥ ५ ॥

सर्वपापहरं पुण्यं विख्यातं विष्णुपञ्चकम्। तत्र स्नानं तु यःकुर्यात्सर्वतीर्थफलं लभे

श्रीहरेःपुरतो विप्र तुलस्याश्च समीपतः। प्रदीपं सर्पिषापूर्णं दद्यायो भक्तिभावतः॥

नभसि श्रीहरेः प्रीत्यै यात्यसौ विष्णुमन्दिरम्।

पापी याति हरेर्धाम सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ८ ॥

स्नापयेच्चाच्युतं भक्त्या मधुक्षीरघृतादिभिः।

दद्यात्किं नो हरिः प्रीतस्तस्मै साधुजनाय वै ॥ ९ ॥

नैवेद्यं देवदेवेशं परमान्नं निवेदयेत्। तस्य पुण्यं प्रसङ्ख्यातुं न शक्तो वै चतुर्मुखः॥

अर्चयित्वा हृषीकेशमेकादश्यां समाहितः।
निष्प्राश्य गोमयं सम्यगुपास्ते मन्त्रवच्च यः॥ ११॥
गोमूत्रं मन्त्रवद् भूयो द्वादश्यां प्राशयेद् व्रती।
क्षीरं तथा त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि॥ १२॥
सम्प्राप्य पापशुद्ध्यर्थं लङ्घयित्वा चतुर्दिनम्।
पञ्चमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवम्॥ १३॥
भोजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।
ततो नक्तं समश्नीयात्पञ्चगव्यं सुमन्त्रितम्॥ १४॥

एवं कर्तुमशक्तो यः फलमूलस्य भोजनम्। कुर्याद्धविष्यं वा विप्र यथोक्तविधिना ह वै
श्रीहरेःपञ्चकं विप्र कुर्याद्यस्तुलसीदलैः। पूजयेत्तं स विज्ञेयःस्वयं नारायणःप्रभुः॥१६॥
पुरा त्रेयायुगे शूद्रो दस्युवृत्तिपरायणः। नाम्ना दण्डकरो नित्यं धर्मनिन्दां करोति यः
असत्यभाषी मित्रघ्नो वेश्या विभ्रमलोलुपः। ब्रह्मस्वहारी क्रूरश्च परस्त्रीगमने रतः॥
शरणागतहन्ता च पाखण्डजनसङ्गभाक्। गोमांसाशी सुरापश्च परनिन्दाकरःसदा॥
विश्वासघाती ज्ञातीनां वृत्तिच्छेदी द्विजोत्तम!। दुष्टं सर्वे समालोक्य तादृशं तद्गृहेद्विज!

आगता ज्ञातयः क्रुद्धास्तं च पापपरायणम्॥ २०॥

ज्ञातय ऊचुः।

रे रे मूढ दुराचार विनाशं प्रति नीयते। या प्रतिष्ठाऽर्जिता पूर्वैरस्माकं निर्मलेऽन्वये
इति क्रुद्धा द्विजश्रेष्ठ! अपकीर्तिभयादपि। पापिनां प्रवरं सर्वे तत्यजुस्तं कुलादरम्॥
ततो गतो महारण्यं विनष्टाखिलवैभवः। कुर्यात्स दस्युभिःसार्द्धं दस्युकर्म निरन्तरम्

पथि प्रगच्छतां तेषां भयाद्विप्र न खादितुम्।
प्राप्तं किञ्चित्क्षुधार्त्तास्ते गताश्चान्यस्थलं प्रति॥ २४॥
तत्र प्रविष्टास्ते सर्वे दृष्ट्वा पुण्यजनान्बहून्।
धात्रीमूले स्थितान्ब्रह्मन्वैष्णवान्द्विजसत्तमान्॥ २५॥

सर्वे ते दस्यवो विप्र गता दण्डकरोऽपि सः। तेषां परिसरं गत्वा प्रणामं वै चकार ह॥

दण्डकर उवाच।

क्षुधार्तोऽहं द्विजश्रेष्ठाः! प्राणा यास्यन्ति मे ध्रुवम्।
मेदध्वं खादितुं किञ्चिद्युष्मांस्तु शरणं गतः॥ २७॥

आकर्ण्य वचनं तस्य चोचुस्ते धर्मतत्पराः। सर्वपापहरे त्वं च विख्याते विष्णुपञ्चके॥ कथमन्नं खादितुं ते वाञ्छात्वद्यहरेर्दिने। विशेषं ते ब्रूहि संज्ञा का ते भवति साम्प्रतम्॥

स उवाच मुदा विप्रान्नाम्ना दण्डकरोऽप्यहम्।
सर्वपापसमायुक्तश्चोद्धारो मे कथं भवेत्॥ ३०॥

ऊचुस्ते वै व्रतं श्रेष्ठं कुरुष्व विष्णुपञ्चकम्। विप्राणामाज्ञया विप्र चकार विष्णुपञ्चकम्॥ स प्रेत्य च हरेः स्थानमारुह्य स्यन्दनेवरे। आसाद्य श्रीहरेरूपं तस्थौ जन्मविवर्जितः॥

य इदं शृणुयाद्भक्त्या चाख्यानं पापनाशनम्।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति तत्क्षणात्॥ ३३॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थेब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे विष्णुपञ्चकमाहात्म्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

पृथिव्याद्यनेकविधदानमाहात्म्यफलवर्णनम्।

शौनक उवाच।

विदुषांवर! तत्त्वज्ञ! कथयस्व महामते!। इदानीं मम दानानां माहात्म्यं क्रमतो मुने!॥

सूत उवाच।

क्षितिदानं मुनिश्रेष्ठ दानानामुत्तमं मतम्। येन वै तत्कृतं दानं सर्वदानफलं मतम्॥

क्षितिं ससस्यां यो दद्याद् ब्राह्मणाय द्विजोत्तम!।

विष्णुलोके सुखं भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३ ॥
पृथिव्यां जन्म चासाद्य सार्वभौमस्ततो नृप ! ।
महीं सर्वां चिरं भुक्त्वा व्रजेद्वै श्रीहरेर्गृहम् ॥ ४ ॥

गोचर्ममात्रां भूमिं यः प्रयच्छति द्विजातये । स गच्छति हरेर्गेहं सर्वपापविवर्जितः ॥
शतं गावो वृषश्चैको यत्र तिष्ठन्त्ययन्त्रिताः । गोचर्ममात्रां तां भूमिं प्रवदन्ति महर्षयः

भूमिनेता भूमिदाता द्वौ चापि स्वर्गगामिनौ ।
ग्राह्या भूमिर्द्विजैः प्राज्ञैस्त्यक्त्वा दानशतान्यपि ॥ ७ ॥
अज्ञानी भूसुरो यस्तु त्यजेद्भूमिं विमोहितः ।
प्रतिजन्मन्यसौ विप्रो भवेच्चात्यन्तदुःखभाक् ॥ ८ ॥

अन्यतोयः समासाद्य दद्याद्भूमिं द्विजातये । तस्मै विप्र जगन्नाथो ददाति परमं पदम्
स्वदत्तां परदत्तां च मेदिनीं यो हरेद्द्विज! । युक्तःकोटिकुलैर्याति नरकं चातिदारुणम् ॥
हरेद्यो वै महीं विप्र! देवब्राह्मणयोरपि । न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कोटिकल्पशतैर्मुने ॥
भूमिं योऽपरदत्तां च रक्षति क्ष्मापतिर्द्विज । पुण्यं कोटिगुणं स्याद्वै तस्य दातृजनादपि

सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत्पुण्यं प्राप्यते द्विज ! ।
तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मर्त्यो धेनुं यच्छन्द्विजातये ॥ १३ ॥

ददाति वृषभं यस्तु दरिद्राय कुटुम्बिने । सर्वपापविनिर्मुक्तश्शिवलोकं स गच्छति ॥
तिलप्रमाणं स्वर्णं यो ब्राह्मणाय प्रयच्छति । हरेर्निकेतनं याति युक्तःकोटिकुलैरपि ॥१५
यो दद्याद्रजतं विप्र साधवे भूसुराय वै । प्राप्नोति चन्द्रलोकं च पिबेत्तत्रामृतं सदा
प्रवालं मौक्तिकं चैव हीरकं च मणिं तथा । यो ददाति द्विजश्रेष्ठ स्वर्गलोकं स गच्छति
तुलापुरुषदानेन यत्पुण्यं लभतेजनः । शालग्रामशिलां दत्त्वा तस्मात्कोटिगुणं लभेत् ॥
सप्तद्वीपां क्षितिं दत्त्वा सशैलवनकाननाम् । यत्पुण्यं लभते तद्वै शालग्रामशिलाप्रदः ॥
शालग्रामशिलां यो वै दद्याद्भूमिसुराय च । तेन विप्र प्रदत्तानि भुवनानि चतुर्दश ॥
तुलापुरुषदानं यःकरोति द्विजपुङ्गव । जनन्याश्चोदरे तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २१ ॥
सालङ्कारांद्विज श्रेष्ठ कन्यां यच्छति यो नरः । सगच्छेद्ब्रह्मसदनं पुनर्जन्म न विद्यते ॥

कन्याविक्रयिणो नास्ति नरकान्निष्कृतिः पुनः ।
कन्यादानं कृतो नास्ति स्वर्गादागमनं पुनः ॥ २३ ॥

उपानहौ वाऽऽतपत्रं यो ददाति द्विजातये । प्रेत्य चेन्द्रपुरं गत्वा वसेत्कल्पचतुष्टयम् ॥
वस्त्रं यच्छति यो दिव्यं साधवे वै द्विजातये । स्वर्गे दिव्याम्बरधरश्चिरं तिष्ठेद्द्विजोत्तम ॥
धेनुं पुरातनीं यच्छेद्वस्त्रं च जरितं द्विज । नूत्नां रजोवतीं कन्यां सगच्छेन्निरयं तथा ॥

कन्याविक्रयिणो ब्रह्मन्नपश्येल्लपनं बुधः ।
दृष्ट्वा चाज्ञानतो वापि कुर्यान्मार्तण्डदर्शनम् ॥ २७ ॥

फलदाता नरो गच्छेत्त्रिदिवं च द्विजोत्तम! । भुङ्क्ते कल्प सहस्राणि फलं तत्रामृतोपमम् ॥

शाकं यच्छति यो मर्त्यश्शिवस्य भवनं द्विज ।
याति कल्पद्वयं भुङ्क्ते दुर्लभं पायसं सुरैः ॥ २९ ॥

घृतदो दधिदश्चैव तक्रदो दुग्धदस्तथा । विष्णोर्निकेतनं गत्वा सुधापानं करोति सः ॥
गन्धदःपुष्पदश्चैव मर्त्यो याति सुरालयम् । तिष्ठेद्युगसहस्राणि गन्धपुष्पविभूषितः ॥
शय्यादानं दानसारं ब्राह्मणाय ददाति यः । सयाति ब्रह्मसदनं पर्य्यङ्के शेष्यते चिरम् ॥
पीठदाता दीपदाता सर्वदुष्कृतवर्जितः । स्वर्गे सिंहासने तिष्ठेज्ज्वलद्दीपावलीवृतः ॥

ताम्बूलं यो नरो दद्याद् भूमिं भुङ्क्तेऽखिलां सुखम् ।
स्वर्गे देवाङ्गना क्रोडे सुप्तस्ताम्बूलमत्ति वै ॥ ३४ ॥

विद्यादानं दानवरं करोति यो नरोत्तमः ।
प्रेत्य स सन्निधिं विष्णोस्तिष्ठेद्युगशतत्रयम् ॥ ३५ ॥

प्राप्यज्ञानं ततस्तत्र दुर्लभं वै द्विजर्षभ । दुर्लभं मोक्षमाप्नोति श्रीहरेःकृपया द्विज! ॥
अनाथं दुःखितं विप्रं पाठयेद्वै नरोत्तमः । श्रीहरेर्भवनं याति पुनर्जन्मविवर्जितः ॥३७॥

यो नरःपुस्तकं दद्याद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
प्रतिवर्णं लभेत्पुण्यं कपिलाकोटिदानजम् ॥ ३८ ॥

मधुदो गुडदश्चैव मर्त्यो यातीक्षुसागरम् । लवणदो नरो याति वारुणं लोकमेव च ॥
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं द्विजोत्तम । तच्चबै र्मुनिभिस्सर्वैः प्रवरं वै प्रकीर्तितम् ॥४०॥

अन्नं वारि द्विजश्रेष्ठ ! येन दत्तं महीतले। तेन दत्तानि दानानि सर्वाणि च द्विजर्षभ॥
अन्नदो यो नरोविप्र प्राणदश्च प्रकीर्तितः। तस्मात्समस्तदानानामन्नदो लभते फलम्।

यथा चान्नं तथा वारि द्वे तुल्ये च प्रकीर्तिते।
वारिणा च विना चान्नं सिद्धं न स्याद् द्विजोत्तम! ॥४३॥

क्षुधातृषा द्विजव्याघ्र! द्वेच तुल्ये प्रकीर्तिते। अतश्चान्नं च तोयं च श्रेष्ठंप्रोक्तं बुधैरपि

अन्नदानं क्षितौ ब्रह्मन्ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः।
सर्वपापविनिर्मुक्ता गच्छन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ४५ ॥

यावन्त्यन्नानि भो विप्र यच्छति क्षितिमण्डले। ब्रह्महत्याश्च तावन्त्यो नश्यन्त्येव तपोध

यच्छतां चान्नदानानि शरीराणि च पातकम्।
गात्राणि गृह्णतां त्यक्त्वा सहसा यान्ति शौनक! ॥ ४७ ॥
अतः पापीयसोऽन्नानि न गृह्णन्ति मनीषिणः।
गृह्णन्ति मोहाद्ये मूढा भवन्ति पापभागिनः ॥ ४८ ॥

कुर्याद्भूमिष्ठमुदकं चैकं भो द्विजसत्तम!। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो व्रजेत्स हरिमन्दिरम्।
प्रयत्नेन द्विजश्रेष्ठ! कर्तव्यो धनसञ्चयः। सञ्चितं च धनंब्रह्मन्दानकर्मणि विक्षिपेत्।

रक्षन्ति ये च कार्पण्याद्धनं ते चातिदुःखिनः।
अन्ते सर्वधनं त्यक्त्वा निःस्वा गच्छन्ति भो मुने! ॥५१॥

मानवा ये सदा दानं दत्त्वा दत्त्वा दरिद्रति। दरिद्रास्ते न विज्ञेया नरलोके महेश्वरा
परलोके द्विजव्याघ्र! साधुसंयमवर्जिते। निर्दये बन्धुहीने च न दत्तं नोपतिष्ठते ॥५३॥

स्थिते धने नरो यो वै नाश्नाति न ददाति सः।
दरिद्र इव विज्ञेयः प्रेत्य निश्वासमुत्सृजेत् ॥५४॥
तपसोऽपि वरं दानं प्रोक्तं च तत्त्वदर्शिभिः।
अतो यत्नाद् द्विजश्रेष्ठ दानकर्म समाचरेत् ॥ ५५ ॥

दाता दानं न दद्याद्वै समुत्सृज्य द्विजातये। सयाति निरयं घोरं सर्वजन्तुभयावहम्।

दानं दाता प्रतिग्राहि न स्मरेच्च न याचते।

निरये चोभयोर्वासो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५७ ॥

ब्रह्महत्यादि पापानि यानि वै द्विजसत्तम ।

तानि दानेन हन्यन्ते तस्माद्दानं समाचरेत् ॥ ५८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थेब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे पृथिव्याद्यनेकविधदान-माहात्म्यकथनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

नारदसनत्कुमारसंवादे भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

श्रीप्रदं विष्णुचरितं सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वपापक्षयकरं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥ १ ॥

विष्णुसान्निध्यदं चैव चतुर्वर्ग फलप्रदम् ।

यः शृणोति नरो भक्त्या चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥ २ ॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं श्रूयते महदद्भुतम् । यदुच्चारणमात्रेण नरो यायात्परंपदम् ॥

तद्वदस्वाधुना सूत ! विधानं नाम कीर्तने ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

शृणु शौनक! वक्ष्यामि संवादं मोक्षसाधनम् । नारदःपृष्टवान्पूर्वं कुमारं तद्वदामिते

एकदा यमुनातीरे निविष्टं शान्तमानसम् । सनत्कुमारं प्रपच्छ नारदो रचिताञ्जलिः ॥

श्रुत्वा नानाविधान्धर्मान्धर्मव्यतिकरांस्तथा ॥ ६ ॥

श्रीनारद उवाच ।

योऽसौ भगवता प्रोक्तो धर्मव्यतिकरो नृणाम् ।

कथं तस्य विनाशःस्यादुच्यतां भगवत्प्रिय! ॥७॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

शृणु नारद ! गोविन्दप्रिय ! नाविन्द्धर्मवित् !

यत्पृष्टं लोकनिर्मुक्तिकारणं तमसःपरम् ॥ ८ ॥

सर्वाचारविवर्जिताः शठधियो व्रात्या जगद्वञ्चका,
दम्भाहङ्कृतिपानपैशुनपराःपापाश्च ये निष्ठुराः ॥
ये चान्ये धनदारपुत्रनिरताः सर्वेऽधमास्तेऽपि हि,
श्रीगोविन्दपदारविन्दशरणाः शुद्धा भवन्ति द्विज ! ॥ ९ ॥

तमपि देवकरं करुणाकरं स्थविरजङ्गममुक्तिकरं परम् ।
अतिचरन्त्यपराधपरा जना य इह तान्हरिनाम पुनाति हि ॥ १० ॥

...र्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयः । हरेरप्यपराधान्यः कुर्याद् द्विपदपांसनः ॥ ११ ॥
...माश्रयःकदाचित्स्यात्तरत्येव स नामतः । नाम्नो हि सर्व सुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः

श्रीनारद उवाच

के तेऽपराधा विप्रेन्द्र ! नाम्नो भगवतः कृताः ।
विनिघ्नन्ति नृणां कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति च ॥ १३ ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं बुधजना,
वदन्त्येनां कर्तुं न खलुमनुजः कोऽपि यतने ॥
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं,
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥ १४ ॥

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं तथाऽर्थवादो हरिनाम्नि कल्प्यते ।
नामापराधस्य हि पापबुद्धेर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥ १५ ॥

धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्वं शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधानो विमुखोऽप्यश्रृण्वन्यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥ १६ ॥

श्रुत्वाऽपि नाम माहात्म्यं यः प्रीतिरहितोऽधमः ।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥ १७ ॥

एवं नारद शङ्करेण कृपया मह्यं मुनीनां परं ।

प्रोक्तं नाम सुखावहं भगवतो वर्ज्यं सदा यत्नतः ॥
ये ज्ञात्वाऽपि न वर्जयन्ति सहसा नाम्नोऽपराधान्दश ।
क्रुद्धा मातरमप्यभोजनपराः खिद्यन्ति ते बालवत् ॥ १८ ॥

अपराधविमुक्तो हि नाम्नि जप्ते सदाचर ! । नाम्नैव तव देवर्षे ! सर्वंसेत्स्यति॥

श्रीनारद उवाच ।

सनत्कुमार ! प्रियसाहसानां विवेकवैराग्यविवर्जितानाम् ।
देहप्रियार्थात्मपरायणानां मुक्तापराधाः प्रभवन्ति नः कथम् ॥ २० ॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथञ्चन । सदा सङ्कीर्तयन्नाम तदेकशणो भवेत् ॥

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् ।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि यत् ॥ २२ ॥
नामैकं यस्य चिह्नं स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा,
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ॥ २३॥
तच्चेद्देहद्रविणवनितालोभपाखण्डमध्ये ।
निक्षिप्तं स्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ! ॥

इदं रहस्यं परमं पुरा नारद ! शङ्करात् । श्रुतं सर्वाशुभहरमपराधनिवारकम् ।
विदुर्विष्णवभिधानं ये ह्यपराधपरानराः । तेषामपि भवेन्मुक्तिःपठनादेव ना
नाम्नो माहात्म्यमखिलं पुराणे परिगीयते । ततः पुराणमखिलं श्रोतुमर्हसि मा

पुराणश्रवणे श्रद्धा यस्य स्याद् भ्रातरन्वहम् ।
तस्य साक्षात्प्रसन्नःस्याच्छिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ २७ ॥

यत्स्नात्वा पुष्करेतीर्थे प्रयागे सिन्धुसङ्गमे । तत्फलं द्विगुणं तस्य श्रद्धया वैश्र
ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिताः । प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादान

अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३० ॥

सर्वपुण्येषु दिव्येषु भोगाढ्येषु च मानवाः ।
वैष्णवाःपुण्यकर्माणो निर्धूताशेषकल्मषाः ॥ ६५ ॥
एवंविधैर्गृहैःपुण्यैःशोभितं विष्णुमन्दिरम् । नानावृक्षैःसमाकीर्णं वनैश्चन्दनशोभितैः
सर्वकामफलैराजन्सर्वत्र समलङ्कृतम् । वापीकुण्डतडागैश्च सारसैरुपशोभितैः ॥
हंसकारण्डवाकीर्णैःकल्हारैरुपशोभितैः ।
शतपत्रैर्महापद्मैःपद्मोत्पलविराजितैः ॥ ६८ ॥
कनकोत्पलवर्णैश्च सरोभिश्च विराजते ।
वैकुण्ठं सर्वशोभाढ्यं देवोद्यानैरलङ्कृतम् ॥ ६९ ॥
दिव्यशोभासमाकीर्णं वैष्णवैरुपशोभितम् । वैकुण्ठं ददृशेराजा मोक्षस्थानमनुत्तमम्
देववृन्दैःसमाकीर्णं ययातिर्नहुषात्मजः । प्रविवेश पुरंरम्यं सर्वदाहविवर्जितम् ॥
ददृशे सर्वक्लेशघ्नं नारायणमनामयम् ।
विमानैरुपशोभन्तं सर्वाभरणशालिनम् ॥ ७२ ॥
पीतवस्त्रं जगन्नाथं श्रीवत्साङ्कं महाद्युतिम् । वैनतेयसमारूढं श्रियायुक्तं परात्परम् ॥
सर्वेषां देवलोकानां योगतिःपरमेश्वरः । परमानन्दरूपेण कैवल्येन विराजते ॥
सेव्यमानं महालोकैःसुपुण्यैर्वैष्णवैर्हरिम् । देववृन्दैःसमाकीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ॥
अप्सरोभिर्महात्मानं दुःखक्लेशापहं हरिम् ।
नारायणं ननामाथ स्वपत्न्यासह भूपतिः ॥ ७६ ॥
नेमुर्मानवाःसर्वे वैष्णवा मधुसूदनम् । गता ये वैष्णवाःसर्वे सहराज्ञा महामते ॥
पादाम्बुजद्वयं तस्य नेमुर्भक्त्या महामते ।
प्रणमन्तं महात्मानं राजानं दीप्ततेजसम् ॥ ७८ ॥
तमुवाच हृषीकेशस्तुष्टोऽहं तव सुव्रत ॥
वरय राजेन्द्र यत्ते मनसिवर्तते । तत्ते ददाम्यसन्देहं मद्भक्तोऽसि महामते ॥ ७९ ॥
राजोवाच ।
यदि त्वं देवदेवेश तुष्टोऽसि मधुसूदन । दासत्वं देहि सततमात्मानश्च जगत्पते ॥

विष्णुरुवाच ।

एवमस्तु महाभाग ममभक्तो न संशयः । लोकेममहाराज स्थातव्यमनयासह
एवमुक्तो महाराजो ययातिःपृथिवीपतिः । प्रसादात्तस्यदेवस्य विष्णुलोकंप्रसाधितः
निवसत्येष भूपालो वैष्णवंलोकमुत्तमम् ॥ ८३ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्याने पितृतीर्थवर्णनेययातिचरित्रे ययातेःस्वर्गारोहणंनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चतुःशीतितमोऽध्यायः

गुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णने च्यवनचरित्रवर्णनम् ।

सुकर्मोवाच ।

एतत्तेसर्वमाख्यातं चरित्रं पापनाशनम् । पुत्राणां तारकंदिव्यं बहुपुण्यप्रदायकम्
प्रत्यक्षं दृश्यतेलोके ययातिचरितं श्रुतम् । पूरुणाप्तं महद्राज्यं दुर्गतिंगतवांस्तुरुः
पितृप्रसादात्कोपाच्च यथाजातं तथा पुनः । पुत्राणां तारकंपुण्यं यशस्य धनधान्यदम्
शापयुक्ताविमौचोभौ तुरुश्च यदुरेव च । पितृमातृसमंनास्ति अभिष्टफलदायकम्
साभिलाषेण भावेन पितापुत्रं समाह्वयेत् ।
माता च पुत्रपुत्रीति तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५ ॥
समाहूतो यथापुत्रःप्रयाति मातरंप्रति ।
यो यातिहर्षसंयुक्तो गङ्गास्नानंफलं लभेत् ॥ ६ ॥

पादप्रक्षालनंयस्तु कुरुते च महायशाः । सर्वतीर्थफलं भुङ्क्ते प्रसादात्तुतयोःसुतः
अङ्गसंवाहनाच्चान्यदश्वमेधफलंलभेत् । भोजनाच्छादनस्नानैर्गुरुं यःपोषयेत्सुतः
पृथ्वीदानसमंपुण्यं तत्पुत्रे हि प्रजायते । सर्वतीर्थमयीगङ्गा तथामाता न संशयः
बहुपुण्यमयःसिन्धुर्यथालोके प्रतिष्ठितः । अस्मिल्लोँके पितातद्वत्पुराणकवयो विदुः

भ्रंशते क्रोशते यस्तु पितरं मातरं पुनः।
सपुत्रो नरकंयाति रौरवाख्यं न संशयः ॥ ११ ॥
मातरंपितरंवृद्धौ गृहस्थो यो न पोषयेत्। सपुत्रो नरकंयाति वेदनांप्राप्नुयाद्ध्रुवम् ॥
कुत्सते पापकर्ता यो गुरुंपुत्रःसुदुर्मतिः। निष्कृतिर्नैवदृष्टा वै पुराणैःकविभिःकदा ॥
एवं ज्ञात्वा ह्यहंविप्र पूजयामि दिने दिने।
मातरं पितरं नित्यं भक्त्यानमितकन्धरः ॥ १४ ॥
कृत्याकृत्यं वदेच्चैव समाहूय गुरुर्मम। तत्करोम्यविचारेण शक्त्यास्वस्य च पिप्पल
तेन मे परमंज्ञानं सञ्जातं गतिदायकम्। एतयोश्च प्रसादेन संसारे परिवर्तते ॥ १६ ॥
यच्चकिंचित्प्रकुर्वन्ति मानवा भुविसंस्थिताः।
गृहस्थस्तदहंजाने यच्चस्वर्गे प्रवर्तते ॥ १७ ॥
नागानां च इहस्थोऽपि चारं जानामि पिप्पल।
एतयोश्च प्रसादेन ज्ञानं मे जातमुत्तमम् ॥ १८ ॥
गच्छविद्याधरश्रेष्ठ भवानर्चतु माधवम् ॥ १९ ॥

विष्णुरुवाच।

संसश्चोदितस्तेन पिप्पलो हि स्वकर्मणा। आनम्यतं द्विजश्रेष्ठं लज्जितोऽपि दिवंययौ
सुकर्मासोऽपि धर्मात्मा गुरुंशुश्रूषते नृप। एतत्ते सर्वमाख्यातं पितृतीर्थानुगंमया ॥
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि वदवेन महामते ॥ २२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्याने मातापितृतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

गुरुतीर्थमाहात्म्यवर्णनेच्यवनचरित्रवर्णनम् ।

वेन उवाच ।

भगवन्देवदेवेश प्रसादाच्च ममत्वया । भार्यातीर्थं समाख्यातं पितृतीर्थमनुत्तमम्
मातृतीथ हृषीकेश बहुपुण्यप्रदायकम् । प्रसादसुमुखोभूत्वा गुरुतीर्थं वदस्व मे ॥ १

श्रीभगवानुवाच ।

कथयिष्याम्यहं राजन्गुरुतीर्थमनुत्तमम् । सर्वपापहरं प्रोक्तं शिष्याणां गतिदायकम्
शिष्याणां परमंपुण्यं धर्मरूपं सनातनम् । परंतीर्थं परंज्ञानं प्रत्यक्ष फलदायकम् ॥
यस्यप्रसादाद्राजेन्द्र इहैव फलमश्नुते । परलोके सुखंभुङ्क्ते यशःकीर्तिमवाप्नुयात् ॥

प्रसादाद्यस्य राजेन्द्र गुरोश्चैव महात्मनः ।
प्रत्यक्षं दृश्यते शिष्यैस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ६ ॥

व्यवहारं च लोकानामाचारं नृपनन्दन । विज्ञानं विन्दते शिष्यो मोक्षंचैव प्रयाति
सर्वेषामेवलोकानां यथासूर्यःप्रकाशकः । गुरुःप्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः

रात्रावेवप्रकाशेच्च सोमोराजा नृपोत्तम ।
तेजसा नाशयेत्सर्वमन्धकारं चराचरे ॥ ९ ॥

गृहे प्रकाशयेद्दीपःसमूहं नृपसत्तम । तेजसानाशयेत्सर्वमन्धकारं घनाविलम् ॥ १
अज्ञानतमसाव्याप्तं शिष्यं द्योतयतेगुरुः । शिष्यप्रकाशउद्द्योतैरुपदेशैर्महामते ॥ १
दिवाप्रकाशकःसूर्यःशशी रात्रोप्रकाशकः । गृहप्रकाशकोदीपस्तमोनाशकरःसदा ॥ १

रात्रौदिवा गृहस्यान्ते गुरुःशिष्यं सदैव हि ।
अज्ञानायं तमस्तस्य गुरुःसर्वं प्रणाशयेत् ॥ १३ ॥

तस्माद्गुरुःपरंतीर्थं शिष्याणमवनीपते । एवंज्ञात्वा ततःशिष्यःसर्वदा तं प्रपूजयेत्
गुरुं पुण्यमयंज्ञात्वा त्रिविधेनापि कर्मणा । इत्यर्थे श्रूयते राजन्नितिहासःपुरातनः

सर्वपापहरःप्रोक्तश्च्यवनस्य महात्मनः ।
भार्गवस्य कुलेजातश्च्यवनो मुनिसत्तमः ॥ १६ ॥
तस्यचिन्तासमुत्पन्ना एकदा तु नृपोत्तम । कदाहं ज्ञानसम्पन्नो भविष्यामि महीतले ॥
दिवारात्रौ चिन्तयन्स ज्ञानार्थी मुनिसत्तमः । एवं तु चिन्तमानस्यमतिरासीन्महात्मनः
तीर्थयात्रां प्रयास्यामि अभीष्टफलदायिनीम् ।
गृहक्षेत्रादि सन्त्यज्य भार्यां पुत्रंधनं ततः ॥ १९ ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन अटते मेदनीं तदा । लोमानुलोमयात्रांस गङ्गायाःकृतवान्नृप ॥ २० ॥
तद्वन्नर्मदायाश्च सरस्वत्या मुनीश्वरः । गोदावर्यादि सर्वासां नदीनां सागरस्य च ॥
अन्येषां सर्वतीर्थानां क्षेत्राणां च नृपोत्तम ।
देवानां पुण्यलिङ्गानां यात्राव्याजेन सोऽभ्रमत् ॥ २२ ॥
भ्रममाणस्य तस्यापि तीर्थेषु परमेषु च । कायश्च निर्मलोजातःसूर्यतेजःसमप्रभः ॥२३॥
च्यवनःकाशतेदीप्त्या पूतात्मानेनकर्मणा । भ्रममाणःसमायातःक्षेत्राणामुत्तमं तदा ॥
नर्मदादक्षिणेकुले नाम्नाअमरकण्टकम् । ददर्श सुमहालिङ्गं सर्वेषां गतिदायकम् ॥२५॥
नत्वास्तुत्वा तु सम्पूज्य सिद्धनाथं महेश्वरम् ।
ज्वालेश्वरं ततो दृष्ट्वा दृष्ट्वा चाप्यमरेश्वरम् ॥ २६ ॥
...शेशं कपिलेशं च मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् । एवंयात्रां ततःकृत्वा ओङ्कारं समुपागतः ॥
...च्छायांसमाश्रित्य शीतलां श्रमनाशिनीम् । सुखेनसंस्थितोविप्रश्च्यवनो भृगुनन्दनः
...स्वनं सशुश्राव समुक्तंपक्षिणा तदा । दिव्यभाषासमायुक्तं ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ॥
शुकश्च एकस्तत्रास्ते बहुकाल प्रजीवकः ।
कुञ्जलोनाम धर्मात्मा चतुष्पुत्रःसभार्यकः ॥ ३० ॥
...संतस्य हि पुत्राश्च चत्वारःपितृनन्दनाः । तेषांनामानि राजेन्द्र कथयिष्ये तवाग्रतः
...स्तुउज्ज्वलोनाम द्वितीयस्तुसमुज्ज्वलः । तृतीयोविज्ज्वलोनामचतुर्थश्च कपिञ्जलः
एवं पुत्रास्तु चत्वारःकुञ्जलस्य महामते ।
शुकस्य तस्य पुण्यस्य पितृमातृपरायणाः ॥ ३२ ॥

भ्रमन्ति गिरिकुञ्जेषु द्वीपेषु च समाहिताः। भोजनार्थं तु संक्षुब्धाःक्षुधयापरिपीडि
स्वोदरस्थांक्षुधां सौम्यफलैरमृतसन्निभैः। अमृतस्वादुतोयेन शमयन्ति नृपोत्तम
नित्यंश्चैव रसाढ्यानि आहारार्थं सुपुत्रकाः।
नीत्वाफलानि दम्पत्योर्निक्षिपन्ति प्रयत्नतः॥ ३६॥
मातुरर्थे महाभागा भक्तिभावसमन्विताः। तुष्टाआहारमुत्पाद्य भक्षयन्ति पठन्ति च
तत्रक्रीडारताःसर्वे विलसन्ति रमन्ति च। सन्ध्याकालंसमाज्ञाय पितुरन्तिकमुत्
आयान्ति भक्ष्यामादाय गुर्वर्थं तु प्रयत्नतः।
पश्यतस्तस्य विप्रस्य च्यवनस्य महात्मनः॥ ३९॥
आगतास्त्वण्डजाःसर्वे पितुर्नीडं सुशोभनम्। पितरंमातरंचोभौ प्रणेमुस्ते महाम
ताभ्यां भक्ष्यंसमासाद्य उपतस्थुस्तयोःपुरः।
सर्वे सम्भाषिताः पित्रामानितास्ते सुतोत्तमाः॥ ४१॥
मात्रा च कृपया राजन्वचनैःप्रीतिसंमितैः। पक्षवातेनशीतेन मातापित्रोश्च ते क
तेषामाप्यायनं तौद्वौ चक्राते पक्षिणौ नृप। आशिर्भिरभिनन्द्यैव द्वाभ्यामपिसुपुत्र
तैश्चदत्तं सुसम्पुष्टमाहारममृतोपमम्। तावेव हि सुसम्प्रीतिं चक्राते द्विजसत्तम।
पिबतो निर्मलंतोयं तीर्थकोटिसमुद्भवम्।
स्वस्थानं तु समाश्रित्य सुखसन्तुष्टमानसौ॥ ४५॥
चक्राते च कथांदिव्यां सुपुण्यां पापनाशिनीम्।
पित्रा तु कुञ्जलेनापि पृष्टउज्ज्वल आत्मजः॥ ४६॥
क्वगतोऽस्यद्य पुत्रत्वं किमपूर्वं त्वयापुनः। तत्रदृष्टं श्रुतं पुण्यं तन्मे कथय न
कुञ्जलस्य पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य सउज्ज्वलः। पितरंप्रत्युवाचाथ भक्त्या नमितक
प्रणाममकरोन्मूर्ध्ना कथांचक्रे मनोहराम्॥ ४९॥

उज्ज्वल उवाच।

प्लक्षद्वीपं महाभाग नित्यमेव व्रजाम्यहम्। महता उद्यमेनापि आहारार्थं महामते
प्लक्षेद्वीपे महाराज सन्तिदेशा अनेकशः। पर्वताःसरिदुद्यान वनानि च सरांसि

ग्रामाश्च पत्तनाश्चान्ये सुप्रजाभिःप्रमोदिताः । सदासुखेन सन्तुष्टा लोकाहृष्टावसन्ति ते
दानपुण्य जपोपेताःश्रद्धाभाव समन्विताः ।
प्लक्षद्वीपे महाराज आसीत्पुण्यमतिःसदा ॥ ५३ ॥
दिवोदासस्तु धर्मात्मा तत्सुतासीदनूपमा । गुणरूपसमायुक्ता सुशीला चारुमङ्गला ॥
दिव्यादेवीतिविख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
पित्रा विलोकिता सो तु रूपलावण्यसंयुता ॥ ५५ ॥
प्रथमे वयसि सा च वर्त्तते चारुमङ्गला । स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्यादेवीं सुतांतदा
कस्मै प्रदीयते कन्या सुवराय महात्मने । इति चिन्तापरो भूत्वा समालोक्य नरोत्तमः
रूपदेशस्य राजानं समालोक्य महीपतिः ।
चित्रसेनं महात्मानं समाहूय नरोत्तमः ॥ ५८ ॥
कन्यां ददौ महात्मासौ चित्रसेनाय धीमते । तस्याविवाहकाले तु सम्प्राप्ते समये नृप
मृतोऽसौ चित्रसेनस्तुकालधर्मेणवै किल । दिवोदासस्तु धर्मात्माचिन्तयामासभूपतिः
सुब्राह्मणान्समाहूय पप्रच्छ नृपनन्दनः ।
अस्याविवाहकाले तु चित्रसेनो दिवंगतः ॥ ६१ ॥
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्यति वदन्तु मे ॥ ६२ ॥

ब्राह्मणाऊचुः ।

विवाहो दृश्यते राजन्कन्यायास्तुविधानतः । पतिर्मृत्युंप्रयात्यस्या नोचेत्सङ्गंकरोतिच
महाधिव्याधिनाग्रस्तस्त्यागंकृत्वा प्रयाति च ।
प्रव्राजितो भवेद्राजन्धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥ ६४ ॥
अनुद्वाहितायाःकन्याया उद्वाहःक्रियते बुधैः । नस्याद्रजस्वलायावदन्यःपतिर्विधीयते ॥
विवाहं तु विधानेन पिताकुर्यान्नसंशयः । एवं राजन्समादिष्टं धर्मशास्त्रं बुधैर्जनैः ॥
विवाहःक्रियतामस्या इत्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः ।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा द्विजवाक्य प्रणोदितः ॥ ६७ ॥
विवाहार्थं महाराज उद्यमं कृतवान्नृप । पुनर्दत्ता तु दानेन दिव्यादेवी द्विजोत्तम ॥६८॥

रूपसेनाय पुण्याय तस्मैराज्ञे महात्मने । मृत्युधर्मं गतो राजा विवाहे तु महीपतिः
यदायदा महाभाग दिव्यादेव्याश्च भूपतिः । भर्ता च म्रियतेकाले प्राप्तेलग्नस्य स
एकविंशति भर्तारःकालेकालेमृताःपितः ।
ततो राजा महादुःखी सञ्जातःख्यातविक्रमः ॥ ७१ ॥
समालोच्य समाहूय समामन्त्र्य समन्त्रिभिः । स्वयंवरे महाबुद्धिं चकार पृथिवीप
प्लक्षद्वीपस्य राजानःसमाहूता महात्मना । स्वयंवरार्थमाहूतास्तथा ते धर्मतत्परा
तस्यास्तु रूपसंमुग्धा राजानोमृत्युनोदिताः । सङ्ग्रामं चक्रिरे मूढास्तेमृताःसमरा
एवं तात क्षयोजातःक्षत्त्रियाणां महात्मनाम् ।
दिव्यादेवी सुदुःखार्ता गता सा वनकन्दरम् ॥ ७५ ॥
रुरोद करुणंबाला दिव्यादेवी मनस्विनी । एवं तात मयादृष्टमपूर्वं तत्र वै तदा ॥
तन्मे सुविस्तरं तात तस्याःकथय कारणम् ॥ ७७ ॥
इति श्री पाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनोपाख्याने
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

कुञ्जलेनतस्यादिव्यादेव्याःपूर्वजन्माचरितदुष्कर्मकथनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

तस्यास्तु चेष्टितं वत्स दिव्यादेव्या वदाम्यहम् । पूर्वजन्मकृतं सर्वं तन्मे निगदत
अस्ति वाराणसी पुण्या नगरीपापनाशिनी । तस्यामास्तेमहाप्राज्ञःसुवीरोनाम ना
वैश्यजात्यां समुत्पन्नो धनधान्य समाकुलः ।
तस्यभार्या महाप्राज्ञ चित्रानाम सुविश्रुता ॥ ३ ॥
कुलाचारं परित्यज्य अनाचरेण वर्तते । न मन्यते हि भर्तारं स्वैरवृत्त्याप्रवर्तते ॥

धर्मपुण्यविहीना तु पापमेव समाचरेत् । भर्तारं कुत्सते नित्यं नित्यं च कलहप्रिया ॥
नित्यं परगृहेवासो रमते सा गृहेगृहे । परच्छिद्रं समापश्येत्सदादुष्टा च प्राणिषु ॥६॥

साधुनिन्दा परादुष्टा सदाहास्यकरी च सा ।
अनाचारां महापापां ज्ञात्वा वीरोऽपि नन्दनः ॥ ७ ॥

स तां त्यक्त्वा महाप्राज्ञ उपयेमे महामतिः । अन्यवैश्यस्य वै कन्यां तयासह प्रवर्तते
धर्माचारेण पुण्यात्मा सत्यधर्ममतिःसदा । निरस्ता तेन साचित्राप्रचण्डा भ्रमतेमहीम्
दुष्टानां सङ्गतिं प्राप्ता नराणां पापिनां सदा । दूतीकर्म चकाराथ सा तेषां पापनिश्चया

गृहभङ्गं चकाराथ साधूनां पापकारिणी ।
साध्वीं नारीं समाहूय पापवाक्यैःसुलोभयेत् ॥ ११ ॥

धर्मभङ्गं चकाराथवाक्यैःप्रत्ययकारकैः । साधूनां सास्त्रियंचित्राअन्यस्मै प्रतिपादयेत्
एवं गृह शतंभग्नं चित्रया पापनिश्चयात् । सङ्ग्रामं सा महादुष्टाऽकारयत्पतिपुत्रकैः

मनांसि चालयेत्पापां पुरुषाणां स्त्रियःप्रति ।
अकारयच्च सङ्ग्रामं यमग्राम विवर्धनम् ॥ १४ ॥

एवं गृहशतं भङ्क्त्वा पश्चात्सा निधनंगता । शासिता यमराजेन बहुदण्डैःसुनन्दन ॥
अभोजयत्सुनरकान्रौरवांस्तरणेःसुतः । पाचितारौ रवेश्चित्रा चित्राःपीडाःप्रदर्शिताः ॥

यादृशं क्रियतेकर्म तादृशं परिभुज्यते ।
तया गृहशते भग्नं चित्रया पापनिश्चयात् ॥ १७ ॥

तत्तत्कर्मविपाकोऽयं तयाभुक्तो द्विजोत्तम । यस्माद्गृहशतं भग्नं तस्माद्दुःखं प्रभुञ्जति
विवाहसमये प्राप्ते दैवं च पाकतां गतम् । प्राप्ते विवाहसमये भर्तामृत्युं प्रयाति च ॥

यथा गृहशतंभग्नं तथा वरशतं मृतम् ।
स्वयंवरे तदा वत्स विवाहे चैकविंशतिः ॥ २० ॥
दिव्यादेव्या मयाख्यातं यथा मे पृच्छितं त्वया ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तस्याःपूर्वविचेष्टितम् ॥ २१ ॥

उज्ज्वल उवाच ।

दिव्यादेव्यास्त्वयाख्यातं यत्पूर्वपूर्वचेष्टितम् ।
तथा पापं कृतं घोरं गृहभङ्गाख्यमेव च ॥ २२ ॥
प्लक्षद्वीपस्य भूपस्य दिवोदासस्य वै सुता । केनपुण्यप्रभावेण तयाप्राप्तं महाकुलम् ॥
एष मे संशयस्तात तदेतत्प्रब्रवीतु मे । एवं पापसमाचारा कथंजाता नृपात्मजा ॥२४॥

कुञ्जल उवाच ।

चित्रायाश्चेष्टितंपुण्यं तत्सर्वं प्रवदाम्यहम् । श्रूयतामुज्ज्वलसुत चित्रया यत्कृतंपुरा॥
भ्रममाणो महाप्राज्ञःकश्चित्सिद्धःसमागतः ।
कुचैलो वस्त्रहीनश्च संन्यासी स च दण्डधृक् ॥ २६ ॥
कौपीनेन समायुक्तःपाणीपात्रो दिगम्बरः । गृहद्वारं समाश्रित्य चित्रायाः परिसंश्रितः
समौनी सर्वमुण्डस्तु विजितात्मा जितेन्द्रियः। निराहारो जिताहारः सर्वतत्त्वार्थदर्शकः
दूराध्वानपरिश्रान्त आतपा कुलमानसः । श्रमेण खिद्यमानश्च तृषाक्रान्तः सुपुत्रक॥
चित्राद्वारं समाश्रित्य च्छायामाश्रित्य संस्थितः ।
तयादृष्टो महात्मा स चित्रया श्रमपीड़ितः । सेवां चक्रे च चित्रा सा तस्यैवसुमहात्मनः
पादप्रक्षालनं कृत्वा दत्वा आसनमुत्तमम् । आस्यतामासने तात सुखेनापि सुकोमले
क्षुधापनोदनार्थं हि भुज्यतामन्नमुत्तमम् । स्वेच्छया परितुष्टश्च शीतलं सलिलं पिब
एवमुक्त्वा तथाकृत्वा देववत्पूज्य तं सुत । अङ्गसंवाहनंकृत्वा नाशितश्रम एव च॥
तयोक्तो हि महात्मा स भुक्त्वा पीत्वा द्विजोत्तम ॥ ३४ ॥
एवं सन्तोषितःसिद्धस्तया तत्वार्थदर्शकः ॥
सन्तुष्टः सर्वधर्मात्मा किंचित्कालं स्थिरोऽभवत् ॥ ३५ ॥
स्वेच्छाया स गतो विप्रो महायोगी यथागतम् ॥
गते तस्मिन्महाभागे सिद्धेचैव महात्मनी । सा चित्रा मरणं प्राप्ता स्वकर्मवशमागता
शासीता धर्मराजेन महादण्डैः सुदुःखदैः । सा चित्रा नरकंप्राप्ता वेदनाव्रातदायकम्
भुङ्क्तेदुःखंमहाराज सा वै युग सहस्रकम् । भोगान्ते तु पुनर्जन्म सम्प्राप्तं मानुषस्य
पूर्वं सम्पूजितः सिद्धस्तया पुण्यवतांवरः । तस्य कर्मविपाकोऽयं प्राप्ता पुण्यवतां कु

क्षत्रियाणां महाराज्ञो दिवोदासस्य वै गृहे । दिव्यादेवीवरापत्यं सञ्जातं तस्य मानद
सा हि दत्तवतीचान्नं पानंपुण्यं महात्मने । तस्यदानस्य सा भुङ्क्ते महत्पुण्यफलोदयम्
पिबते शीतलंतोयं मिष्टान्नं च भुनक्ति वै । दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जाना वर्तते पितृमन्दिरे
सिद्धस्यास्य प्रभावाच्च राजकन्या व्यजायत । पापकर्मप्रभावाच्च गृहभङ्गान्महामते
विधवात्वं भुञ्जते सा दिव्यादेवी सुपुत्रक । एतत्ते सर्वमाख्यातं दिव्यादेव्या विचेष्टितम्
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि यत्त्वं पृच्छसि मामहि ॥ ४५ ॥

उज्जल उवाच

कथं सामुच्यते शोकान्महादुःखाद्वदस्व मे ।
सास्याच्च कीदृशी बाला महादुःखेन पीड़िता ॥ ४६ ॥

सुखं कीदृशं तस्माद्विपाकश्च भविष्यति । एतं मे संशयंतात साम्प्रतंछेत्तुमर्हसि ॥
थं सा लभते मोक्षं तं चोपायं वदस्व मे । एकाकिनी महाभागा महारणे प्रयोदिति

विष्णुरुवाच ।

त्रवाक्यं महच्छ्रुत्वा क्षणमेकं विचिन्त्यसः । प्रत्युवाच महाप्राज्ञः कुञ्जलः पुत्रकंप्रति॥
पुवत्स महाभाग सत्यमेतद्वदाम्यहम् । पापयोनिं तु सम्प्राप्य पूर्वकर्म समुद्भवाम्॥
र्यक्त्वेन च मे ज्ञानं नष्टं सम्प्रतिपुत्रक । अस्यवृक्षस्य सङ्गाच्च प्रयतस्य महात्मनः ॥
रेवायाश्च प्रसादेन विष्णोश्चैव प्रसादतः ॥
येन सा लभते ज्ञानं मोक्षस्थानं निवर्तते ॥ ५२ ॥
उपदेशं प्रवक्ष्यामि मोक्षमार्गमनुत्तमम् ॥
यास्यते कल्मषान्मुक्ता यथाहेम हुताशनात् ॥ ५३ ॥
द्धं च जायते वत्स सङ्गाद्धहेःस्वरूपवत् । हरेर्ध्यानान्महाप्राज्ञ शीघ्रं तस्य महात्मनः ॥
जपहोमव्रतात्पापं नाशंयाति हि पापिनाम् ॥
मदंत्यजेद्यथा नागो भयात्सिंहस्य सर्वदा ॥ ५५ ॥
नामोच्चारेण कृष्णस्य तत्प्रयाति हि किल्विषम् ।
तेजसा वैनतेयस्य विषहीना इवोरगाः ॥ ५६ ॥

ब्रह्महत्यादिकाःपापाःप्रलयं यान्ति नान्यथा ।
नामोच्चारेण तस्यापि चक्रपाणेः प्रयान्ति ते ॥ ५७ ॥
यद्नाम शतंपुण्यमघराशि विनाशनम् ॥
सा जपेतस्थिराभूत्वा कामक्रोधविवर्जिता ॥ ५८ ॥
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य आत्मज्ञानेन गोपयेत् । तस्यध्यान प्रविष्टा सा एकभूता समाहित
सा जपेत्परमंज्ञानं तदामोक्षं प्रयाति च ।
तन्मनास्तत्पदेलीना योगयुक्ता यदा भवेत् ॥ ६० ॥

उज्ज्वल उवाच ।

वद तात परंज्ञानं परमं मम साम्प्रतम् । पश्चाद्ध्यानं व्रतं पुण्यं नाम्नां शतमिहैव च।

कुञ्जल वाच

परंज्ञानं प्रवक्ष्यामी यन्नदृष्टं तु केनचित् । श्रूयतां पुत्रकैवल्यं केवलं मलवर्जितम् ॥६
यथादीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः । प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते
तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः । निराशो निर्मलोवत्स न मित्र न रिपु कदा
न शोको न च हर्षश्च न लोभो न च मत्सरः । एकोविषादहर्षैश्च सुखदुःखैर्विमुच्यते
विषयैश्चापि सर्वैश्च इन्द्रियाणि स संहरेत् । तदा स केवलो जातः केवलत्वं प्रजाय
अग्निकर्मप्रसङ्गेन दीपस्तैलं प्रशोषयेत् ।
वर्त्याधारेण राजेन्द्र निःसङ्गोवायुवर्जितः ॥ ६७ ॥
कज्जलं वमते पश्चात्तैलस्यापि महामते । कृष्णासौ दृश्यते रेखा दीपस्याग्रे महामते
स्वयमाकृष्यते तैलं तेजसा निर्मलो भवेत् ।
कायवर्तिस्थितस्तद्वत्कर्मतैलं प्रशोषयेत् ॥ ६९ ॥
विषयान्कज्जलीकृत्य प्रत्यक्षं सम्प्रदर्शयेत् । जनयेन्निर्मलो भूत्वा स्वयमेव प्रकाश
क्रोधादिभिःक्लेशसंज्ञैर्वायुभिःपरिवर्जितः ।
निःस्पृहो निश्चलो भूत्वा तेजसा स्वयमुज्ज्वलेत् ॥ ७१ ॥
त्रैलोक्यं पश्यते सर्वं स्वस्थानस्थःस्वतेजसा ।

केवल ज्ञानरूपोऽयं मया ते परिकीर्तितः ॥ ७२ ॥

ध्यानं तस्य प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः । केवल ज्ञानरुपेण दृश्यते ज्ञान चक्षुषा

योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणः ।

यं पश्यन्ति विनिद्रास्तु यत्तपःसर्वदर्शकम् ॥ ७४ ॥

हस्तपादविहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति ।

सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरंजङ्गमं सुत ॥ ७५ ॥

नासामुखविहीनस्तु घ्रातिजक्षिति पुत्रक । अकर्णःश्रृणुते: सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः

अरूपोरुपसम्बद्धः पञ्चवर्ग वशंगतः ।

सर्वलोकस्य यःप्राणःपूजितःसचराचरैः ॥ ७७ ॥

अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रानुगं सुतः । अत्वचःस्पर्शनंचापि सर्वेषामेव जायते ॥

सदानन्दो विरक्तात्मा एकरूपो निराश्रयः । निर्जरोनिर्ममोन्यायी सगुणोनिर्ममोऽमलः

अवश्यःसर्ववश्यात्मासर्वदःसर्ववित्तमः । तस्य ध्याता न चैवास्ति सर्वे सर्वमयो विभुः

एवं सर्वमयंध्यानं पश्यते यो महात्मनः ।

स याति परमंस्थानममूर्तममृतोपमम् ॥ ८१ ॥

द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि अस्य ध्यानं महात्मनः ।

मूर्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम् ॥ ८२ ॥

ब्रह्माण्डं सर्वमतुलं वासितं यस्य वासना । स तस्माद्वासुदेवेतिः उच्यते ममनन्दन ॥

वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्णं तस्यतद्भवेत् । सूर्यतेजःप्रतीकाशं चतुर्बाहुं सुरेश्वरम् ॥

दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः । सूर्यबिम्बसमाकारं चक्रं पद्मं प्रतिष्ठितम् ॥

कौमोदकीगदा तस्य महासुर विनाशिनी ।

वामे च शोभते वत्स हस्ते तस्य महात्मनः ॥ ८६ ॥

महापद्मं सुगन्धाढ्यं तस्य दक्षिण हस्तगम् । शोभमानःसदैवास्ते सायुधःकमलाप्रियः

कम्बुग्रीवं वृत्तमास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । राजमानं हृषीकेशं दशनै रत्नसन्निभैः ॥८८॥

गुडाकेशाःसन्ति यस्य अधरो विद्रुमाकृतिः । शोभते पुण्डरीकाक्षःकिरीटेनापिपुत्रक

विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुवर्चसा ।
कौस्तुभेनाङ्कितेनैव राजमानो जनार्दनः ॥ ६० ॥
सूर्यतेजःप्रतीकाश कुण्डलाभ्यां प्रभाति च । श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजतेहरिः
केयूरकङ्कणैर्हारैर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभैः । वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतांवरः ॥६२
भ्राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा ।
मुद्रिका रत्नयुक्ताभिरङ्गुभिर्विराजते ॥ ६३ ।
सर्वायुधैःसुसम्पूर्णैर्दिव्यैराभरणैर्हरिः । वैनतेय समारूढो लोककर्ता जगत्पतिः॥
एवं तं ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं सगच्छति।
एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानमेव जगत्पतेः ।
व्रतंचैव प्रवक्ष्यामि सर्वपाप निवारणम् ॥ ६६ ॥
इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्यानेगुरुतीर्थवर्णनेषडशीतितमोऽध्यायः

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अशून्यशयनव्रतकथनम् ।

कुञ्जलउवाच ।

व्रतभेदान्प्रवक्ष्यामि यैर्यैश्चाराधितो हरिः । जया च विजयाचैव जयन्ती पापनाशिनी
त्रिस्पृशावञ्जुलीचान्या तिलदग्धा तथापरा । अखण्डाचारकन्या च मनोरथासुपुत्रदा
दिव्यप्रभावाःसन्त्यन्यास्तिथयःपुत्रपौत्रदाः । अशून्यशयनं चान्यज्जन्माष्टमी महाव्रतम्
एतैर्व्रतैर्महापुण्यैःपापं दूरं प्रयाति च ।
प्राणिनां नात्रसन्देहःसत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ४ ॥
स्तोत्रं तस्य प्रवक्ष्यामिपापराशि विनाशनम् । सुपुत्र शतनामाख्यं नराणांगतिदायकम्
तस्य देवस्य कृष्णस्य शतनामाख्यमुत्तमम् । सम्प्रत्येव प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्वसुतोत्तम

विष्णोर्नामशतस्यापि ऋषिंछन्दो वदाम्यहम्।
देवंचैव महाभाग सर्वपाप विशोधनम्॥ ७॥
विष्णोर्नामशतस्यापिऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः। विष्णुस्तु देवताप्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुतथैव च
सर्वकामिक संसिद्ध्यै मोक्षे च विनियोगकः॥ ८॥
नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम्॥ ९॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं ततः।
विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वाधारं सुरार्चितम्॥ १०॥
अनघं त्वघहन्तारं नरसिंहं श्रियःप्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥
श्रीरामं माधवंमोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वदं सर्वनायकम्॥
हरिंमुरारिंगोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञाननायकम्॥
अच्युतं सबलं चन्द्रं चक्रपाणिं परावरम्। युगाधारं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्॥
मुकुन्दं तं सुवैकुण्ठमेकरूपं जगत्पतिम्। वासुदेवं महात्मानं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्द्धनम्।
यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥ १६॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। अव्यक्तं तं महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥१७॥
पुरुषं पुष्कराक्षं तु वराहं धरणीधरम्। प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासं व्यालमहेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं मोक्षं च परमेश्वरम्।
योगरूपं महाज्ञानं योगिनां गतिदं प्रियम्॥ १९॥
मुरारिं लोकपालं तं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाभुजम्॥
नमामि निश्चलं नित्यं मनोवाक्काय कर्मभिः॥ २१॥
नाम्नां शतेनापि सुपुण्य कर्ता यःस्तौति कृष्ण मनसास्थिरेण।
सयाति लोकं मधुसूदनस्य विहाय लोकानिहपुण्यपूतः॥ २२॥
नाम्नांशतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्। जपेदनन्यमनसा ध्यायेद्ध्यान समन्वितम्॥
नित्यमेव नरःपुण्यैर्गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरोभूत्वा समाहित मनाजपेत्

त्रिकालं च जपेन्मर्त्यो नियतो नियमेस्थितः। अश्वमेधफलं तस्य जायते नात्रसंशयः

एकादश्यामुपोष्यैव पुरतो माधवस्य यः।
जागरे प्रजपेन्मर्त्यस्तस्यपुण्यं वदाम्यहम्॥ २६॥
पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।
तुलसी सन्निधौस्थित्वा मनसा यो जपेन्नरः॥ २७॥

राजसूय फलंभुङ्क्ते वर्षेणापि च मानवः। शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावतीशिला॥
उभयोः सन्निधौ जाप्यं कर्त्तव्यं सुखमिच्छता। बहुसौख्यं प्रभुक्त्वैव कुलानांशतमेवच
एकेनचाधिकं मर्त्य आत्मनासह तारयेत्। कार्तिके स्नानकर्ता यःपूजयेन्मधुसूदनम्॥

यःपठेत्प्रयतःस्तोत्रं प्रयाति परमांगतिम्।
माघस्नायी हरिंपूज्य भक्त्या च मधुसूदनम्॥ ३१॥

ध्यायेच्चैव हृषीकेशं जपेद्वाथ शृणोति वा। सुरापानादिकं पापं विहाय परमंपदम्॥
विनाविघ्नं नरः पुत्र सम्प्रयाति जनार्दनम्। श्राद्धकाले हि यो मर्त्यो विप्राणांभुञ्जतांपुरः

यो जपेच्च शतंनाम्नां स्तोत्रं पातकनाशनम्।
पितरस्तुष्टिमायान्ति तृप्तायान्ति परांगतिम्॥ ३४॥

ब्रह्मणो वेदविद्वान्स्यात्क्षत्रियोविन्दते महीम्। धनऋद्धिं प्रभुञ्जीत वैश्यो जपतियःसदा

शूद्रःसुखं प्रभुङ्क्तेऽथ ब्राह्मणत्वं च गच्छति।
प्राप्यजन्मान्तरं वत्स वेदविद्यां प्रविन्दति॥ ३६॥

सुखदं मोक्षदं स्तोत्रं जप्तव्यं च न संशयः। केशवस्य प्रसादेन सर्वसिद्धो भवेन्नरः॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थवर्णनेच्यवनचरित्रे
सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

———

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

प्लक्षद्वीपंगत्वाउज्ज्वलस्यदिव्यादेवींप्रतिपित्रुद्दिष्टव्रतस्तोत्रादिकथनम्

कुञ्जल उवाच ।

...तं स्तोत्रं महाज्ञानं ध्यानंच्चैव सुपुत्रक । मयाख्यातं तवाग्रे वै विष्णोःपापप्रणाशनम्

...वं चतुष्टयं सा हि यदापुण्यं समाचरेत् । प्रयाति वैष्णवंलोकं देवानामपि दुर्लभम्

...तोगत्वा व्रतं वत्स दिव्यादेवीं प्रबोधय । अशून्यशयनंनाम व्रतराजं वदस्वताम् ॥३॥

समुद्धर महापापाद्राजकन्यां यशस्विनीम् ।

त्वयापृष्टं मयाख्यातं पुण्यदं पापनाशनम् ॥ ४ ॥

गच्छगच्छ महाभाग इत्युक्त्वा विरराम सः ॥ ५ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

...ज्ज्वलोऽप्येव मुक्तस्तु सपित्रा कुञ्जलेनहि । प्रणम्य पादौ धर्मात्मा मातापित्रोर्महामति

...गाम त्वरितो राजन्प्लक्षद्वीपं सउज्ज्वलः । तं गिरिं सर्वतोभद्रं नानाधातु समाकुलम्

नानारत्नमयैस्तुङ्गैःशिखरैरुपशोभितम् ।

नानाप्रवाह सम्पूर्णैरुदकैरुज्ज्वलैर्नृप ॥ ८ ॥

...त्रःसन्ति स्वच्छनीरास्तस्मिन्गिरिवरोत्तमे । किन्नरास्तत्रगायन्ति गन्धर्वाःसुस्वरैर्नृप

...प्सरोभिःसमाकीर्णं देववृन्दैरुपावृतम् । सिद्धचारणसङ्घुष्टं मुनिवृन्दैरलङ्कृतम् ॥

नानापक्षिनिनादैश्च सर्वत्र परिनादितम् ।

एवंगिरिं समासाद्य उज्ज्वलोऽलघुविक्रमः ॥ ११ ॥

...स्वरेणापि सा कन्या गिरौतस्मिन्प्ररोदिति । रोरूयमाणां सप्राज्ञोवचनं चेदमब्रवीत्

का त्वं भवसि कल्याणि कस्माद्रोदिषि साम्प्रतम् ।

...माश्रिता महाभागे केन ते विप्रियं कृतम् । समाचक्ष्व ममाद्यैव सर्वंदुःखस्य कारणम्

दिव्यादेव्युवाच ।

विपाको हि महाभाग कर्मणां मम साम्प्रतम् । इहतिष्ठामि दुःखेन वैधव्येन समन्विता
भवान्को हि महाभाग कृपया ममपीडितः । पक्षिरूपधरो वत्स सोत्सवं परिभाषते ॥
एवमाकर्ण्य तत्सर्वं भाषितं राजकन्यया ।
अहंपक्षी महाभागे कृपया तवपीडितः ॥ १६ ॥
पक्षिरूपधरो भद्रे नाहंसिद्धो न ज्ञानवान् । रुदमानां महालापैर्भवतींदृष्टवानिह ॥ १७ ॥
ततःपृच्छाम्यहं देवि वद मे कारणंत्विह । पितुर्गेहे यथावृत्तमात्मवृत्तान्तमेव हि ।
तया निवेदितं सर्वं यथासङ्ख्येन दुःखदम् ।
समासेन समाकर्ण्य उज्ज्वलस्तु महामनाः ॥ १६ ॥
तामुवाच महापक्षी दिव्यादेवीं सुदुःखिताम् । यथा विवाहकाले ते भर्तारो मरणंगताः
स्वयंवर निमित्तं ते क्षयंयाताश्च क्षत्रियाः । एतत्ते चेष्टितंसर्वं मयापितरि भाषितम् ।
अन्यजन्मकृतं कर्म तवपापं सुलोचने ।
ममपित्रा ममाग्रे तु कृपया परिभाषितम् ॥ २२ ॥
तेनदोषेण सम्पुष्टा लिप्ताजाता वरानने । एतावत्कारणं सर्वं तातेन परिभाषितम् ।
पूर्वकर्म विपाकं तु भुङ्क्ष्वत्वं च समाश्व स ।
एवं सा भाषितं तस्य श्रुत्वा कन्योज्ज्वलस्य तत् ॥ २४ ॥
प्रत्युवाच महात्मानं ब्रुवन्तं पक्षिणं पुनः । प्रणता दीनया वाचा कुरुपक्षिन्कृपां मम ।
कथयस्व प्रसादेन तस्यपापस्य निष्कृतिम् । प्रायश्चित्तं सुपुण्यं च ममपातक शोधकम्
येन व्रजाम्यहं पुण्यं विशुद्धा धौतकल्मषा ।
प्रायश्चितं महाभाग वद मे त्वं प्रसादतः ॥ २७ ॥

उज्ज्वल उवाच ।

तवार्थं तु महाभागे पितरं पृष्टवानहम् । समोख्यातमतःपित्रा प्रायश्चित्तमनुत्तमम्
तत्त्वं कुरु महाभागे सर्वपातकशोधनम् । ध्यायस्व हि हृषीकेशं शतनाम जपस्व च
भव ज्ञान परानित्यं कुरु व्रतमनुत्तमम् । अशून्यशयनं पुण्यं व्रतं पाप प्रणाशकम्
समाचष्ट सधर्मात्मा सर्वज्ञानप्रकाशकम् ।

ज्ञानस्तोत्रं व्रतं ध्यानं विष्णोश्चैव महात्मनः ॥ ३१ ॥

विष्णुरुवाच ।

तस्मात्सा हि प्रजग्राह संस्थिता निर्जनेवने । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्ता सञ्जाता तपसिस्थिता

व्रतं चक्रे जिताहारा निराधारा सुदुःखिता । कामक्रोधविहीना सा वर्गसंयम्य नित्यशः

इन्द्रियाणां महाराज महामोहं निरस्य सा ।

अब्दे चतुर्थकेप्राप्ते सुप्रसन्नो जनार्दनः ॥ ३४ ॥

तस्यै वरंदातुकामश्चायातो वरनायकः । तस्यै सन्दर्शयामास स्वरूपं वरदःप्रभुः ॥

इन्द्रनील घनश्याम शङ्खचक्रगदाधरम् । सर्वाभरणशोभाढ्यं पद्महस्तं महेश्वरम् ॥३६॥

वद्धाञ्जलिपुटाभूत्वा वेपमाना निराश्रया ॥

उवाच गद्गदैर्वाक्यैः प्रणता मधुसूदनम् ॥ ३७ ॥

तेजसा तवदिव्येन स्थातुं शक्नोमि नैव हि । दिव्यरूपो भवेःकस्त्वं कृपया ममचाग्रतः

...स्व प्रसादेन किमत्र तवकारणम् । सर्वमेव प्रसादेन प्रब्रवीहि महामते ॥ ३९ ॥

...वं विजानामि तेजसा इङ्गीतैस्तव । ज्ञानहीना जगन्नाथ न जाने रूपनामनी ॥

किं ब्रह्मा वा भवान्विष्णुःकिं वा शङ्कर एव हि ।

एवमुक्त्वा प्रणम्यैवं दण्डवद्धरणींगता ॥ ४१ ॥

तामुवाच जगन्नाथःप्रणतां राजनन्दिनीम् ॥ ४२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

...णामपि देवानामन्तरंनास्ति शोभने । ब्रह्मा समर्चितो येन शङ्करो वा वरानने ॥

तेनाहमर्चितो नित्यं नात्रकार्या विचारणा ।

एतौ ममाभिन्नतरौ नित्यंचापि त्रिरूपवान् ॥ ४४ ॥

...हं हि पूजितोयैश्च तावेतौ तैःसुपूजितौ । अहंदेवो हृषीकेशःकृपया तवचागतः ॥ ४५॥

...नानेन पुण्येन व्रतेन नियमेन च । सञ्जाता कल्मषैर्हीना वरं वरय शोभने ॥ ४६ ॥

दिव्यादेव्युवाच ।

जयस्व हृषीकेश कृष्ण क्लेशापहारक । नमामि चरणद्वन्द्वं मामुद्धर सुरेश्वरम्॥४७॥

वरं मे दातुकामोऽसि चक्रपाणे प्रसीद मे। आत्मपादयुगस्यापि भक्तिंदेहि ममानघ।
दर्शयस्व जगन्नाथ मोक्षमार्गं निरामयम्॥
दासत्वं देहि वैकुण्ठ यदितुष्टो जनार्दन॥ ४६॥

श्रीभगवानुवाच।

एवमस्तु महाभागे गच्छ निर्धूतकल्मषा। वैष्णवं परमंलोकं दुर्लभं योगिभिःस
गच्छगच्छ परंलोकं प्रसादान्मम साम्प्रतम्। एवमुक्ते ततोवाक्ये माधवेन महात्मना
दिव्यादेवी अभूद्दिव्या सूर्यतेजःसमप्रभा।
पश्यतां सर्वलोकानां दिव्याभरणभूषिता॥ ५२॥
दिव्यमालान्विता सा च दिव्यहारविलम्बिनी। गता सा वैष्णवंलोकंदाहप्रलयवर्जित
पुनःपक्षी समायातःस्वगृहं हर्षसंयुतः। तत्सर्वं कथयामास पितरंप्रति सत्तमः॥५४

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
ऽष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

समुज्ज्वलेननर्मदातीरेव्याधोद्धारपूर्वककृष्णहंसकथावर्णनम्।

विष्णुरुवाच।

कुञ्जलस्तु सुतंवाक्यं समुज्ज्वलमथाब्रवीत्। भवान्कथय भोःपुत्र किमपूर्वं तु दृष्ट
तन्मे कथय सुप्रीतःश्रोतुकामोऽस्मि साम्प्रतम्। एवमादिश्य तं पुत्रं विरराम सकुञ्ज
पितरं प्रत्युवाचाथ विनयावनतस्सुतः॥ ३॥

समुज्ज्वल उवाच।

हिमवन्तं नगश्रेष्ठं देववृन्द समन्वितम्। आहारार्थं प्रगच्छामि भवतश्चात्मनःपितः
पश्यामि कौतुकं तत्र न दृष्टं न श्रुतं पुरा। प्रदेशमृषिभिःकीर्णमप्सरोभिःप्रशोभितम्

...कौतुकशोभाढ्यं मङ्गल्यं मङ्गलैर्युतम् । बहुपुण्यफलोपेतैर्वनैर्नानाविधैस्ततः ॥६॥
...क कौतुकभरैर्मनसःपरिमोहनम् । तत्र दृष्टं मया तातं अपूर्वं मानसान्तिके ॥ ७ ॥
...हंसैःसमाकीर्णो हंस एकःसमागतः । स च कृष्णो महाभाग त्रयोऽप्यन्येसमागताः
...तैश्च चञ्चुपादैरन्यतःशुक्लविग्रहाः । तादृशास्ते च नीला वै अन्येशुभ्रा महामते ॥
...तत्र वै नार्यो रौद्राकाराविभीषणाः । दंष्ट्राकराल सङ्कूरा ऊर्ध्वकेश्योभयानकाः

पश्चात्तास्तु समायातास्तस्मिन्सरसि मानसे ।
कृष्णाहंसास्तु संस्नाता मानसे तातमत्पुरः ॥ ११ ॥
विभ्रान्ताःपरितश्चान्ये न स्नातास्तत्र मानसे ।
कृष्णान्हंसास्तु संस्नाताञ्जहसुस्ताःस्त्रियस्तदो ॥ १२ ॥
तस्मात्तडागान्निष्क्रान्तो हंसएको महातनुः ।
पश्चात्त्रयो विनिष्क्रान्तास्तैश्चाहं समुपेक्षितः ॥ १३ ॥

...ः आकाशमार्गेण विवदन्तःपरस्परम् । तास्तु स्त्रियो महाभीमाःसमन्तात्परिबभ्रमुः

विन्ध्यस्य शिखरे पुण्ये वृक्षच्छाया सुपक्षिणः ।
निषण्णास्तत्र ते सर्वे दग्धादुःखैःसुदारुणैः ॥१५॥

...सुवीक्षमाणानां भिल्लएकःसमागतः । मृगान्सपीडयित्वा तु बाणपाणिर्धनुर्द्धरः
...तलं समाश्रित्य निषसाद सुखेन वै । पश्चाद्भिल्ली समायाता अन्नमादाय सोदकम्

स्वयंप्रियं वीक्षते राज्ञा मुदितैर्लक्षणैर्युतम् ।
अन्यादृशं समावीक्ष्य स्वकान्तं तेजसावृतम् ॥ १८ ॥

...तेजःसमाक्रान्तं यथासूर्यं दिविस्थितम् । नरमन्यं परिज्ञाय तं परित्यज्य सा ययौ

व्याध उवाच ।

एह्येहि त्वं प्रियेचात्र कस्मान्मां त्वं न पश्यसि ।
क्षुधया पीड्यमानोऽहं त्वामहं चावलोकये ॥ २० ॥
तस्यवाक्यं समाकर्ण्य शीघ्रंव्याधी समागता ।
भर्तुःपार्श्वं समासाद्य विस्मिता सा भवत्तदा ॥ २१ ॥

कोऽयं तेजःसमाचारो देवोऽयं मां समाह्वयेत् । तमुवाच ततोव्याधी भर्तारंदीप्ततेजसम्

अत्र किं ते कृतं वीर भवान्को दिव्यलक्षणः ॥ २२ ॥

समुज्ज्वल उवाच ।

एवमाभाषितो व्याध्याव्याधःप्रियामभाषत । अहं ते वल्लभःकान्ते भवती च मम प्रि

कस्मात्त्वं मां न जानासि कथंशङ्का प्रवर्तते । क्षुधया पीड्यमानेन पयश्चान्नं प्रतीक्ष्य

व्याध्युवाच ।

वर्बरःकृष्णवर्णश्च रक्ताक्षःकृष्णकञ्चुकः । ईदृशश्चास्ति मे भर्ता सर्वसत्त्वभयङ्करः

भवान्को दिव्यदेहस्तु प्रियेत्युक्त्वा समाह्वयेत् ।

एष मे संशयोजातो वदसत्यं ममाग्रतः ॥ २६ ॥

कुलंनाम स्वकंग्रामं क्रीडांलिङ्गं सुतंसुताम् । समाचष्ट प्रियाग्रे तु तस्याःप्रत्ययहेतवे

प्रत्युवाच स्वभर्तारं साव्याधी हृष्टमानसा । कस्मात्ते ईदृशःकायःश्वेतकञ्चुकधारक

कथंजातःसमाचक्ष्व ममाश्चर्यं प्रवर्तते ॥ २९ ॥

समुज्ज्वल उवाच ।

एवं सम्पृच्छमानस्तु भार्यया मृगघातकः ।

प्रत्युवाच ततः श्रुत्वा तां प्रियां प्रश्रयान्विताम् ॥ ३० ॥

नर्मदा उत्तरेकूले सङ्गमश्चास्ति सुव्रते । आतपेनाकुलोजीवो ममजातोऽति सुभ्रि

अस्मिन्वै सङ्गमे कान्ते श्रमश्रान्तो हि सत्वरः ।

गतःस्नात्वा जलंपीत्वा पश्चाच्चाहं समागतः ॥ ३२ ॥

तदा प्रभृति मे काय ईदृशस्तेजसावृतः । सञ्जातो वस्त्रसंयुक्तः कञ्चुकःशुभ्रतांगतः

पूर्वोक्तलिङ्गसंस्थानैःकुलैःस्थानेन वै तथा ।

स्वप्रियं लक्षयित्वा तु ज्ञात्वा पुण्यस्य सम्भवम् ॥ ३४ ॥

प्रत्युवाचाथ भर्तारं सङ्गमं ममदर्शय । तव पश्चात्प्रदास्यामि भोजनं पानसंयुतम्

इत्युक्तःप्रियया व्याधःसत्वरेण जगाम ह । सङ्गमो दर्शितस्तेन ततोऽग्रे पापनाशनः

समुड्डीना महाभाग पक्षिणो लघु विक्रमाः । तयासार्द्धं ययुःसर्वे रेवासङ्गमसुत्तमम्

तेषां तु वीक्षमाणानां पक्षिणां ममपश्यतः ।
तया हि स्नापितो भर्ता पुनःस्नाता हि सा स्वयम् ॥ ३८ ॥

[द]िव्यदेहधरौचोभौ दिव्यकान्तिसमन्वितौ । सञ्जातौ पक्षिणांश्रेष्ठ दिव्यवस्त्रानुलेपनौ
[द]िव्यमालाम्बरधरौ दिव्यगन्धानुलेपनौ । वैष्णवं यानमासाद्य मुनिगन्धर्व पूजितौ ॥
[ग]तौ वैष्णवंलोकं वैष्णवैःपरिपूजितौ । स्तूयमानौ महात्मानौ दम्पती दृष्टवानहम्
[ग]च्छन्तौ स्वर्गमार्गेण कूजन्ते पक्षिणस्तथा । तीर्थराजं परंदृष्ट्वा हर्षव्यक्ताक्षरैस्तदा ॥

चत्वारःकृष्णहंसास्ते सङ्गमे पापनाशने ।
स्नात्वा वै भावशुद्धास्ते प्राप्ता उज्ज्वलतां पुनः ॥४३॥
स्नात्वा पीत्वा जलं ते तु पुनर्बहिर्विनिर्गताः ।
तावत्यस्ताः स्त्रियःकृष्णा मृतास्तत्स्नानमात्रतः ॥४४॥

[द]ह्यमाना विचेष्टन्त्यो हाहाकारविकम्पिताः । यमलोकं गतास्तास्तु तातदृष्टा मयातदा
[स]ुनास्तु ततो हंसाःस्वस्थानं प्रतिजग्मिरे । एवं तात मयादृष्टं प्रत्यक्षं कथितं तव ॥

कृष्णपक्षा महाकाया धार्तराष्ट्रास्तु तास्त्रियः ।
कथयस्व प्रसादेन के भविष्यन्ति वै पितः ॥ ४७ ॥
निर्गतान्मानसान्मध्याद्धार्तराष्ट्रान्वदस्व मे ।
के भविष्यन्ति ते तात कथयत्वं तु साम्प्रतम् ॥४८॥
कस्मात्सुकृष्णतां प्राप्ता हंसाःशुद्धाश्च ते पुनः ।
सञ्जातास्तत्क्षणात्तात कस्मान्मृतास्तु ताःस्त्रियः ॥४९॥

[ए]ं मे संशयस्तात सञ्जातो दारुणो हृदि । छेत्तुमर्हसि अद्यैव भवान्ज्ञानविचक्षणः ॥
[प्रस]ाद सुमुखोभूत्वा प्रणतस्य सदैव मे । एवं सम्भाष्य पितरं विरराम समुज्ज्वलः ॥

ततःप्रवक्तुमारेभे सशुकःकुञ्जलाभिधः ॥५१॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थवर्णनेच्यवनचरित्रे

एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

कुञ्जलेनकृष्णहंसकथानकावसरेतीर्थचरित्रवर्णनम् ।

विष्णुरुवाच ।

एवमाकर्ण्य तत्सर्वं समुज्ज्वलस्यभाषितम् । कुञ्जलःस हि धर्मात्माप्रत्युवाच सुतं

कुञ्जलउवाच ।

सम्प्रवक्ष्याम्यहं तात श्रूयतां स्थिरमानसः ।
सर्वसन्देह विध्वंसं चरित्रं पापनाशनम् ॥ २ ॥

इन्द्रलोके प्रववृते संवादो देवकौतुकः । सभायां तस्यदेवस्य इन्द्रस्यापि महात्मन
देवंद्रष्टुं सहस्राक्षं नारदस्त्वरितं ययौ । समागतं सहस्राक्षःसूर्यतेजःसमप्रभम् ॥
तं दृष्ट्वा हर्षमायातःसमुत्थाय महामतिः । ददावर्घं च पाद्यं च भक्त्या प्रणतमा
बद्धाञ्जलि पुटोभूत्वा प्रणाममकरोत्तदा । आसने कोमले पुण्ये विनिवेश्य द्विजोत्त
पप्रच्छ प्रणतोभूत्वा श्रद्धयापरयायुतः । कस्मच्चागमनं तेद्य कारणं वद साम्प्रत

इत्युक्तो देवराजेन प्रत्युवाच महामुनिः ।
भवन्तं द्रष्टुमायातःपृथिव्यास्तु पुरन्दर ॥ ८ ॥

स्नात्वा पुण्यप्रदेशेषु तीर्थेषुच सुश्रद्धया । देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य दृष्ट्वा तीर्थान्यने
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया पृच्छितं पुरा ॥ १० ॥

देवेन्द्र उवाच ।

दृष्टानि पुण्यतीर्थानि सुक्षेत्राणि त्वयामुने । कितीर्थं प्राप्यमुच्येत ब्रह्मघ्नो ब्रह्मह
सुरापो मुच्यते पापाद्गोघ्नो हेमापहारकः । स्वामीद्रोहान्महाभाग नारीहन्ताकथं

नारद उवाच

यानिकानि च तीर्थानि गयादीनि सुरेश्वर । तेषांनैव प्रजानामि विशेषं पापनाश
सुपुण्यानि सुदिव्यानि पापघ्नानि समानि च ।

सर्वाण्येव सुतीर्थानि जानाम्यहं पुरन्दर ॥ १४ ॥
...विशेषं विशेषं वै नैवजानामि साम्प्रतम् । प्रत्ययं क्रियतां देव तीर्थानां गतिदायकम्
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं नारदस्य महात्मनः । समाहूतानि चेन्द्रेण तीर्थानि भूगतानि च
मूर्तिमन्ति च दिव्यानि समायातानि शासनात् ।
वद्धाञ्जलीनिदिव्यानि भूषितानि सुभूषणः ॥ १७ ॥
दिव्याम्बराणि स्निग्धानि तेजोवन्ति च सुव्रत ।
स्त्रीपुंसोश्च स्वरूपाणि कृतानि च विशेषतः ॥ १८ ॥
...हंसचन्द्र प्रकाशानि दिव्यरूपधराणि च । मुक्ताफलस्य वर्णेन प्रभासन्ते नरेश्वर ॥
...काञ्चनवर्णानि सारुण्यानि च तत्रवै । कान्त्या शुक्लसुपीतानिप्रभावन्ति सभान्तरे
...नि पद्मनिभान्येव मूर्तिमन्ति च तानि तु । सूर्यतेजःप्रकाशानि तडित्तेजःसमानि च
...वकाभानि चान्यानि प्रभासन्ते सभान्तरे । सर्वाभरणशोभाढ्यैःप्रशोभन्ते नरेश्वर ॥
...रकङ्कणकेयूर मालाभिस्तु सुचन्दनैः । दिव्यचन्दनदिग्धानि सुरभीणि गुरूणि च ॥
कमण्डलुकराण्येव आयातानि सभान्तरे ।
गङ्गा च नर्मदापुण्या चन्द्रभागा सरस्वती ॥ २४ ॥
देविका बिम्बिका कुब्जा कुञ्जलामञ्जुला श्रुता ।
रम्भा भानुमतीपुण्या पाराचैव सुघर्घरा ॥ २५ ॥
...शोणा च सिन्धुसौवीरा कावेरी कपिलातथा । कुमुदा वेदनदीपुण्यासुपुण्याचमहेश्वरी
...र्मण्वती तथाख्याता लोपाचान्या सुकौशिकी । सुहंसी हंसपादा च हंसवेगामनोरथा
...सुरथा स्वारुणावेगा भद्रवेणासुपद्मिनी । वाहिनीसरघाचान्यापुण्याचान्यापुलिन्दिका
हेमामनोरथा दिव्या चन्द्रिका वेदसङ्क्रमा ।
ज्वालाहुताशनी स्वाहा कालाचैव कपिञ्जला ॥ २६ ॥
...तथा सुकाल कालिङ्गा गम्भीरा हिमवाहिनी । देवद्रीची वीरवाहालक्षहोमा अघापहा
...पाशरीहेमगर्भा सुभद्रावसुपुत्रिका । एतानद्यो महापुण्या मूर्तिमत्यो नरेश्वर ॥३१॥
सर्वाभरणशोभाढ्याःकुम्भहस्ताःसुपूजिताः । प्रयागःपुष्करश्चैव सर्वतीर्थमनोरमः ॥

वाराणसी महापुण्या ब्रह्महत्याव्यपोहिनी ।
द्वारावती प्रभासश्च अवन्ती नैमिषस्तथा ॥ ३३ ॥
चण्डकश्च महारत्नो महेश्वर कलेश्वरौ । कलिञ्जरो ब्रह्मक्षेत्रं माथुरो मानवाहकः
मायाकान्ती तथान्यानि दिव्यानि विविधानि च ।
अष्टषष्टिःसुतीर्थानि नदीनां शतकोटयः ॥ ३५ ॥
गोदावरीमुखाःसर्वाःसमायातास्तदाज्ञया ।
द्वीपानां तु समस्तानि सुतीर्थानि महान्ति च ॥ ३६ ॥
मूर्तिलिङ्गधराण्येव सहस्राक्षं सुरेश्वरम् । समाजग्मुःसमस्तानि तदादेशकराणि च
प्रणेमुर्देवदेवेशं नतशीर्षाणि सर्वशः । तैः प्रोक्तं तु महातीर्थैर्देवराजस्तु सादरम्
कस्मात्त्वया समाहूता देवदेव वदस्व नः ।
ब्रूहि नःकारणंसर्वं नमस्तुभ्यं वराधिपः ॥ ३९ ॥
एवमाकर्ण्यतद्वाक्यं देवराजोऽभ्यभाषत । कःसमर्थो महातीर्थो ब्रह्महत्यां व्यपोहितुम्
गोवधाख्यं महापापं स्त्रीवधाख्यमनुत्तमम् ।
स्वामीद्रोहाच्च सम्भूतं सुरापानाच्चदारुणम् ॥ ४१ ॥
हेमस्तेयात्तथाजातं गुरुनिन्दा समुद्भवम् । भ्रूणहत्यां महाघोरां कःसमर्थो निवर्तितुम्
राजद्रोहान्महापापं बहुपीडाप्रदायकम् । मित्रद्रोहात्तथाचान्यदन्यद्विश्वासघातकम्
देवभेदं तथाचान्यं लिङ्गभेदमतःपरम् ।
वृत्तिच्छेदं च विप्राणां गोप्रचार प्रणाशनम् ॥ ४४ ॥
आगारदहनं चान्यद् गृहदीपनकं तथा । षोडशैते महापापा अगम्यागमनं तथा॥ ४५
स्वामीत्यागात्समुद्भूतं रणस्थानात्पलायनात् ।
एतानि नाशयेत्को वै समर्थस्तीर्थउत्तमः ॥ ४६ ॥
समर्थो भवतांमध्ये प्रायश्चित्तं विनाध्रुवम् । पश्यतां देवतानां च नारदस्य च पश्यतः
ब्रुवन्तु सर्वे सञ्चिन्त्य विचार्यैवं सुनिश्चितम् । एवमुक्ते शुभेवाक्ये देवराज्ञामहात्मनः
संमन्त्र्य तीर्थराजेन प्रोचुःशक्रं सभागतम् ॥ ४८ ॥

तीर्थान्यूचुः ।

श्रूयतामभिधायामो देवराज नमोऽस्तुते । सन्ति वै सर्वतीर्थानि सर्वपापहराणि च ॥
ब्रह्महत्यादिकान्यांश्च त्वयाप्रोक्तान्सुरेश्वर । महाघोरान्सुदीप्तांश्च नाशितुंनैवशक्नुमः ॥
प्रयागःपुष्करश्चैव अर्घतीर्थमनुत्तमम् । वाराणसी महाभाग समर्थापापनाशिनी ॥५१॥
महापातकनाशार्थे चत्वारोऽमितविक्रमाः । उपपातकनाशार्थं चत्वारोऽमितविक्रमाः ॥

सृष्टाधात्रा च देवेन्द्र पुष्कराद्या महाबलाः ।
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं तीर्थानां सुरराट् ततः ॥ ५३ ॥
हर्षेण महताविष्टस्तेषांस्तोत्रं चकार सः ॥ ५४ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमाहात्म्येच्यवनचरित्रे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

———

एकनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्महत्याऽगम्यागम्यदोषदूषितस्यशक्रस्यवाराणस्यादितीर्थेषुस्नानम् ।

कुञ्जल उवाच ।

ब्रह्महत्याभिभूतस्तु सहस्राक्षो यदापुरा । गौतमस्य प्रियासङ्गादगदाम्यागमनं महत् ॥

सञ्जातं पातकं तस्य त्यक्तोदेवैश्च ब्राह्मणैः ।
सहस्राक्षस्तपस्तेपे निरालम्बो निराश्रयः ॥ २ ॥

ततोऽन्ते देवताःसर्वा ऋषयो यक्षकिन्नराः । देवराजस्य पूजार्थमभिषेकं प्रचक्रिरे ॥
तं मालवकं नीत्वा देवराजं सुतोत्तम । चक्रेस्नानं महाभाग कुम्भैरुदकपूरितैः ॥ ४ ॥
स्थापितुं प्रथमं नीतो वाराणास्यां स्वयं ततः । प्रयागे तु सहस्राक्ष अर्घतीर्थे ततःपुनः

पुष्करेण महात्माऽसौ स्नापितःस्वयमेव हि ।
ब्रह्मादिभिःसुरैःसर्वैर्मुनिवृन्दैर्द्विजोत्तम ॥ ६ ॥

नागैर्वृक्षैर्नागसर्पैर्गन्धर्वैस्तु सकिन्नरैः। स्नापितो देवराजस्तु वेदमन्त्रैःसुसंस्कृतः।

मुनिभिःसर्वपापघ्नै तस्मिन्काले द्विजोत्तम।

शुद्धे तस्मिन्महाभागे सहस्राक्षे महात्मनि ॥ ८ ॥

ब्रह्महत्यागता तस्य अगम्यागमनं तथा। ब्रह्महत्या ततो नष्टा अगम्यागमनेन च ॥ ९

पापेन तेन घोरेण सार्द्धमिन्द्रस्य भूतले। सुप्रसन्नःसहस्राक्षस्तीर्थेभ्यो हि वरं ददौ

भवन्तस्तीर्थराजानो भविष्यथ न संशयः। मत्प्रसादत्पवित्राश्च यस्मादहं विमोक्षि

सुघोरात्किल्बिषादत्र युष्माभिर्विमलैरहम्।

एवं तेभ्यो वरंदत्त्वा मालवाय वरं ददौ ॥ १२ ॥

यस्मात्त्वयामलंमेऽद्य विधृतं श्रमदायकम्। तस्मात्त्वमन्नपानैश्च धनधान्यैरलङ्कृतः

भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादन्न संशयः।

सुदुष्कालैर्विना त्वं तु भविष्यसि सुपुण्यवान् ॥ १४ ॥

एवंतस्मै वरंदत्त्वा देवराजःपुरन्दरः। क्षेत्राणि सर्वतीर्थानि देशोमालवकस्तथा

आखण्डलेन सार्द्धं ते स्वस्थानं प्रतिजग्मिरे। तदाप्रभृति चत्वारःप्रयागःपुष्करस्तथा

वाराणसी चार्घतीर्थं प्राप्ता राजत्वमुत्तमम् ॥ १७ ॥

अस्ति पञ्चालदेशेषु विदुरोनाम क्षत्रियः। तेन मोहप्रसङ्गेन ब्राह्मणो निहतःपुरा॥ १

शिखासूत्रविहानस्तु तिलकेन विवर्जितः। भिक्षार्थमटतेसोऽपि ब्रह्मघ्नोऽहं समागत

ब्रह्मघ्नाय सुरापाय भिक्षाचान्नं प्रदीयताम्। गृहेष्वेवं समस्तेषु भ्रमते याचते पु

एवं सर्वेषु तीर्थेषु अटित्वैव समागतः।

ब्रह्महत्या न तस्यापि प्रयाति द्विजसत्तम ॥ २१ ॥

वृक्षच्छायां समाश्रित्य दह्यमानेन चेतसा। संस्थितोविदुरःपापो दुःखशोकसम

चन्द्रशर्मा ततोविप्रो महामोहेन पीडितः। न्यवसन्मागधेदेशे गुरुघातकरश्च सः॥ २

स्वजनैर्बन्धुवर्गैश्च परित्यक्तोदुरात्मवान्। स हि तत्र समायातोयत्रासौ विदुरःस्थि

शिखा सूत्रविहीनस्तु विप्रलिङ्गैर्विवर्जितः।

तदासौ पृच्छितस्तेन विदुरेण दुरात्मना ॥ २५ ॥

भवान्को हि समायातो दुर्भगो दग्धमानसः ।
विप्रलिङ्गविहीनस्तु कस्मात्त्वं भ्रमसे महीम् ॥ २६ ॥
विदुरेणोक्त मात्रस्तु चन्द्रशर्मा द्विजाधमः । आचष्टे सर्वमेवापि यथापूर्वकृतं स्वकम् ॥
पातकं च महाघोरं वसता च गुरोर्गृहे । महामोहगतेनापि क्रोधेनाकुलितेन च॥ २८ ॥
गुरोर्घातःकृतःपूर्वं तेनदग्धोऽस्मि साम्प्रतम् ।
चन्द्रशर्मा च वृत्तान्तमुक्त्वा सर्वमपृच्छत ॥ २६ ॥
भवान्को हि सुदुःखात्मा वृक्षच्छायां समाश्रितः ।
विदुरेण समासेन आत्मपापं निवेदितम् ॥ ३० ॥
अथकश्चिद् द्विजःप्राप्तस्तृतीयःश्रमकर्षितः । वेदशर्मेति वै नाम बहुपातकसञ्चयः ॥३१॥
द्वाभ्यामपि सुसम्पृष्टःकोभवान्दुःखिताकृतिः ।
कस्माद् भ्रमसि वै पृथ्वीं वदभावं त्वमात्मनः ॥ ३२ ॥
वेदशर्मा ततःसर्वमात्मचेष्टितमेव च । कथयामास ताभ्यां वै ह्यगम्यागमनं कृतम् ॥
धिक्कृतःसर्वलोकैश्च अन्यैःस्वजनबान्धवैः । तेन पापेन सँलिप्तो भ्रमाम्येवं महीमिमाम्
वञ्जुलोनाम वैश्योऽथ सुरापायी समागतः । सगोघ्नश्च विशेषेण तैश्च पृष्टो यथापुरा
तेन आवेदितं सर्वं पातकं यत्पुराकृतम् ।
तैराकर्णितमन्यैश्च सर्वं तस्य प्रभाषितम् ॥ ३६ ॥
एवं चत्वारःपापिष्ठा एकस्थानं समागताः । कःकस्यापि न सम्पर्कं भोजनाच्छादनेनच
करोति च महाभाग वार्तां चक्रुःपरस्परम् । न विशन्त्यासनेचैके न स्वपन्त्येक संस्तरे
एवं दुःखसमाविष्टा नानातीर्थेषु वै गताः । तेषां तु पापकाघोरा न नश्यन्ति च नन्दन
सामर्थ्यंनास्ति तीर्थानां महापातकनाशने ।
विदुराद्यास्ततस्ते तु गताःकालञ्जरं गिरिम् ॥ ४० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
एकनवतितमोऽध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

कस्यचित्सिद्धस्योपदेशेनैतेषांचतुर्णां वाराणस्यादितीर्थेषुस्नानान्मुक्तिः।

कुञ्जल उवाच।

कालञ्जरं समासाद्य निवसन्ति सुदुःखिताः। महापापैस्तु सन्दग्धा हाहाभूता विचेतना
तत्र कश्चित्समायातःसिद्धश्चैव महायशाः। तेन पृष्टाःसुदुःखार्ता भवन्तःकेन दुःखिता

स तैःप्रोक्तो महाप्राज्ञःसर्वज्ञानविशारदः।
तेषां ज्ञात्वा महापापं कृपांचक्रे सुपुण्यभाक्॥ ३॥

सिद्ध उवाच।

अमासोम समायोगे प्रयागःपुष्करश्च यः। अर्घतीर्थं तृतीयं तु वाराणसी चतुर्थिका
गच्छन्तु तत्र वै यूयं चत्वारःपातकाविलाः। गङ्गाम्भसियदास्नातास्तदामुक्ता भविष्य

पातकेभ्यो न सन्देहो निर्मलत्वं गमिष्यथ।
आदिष्टास्तेन वै सर्वे प्रणेमुस्तं प्रयत्नतः॥ ६॥
कालञ्जरात्ततो जग्मुःसत्वरं पापपीडिताः।
वाराणसीं समासाद्य स्नात्वाचैव द्विजोत्तमाः॥ ७॥

प्रयागं पुष्करंश्चैव अर्घतीर्थं तु सत्तम। अमासोमं सुसम्प्राप्य जग्मुस्ते च महापुरीम्
विदुरश्चन्द्रशर्मा च वेदशर्मा तृतीयकः। वैश्यो वज्जुलकश्चैव सुरापःपापचेतनः॥ ९

तस्मिन्पर्वणि सम्प्राप्ते स्नाता गङ्गाम्भसि द्विज।
स्नानमात्रेण मुक्तास्तु गोवधाद्यैश्च किल्बिषैः॥ १०॥

ब्रह्महत्या गुरुहत्यासुरापानादि पातकैः। लिप्तानितानि तीर्थानि परिभ्रमन्ति मेदिनीं
पुष्करश्चार्घतीर्थस्तु प्रयागःपापनाशनः। वाराणसी चतुर्थी तु लिप्ता पापैर्द्विजोत्तम
कृष्णत्वं पेदिरे सर्वे हंसरूपेण बभ्रमुः। सर्वेष्वेव सुतीर्थेषु स्नानं चक्रुर्द्विजोत्तमाः

कृष्णत्वं नैवगच्छेत तेषां पापेन चागतम्।

सुतीर्थेषु महाराज स्नाताःसर्वेषु वै पुनः ॥ १४ ॥

यं यं तीर्थं प्रयान्त्येते सर्वेतीर्था द्विजोत्तम । हंसरूपेण वै यान्ति तैःसार्द्धं सुदुःखिताः

…र्याःपातकरूपाश्च भ्रमन्ति परितस्तथा । अष्टषष्टि सुतीर्थानि हंसरूपेण बभ्रमुः ॥

…सार्द्धं सुमहाराज महातीर्थैःसमं पुनः । मानसं चागतास्ते च पातका कुलमानसाः ॥

तत्रस्नाता महाराज न जहाति च पातकः ।

लज्जयाविष्ट मनसा मानसो हंसरूपधृक् ॥ १८ ॥

सञ्जातःकृष्णकायस्तु यं त्वं वै दृष्टवान्पुरा ।

रेवातीरं ततोजग्मुरुत्तरं पापनाशनम् ॥ १९ ॥

…ब्जायाःसङ्गमे ते तु सुरसिद्ध निषेविते । स्नानमात्रेण मुक्तास्ते पापेभ्यो द्विजसत्तम

विहाय वर्णमेवैतं शुद्धत्वं प्रतिजग्मिरे ।

यं यं तीर्थं प्रयान्ते ते हंसाःस्नानं प्रचक्रमुः ॥ २१ ॥

…सुताःस्त्रियो दृष्ट्वा पातकंनैव गच्छति । तोयानलेन कुब्जायाःपातकं चरमेत्र च

…स्मावशेषं सञ्जातं तदामृतास्तु ताःस्त्रियः । ब्रह्महत्या गुरोर्हत्या सुरापानागमागमाः

भस्मीभूतास्तु सञ्जाता रेवायाःकुब्जया हताः ।

तास्तुहता महाभाग या मृतास्तु सरित्तटे ॥ २४ ॥

…षष्टि सुतीर्थानां हंसरूपेण तानि तु । सार्द्धं हंसःसमायातो विद्धितं त्वत्तु मानसम्

…त्वारःकृष्णहंसाश्च तेषां नामानि मे श्रृणु । प्रयागःपुष्करश्चैव अर्घतीर्थमनुत्तमम् ॥

वाराणसी चतुर्थी च चत्वारःपापनाशनाः ।

ब्रह्महत्याभिभूतानि चत्वारि परिबभ्रमुः ॥ २७ ॥

…र्यान्येतानि दुःखेन तीर्थेषु च महामते । न गतं पातकंघोरं तेषां तु भ्रमतां सुतः ॥

…ब्जायाःसङ्गमेशुद्धा विमुक्ताःकिल्बिषात्किल । तीर्थानामेव सर्वेषांपुण्यानामिहसंमतः

राजाप्रयागःसञ्जात इन्द्रस्य पुरतःकिल ।

तावद्गर्जन्तु तीर्थानि यावद्रेवा न दृश्यते ॥ ३० ॥

…हत्यादि पापानां विनाशाय प्रतिष्ठिता । कपिलासङ्गमे पुण्ये रेवायाःसङ्गमे तथा ॥

मेघनाद समायोगे तथाचैवोरुसङ्गमे । महापुण्या महाधन्या रैवासर्वत्रदुर्लभा ।
साचोङ्कारे भृगुक्षेत्रे नर्मदाकुब्जसङ्गमे । दुष्प्राप्या मानवैरेवा माहिष्मत्यां सुरोत्तमैः

विटङ्कासङ्गमे पुण्या श्रीकण्ठे मङ्गलेश्वरे ।
सर्वत्रदुर्लभा रैवा सुरपुण्य समाकुला ॥ ३४ ॥

तीर्थमाता महादेवी अघराशि विनाशिनी । उभयोःकूलयोर्मध्ये यत्र तत्र सुखीनरः ।
अश्वमेध फलंभुङ्क्ते स्नानेनैकेन मानवः । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ।

सर्वपापापहं पुण्यं गतिदंचापि श्रृण्वताम् ।
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञ तृतीयं पुत्रमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

आनन्दकाननेकस्यचित्सिद्धस्यसपत्नीकस्यनिजनिजशवमांसभक्षणचमत्कारवर्णनम्

कुञ्जल उवाच ।

किं विज्वल त्वया दृष्टमपूर्वं भ्रमतोमहीम् । आश्चर्येण समायुक्तं तन्मे कथय सुव्रत ।
इतःप्रयासिकं देशमाहारार्थं तु सोद्यमः । यद्दृष्टं त्वयाचित्रं समाख्याहि सुतोत्तम ।

विज्वल उवाच ।

अस्ति मेरुगिरेःपृष्ठे आनन्दंनाम काननम् । दिव्यवृक्षैःसमाकीर्णं फलपुष्पमयैःसदा ।
देववृन्दैःसमाकीर्णं मुनिसिद्धसमन्वितम् । अप्सरोभिःसुरूपाभिर्गन्धर्वैःकिन्नरोरगैः
वापीकूपतडागैश्च नदीप्रस्रवणैस्तथा । आनन्दकाननंपुण्यं दिव्यभावैःप्रभासते ॥ ५

विमानैःकोटिसङ्ख्यैश्च हंसकुन्देन्दुसन्निभैः ।
गीतकोलाहलैरम्यैर्मेघध्वनि निनादितम् ॥ ६ ॥

...पदानां निनादेन सर्वत्र मधुरायते । चन्दनैश्चूतवृक्षैश्च चम्पकैःपुष्पितैर्वृतम् ॥ ७ ॥
...वृक्षैःप्रभात्येवमानन्दवनमुत्तमम् । नानापक्षिनिनादेन बहुकोलाहलान्वितम् ॥ ८ ॥
...मानन्दनं दृष्टं मयातत्र सुशोभनम् । विमलं च सरस्तात शोभते सागरोपमम् ॥
...पूर्णं पुण्यतोयेन पद्मसौगन्धिकैःशुभैः । जलजैस्तु समाकीर्णं हंसकारण्डवान्वितम्
...मासीत्सरस्तस्य सुमध्ये काननस्य हि । देवगन्धर्वसम्बाधैर्मुनिवृन्दैरलङ्कृतम्
...नरोरगगन्धर्वैश्चारणैश्च सुशोभते । तत्राश्चर्यं मयादृष्टं वक्तुं तात न शक्यते॥ १२ ॥
...नेनापि दिव्येन कलशैरुपशोभते । छत्रदण्डपताकाभि राजमानेन सत्तम ॥ १३ ॥

सर्वभोगाविलेनापि गीयमानेऽथ किन्नरैः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च शोभमानोऽथ सुव्रत ॥ १४ ॥

...मानो महासिद्ध ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः । रूपेणाप्रतिमोलोके न दृष्टस्तादृशःक्वचित्
...भरणशोभाङ्गो दिव्यमाला विशोभितः । महारत्न कृतामाला यस्योरसि विराजते
...मीपे स्थिताचैका नारीदृष्टा वरानना । हेमहारैश्च मुक्तानां वलयैःकङ्कणैर्युता ॥

दिव्यवस्त्रैश्च गन्धैश्च चन्दनैश्चारुलेपनैः ।
स्तूयमानो गीयमानःपुरुषस्तत्र चागतः ॥ १८ ॥

...पा वरारोहा पीनश्रोणि पयोधरा । सर्वाभरणशोभाङ्गी तादृशी रूपसम्पदा ॥
...नौ तौ मयादृष्टौ विमानेनापि चागतौ । रूपलावण्यमाधुर्यौ सर्वशोभासमाविलौ

समुतीर्णौ विमानात्तावागतौ सरसोऽन्तिके ।
स्नातौतात महात्मानौ स्त्रीपुंसौ कमलेक्षणौ ॥ २१ ॥

...तौ महाशस्त्रौ दम्पती तु परस्परम् । तादृशौ च शवौ तत्र पतितौ सरसस्तटे ॥
...से ते तदा तौ तु स्त्रीपुंसौ कमलेक्षणौ । रूपेणापि महाभाग तादृशावेव तौ शवौ
...पोपमस्तात यथा पुंसस्तथा शवः । यथारूपं हि तस्यापि तादृशस्तत्र दृश्यते ॥

यथारूपं तु भार्यायास्तथा शवो द्वितीयकः ।
स्त्रीशवस्य तु यन्मांसं शस्त्रेणोत्कृत्य सा ततः ॥ २५ ॥

...नि तस्य मांसानि रक्ताप्लुतानि तानि तु । पुरुषो भक्षते तद्वच्छवमांसं समातुरः ॥

क्षुधया पीड्यमानौतौ भक्षेतेपिशितं तयोः। यावत्तृप्तिं समायातौ तावन्मांसं प्रभक्षितम्
सरस्यथ जलंपीत्वा सञ्जातौ सुखितौ पितः। कियत्कालंस्थितौतत्रविमानेनगतौपुनः
अन्येद्वे तु स्त्रियौ तात मयादृष्टे च तत्र वै।
रूपसौभाग्यसम्पन्ने ते स्त्रियौ चारुलक्षणे ॥ २९ ॥
ताभ्यां प्रभुक्षितं मांसं यदा तात महावने। प्रहसे ते तदा ते द्वे हास्यैरट्टाट्टकैःपुनः
भक्षेतेच स्वमांसानि तावेतौ परिनित्यशः। कृत्वास्नानादिकं मांसं पश्यतो मम तत्र
अन्येस्त्रियौ महाभाग रौद्राकार समन्विते।
दंष्ट्राकरालवदने तत्रैवाति विभीषणे ॥ ३२ ॥
ऊचतुस्तौ तदाते तु देहिदेहीति वै पुनः। एवंदृष्टं मया तात वसता वनसन्निधौ
नित्यमुत्कीर्यभक्ष्येते तौद्वौ तु मांसमेवच। जायेतेच सुसम्पूर्णौ कायौ च शवयोःपुनः
नित्यमुत्तीर्यतावेवं ते चाप्यन्ये च वै पितः।
कुर्वन्ति सदृशीं चेष्टां पूर्वोक्तां मम पश्यतः ॥ ३५ ॥
एतदाश्चर्यं सञ्जातं दृष्टं तात मया तदा। भवता पृच्छितं तात दृष्टमाश्चर्यमेव च ॥ ३६
मयाख्यातं तवाग्रे वै सर्वं सन्देहकारणम्। कथयस्व प्रसादाच्च प्रीयमाणेन चेतसा
विमानेनागतो योऽसौ स्त्रियासार्द्धं द्विजोत्तम। दिव्यरूपधरोयस्तु सकस्तु कमलेक्षण
का च नारी महाभाग महामांसंप्रभक्षति। स कश्चाप्यागतस्तात साचैवाभ्येत्य भक्षति
प्रहसे ते तदा ते द्वे स्त्रियौ तात वदस्व नः।
ऊचतुस्तौ तथाचान्ये देहिदेहीति वा पुनः ॥ ४० ॥
ते द्वे त्वं मे समाचक्ष्व महाभीषणके स्त्रियौ। एतन्मे संशयं तात च्छेत्तुमर्हसि सुव्रत
एवमुक्त्वा महाराज विरराम स चाण्डजः। एवं पृष्टस्तृतीयेन विज्वलेनात्मजेन सः
प्रोवाच सर्वं वृत्तान्तं च्यवनस्यापि शृण्वतः ॥४३॥
इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
त्रिनवतितमोऽध्यायः।

———

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

कर्ममाहात्म्यकथनम्

कुञ्जल उवाच।

श्रूयतामभिधास्यामि तत्सर्वंकारणं सुत। यस्मातौ तादृशौ जातौ स्वमांस परिभक्षकौ
सर्वत्र कारणं कर्म शुभाशुभं न संशयः। पुण्येन कर्मणा पुत्र नरःसौख्यं प्रभुञ्जति॥
दुष्कृतं भुञ्जते चात्र पापयुक्तेन कर्मणा। सूक्ष्मवर्त्म विचार्यैवं शास्त्रज्ञानेन चक्षुषा॥
स्थूलधर्मं प्रदृष्ट्वैव सुविचार्य पुनःपुनः। समारभेन्नरःकर्म मनसा निपुणेन च॥ ४॥
मूर्तिकारकःशिल्पी रसमावर्त्तयेद्यथा। अग्नेश्चतेजसा पुत्र ज्वालाभिश्च समन्ततः॥
द्रवीभूतो भवेद्धातुर्वह्निना तापितःशनैः। यादृशं वत्स भक्ष्यं तु रसपक्वं निषेच्यते॥
तादृशं जायते वत्स रूपंचैव न संशयः। यादृशं क्रियते कर्म तादृशं परिभुज्यते॥ ७॥
कर्म एव प्रधानं यद्वर्षारूपेण वर्त्तते। क्षेत्रेषु यादृशं बीजं वपते कृषिकारकः॥ ८॥
तादृशं भुञ्जते तात फलमेव न संशयः। यादृशं क्रियते कर्म तादृशं परिभुज्यते॥ ९॥
विनाशहेतुःकर्मास्य सर्वे कर्मवशावयम्। कर्मदायादका लोके कर्मसम्बन्धिबान्धवाः
कर्माणि चोदयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयोः। सुवर्णरजतंवापि यथारूपं निषिच्यते॥
तथा निषिच्यते जन्तु पूर्वकर्मवशानुगः। पञ्चैतानिह दृश्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥
आयुःकर्म च वित्तं च विद्यानिधनमेव च। यथा मृत्पिण्डतःकर्त्ता कुरुते यद्यदिच्छति
तथा कर्मकृतं चैव कर्त्तारं प्रतिपद्यते। देवत्वमथ मानुष्यं पशुत्वं पक्षितां तथा॥१४॥
तिर्यक्त्वंस्थावरत्वं वा यातिजन्तुःस्वमर्मभिः। स एव तु तथाभुङ्क्तेनित्यंविहितमात्मनः
आत्मनाविहितं दुःखमात्मनाविहितं सुखम्। गर्भशय्यामुपादाय भुञ्जते पूर्वदेहिकम्॥
पूर्वदेह कृतंकर्म न कश्चित्पुरुषोत्तमः। बलेन प्रज्ञयावापि समर्थःकर्तुमन्यथा॥ १७॥
स्वकृतान्येव भुञ्जन्ति दुःखानि च सुखानि च। हेतुतःकारणैर्वापि सोऽहङ्कारेण बाध्यते
यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्। तद्वच्छुभाशुभंकर्म कर्तारमनुगच्छति॥

उपभोगादृते यस्य नाश एव न विद्यते । प्राक्तनं बन्धनंकर्म कोऽन्यथा कर्तुमर्हति।
सुशीघ्रमनुधावन्तं विधानमनुधावति । शोभते सन्निपातेन यथाकर्म पुराकृतम् ॥
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति । करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते।
यथा छायातपौनित्यं सुसम्बद्धौ परस्परम् । उपसर्गा हि विषया उपसर्गा जरादयः
पीडयन्ति नरं पश्चात्पीडितं पूर्वकर्मणा । येन यत्रोपभोक्तव्यं दुःखं वा सुखमेव च
स तत्र बद्धारज्ज्वेव बलाद्दैवेन नीयते । दैवं प्राहुश्च भूतानां सुखदुःखोपपादनम्

अन्यथा कर्मतच्चिन्त्यं जाग्रतःस्वपतोऽपिवा ।
अन्यथा ह्युद्यतेदैवं बध्यते च जिघांसति ॥ २६ ॥

शस्त्राग्नि विषदुर्गेभ्यो रक्षितव्यं सुरक्षति । यथापृथिव्यांबीजानि वृक्षगुष्मतृणान्य
तथैवात्मनि कर्माणि तिष्ठन्ति प्रभवन्ति च । तैलक्षयाद्यथादीपो निर्वाणमधिगच्छ
कर्मक्षयात्तथा जन्तोःशरीरं नाशमृच्छति । कर्मक्षयात्तथा मृत्युस्तत्त्वविद्भिरुदाहृतम्

विविधाःप्राणिनां रोगःस्मृतास्तेषां च हेतवः ।
तस्मात्तत्त्व प्रधानं तु कर्मएव हि प्राणिनाम् ॥ ३० ॥

यत्पुरा क्रियते कर्म तदिहैव प्रभुज्यते । यत्त्वया दृष्टमेवापि पृच्छितं तात साम्प्रतम्
तस्यार्थं तु मयाप्रोक्तं भुञ्जाते तौहि साम्प्रतम् । आनन्दे कानने दृष्टं तयोकर्म सुदा
तयोश्चेष्टां प्रवक्ष्यामि शृणु वत्स प्रभाषतः । कर्मभूमिरियं तात अन्याभोगार्थ भू
सर्गादीनां महाप्राज्ञ तासु गत्वा सुभुञ्जति । चौलदेशे महाप्राज्ञः सुबाहुर्नाम भूमिप

रूपवान्गुणवान्धीरःपृथिव्यांनास्ति तादृशः ।
विष्णुभक्तो महाप्राज्ञो वैष्णवानां च सुप्रियः ॥ ३५ ॥

कर्मणा त्रिविधेनापि प्रध्यायन्मधुसूदनम् । अश्वमेधादिकान्यज्ञान्यजेत सकलान्द
पुरोधास्तस्य चैवास्ति जैमिनिर्नामब्राह्मणः । स चाहूयसुबाहुं तमिदंवचनमब्रवी
राजन्देहि सुदानानि यैः सुखं तु प्रभुज्यते । दानैस्तु तरतेलोकान्दुर्गान्प्रेत्यगतो न

दानेन सुखमाप्नोति यशःप्राप्नोति शाश्वतम् ।
दानेन चातुलाकीर्तिर्जायते मृत्युमण्डले ॥ ३६ ॥

यावत्कीर्तिःस्थिताचात्र तावत्कर्ता दिवं वसेत्। तद्दानं दुष्करं प्राहुर्दातुंनैव प्रशक्यते
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्यं मानवैःसदा ॥ ४१ ॥

सुवाहुरुवाच ।

दानाच्च तपसोवापि द्वयोर्मध्येसुदुष्करम् । किं वा महत्फलं प्रेत्य तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम

जैमिनिरुवाच ।

दानाद्दुष्करतरं पृथिव्यामस्ति किंचन । राजन्प्रत्यक्षमेवैकं दृश्यते लोकसाक्षिकम् ॥
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्धनार्थं लोभमोहिताः । प्रविशन्ति नरालोके समुद्रमटवीं तथा
सेवामन्ये प्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिति यास्थिता । हिंसाप्रायां वहुक्लेशं कृषिंचैव तथा पुरा
तस्य दुःखार्जितस्यापि प्राणेभ्योपि गरीयसः ।
अर्थस्य पुरुषव्याघ्र परित्यागःसुदुष्करः ॥ ४६ ॥
विशेषतो महाराज तस्यन्यायार्जितस्य च । श्रद्धया विधिवत्पात्रे दत्तस्यान्तो न विद्यते
श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वतारिणी । सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभीः ।
निष्किञ्चनास्तु मुनयःश्रद्धा धर्मादिवंगताः ॥ ४९ ॥
सन्ति दानान्यनेकानि नानाभेदैर्नृपोत्तम । अन्नदानात्परंनास्ति प्राणिनां गतिदायकम्
तस्मादन्नं प्रदातव्यं पयसा च समन्वितम् । मधुरेणाधिपुण्येन वचसा च समन्वितम्
सत्यन्नात्तु परंदानमिहलोके परत्र च । तारणाय हितायैव सुखसम्पत्तिहेतवे ॥ ५२ ॥
श्रद्धयाविधिवत्पात्रे निर्मलेनापि चेतसा । अन्नैकस्य प्रदानस्य फलं भुङ्क्ते निरन्तरम्
ग्रासाद्ग्रासं प्रदातव्यं मुष्टिप्रस्थं न संशयः ।
अक्षयं जायते तस्य दानस्यापि महाफलम् ॥ ५४ ॥
न च प्रस्थं न वा मुष्टिं नरस्य हि न सम्भवेत् ।
अतास्तिक्य प्रभावेण प्रर्वणि प्राप्य मानवः ॥ ५५ ॥
श्रद्धया ब्राह्मणंचैकं भक्त्याचैवं प्रभोजयेत् । एकस्यापि प्रधानस्य अन्नस्यापि प्रजेश्वर
जन्मान्तरं सुसम्प्राप्य नित्यं चान्नं प्रभुञ्जति । पूर्वजन्मनि यद्दत्तं भक्त्यापात्रे सकृन्नरैः

जन्मान्तरं सुसम्प्राप्यनित्यमेव भुंनक्ति च।
अन्नदानं प्रयच्छन्ति ब्राह्मणेभ्यो हि नित्यशः ॥ ५८ ॥
मिष्टान्नपानं भुञ्जन्ति ते नरा अन्नदायिनः। अन्नमेव वदन्त्येत ऋषयो वेदपारगाः।
प्राणभूतं न सन्देहममृताद्धि समुद्भवम्। प्राणास्तेन प्रदत्ता हि येनचान्नं समर्पितम्।
अन्नदानं महाराज देहि त्वं तु प्रयत्नतः। एवमाकर्ण्य वै राजा जैमिनेस्तु महात्मनः।
पुनःपप्रच्छ तं विप्रं जैमिनिं ज्ञानपण्डितम् ॥ ६१ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमहात्म्येच्यवनचरित्रे
चतुर्नवतितमोऽध्यायः।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

जैमिनिनास्वर्गगुणवर्णनपुरःसरंदानस्यातिश्रैष्ठ्यवर्णनम्।

सुबाहुरुवाच।

स्वर्गस्य मे गुणान्ब्रूहि साम्प्रतं द्विजसत्तम।
एतत्सर्वं द्विजश्रेष्ठ करिष्यामि स्वभाविकम् ॥ १ ॥

जैमिनिरुवाच।

नन्दनादीनि रम्याणि दिव्यानि विविधानि च।
तत्रोद्यानानि पुण्यानि सर्वकामयुतानि च ॥ २ ॥
सर्वकामफलैर्वृक्षैःशोभनानि समन्ततः। विमानानि सुदिव्यानि सेवितान्यप्सरो
सर्वत्रैव विचित्राणि कामगानिवशानि च।
तरुणादित्य वर्णानि मुक्ताजालान्तराणि च ॥ ४ ॥
चन्द्रमण्डल शुभ्राणि हेमशय्यासनानि च। सर्वकामसमृद्धाश्च सर्वदुःखविवर्जि
नराःसुकृतिनस्तेषु विचरन्ति यथाभुवि।

न तत्रनास्तिका यान्ति नस्तेनानाजितेन्द्रियाः ॥ ६ ॥
न नृशंसा न पिशुना न कृतघ्ना न मानिनः ।
सत्यास्तपःस्थिताःशूरा दयावन्तःक्षमापराः ॥ ७ ॥
यज्वानो दानशीलाश्च तत्र गच्छन्ति ते नराः । नरोगो नजरा मृत्युर्न शोको न हिमातपौ
न तत्रक्षुत्पिपासा च कस्यग्लानिर्न विद्यते । एतेचान्ये च बहवो गुणाःस्वर्गस्य भूपते
दोषास्तत्रैव ये सन्ति ताञ्छृणुष्व च साम्प्रतम् ।
शुभस्य कर्मणःकृत्स्नं फलं तत्रैवभुज्यते ॥ १० ॥
न चात्र क्रियते भूयःसोऽत्र दोषो महान्स्मृतः ।
असन्तोषश्च भवति दृष्ट्वा दीप्तां परांश्रियम् ॥ ११ ॥
सुखव्याप्त मनस्कानां सहसा पतनं तथा । इह यत्क्रियते कर्म फलं तत्रैव भुज्यते॥१२॥
कर्मभूमिरियं राजन्फलभूमिरसौ स्मृता ॥ १३ ॥

सुबाहुरुवाच ।

महान्तस्तु इमेदोषास्त्वया स्वर्गस्य कीर्तिताः ।
निर्दोषाःशाश्वतायेऽन्ये तांस्त्वं लोकान्वदद्विज ॥ १४ ॥

जैमिनिरुवाच ।

आब्रह्मसदनादेव दोषाःसन्ति च वै नृप । अत एव हि नेच्छन्ति स्वर्गप्राप्तिं मनीषिणः
आब्रह्मसदनादूर्ध्वं तद्विष्णोःपरमंपदम् । शुभं सनातनं ज्योतिःपरंब्रह्मेति तद्विदुः ॥१६॥
न तत्र मूढा गच्छन्ति पुरुषा विषयात्मकाः । दम्भ मोहभयद्रोह क्रोधलोभैरभिद्रुताः ॥
निर्ममानिरहङ्कारा निर्द्वन्द्वास्संयतेन्द्रियाः । ध्यानयोगरताश्चैव तत्र गच्छन्ति साधवः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १८ ॥

कुञ्जल उवाच ।

एवं स्वर्गगुणं श्रुत्वा सुबाहुःपृथिवीपतिः । तमुवाच महात्मानं जैमिनिं वदतां वरम् ॥
नाहं स्वर्गं गमिष्यामि न चैवेच्छाम्यहं मुने । यस्माच्च पतनं प्रोक्तंतत्कर्म न करोम्यहम्
दानमेकं महाभाग नाहंदास्ये कदा ध्रुवम् । दानाच्च फललोभाच्च तस्मात्पतति वैनरः

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा सुबाहुःपृथिवीपतिः ।
ध्यानयोगेन देवेशं यजिष्ये कमलाप्रियम् ॥ २२ ॥
दाहप्रलयसंवर्जं विष्णुलोकं व्रजाम्यहम् ॥ २३ ॥

जैमिनिरुवाच ।

सत्यमुक्तं त्वया भूपः सर्वश्रेयःसमाकुलम् । राजानो धर्मशीलाश्च महायज्ञैर्यजन्ति ते।
सर्वदानानि दीयन्ते यज्ञेषु नृपनन्दन । आदावन्नं तु यज्ञेपु वस्त्रं ताम्बूलमेव च ॥२५॥
काञ्चनं भूमिदानं च गोदानं प्रददन्ति च । सुयज्ञैर्वैष्णवंलोकं ते प्रयान्ति नरोत्तमाः।
दानेन तृप्तिमायान्ति सन्तुष्टाःसन्ति भूमिपाः ।
तपस्विनो महात्मानो नित्यमेवं यजन्ति ते ॥ २७ ॥
सुभिक्षां याचयित्वा तु स्वस्थानं तु समोगताः ।
भिक्षार्थं तस्य भागानि प्रकुर्वन्ति च भूपते ॥ २८ ॥
ब्राह्मणाय विभागैकं गोग्रासं तु महामते । सुपार्श्ववर्तिनांचैकं प्रयच्छन्ति तपोधनाः
तस्यान्नस्य प्रदानेन फलं भुञ्जन्ति मानवाः ।
क्षुधातृषा विहीनास्ते विष्णुलोकं व्रजन्ति वै ॥ ३० ॥
तस्मात्वमपि राजेन्द्र देहि न्यायार्जितं धनम् ।
दानाज्ज्ञानं ततःप्राप्य ज्ञानात्सिद्धिं प्रयास्यसि ॥ ३१ ॥
य इदं श्रृणुयान्मर्त्यःपुण्याख्यानमनुत्तमम् ।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ ३२ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणेद्वितीये भूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

———

षण्णवतितमोऽध्यायः

नरकगामिनांस्वर्गगामिनां च वर्णनम् ।

सुबाहुरुवाच ।

कीदृशैःकर्मभिःप्रेत्य गच्छन्ति नरकं नराः । स्वर्गं तु कीदृशैःप्रेत्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि

जैमिनिरुवाच ।

ब्राह्मण्यं पुण्यमुत्सृज्य ये द्विजा लोभमोहिताः ।
कुकर्माण्युपजीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ २ ॥

नास्तिका भिन्नमर्यादाःकन्दर्पविषयोन्मुखाः । दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै निरयगामिनः

ब्राह्मणेभ्यःप्रतिश्रुत्य न प्रयच्छन्ति ये धनम् । ब्रह्मस्वानां च हर्तारो नरा निरयगामिनः

लुब्धाः पिशुनाश्चैव मानिनोऽनृतबादिनः । असम्बद्ध प्रलापाश्च ते वै निरयगामिनः ॥

ये परस्वापहर्तारःपरदूषण सूचकाः । परस्त्रीगामिनो ये च ते वै निरयगामिनः ॥ ६ ॥

प्राणिनां प्राणहिंसायां ये नरा निरताःसदा ।
परनिन्दारता ये वै ते वै निरयगामिनः ॥ ॥ ७ ॥

कूपानां तडागानां प्रपानां च परन्तप । सरसांचैव भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥८॥

विपर्यस्यन्ति ये दाराञ्छिशून्भृत्यातिथींस्तथा । उत्सन्नपितृदेवेज्या नरानिरयगामिनः

प्रव्रज्या दूषका राजन्ये चैवाश्रमदूषकाः । सखीनां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥

आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोक महेश्वरम् । न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः

प्रयाजानां मखानां च कन्यानां सुहृदां तथा ।
साधूनां च गुरूणां च दूषका निरयङ्गमाः ॥ १२ ॥

काष्ठैर्वा शङ्कुभिर्वापि शूलैरश्मभिरेव वा । ये मार्गानुपरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥

सर्वभूतेष्व विश्वस्ताःकामेनार्तास्तथैव च। सर्वभूतेषु जिह्माश्च ते वै निरयगामिनः

आगतान्भोजनार्थं तु ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान् ।

प्रतिषेधं च कुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ १५ ॥
क्षेत्रवृत्ति गृहच्छेदं प्रीतिच्छेदं च ये नराः। आशाच्छेदं प्रकुर्वन्ति ते वै निरयगामिनः
शस्त्राणांचैव कर्त्तारःशल्यानां धनुषां तथा। विक्रेतारश्च राजेन्द्र नरा निरयगामिनः
अनाथं विक्लवं दीनं रोगार्त्तं वृद्धमेव च। नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरयगामिनः
नियमान्पूर्वमादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः। अतिक्रामन्ति चाञ्चल्यात्ते वै निरयगामिनः
इत्येते कथिता राजन्नरा निरयगामिनः।
स्वर्गलोकस्य गन्तारो ये जनास्तान्निबोधमे ॥ २० ॥
सत्येन तपसाक्षान्त्या दानेनाध्ययनेन च। ये धर्मनुवर्तन्ते ते नराःस्वर्गगामिनः
ये च होमपराध्यान देवतार्चनतत्पराः। आददाना महात्मानस्ते नराः स्वर्गगामिनः
शुचयश्च शुचौदेशे वासुदेवपरायणाः। पठन्ति विष्णुं गायन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः
मातापित्रोश्च शुश्रूषां ये कुर्वन्ति सदादृताः।
वर्जयन्ति दिवास्वप्नं ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ २४ ॥
सर्वहिंसा निवृत्ताश्च साधुसङ्गाश्च ये नराः। सर्वस्यापिहितेयुक्तास्तेनराःस्वर्गगामिनः
सर्वलोभनिवृत्ताश्च सर्वसाहाश्च ये नराः। सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराःस्वर्गगामिनः
शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च गुरुणां मानदा नराः। प्रतिग्रह निवृत्ता ये ते नराःस्वर्गगामिनः
सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः। त्रातारश्च सहस्राणां ते नराःस्वर्गगामिनः
भयात्कामात्तथाऽऽक्रोशाद्दारिद्र्यात्पूर्वकर्मणः।
न कुत्सन्ति च ये नूनं ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ २६ ॥
आत्मस्वरूपवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारतः। ये वै जितेन्द्रियाधीरास्ते नराःस्वर्गगामिनः
सुवर्णस्य च दातारो गवांभूमेश्च भारत। अन्नानां वाससांचैव ते नराःस्वर्गगामिनः
ये याचिताःप्रहृष्यन्ति प्रियं दत्त्वा वदन्ति च।
त्यक्त दानफलेच्छाश्च ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ३२ ॥
निवेशनानां धान्यानां नराणां च परन्तप। स्वयमुत्पाद्य दातारःपुरुषाःस्वर्गगामिनः
द्विषतामपि ये दोषान्नवदन्ति कदाचन। कीर्तयन्ति गुणान्ये च ते नराःस्वर्गगामिनः

ये परेषांश्रियं दृष्ट्वा न वितप्यन्ति मत्सरात् ।
प्रहृष्टाश्चाभिनन्दन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ३५ ॥
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च श्रुतिशास्त्रोक्तमेव च । आचरन्ति महात्मानस्तेनराःस्वर्गगामिनः
ये नराणां वचोवक्तुं न जानन्ति च विप्रियम् ।
प्रियवाक्यैकविज्ञातास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ३७ ॥
ये नाम भागान्कुर्वन्ति क्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः । हन्तकारस्यकर्तारस्ते नराःस्वर्गगामिनः
वापीकूपतडागानां प्रपानांचैव वेश्मनाम् । आरामाणां च कर्तारस्ते नराःस्वर्गगामिनः
असत्येष्वपि ये सत्याऋजवोनार्जवेष्वपि । रिपुष्वपि हिताये च ते नराःस्वर्गगामिनः
यस्मिन्कस्मिन्कुलेजाता बहुपुत्राःशतायुषः ।
सानुक्रोशाःसदाचारास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ४१ ॥
कुर्वन्त्यवन्ध्यंदिवसं धर्मेणैकेन सर्वदा । व्रतं गृह्णन्ति ये नित्यं ते नराःस्वर्गगामिनः
आक्रोशन्तं स्तुवन्तं च तुल्यं पश्यन्ति ये नराः ।
शान्तात्मानो जितात्मानस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ४३ ॥
ये चापि भयसन्त्रस्तान्ब्राह्मणांश्च तथा स्त्रियः ।
सार्थान्वा परिरक्षन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ४४ ॥
गङ्गायां पुष्करेतीर्थे गयायां च विशेषतः । पितृपिण्डप्रदातारस्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥
न वशेचेन्द्रियाणां च ये नराःसंयम स्थिताः ।
त्यक्तलोभभयक्रोधास्ते नराःस्वर्गगामिनः ॥ ४६ ॥
यूकामत्कुणदंशादीन्ये जन्तूंस्तुदतस्तनुम् । पुत्रवत्परिरक्षन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः
स्नानाच्च यथोक्तेन विधिनासञ्जपन्ति च । सर्वद्वन्दसहालोके ते नराःस्वर्गगामिनः ॥
पूताःपरदारांश्च कर्मणा मनसा गिरा । रमयन्ति न सत्वस्थास्ते नराःस्वर्गगामिनः
निन्दितानि न कुर्वन्ति कुर्वन्ति विहितानि च ।
आत्मशक्तिं विजानन्ति ते नराःस्वर्गगामिनः ॥५०॥
एते कथितं सर्वं मयातत्त्वेन पार्थिवः । दुर्गतिःसद्गतिश्चैव प्राप्यते कर्मभिर्यथा ॥

नरः परेषां प्रति कूलमाचरन्प्रयातिघोरं नरकं सुदारुणम् ।
सदानुकूलस्य नरस्य जीविनःसुखावहा मुक्तिरदूरसंस्थिता ॥५२॥
इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमहात्म्येच्यवनचरित्रे
षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

भार्ययासहसुबाहुनृपस्यतपःप्रभावेणविष्णुलोकंप्रतिगमनेऽपिविष्णोरदर्शनम् ।

कुञ्जलउवाच ।

एवमाकर्ण्य तां राजा मुनिनाभाषितां तदा । धर्माधर्मगतिं सर्वां तं मुनिं समभाषत

सुबाहुरुवाच ।

सोऽहं धर्मं करिष्यामि सोऽहं पुण्यं द्विजोत्तम । वासुदेवं जगद्योनिं यजिष्ये नितरां
होमेन तु जपेनैव पूजयेन्मधुसूदनम् । यष्ट्वायज्ञं तपस्तप्त्वा विष्णुलोकं सभूपतिः
पूजितःसर्वकामैश्च प्राप्तवान्सत्वरं मुदा । गते तस्मिन्महालोके देवदेवं न पश्यति ॥
क्षुधाजाता महातीव्रा तृष्णाचाति प्रवर्तते । तयोश्चापि महाप्राज्ञ जीवपीडाकरावु
राजापि प्रिययासार्द्धं क्षुधातृष्णाप्रपीडितः । न पश्यति हृषीकेशं दुःखेनमहतान्वित

कुञ्जलउवाच ।

एवं सदुःखितो राजा प्रिययासह सत्तम । आकुलव्याकुलोजातःपीडितःक्षुधया भृ
इतश्चेतश्च वेगैश्च धावते वसुधाधिपः । सर्वाभरणशोभाङ्गो वस्त्रचन्दनभूषितः ॥
पुष्पमालाप्रशोभाङ्गो हारकुण्डलकङ्कणैः । रत्नदीप्तिप्रशोभाङ्गःप्रययौ स महीपति
एवं दुःखसमाचारःस्तूयमानश्च पाठकैः । दुःखशोकसमाविष्टःस्वप्रियां वाक्यमब्र
विष्णुलोकमहंप्राप्तस्त्वयासह सुशोभने । ऋषिभिःस्तूयमानोऽपि विमानेनापि भामि
कर्मणा केन मे चेयं क्षुधाऽतीव प्रवर्द्धते । विष्णुलोकं च सम्प्राप्य न दृष्टो मधुसू

...किं हि कारणं भद्रे न भुनज्मि महत्फलम्। कर्मणाथ निजेनापि एतद्दुःखं प्रवर्त्तते
सैवं श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजानमिदमब्रवीत्।
सत्यमुक्तं त्वया राजन्नास्ति धर्मस्य वै फलम्॥ १४॥
...शास्त्रपुराणेषु ये पठन्ति च ब्राह्मणाः। दुःखशोकौ विधूयेह सर्वदोषैःप्रमुच्यते
नामोच्चारेण देवस्य विष्णोश्चैव सुचक्रिणः।
पुण्यात्मानो महाभागा ध्यायमाना जनार्दनम्॥ १६॥
...त्वैवाराधितोदेवःशङ्खचक्रगदाधरः। अन्नादिदानं विप्रेभ्यो न प्रदत्तं द्विजोदितम्॥
...तस्य प्रजानामि न दृष्टो मधुसूदनः। क्षुधामे बाधते राजंस्तृष्णान्नैव प्रशोषयेत्॥

कुञ्जल उवाच।

...मुक्तस्तु प्रियया राजाचिन्ता कुलेन्द्रियः। ततोदृष्ट्वा महापुण्यमाश्रमं श्रमनाशनम्
...वृक्षसमाकीर्णं तडागैरूपशोभितम्। वापीकुण्डतडागैश्च पुण्यतोय प्रपूरितैः॥
...कारण्डवाकीर्णं कह्लारैरुपशोभितम्। आश्रमःशोभते पुत्र मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः॥
...वृक्षसमाकीर्णं मृगवातैश्च शोभितम्। नानापुष्प समाकीर्णं हृद्यगन्ध समाकुलम्
द्विजसिद्धैः समाकीर्णमृषिशिष्यैः समाकुलम्।
योगियोगेन्द्र सङ्घुष्टं देववृन्दैरलङ्कृतम्॥ २३॥
...वनसम्बाधैःसुफलैःपरिशोभितम्। नानावृक्षसमाकीर्णं सर्वकामसमन्वितम्॥
...खण्डैश्चारुगन्धैश्च सुफलैःशोभितं सदा। एवं पुण्यं समाकीर्णं ब्रह्मलक्ष्य समायुतम्
स सुबाहुस्ततो राजा तया सुप्रियग्रासह।
प्रविवेश महापुण्यं तद्वनं सर्वकामदम्॥ २६॥
...समानो दिशःसर्वा यत्रास्ते सूर्यसन्निभः। राजमानो महादीप्त्या परया सूर्यसन्निभः
...आसनसमारूढो योगपट्टेनसंवृतः। वामदेवं ऋषिश्रेष्ठो वैष्णवानां वरस्तथा॥२८॥
...मानो हृषीकेशं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। वामदेवं महात्मानं तं दृष्ट्वा मुनिसत्तमम्
...गत्वा प्रणम्यैव सराजा प्रिययासह। वामदेवस्ततोदृष्ट्वा प्रणतं राजसत्तमम्॥
...गीर्भिरभिनन्द्यैव राजानं प्रिययान्वितम्। उपवेश्यासने पुण्ये सुबाहुं राजसत्तमम्

आसनादि ततःपाद्यैरर्घपूजादिभिस्तथा। मुनिनापूजितो भूपःप्रिययासह चागतः॥३
अथ पप्रच्छ राजानं महाभागवतोत्तमम् ॥ ३३ ॥
वामदेव उवाच।
त्वामहं विष्णुधर्मज्ञं विष्णुभक्तं नरोत्तमम्। जाने ज्ञानेन राजेन्द्र दिव्येन चोलभूमिप
निरामयश्चागतोऽसि तार्क्ष्यया भार्ययासह ॥ ३५ ॥
राजोवाच।
निरामयश्चागतोऽस्मि प्राप्तो विष्णोःपरंपदम्। मया हि परयाभक्त्या देवदेवोजनार्द
आराधितो जगन्नाथो भक्तिप्रीतःसुरेश्वरम्। कस्मात्पश्याम्यहं तात नदेवं कमलापति
क्षुधा मे बाधते तात तृष्णातीवसुदारुणा।
ताभ्यां शान्तिं न गच्छाव सुखं विन्दावनैव च ॥ ३८ ॥
एतन्मे कारणं दुःखं सञ्जातं मुनिसत्तम। तन्मे त्वं कारणंब्रूहि प्रसादात्सुमुखोभव
वामदेव उवाच।
त्वं तु भक्तोऽसि राजेन्द्र श्रीकृष्णस्य सदैव हि।
आराधितस्त्वया भक्त्या परया मधुसूदनः ॥ ४० ॥
भक्त्योपचारैःस्नानाद्यैर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा। न पूजितोऽथ नैवेद्यैःफलैश्च जगतांप
दशमीं प्राप्य राजेन्द्र त्वयैव च सदाकृतम्। एकभक्तं न दत्तं तु ब्राह्मणाय सुभोज
एकादशीं तु सम्प्राप्य न कृतंभोजनं त्वया। विष्णुमुद्दिश्य विप्राय न दत्तं भोजनं
अन्नं चामृतरूपेण पृथिव्यां संस्थितं सदा।
अन्नदानं विशेषेण कदादत्तं न हि त्वया ॥ ४४ ॥
ओषध्यश्च महाराज नानाभेदास्तु ताःशृणु। कटुतिक्तकषायाश्च मधुराम्लाश्च क्षार
हिङ्ग्वाद्योपस्कराः सर्वे नानारूपाश्च भूपते। अमृताज्जज्ञिरे सर्वा ओषध्यःपृथिवे
अन्नमेव सुसंस्कृत्य ओषधव्यञ्जनान्वितम्। देवेभ्यो विष्णुरूपेभ्य इतिसङ्कल्प्य द
पितृभ्यो विष्णुरूपेभ्यो हस्ते च ब्राह्मणस्य हि।
अतिथिभ्यस्ततो दत्त्वा परिजनं प्रभोजयेत् ॥ ४८ ॥

स्वयं तु भुञ्जते पश्चात्तदन्नममृतोपमम् । प्रेत्यदुःखं न चैवास्ति तस्यसौख्यं तु भूपते
ब्राह्मणा पितरो देवाःक्षत्ररूपाश्च भूपते । यथा हि कर्षकःकश्चित्सुकृषिं कुरुते सदा ॥
तद्वन्मर्त्यःकृषिंकुर्यात्क्षेत्रे विप्रास्यकेनृप । स्वभावलाङ्गलेनापि श्रद्धाशस्त्रेण भेदयेत्
वृषभौ तु मतौनित्यं बुद्धिश्चैव तपस्तथा । सत्यज्ञानानुभावीशःशुद्धात्मा तु प्रतोदकः
विप्रनाम्नि महाक्षेत्रे नमस्कारैर्विसर्जयेत् । स्फोटयेत्कल्मषं नित्यं कृषको हि यथानृप
क्षेत्रस्य उद्यमेयुक्तो विष्णुकामःप्रसादयेत् ।
तद्वद्वाक्यैःशुभैःपुण्यैर्विप्रांश्चापि प्रसादयेत् ॥ ५४ ॥
स्वतीर्थाप्तिकालश्च घनरूपोऽभिवर्षणे । वप्तुकामो भवेत्क्षेत्री ततःक्षेत्रे प्रवापयेत् ॥
तद्वत्सुप्रसन्नाय विप्राय परिदीयते । क्षेत्रस्य उप्तबीजस्य यथाक्षेत्रीं प्रभुञ्जति ॥५६॥
फलमेव महाराज तथादाता भुनक्ति च ।
प्रेत्यचात्रैव नित्यं च तृप्तोभवति नान्यथा ॥ ५७ ॥
ब्राह्मणाः पितरोदेवाःक्षेत्ररूपा न संशयः । मानवानां महाराज वापिताःप्रददन्ति च ॥
फलमेवं न सन्देहो यादृशं तादृशं ध्रुवम् । कटुकाद्धि न जायेत राजन्मधुर एव च ॥
तद्वच्चमधुराख्याच्च न जायेत कटुकः पुनः । यादृशं वपतेबीजं तादृशं फलमश्नुते ॥६०॥
न वापयति यःक्षेत्रं न स भुञ्जति तत्फलम् ।। तद्वद्विप्राश्च देवाश्च पितरःक्षेत्ररूपिणः
प्रयच्छन्ति फलंराजन्दत्तस्यापि न संशयः । यादृशं हि कृतंकर्म त्वयैव च शुभाशुभम् ॥
तादृशं भुङ्क्ष्व वै राजन्नन्यथा तन्नजायते । न पुरा देव विप्रेभ्यःपितृभ्यश्च कदाचन
मिष्टान्नपानमेवापि दत्तं सुमनसा तदा । सुभोज्यैर्भोजनैर्मृष्टैर्मधुरैश्चोष्यपेयकैः ॥६४॥
भक्ष्यैरात्मनाभुक्तं कस्मैदत्तं न च त्वया । स्वशरीरं त्वयापुष्टमन्नैरमृतसन्निभैः ॥
तस्मात्कृतं महाराज तस्मात्क्षुधा प्रवर्तते । कर्मैव कारणं राजन्नराणां सुखदुःखयोः
जन्ममृत्योर्महाभाग भुङ्क्ष्व तत्कर्मणःफलम् ।
पूर्वेऽपि च महात्मानो दिवंप्राप्ताःस्वकर्मणा ॥६७॥
पुनःप्रयाता भूलोकं कर्मणःक्षयकालतः । नलो भगीरथश्चैव विश्वामित्रो युधिष्ठिरः ॥
कर्मणैव हि सम्प्राप्ताःस्वर्गं राजन्स्वकालतः । दिष्टं हि प्राक्तनंकर्म तेनदुःखं सुखं लभेत्

तदुल्लङ्घयितुं राजन्कःसमर्थोऽपि हीश्वरः। अथ तस्मान्नृपश्रेष्ठ स्वर्गतस्यापितेऽभव
क्षुत्तृष्णासम्भवोद्वेगस्ततोदुष्टं हि कर्म ते। यदि ते क्षुत्प्रतीकारोह्यभीष्टो नृपसत्तम
तद्गत्वा भुङ्क्ष्वकायं स्वमान्दारण्यसंस्थितम्। तत्रचेयं महाराज्ञी क्षुत्क्षामातीव दृश्य

सुबाहुरुवाच।

कियत्कालमिदं कर्म कर्तव्यं प्रिययासह। तन्मे ब्रूहि महाभागानुग्रहो दृश्यते का
कस्यदानेन किंपुण्यं द्रव्यस्य मुनिसत्तम। तत्प्रब्रूहि महाप्राज्ञ यदितुष्टोऽसि साम्प्र

वामदेव उवाच।

अन्नदानान्महासौख्यमुदकस्य महामते। भुञ्जन्ति मर्त्याःस्वर्गे वै पीड्यन्तेनैव पात
यदादानं न दत्तं तु भवेदपि हि मानवैः। मृत्युकालेऽपि सम्प्राप्ते दानं सर्वं ददन्ति
आदावेव प्रदातव्यमन्नं चोदकसंयुतम्। सुच्छत्रोपानहौ दद्याज्जलपात्रं सुशोभनम्
भूमिं सुकाञ्चनं धेनुमष्टौदानानियोऽर्पयेत्। स्वर्गे न जायते तस्य क्षुधातृष्णादिसम्भ

क्षुधा न बाधते राजन्नन्नदानात्स तृप्तिमान्।
तृष्णातीव्रा न हि स्याद्वै तृप्तो भवति सर्वदा ॥ ७९ ॥

उदकस्य प्रदानेन च्छत्रदानेन भूपते। छायामाप्नोति दाता वै वाहनं च नृपोत्तम ॥८
उपानहःप्रदानेन अन्यदेवं वदाम्यहम्। भूमिदानान्महाभाग सर्वकामानवाप्नुयात् ॥
गोदानेन महाराज रसैःपुष्टोभवेत्सदा। सर्वान्भोगान्प्रभुञ्जानःस्वर्गलोके वसेन्न
तृप्तोभवति वै दाता गोदानेन न संशयः। नीरुजःसुखसम्पन्नःसन्तुष्टन्तु धनान्वित
काञ्चनेन सुवर्णस्तु जायते नात्रसंशयः। श्रीमांश्च रूपवांस्त्यागी रत्नभोक्ता भवेन्
मृत्युकाले तु सम्प्राप्ते तिलदानं प्रयच्छति। सर्वभोगपतिर्भूत्वा विष्णुलोकं प्रयाति
एवं दानविशेषेण प्राप्यते परमंसुखम्। गोदानं भूमिदानं तु अन्नोदके च वै त्वया
जीवमानेन राजेन्द्र न दत्तं ब्राह्मणाय वै। मृत्युकालेऽपि नोदत्तं तस्मात्क्षुधा प्रवर्तते
एतत्तेकारणं प्रोक्तं जातं कर्मवशानुगम्। यादृशं तु कृतंकर्म तादृशं परिभुज्यते ॥

सुबाहुरुवाच।

कथं क्षुधा प्रशान्तिं मे प्रयाति मुनिसत्तम। अनयाशोषितःकायो ह्यतीव परिदू

युवांप्रति द्विजश्रेष्ठ प्रायश्चित्तं वदस्य नौ। कर्मणश्चास्य घोरस्य यथा शान्तिर्भवेन्मम

वामदेवउवाच।

प्रायश्चित्तं न चैवास्ति ऋतेभोगान्नृपोत्तम।

कर्मणोऽस्य फलं सर्वं भवान्स्वस्थःप्रभोक्ष्यति ॥ ६१ ॥

तव ते पतितःकायःप्रियायाश्चैव भूपते। युवाभ्यां हि प्रगन्तव्यमितश्चैव न संशयः॥

युवाभ्यामपि भोक्तव्यं कायमक्षयमेव तत्। स्वं स्वं राजन्नसन्देहस्त्वया वै प्रिययासह

राजोवाच।

कियत्कालं प्रभोक्तव्यं मयैवं प्रिययासह। तदादिश महाभाग प्रमाणं तद्वचो मम॥ ६४॥

वामदेवउवाच।

वासुदेव महास्तोत्रं महापातकनाशनम्। यदा त्वं श्रोष्यसे पुण्यं तदामोक्षं प्रयास्यसि

तावत्ते सर्वमाख्यातं गच्छराजन्प्रभुङ्क्ष्व हि। एवंश्रुत्वा ततो राजा भार्ययासह वै पुनः

स्वशरीरस्य वै मांसं भक्षते प्रिययासह। नित्यमेव महाप्राज्ञ तद्वत्पूर्णं भवेद्वपुः॥

नित्यं प्रभक्षते राजा राज्ञी तस्य च पुत्रक। यथायथा च राजा च भक्षते च कलेवरम्

हसेते वै सदानार्यौ तयोर्भावं वदाम्यहम्। प्रज्ञासार्द्धं महासाध्वी चरित्रं तस्य भूपतेः

हास्यं हि कुरुते नित्यं तस्य श्रद्धानपायिनी। प्रज्ञयाप्रेर्यमाणेन न दत्तं श्रद्धयान्वितम्

ब्राह्मणेभ्यःसुसङ्कल्प्य अन्नमुद्दिश्य वैष्णवे।

एवं स भक्षते मांसं स्व स्व कायस्य नित्यशः ॥१०१॥

पोषितं पिद्ध्यात्मकायं च रसैश्चामृतसन्निभैः। ततो वर्षशतान्ते तु वामदेवं महामुनिम् ॥

स्मृत्वा स गर्हयामास आत्मानं प्रति सुव्रत। न दत्तं पितृदेवेभ्योःब्राह्मणेभ्योकदा मया

न दत्तमतिथिभ्यो हि वृद्धेभ्यश्च विशेषतः। दीनेभ्यो हि नदत्तं च कृपया चातुराय च

एवं समुङ्क्तेस्वंमांसं गर्हयन्स्वीयकर्मं च। एवं स्वमासं भुञ्जानं सुबाहुं प्रिययासह

हसेते च तदादृष्ट्वा प्रज्ञा श्रद्धा च द्वेस्त्रियौ।

तस्य कर्म विपाकस्य शुभात्मा हसते नृप ॥१०६॥

प्रसङ्गे प्रसङ्गेन न दत्तं पापचेतन। प्रज्ञा च वचनैस्तैस्तु राजानं हसते पुनः ॥७॥

कृतोऽसौ महामोहो येनत्वं मोहितो नृप। लोभेन मोहयुक्तेन तमोगर्ते निपात्यते।
तत्रापतित्वा मामैव पतितं दुःखसङ्कटे। दानमार्गं परित्यज्य लोभमार्गं गतोनृप।
भार्ययासह भुङ्क्ष्वत्वं व्यापितःक्षुधयाभृशम्।
एवं तं हसते प्रज्ञा सुबाहुं प्रिययान्वितम् ॥११०॥
एतद्धि कारणं सर्वं तयोर्हासस्य पुत्रक। भक्ष्यमाणस्य भूपस्य देहं स्वंदुःखिते त
ऊचतुर्देहीदेहोति याच्यमानःसदैव हि। क्षुधातृष्णा महाप्राज्ञ भीमरूपे भयानके॥११
पयसामिश्रितं भक्ष्ये याचेते नृपतीश्वरम्। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छित
अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तद्वदस्व महामते ॥११४॥

विज्वल उवाच।

वासुदेवाभिधानं तत्स्तोत्रं कथय मे पितः। येन मोक्ष व्रजेद्राजा तद्विष्णोः परमंपद

इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमहात्म्येच्यवनचरित्रे
सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

विज्वलेनसभार्यसुवाहुंप्रतिवासुदेवस्तोत्रकथनम्।

विष्णुरुवाच।

एवमुक्ते शुभेवाक्ये विज्वलेन महात्मना। कुञ्जलो वदतांश्रेष्ठ स्तोत्रं पुण्यमुदैरयत्
ध्यात्वा नत्वा हृषीकेशं सर्वक्लेश विनाशनम्। सर्वश्रेयःप्रदातारं हरेःस्तोत्रमुदीरि
वासुदेवाभिधानं तत्सर्वश्रेयःप्रदायकम्। मोक्षद्वारं सुखोपेतं शान्तिदं पुष्टिवर्द्धनम्
सर्वकामप्रदातारं ज्ञानदं ज्ञानवर्द्धनम्। वासुदेवस्य यत्स्तोत्रं विज्वलाय प्रकाशि
वासुदेवाभिधानं च प्रमेयं पुण्यवर्द्धनम्। सोऽवगम्य पितुःसर्वं विज्वलःपक्षिणां
तत्रगन्तुंप्रचक्राम पितुःपृष्टं तदानृप। एवंगन्तुं कृतमतिं विज्वलं ज्ञानपारगम्

उवाच पुत्रं धर्मात्मा उपकारसमुद्यतम् ॥७॥

कुञ्जल उवाच ।

तस्यमहज्जाने पातकं भूपतेःशृणु । यतो गत्वा पठस्व त्वं सुबाहोश्चोपशृण्वतः ॥

यथा यथा श्रोष्यति स्तोत्रमुत्तमं तथा तथा ज्ञानमयो भविष्यति ।

श्रीवासुदेवस्य न संशयो वै तस्य प्रसादात्सुशिवं मयोक्तम् ॥ ९ ॥

आमन्त्र्य सगुरुं पश्चादुड्डीय लघुविक्रमः । आनन्दकाननं पुण्यं सम्प्राप्तो विज्वलस्तदा

वृक्षच्छायां समाश्रित्य उपविष्टो मुदान्वितः ।

समालोक्य सराजानं विमानेनागतं पुनः ॥ ११ ॥

एष्यत्यसौ कदाराजा सुबाहुःप्रिययासह ।

पातकान्मोचयिष्यामि स्तोत्रेणानेन वै कदा ॥१२॥

तद्विमानःसम्प्राप्तःकिङ्किणीजालमण्डितः । घण्टारवसमाकीर्णोवीणावेणुसमन्वितः

सर्वस्वरसङ्घुष्टश्चाप्सरोभिःसमन्वितः । सर्वकामसमृद्धस्तु अन्नोदकविवर्जितः ॥

तस्मिन्याने स्थितो राजा सुबाहुःप्रिययासह ।

समुत्तीर्णो विमानात्स सुतार्क्ष्ये प्रिययासह ॥१५॥

शस्त्रमादाय तीक्ष्णं तु यावत्कृन्तति तच्छवम् ।

तावद्धि विज्वलेनापि समाह्वानं कृतं तदा ॥ १६ ॥

भोः पुरुषशार्दूल देवोपम भवानिदम् । करोति निर्घृणं कर्म नृशंसैर्न च शक्यते॥

पुरुषशार्दूल कोऽयं विधिविपर्ययः । दुष्कृतं साहसं कर्म निन्द्यं लोकेषु सर्वदा॥

आचारविहीनं तु कस्मात्प्रारब्धवानिह । तन्मे त्वं कारणं सर्वं कथयस्व यथा तथा

इत्येवं भाषितं तस्य विज्वलस्य महात्मनः ।

समाकर्ण्य महाराजःस्वप्रियां वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

बहुवर्षशतं भुक्तं मयेदं पापकर्मणा । कदा न भाषितं केन यथाऽयं परिभाषते ॥२१॥

दिनं पीड्यमानस्य क्षुधया हृदयं प्रिये । निर्गतं चोत्सुकं कान्ते शान्तिश्चित्ते प्रवर्त्तते

यावदस्य श्रुतं वाक्यं सर्वदुःखस्य शान्तिदम् ।

तावच्चित्ते समाह्लादो वर्त्तते चारुहासिनि ॥ २३ ॥
कोऽयं देवोऽनुगन्धर्वःसहस्राक्षो भविष्यति । मुनीनां स्याद्वचःसत्यं यदुक्तं मुनिनापु
एवमाभाषितं श्रुत्वा प्रियस्यानन्तरं प्रिया । राजानं प्रत्युवाचाथ भार्या पतिपराय
सत्यमुक्तं त्वया नाथ इदमाश्चर्यमुत्तमम् । यथा ते वर्त्तते कान्त ! मम चित्ते तथापु
पक्षिरूपधरःकोऽयं पृच्छते हितकारिवत् । एवमाभाषितं श्रुत्वा प्रियायाःपृथिवीप
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा पक्षिणं वाक्यमब्रवीत् । स्वागतं ते महाप्राज्ञ पक्षिरूपधर प्र
शिरसा भार्ययासार्द्धं तव पादाम्बुजद्वयम् । नमस्करोम्यहं पुण्यमस्तु नस्त्वत्प्रसा
भवान्कःपक्षिरूपेण पुण्यमेवं प्रभाषते । यादृशं क्रियते कर्म पूर्वदेहेन सत्तम ! ॥ ३
सुकृतं दुष्कृतं वापि तत्तदिहैव प्रभुज्यते । अथ तेनात्मकं वृत्तं तस्याग्रे च निवेदि
यथोक्तं कुञ्जलेनापि पित्रापूर्वं श्रुतं तथा । कथय स्वात्मवृत्तान्तं भवान्कोमां प्रभाष
सुबाहुं प्रत्युवाचेदं वाक्यं पक्षिवरस्तदा ॥ ३३ ॥

विज्वल उवाच ।

शुकजात्यां समुत्पन्नःकुञ्जलो नाम मे पिता ।
तस्याहं विज्वलो नाम तृतीयस्तु सुतेष्वहम् ॥ ३४ ॥
नाहं देवो न गन्धर्वो न च सिद्धो महाभुज ! । नित्यमेव प्रपश्यामि कर्म चैवं सुदा
कियत्कालं महत्कर्म साहसाकारसंयुतम् । करिष्यसि महाराज ! तन्मेकथय सा

सुबाहुरुवाच ।

वासुदेवाभिधानं यत्पूर्वमुक्तं हि ब्राह्मणैः ।
श्रोष्याम्यहं यदा भद्र गतिं स्वां प्राप्नुयां तदा ॥ ३७ ॥
पुण्यात्मना भाषितं वै मुनिना संयतात्मना । तदाहं पातकान्मुक्तो भविष्यामि न सं

विज्वल उवाच ।

तवार्थे पृच्छितस्तातस्तेन मे कथितं च यत् ।
तत्तेऽद्याहं प्रवक्ष्यामि शाश्वतं शृणु सत्तम ॥ ३९ ॥
ॐ अस्य श्री वासुदेवाभिधानस्तोत्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः

ॐकारो देवता सर्वपातकनाशनार्थे चतुर्वर्गसाधनार्थे च जपे विनियोगः ।
ॐनमो भगवते वासुदेवाय इतिमन्त्रः ।

…वं परमं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम् । विद्याधारं भवाधारं प्रणवं वै नमाम्यहम् ॥४०॥
…रावासं निराकारं सुप्रकाशं महोदयम् । निर्गुणं गुणसम्बद्धं नमामि प्रणवं परम्
…कान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम् । आचिन्वन्तं जगत्सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम्
…ति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्द्धनः । अभयं भिक्षुसम्बद्धं नमामि प्रणवं शिवम्
…वी सामगायन्तं गीतं गीतप्रियं शुभम् । गन्धर्वगीतभोक्तारं प्रणवं प्रणमाम्यहम्
…ारं वेदरूपं तं यज्ञस्थं भक्तवत्सलम् । योनिं सर्वस्यलोकस्य ओंकारं प्रणमाम्यहम्
…कं सर्वभूतानां नौरूपेण विराजितम् । संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम्
…लोकेषु वसते एकरूपेण नैकधा । धामकैवल्यरूपेण नमामि प्रणवं शिवम् ॥४७॥
…मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम् । वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदस्थानं नमाम्यहम्
…दैत्यवियोगैश्च वर्जितं तुष्टिभिःसदा । देवैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोङ्कारं नमाम्यहम्
…कं विश्ववेत्तारं विज्ञानं परमं शुभम् । शिवं शिवगुणं शान्तं वन्दे प्रणवमीश्वरम्
…मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुराः । न विन्दन्ति परंशुद्धं मोक्षद्वारं नमाम्यहम्

आनन्दकन्दाय विशुद्धबुद्धये शुद्धाय हंसाय परावराय ।
नमोऽस्तु तस्मै गणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय ॥ ५२ ॥
श्रीपाञ्चजन्येन विराजमानं रविप्रभेणापि सुदर्शनेन ।
गदाब्जकेनापि विराजमानं प्रभुं सदैनं शरणं प्रपद्ये ॥ ५३ ॥
यं वेदगुह्यं सगुणं गुणानामाधारभूतं सचराचरस्य ।
यं सूर्यवैश्वानरतुल्यतेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५४ ॥
क्षुधानिधानं विमलं सुरूपमानन्दमानेन विराजमानम् ।
यं प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५५ ॥
तमोघनानां स्वकरैर्विनाशं करोति नित्यं यतिधर्महेतुः ।
उद्योतमानं रविदीप्ततेजसं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५६ ॥

यो भाति सर्वत्र रविप्रभावैःकरोति शोषं च रसं ददाति ।
यः प्राणिनामन्तरगःसवायुस्तंवासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५७ ॥
स्वेच्छानुरूपेण सदेवदेवो बिभर्ति लोकान्सकलान्महात्मा ।
सन्तारणे नौरिव वर्ततेयस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५८ ॥
अन्तर्गतोलोकमयःसदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम् ।
स्वाहामुखो देवगणस्य हेतुस्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ५९ ॥
रसैःसुपुण्यैःसकलैःसहैव पुष्णाति सौम्यो गुणदश्च लोके ।
अन्नानि यो निर्मलतेजसैव तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६० ॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतुःसर्वाश्रयःसर्वमयःस सर्वः ।
विना हृषीकैर्विषयान्प्रभुङ्क्ते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६१ ॥
जीवस्वरूपेण बिभर्ति लोकांस्ततःस्वमूर्त्तान्सचराचरांश्च ।
निष्केवलो ज्ञानमयःसुशुद्धस्तंवासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६२ ॥
दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम् ।
यं प्राप्य देवा विनयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६३ ॥
सुखं सुखान्तं सुखदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं मुनिपं सुरेशम् ।
सत्याश्रयं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६४ ॥
यज्ञाङ्गरूपं परमार्थरूपं मायान्वितं मापतिमुग्रपुण्यम् ।
विज्ञानमेकं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ६५ ॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि तस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले ।
श्रीपादपद्मद्वयमेव तस्य तद्वासुदेवस्य [नमामि नित्यम् ॥ ६६ ॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम् ।
तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य अघापहं तत् ॥ ६७ ॥
पादाम्बुजं रक्तमहोत्पलाभमम्भोजसल्लिङ्गजयोपभुक्तम् ।
अलङ्कृतं नूपुरमुद्रिकाभिःश्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥ ६८ ॥

देवैः सुसिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या उरगाधिपैश्च ।
तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥ ६९ ॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाःपूता दिवं यान्ति विकल्मषास्ते ।
मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७० ॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र ।
पिबन्ति ये ऽप्यापि सपापदेहास्ते यान्ति शुद्धाःसुगृहं मुरारेः ॥ ७१ ॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना उग्रैश्च पापैः परिलिप्तदेहाः ।
ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि ॥ ७२ ॥
नैवेद्यमात्रेण सुभक्षितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनस्तु ।
श्रीवाजपेयस्य फलं लभन्ते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति ॥ ७३ ॥
नारायणं तं नरकाग्निनाशनं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम् ।
यं ध्यायमानाः सुगतिं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७४ ॥
यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते,
यो विश्वस्य विसृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः ।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सल-
स्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ पावनौ ॥ ७५ ॥
यो दृष्टो मखमण्डपे सुरगणैः श्रीवामनः सामगः-
सामोद्गीतकुतूहलः सुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः ।
कुर्वन्तं नयनेक्षणैः शुभकरैर्निष्पापतां तद्बले-
स्तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम् ॥ ७६ ॥
राजन्तं द्विजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया शोभितं-
दिव्येनापि सुतेजसा करमयं यं चेन्द्रनीलोपमम् ।
देवानां हितकाम्यया सुतनिजं वैरोचनस्यापि तं-
याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे प्रभुं वामनम् ॥ ७७ ॥

तं द्रष्टुं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं-
चन्द्रार्कास्तमयान्तरे किल पदा संछादयन्तं तदा।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं-
काये विश्वविकोशकेतमतुलं नौमि प्रभोर्विक्रमम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरि-
ऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

वासुदेवस्तोत्रविधानफलवर्णनम् ।

विष्णुरुवाच ।

स्तोत्रं पवित्रं परमं पुराणं पापापहं पुण्यमयं शिवं च ।
धन्यं सुसूक्तं परमं सुजाप्यं निशम्य राजा स सुखी बभूव ॥ १ ॥
गतासुतृष्णाक्षुधयासमेता देवोपमो भूमिपतिर्बभूव ।
भार्या च तस्यापि विभाति रूपैर्युक्तावुभौ पापविमुक्तदेहौ ॥ २ ॥
देवःसुदेवैःपरिवारितोऽसौ विप्रैःसुसिद्धैर्हरिभक्तियुक्तैः ।
आगत्य भूपं गतकल्मषं तं श्रीशङ्खचक्राब्जगदासिधर्ता ॥ ३ ॥
श्रीनारदो भार्गवव्यासपुण्याः समागतस्तत्र मृकण्डसूनुः ।
वाल्मीकिनामा मुनिर्विष्णुभक्तः समागतो ब्रह्मसुतो वसिष्ठः ॥ ४ ॥
गर्गो महात्मा हरिभक्तियुक्तो जाबालिरैभ्यावथ कश्यपश्च ।
आजग्मुरेते हरिणासमेता विष्णुप्रिया भागवता वरिष्ठाः ॥ ५ ॥
पुण्याः सुधन्या गतकल्मषास्ते हरेः सुपादाम्बुजभक्तियुक्ताः ।
श्रीवासुदेवं परिवार्य तस्थुः स्तुवन्ति भूपं विविधप्रकारैः ॥ ६ ॥

देवाश्च सर्वे हुतभुङ्मुखाश्च ब्रह्माहरिश्चापि सुदिव्यदेव्यः।
गायन्ति दिव्यं मधुरं मनोहरं गन्धर्वराजादिसुगायनाश्च ॥ ७ ॥
सुवेदयुक्तैः परमार्थसंमितैः स्तवैः सुपुण्यैर्मुनयः स्तुवन्ति।
दृष्ट्वा पतिं भूपतिमेव देवो हरिर्बभाषे वचनं मनोहरम् ॥ ८ ॥
वरं यथेष्टं वरयस्व भूपते ददाम्यहं ते परितोषितो यतः।
हरेस्तु वाक्यं स निशम्य राजा दृष्ट्वा मुरारिं वदमानमग्रे ॥ ९ ॥
नीलोत्पलाभं मुरघातिनं प्रभुं तं शङ्खचक्रासिगदाप्रधारिणम्।
श्रिया समेतं परमेश्वरं तं रत्नोज्वलं कङ्कणहारभूषितम् ॥ १० ॥
रशिप्रभं देवगणैः सुसेवितं महार्घहाराभरणैः सुभूषितम्।
सुदिव्यगन्धैर्वरलेपनैर्हरिं सुभक्तिभावैरवनीं गतो नृपः ॥ ११ ॥
दण्डप्रणामैः सततं ननाम जयेत्युवाचाथ महामुदं गतः।
दासोऽस्मि भृत्योऽस्मि पुरः स ते सदा भक्तिं न जाने न च भावमुत्तमम्॥
जायान्वितं मामिह चागतं हरे प्रपाहि वै त्वां शरणं प्रपन्नम्।
धन्यास्तु ते माधव! मानवा द्विजाःसदैव ते ध्यानमनोविलीनाः ॥ १३ ॥
समुच्चरन्तो भवमाधवेति प्रयान्ति वैकुण्ठमितः सुनिर्मलाः।
तवैव पादाम्बुजनिर्गतं पयः पुण्यं तथा ये शिरसा वहन्ति ॥ १४ ॥
समस्ततीर्थोद्भवतोयआप्लुतास्ते मानवा यान्ति हरेः सुधाम ॥ १५ ॥
नास्ति योगो न मे भक्तिर्ज्ञानं नास्ति न मे क्रिया।
कस्य पुण्यस्य सङ्गेन वरं मह्यं प्रयच्छसि ॥ १६ ॥

हरिरुवाच।

वासुदेवाभिधानं यन्महापातकनाशनम्।
भवताविज्वलात्पुण्याच्छ्रुतं राजन् विकल्मषम् ॥ १७ ॥
तेन त्वं मुक्तिभागी च सञ्जातो नात्र संशयः।
मम लोके प्रभुङ्क्ष्व त्वं दिव्यान्भोगान्मनोऽनुगान् ॥ १८ ॥

राजोवाच ।

यदि देव वरो देयो मम दीनस्य वै त्वया ।
विज्वलाय प्रयच्छ त्वं प्रथमं वरमुत्तमम् ॥ १६ ॥

हरिरुवाच ।

विज्वलस्य पिता पुण्यः कुञ्जलो ज्ञानपण्डितः । वासुदेवमहास्तोत्रं नित्यं पठति भू
पुत्रैः प्रियासमेतोऽसौ ममगेहं प्रयास्यति । एतत्तु जपते स्तोत्रं सदा दास्याम्यहं फल
एवमुक्ते शुभे वाक्ये राजा केशवमब्रवीत् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं सफलं कुरु केशव

हरिरुवाच ।

कृते युगे महाराज यदा स्तोष्यन्ति मानवाः । तदामोक्षं प्रयास्यन्ति तत्क्षणान्नात्र संश
त्रेतायां मासमात्रेण षड्भिर्मासैस्तुद्वापरे । वर्षेणैकेन च कलौ ये जपन्ति च मानव
स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्र वैष्णवं गतिदायकम् ।
त्रिकालमेककालं वा स्नातो जपति ब्राह्मणः ॥ २५ ॥
यं यं तु वाञ्छते कामं स स तस्य भविष्यति । क्षत्रियो जयमाप्नोति धनधान्यैरलङ्कृ
वैश्यो भविष्यति श्रीमान्सुखी शूद्रो भविष्यति ।
अन्त्यजं श्रावयेद्योऽयं पापान्मुक्तो भविष्यति ॥ २७ ॥
श्रावको नरकं घोरं कदाचिन्नैव पश्यति । मम स्तोत्रप्रसादाच्च सर्वसिद्धो भविष्य
भुञ्जानेषु च विप्रेषु श्राद्धकाले तु यः पठेत् ।
पितरो वैष्णवं लोकं तृप्ता यास्यन्ति भूपते ॥ २६ ॥
तर्पणान्ते जपं कुर्याद्ब्राह्मणो वाऽथ क्षत्रियः । पिबन्ति चामृतं तस्य पितरो हृष्टमानस
होमेषु यज्ञमध्ये च भावाज्जपति मानवः । तत्र विघ्ना न जायन्ते सर्वसिद्धिर्भविष्य
विषमे दुर्गसंस्थाने हिंस्रव्याघ्रस्य सङ्कटे । चौराणां सङ्कटे प्राप्ते तत्र स्तोत्रमुदीर
तत्र शान्तिर्महाराज भविष्यति न संशयः । अन्येष्वेव सुभव्येषु राजद्वारे गते नरे
वासुदेवाभिधानस्य अयुतं जपते नरः । ब्रह्मचर्येण संस्नातः क्रोधलोभविवर्जित
तिलतण्डुलकैर्होमं दशांशमाज्यमिश्रितम् । वासुदेवं प्रपूज्यैव दद्यात्प्रयतमानस

श्लोकं प्रति ततो देयं होमं ध्यानेन मानवैः ।
तेषां सुभृत्यवन्नित्यं पार्श्वं नैव त्यजाम्यहम् ॥ ३६ ॥
कलौयुगे सुसम्प्राप्ते स्तोत्रे दास्यं प्रयास्यति । वेदभङ्गप्रसङ्गेन यस्य कस्य न दीयते
सर्वकामसमृद्धार्थः स चैव हि भविष्यति । एव हि सफलं स्तोत्रं मया भूपकृतं शृणु
ब्रह्मणा निर्मितं तेन जप्तं रुद्रेण वै पुरा । ब्रह्महत्याविनिर्मुक्त इन्द्रोमुक्तश्च किल्बिषात्
देवाश्च ऋषयो गुह्याःसिद्धविद्याधरामराः ।
नागैस्तु पूजितं स्तोत्रमापुः सिद्धिं यथेप्सिताम् ॥ ४० ॥
पुण्यो धन्यः स वै दाता पुत्रवान्हि भविष्यति ।
जपिष्यति मम स्तोत्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४१ ॥
आगच्छ त्वं स्त्रिया सार्धं मम स्थानं नृपोत्तम । हस्तावलम्बनं दत्तं हरिणा तस्य भूपतेः
नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र गन्धर्वा ललितं जगुः । ननृतुश्चाप्सरःश्रेष्ठाः पुष्पवृष्टिं प्रचक्रिरे ॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे वेदस्तोत्रैः स्तुवन्ति ते । ततो दयितया सार्द्धं जगाम नृपतिर्हरिम्
तं स्तूयमानं सुरसिद्धसङ्घैः सविज्वलः पश्यति हृष्टमानसः ।
समागतस्तिष्ठति यत्र वै पिता माता च वेगेन महाप्रभावः ॥ ४५ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थेच्यवनचरित्रे
नवनवतितमोऽध्यायः ।

शततमोऽध्यायः

स्तोत्रमाहात्म्यकथनम् ।

विष्णुरुवाच ।

नर्मदायास्तटे रम्ये वटे तिष्ठति वै पिता । विज्वलोऽपि समायातः पितरं प्रणिपत्य सः
वासुदेवाभिधानस्य स्तोत्रस्याऽपि महामतिः ।

समाचष्टे स धर्मात्मा महिमानं पितुः पुरः ॥ २ ॥
यथा विष्णुः समागत्य ददौ तस्मै वरं शुभम् । तत्सर्वं कथयामास सुप्रसन्नेन चेतसा
कुञ्जलोऽपि च वृत्तान्तं समाकर्ण्य स भूपते ।
हर्षेण महताऽऽविष्टः पुत्रमालिङ्ग्य विज्वलम् ॥ ४ ॥
आह पुण्यं कृतं वत्स त्वया राज्ञे महात्मने । उपकारं महापुण्यं वासुदेवस्य कीर्तनात्
एवमाभाष्य तं पुत्रमाशीर्भिरभिनन्द्य च । पुत्रं देवसमोपेतं स्तुत्वा चैव पुनःपुनः ॥६॥
स्थितः सरित्तटे रम्ये च्यवनस्योपपश्यतः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं तेषां वृत्तं महात्मनाम् ॥ ७ ॥
वैष्णवानां महाराज अन्यत्किं ते वदाम्यहम् ॥ ८ ॥

वेनउवाच ।

अमृतं शङ्खपात्रेण पानार्थं मम चार्पितम् । तस्मात्कस्य न च श्रद्धा पातुं मर्त्यस्य भूतले
उत्तमं वैष्णवं ज्ञानं पानानामिह सर्वदा । त्वयैवं कथ्यमानस्य पाने तृप्तिर्न जायते
श्रोतुं हि देवदेवेश मम श्रद्धा विवर्द्धते । कथयस्व प्रसादान्मे कुञ्जलस्यापि चेष्टितम्
महात्मना किमुक्तं च चतुर्थं तनयं प्रति । तत्त्वं सुविस्तरादेव कृपया कथयस्व मे ॥

श्रीभगवानुवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं कुञ्जलस्य च । बहुश्रेयः समायुक्तं चरित्रं च्यवनस्य च
इदं पुण्यं नरःश्रेष्ठ आख्यानं पापनाशनम् । यः शृणोति नरोभक्त्या गोसहस्रफलं लभेत्

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे शततमोऽध्यायः ।

———

एकाधिकशततमोऽध्यायः

कैलाशपर्वतशोभावर्णनम् ।

सूतउवाच ।

देवदेवो हृषीकेशस्त्वङ्गपुत्रं नृपोत्तमम् । समाचष्ट महाश्रेय आख्यानं पापनाशनम् ॥
श्रूयतामभिधास्यामि चरित्रं क्षेमदायकम् ।
द्विजस्यापि च वृत्तान्तं कुञ्जलस्य महात्मनः ॥ २ ॥

विष्णुरुवाच ।

कुञ्जलश्चापि धर्मात्मा चतुर्थं पुत्रमेव च । समाहूय मुदा युक्त उवाचैनं कपिञ्जलम् ॥
किंतु पुत्र त्वयादृष्टमपूर्वं कथयस्व मे । भोजनार्थं तु यासि त्वमितः कस्मिन्सुतोत्तम
तदाचक्ष्व महाभाग यदि दृष्टं सुपुण्यदम् ॥ ५ ॥

कपिञ्जल उवाच ।

यच्च तात त्वया पृष्टमपूर्वं प्रवदाम्यहम् । यन्न दृष्टं श्रुतं केन कस्मान्नैव श्रुतं मया ॥
तदिहैव प्रवक्ष्यामि श्रूयतामधुना पितः ! ।
शृण्वन्तु भ्रातरः सर्वे मातस्त्वं शृणु साम्प्रतम् ॥ ७ ॥
कैलासः पर्वतश्रेष्ठो धवलश्चन्द्रसन्निभः । नानाधातुसमाकीर्णो नानावृक्षोपशोभितः
गङ्गाजलैः शुभैः पुण्यैः क्षालितः सर्वतः पितः ! ।
नदीनां तु सहस्राणि दिव्यानि विविधानि च ॥ ९ ॥
यस्मात्तात! प्रसूतानि जलानि विविधानि च ।
तडागानि सहस्राणि सोदकानि महागिरौ ॥ १० ॥
नद्यः सन्ति विशालिन्यो हंससारससेविताः ।
तस्मिञ्छिखरिणां श्रेष्ठे पुण्यदाः पापनाशनाः ॥ ११ ॥
वनानि विविधान्येव पुष्पितानि फलानि च ।

नानावृक्षोपयुक्तानि हरितानि शुभानि च ॥ १२ ॥
किन्निराणां गणैर्युक्तश्चाप्सरोभिः समाकुलः। गन्धर्वचारणैः सिद्धैर्देववृन्दैः सुशोभितः
दिव्यवृक्षवनोपेतो दिव्यभावैः समाकुलः। दिव्यगधैः सुशोभाढ्यैर्नानारत्नसमन्वितः
शिलाभिः स्फटिकस्यापि शुक्लाभिस्तुसुशोभनः।
सूर्यतेजोमयो राजंस्तेजोभिस्तुसमाकुलः ॥ १५ ॥
चन्दनैश्चारुगन्धैश्च बकुलैर्नीलपुष्पकैः। नानापुष्पमयैर्वृक्षैः सर्वत्र समलङ्कृतः ॥१६॥
पक्षिणां सुनिनादैश्च दिव्यानां मधुरायते। षट्पदानां निनादैश्च वृक्षौघैर्मधुरायते।
रुतैश्चकोकिलानां तु शोभते सवनो गिरिः।
गणकोटिसमाकीर्णं तत्रास्ति शिवमन्दिरम् ॥ १८ ॥
अंशुभिर्धवलं पुण्यं पुण्यराशिशिलोच्चयम्। सिंहैश्च गर्जमानैश्च सैरिभैः कुञ्जरैस्ततः
दिग्गजानां सुघोषैश्च शब्दितं च समन्ततः।
नानामृगैः समाकीर्णं शाखामृगगणाकुलम् ॥ २० ॥
मयूरकेकाघोषैश्च गुहासु च विनादितम्। कन्दरैर्लेपनैः कूटैः सानुभिश्च विराजितम्
नानाप्रस्रवणोपेतमोषधीभिर्विराजितम्। दिव्यं दिव्यगुणं पुण्यं पुण्यधामसमाकुलम्
सेवितं पुण्यलोकैश्च पुण्यराशिं महागिरिम्। पुलिन्दभिल्लकोलैश्च सेवितं पर्वतोत्तमम्
विकटैः शिखरैः कोटैरद्रिराजा प्रकाशते। अन्यैर्नानाविधैः पुण्यैः कौतुकैर्मङ्गलैः शुभैः
गङ्गोदकप्रवाहैश्च महाशब्दं प्रसुस्रवे। शङ्करस्य गृहं तत्र कैलासं गतवानहम् ॥ २५॥
तत्राश्चर्यं मयादृष्टं यन्न दृष्टं कदा श्रुतम्। श्रूयतामभिधास्यामि तात सर्वं मयोदितम्
शिखराद्गिरिराजस्य मेरोः पुण्यान्महोदयात्। हिमक्षीरसुवर्णस्तु प्रवाहः पतते भुवि॥
गङ्गायाश्च महाभाग रंहसा घोषभूषितः। कैलासस्य शिरः प्राप्य तत्र विस्तरतां गतः
दशयोजनमानेन तत्र गङ्गाह्रदो महान्। महातोयेन पुण्येन विमलेन विराजते ॥ २९॥
सर्वतोभद्रतां प्राप्तो महाहंसैः प्रशोभते। सामोच्चारेण पुण्येन दिव्येन मधुरेण च।
हंसास्तत्र प्रकूजन्ति सरस्तेन विराजते।
तस्य तीरे शिलायां वै हिमकन्या महामते ॥ ३१ ॥

आसीना मुक्तकेशान्ता रूपद्रविणशालिनी। दिव्यरूपसुसम्पन्ना सगुणा दिव्यलक्षणा।
दिव्यालङ्कारभूषा च तस्यास्तीरे विराजते। न जाने गिरिराजस्य तनया वा महोदधेः
नो वास्ति ब्रह्मणः पत्नी नो वा स्वाहा भविष्यति।
इन्द्राणी वा महाभागा रोहिणी वा भविष्यति॥ ३४॥
ईदृशी रूपसम्पत्तिर्युवतीनां न दृश्यते। अन्यासां च सुदिव्यानां नारीणां तात सर्वथा
यादृशं रूपसम्भावं गुणशीलं प्रदृश्यते। अप्सरसां कदा नास्ति तादृशं रूपलक्षणम्॥
यादृशं तु मया दृष्टं तदङ्गे विश्वमोहनम्। शिलापट्टे समासीना दुःखेनाऽपि समाकुला
रुदते सुस्वरैर्बाला अनेकैः स्वजनैर्विना। अश्रूणि मुञ्चमाना सा मुक्ताभानि बहूनि च॥
निर्मलानि सरस्यत्र पतन्त्येव महामते। विन्दवो मौक्तिकाभास्ते निपतन्ति महोदके
तेभ्यो भवन्ति पद्मानि हृद्यानि सुरभीणि तु।
पद्मानि जज्ञिरे तेभ्यो नेत्राश्रुभ्यो महामते॥ ४०॥
गङ्गाम्भसि तरन्त्येव असङ्ख्यातानि तानि तु।
पतितानि सुहृद्यानि रंहसा यानि तानि तु॥ ४१॥
गङ्गाप्रवाहमध्ये तु हंसवृन्दैः सुसेविते। भागीरथ्याः प्रवाहस्तु तस्मात्स्थानाद्विनिर्गतः
कैलासशिखरं प्राप्य रत्नाख्यं चारुकन्दरम्। वर्तते तोयपूर्णस्तु योजनद्वयविस्तृतः॥
हंसवृन्दसमाकीर्णो जलपक्षिसमाकुलः। नानावर्णविशेषाणि सन्ति पद्मानि तत्र च॥
प्रवाहे निर्मले तात मुनिवृन्दनिषेविते। अश्रुभ्यो यानि जातानि प्रभाते कमलानि तु
गङ्गोदकप्लुतान्येव सौरभाणि महान्ति च। प्रतरन्ति प्रवाहे तु निर्मले जलपूरिते॥
मध्ये मध्ये सुहंसैश्च जलपक्षिनिनादिते। रत्नाख्ये तु गिरौ तस्मिन्रत्नेश्वरमहेश्वरः॥
देवदैत्यसुपूज्योऽपि तिष्ठते तात सर्वदा।
तत्र दृष्टो मया तात! कश्चित्पुण्यमयो मुनिः॥ ४८॥
जटाभारसमाक्रान्तो निर्वासा दण्डधारकः। निराधारो निराहारस्तपसातीव दुर्बलः
कृशाङ्गोऽप्यस्थिसङ्घातस्त्वचामात्रेण वेष्टितः।
भस्मोद्धूलितमात्राणि सर्वाङ्गानि महात्मनः॥ ५०॥

शुष्कपत्राणि भक्षेत शीर्णानि पतितानि च। शिवभक्तिसमासीनो दुराधारो महातपाः
अश्रुभ्यो यानि जातानि पद्मानि सुरभीणि च। गङ्गातोयात्समानीय देवदेवं प्रपूजयेत्
रत्नेश्वरं महाभागो गीतनृत्यविशारदः। गायते नृत्यते तस्य द्वारस्थस्त्रिपुरद्विपः
मठमागत्य धर्मात्मा रोदते सुस्वरैरपि। एतद्दृष्टं मया तात अपूर्वं वदतांवर ॥ ५४ ॥
कथयस्व प्रसादान्मे यदि त्वं वेत्सि कारणम्।
सा का नारी महाभाग कस्मात्तात प्ररोदिति ॥ ५५ ॥
कस्मात्स देवपुरुषो देवमर्चेन्महेश्वरम्। तन्मेत्वं विस्तराद् ब्रूहि सर्वसन्देहकारणम्
एवमुक्तो महाप्रज्ञः कुञ्जलोऽपि सुतेन हि। कपिञ्जलेन प्रोवाच विस्तराच्छृण्वतो मुने

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

शंकरस्य पार्वतीदोहदपूरणायनन्दनवनप्रस्थानम्।

कुञ्जल उवाच।

सर्वं वत्स प्रवक्ष्यामि यत्त्वयोक्तं ममाऽधुना। उभयोर्देवनं यत्तु यस्माज्जातं द्विजो
एकदा तु महादेवी पार्वती प्रमदोत्तमा। क्रीडमाना महात्मानमीश्वरं वाक्यमब्रवीत्
ममोरसि महादेव जातं महत्सुदोहदम्। दर्शयस्व ममाग्रे त्वं काननं काननोत्तमम्

श्रीमहादेव उवाच।

एवमस्तु महादेवि नन्दनं देवसङ्कुलम्। दर्शयिष्यामि ते पुण्यं द्विजसिद्धनिषेवितम्
एवमाभाष्य तां देवीं तया सहगणैस्ततः। जग्मतुर्वत्स तौ देवौ नन्दनं वनमेव तु
सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यपृष्ठमाभरणैर्युतम्। घण्टामालाभिसंयुक्तं किङ्किणीजालमालि
चामरैः पट्टसूत्रैश्च मुक्तामालासुशोभितम्। हंसचन्द्रप्रतीकाशं वृषभं चारुलक्षणम्

समारूढो महादेवो गणकोटिसमावृतः ।
नन्दिभृङ्गिमहाकालस्कन्दचण्डमनोहरा ॥ ८ ॥
...रभद्रो गणेशश्च पुष्पदन्तो गणेश्वरः । अतिबलः सुबलो नाम मेघनादो घटावहः ॥
घण्टाकर्णश्च कालिन्दः पुलिन्दो वीरबाहुकः ।
केशरी किङ्करो नाम चन्द्रहासः प्रजापतिः ॥ १० ॥
...वान्ये च बहवः सनकाद्यास्तपोबलाः । गणैश्च कोटिसङ्ख्यातैः सशिवः परिवारितः
...नं वनमेवापि सेवितं देवकिन्नरैः । प्रविवेश महादेवो गणैर्देव्या समन्वितः ॥
...यामास देवेशो गिरिजायै सुशोभनम् । नानापादपसम्पन्नं बहुपुष्पसमाकुलम् ॥
दिव्यरम्भावनाकीर्णं पुष्पवद्भिस्तु चम्पकैः ।
मल्लिकाभिः सुपुष्पाभिर्मालतीजालसङ्कुलम् ॥ १४ ॥
...तं पुष्पितशाखाभिः पाटलानां वनोत्तमैः । राजमानं महावृक्षैश्चन्दनैश्चारुगन्धिभिः
...वनैर्जुष्टं तुङ्गवृक्षैः समाकुलम् । सरलैर्नारिकेलैश्च तद्वत्पूगीफलद्रुमैः ॥ १६ ॥
...पनसैर्दिव्यैः फलभारावनामितैः । परिमलोद्गारसंयुक्तैर्गुरुवृक्षसमाकुलम् ॥१७॥
अग्नितेजः समाभासैः सप्तवर्णैः सुशोभितम् ।
राजवृक्षैः कदम्बैश्च पुष्पशोभान्वितं सदा ॥ १८ ॥
...निम्बमहावृक्षैर्मातुलिङ्गैः समाकुलम् । नारङ्गैः सिन्धुवारैश्च प्रियालैः शालतिन्दुकैः
...रैः कपित्थैश्च जम्बूपादपशोभितम् । लकुचैः पुष्पसौगन्धैः स्फुटनागैः समाकुलम्
...फलराजाद्यैर्नीलैश्चैव घनोपमैः । नीलैः शालवनैर्दिव्यैर्जालानां तु वनैस्ततः ॥
...लैस्तु विशालैश्च सेवितं तपनोपमैः । शोभितं नन्दनं पुण्यं शिवेन परिदर्शितम् ॥
...भितं च द्रुमैश्चान्यैः सर्वैर्नीलवनोपमैः । सर्वकामफलोपेतैः कल्याणफलदायकः ॥
...द्रुमैर्महापुण्यैः शोभितं नन्दनं वनम् । नानापक्षिनिनादैश्च सङ्कुलं मधुरस्वरैः ॥
...किलानां रुतैः पुण्यैरुद्घुष्टं मधुकारिभिः । मकरन्दविलुब्धानां पक्षिणां रुतनादितम्
नानावृक्षैः समाकीर्णं नानामृगगणायुतम् ।
वृक्षेभ्यो विविधैः पुष्पैस्सौगन्धैः पतितैर्भुवि ॥ २६ ॥

सा च भू राजते पुत्र पूजितेव सुगन्धिभिः। तत्रवाप्यो महापुण्याः पद्मसौगन्धनिर्म
तोयैस्ताः पूरिताः पुत्रहंसकरण्डसेविताः। तडागैः सागरःप्रख्यैस्तोयसौगन्धपूजि
नन्दनं भाति सर्वत्र गणैरप्सरसां महत्। विमानैः कलशैः शुभ्र हेमदण्डैः सुशोभनैः
नन्दनो वनराजस्तु प्रासादैस्तु सुधान्वितैः। यत्र तत्र प्रभात्येव किन्नराणां महागणै
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सुरूपाभिर्द्विजोत्तम। देवतानां विनोदैश्च मुनिवृन्दैः सुयोगि

सर्वत्र शुशुभे पुण्यसंस्थानं नन्दनस्य च ॥ ३२ ॥

एवं समालोक्य महानुभावो भवः सुदेव्या सहितो महात्मा।
श्रीनन्दनं पुण्यवतां निवासं सुखाकरं शान्तिगुणोपपन्नम्। ३३ ॥
आदित्यतेजःसमतेजसां गणैः प्रभाति वै रश्मिभिर्जालरूपः।
पुष्पैः फलैः कामगुणोपपन्नः कल्पद्रुमो नन्दनकाननेऽपि ॥ ३४ ॥
एवं विधं पादपराजमेव संवीक्ष्य देवी च शिवं बभाषे।
अस्याभिधानं कथयस्व नाथ सर्वस्य पुण्यस्य नगस्य पुण्यम् ॥ ३५ ॥
तेजस्विनां सूर्यवरः समन्तात्सदेवदेवीं च शिवो बभाषे ॥ ३६ ॥

शिवउवाच।

अस्य प्रतिष्ठा महती शुभाष्य देवेषु मुख्यो मधुसूदनश्च।
नदीषु मुख्या सुरनिम्नगाऽपि विसृष्टिकर्त्ताऽपि यथैव धाता ॥ ३७ ॥
सुखावहानां च यथा सुचन्द्रो भूतेषु मुख्या च यथैव पृथ्वी।
नगेन्द्रराजो हि यथा नगानां जलाशयेष्वेव यथा समुद्रः ॥ ३८ ॥
महौषधीनामिव देवि चान्नं महीधराणां हिमवान्यथैव।
विद्यासु मध्ये च यथात्मविद्या लोकेषु सर्वेषु यथा नरेन्द्रः।
तथैव मुख्यस्तरुराज एष सर्वातिथिर्देवपतेः प्रियोऽयम् ॥ ३९ ॥

श्रीपार्वत्युवाच।

गुणान्नु शम्भो मम कीर्त्तयस्व वृक्षाधिपस्यास्य शुभान्सुपुण्यान्।
आकर्ण्य देवो वचनं बभाषे देव्यास्तु सर्वं सुखदं द्विजस्य ॥ ४० ॥

यं यं कल्पयन्ति सुपुण्यदेवा देवोपमा देववराश्च कान्ते ।
तं तं हि तेभ्यः प्रददाति वृक्षः कल्पद्रुमो नाम वरिष्ठ एषः ॥ ४१ ॥
अस्माच्च सर्वे प्रभवन्ति पुण्य दुष्प्राप्यमत्रैव तपोऽधिकास्ते ।
जीवाधिकं रत्नमयं सुदिव्यं देवास्तु भुञ्जन्ति महाप्रधानाः ॥ ४२ ॥
शुश्राव देवी वचनं शिवस्य आश्चर्यभूतं मनसा विचिन्त्य ।
तस्यानुमत्या परिकल्पितं च स्त्रीरत्नमेकं सुगुणं सुरूपम् ॥ ४३ ॥
सर्वाङ्गरूपां सगुणां सुरूपां तस्मात्सुवृक्षाद्गिरिजा प्रलेभे ॥
विश्वस्य मोदाय यथोपविष्टा साहाय्यरूपा मकरध्वजस्य ॥ ४४ ॥
क्रीडानिधानं सुखसिद्धरूपं सर्वोपपन्ना कमलायताक्षी ।
पद्मानना पद्मकरा सुपद्मा चामीकरस्यापि यथा सुमूर्तिः ॥ ४५ ॥
प्रभासु तद्वद्विमलासु तेजोलीलासु तेजाश्च सुकुञ्चितास्ते ।
प्रलम्बकेशाः परिसूक्ष्मबद्धाः पुष्पैः सुगन्धैः परिलेपिताश्च ॥ ४६ ॥
प्रबद्धकुन्ता दृढकेशबन्धैर्विभाति सा रूपवरेण बाला ।
सीमन्तमार्गे च मुक्ताफलानां माला विभात्येव यथा तरूणाम् ॥ ४७ ।
सीमन्तमूले तिलकं सुदेव्या यथोदितो दैत्यगुरुः सतेजाः ।
भालेषु पद्मे मृगनाभिपद्मसमुत्थतेजःप्रकरैर्विभाति ॥ ४८ ॥
सीमन्तमूले तिलकस्य तेजः प्रकाशयेद्रूपश्रियं सुलोके ।
केशेषु मुक्ताफलके च भाले तस्याः सुशोभां विकरोति नित्यम् ॥ ४९ ॥
यथा सुचन्द्रः परिभाति भासा सा रम्यचेष्टेव विभाति तद्वत् ।
सम्पूर्णचन्द्रोऽपि यथा विभाति ज्योत्स्नावितानेन हिमांशुजालः ॥ ५० ॥
तस्यास्तु वक्त्रं परिभाति तद्वच्छोभाकरं विश्वविशारदं च ।
हिमांशुरेवापि कलङ्कयुक्तः संक्षीयते नित्यकलाविहीनः ॥ ५१ ॥
सम्पूर्णमस्त्येव सदैव दृष्टं तस्यास्तु वक्त्रं परिनिष्कलङ्कम् ।
गन्धं विकाशं कमले स्वकीयं ततः समालोक्य सुखं न लेभे ॥ ५२ ॥

पद्मानना सर्वगुणोपपन्ना मदीयभावैः परिनिर्मितेयम् ।

गन्धं स्वकीयं तु विपस्य पद्मं तस्या मुखाद्भाति जगत्समीरः ॥ ५३ ॥

लज्जाभियुक्तः सहसा बभूव जलं समाश्रित्य सदैव तिष्ठति ॥ ५४ ॥

कति मतिनियतबुद्ध्या सुधियो वदन्ति सुमदननृपतेः कोशं समुद्रकल

सुवरदशनरत्नैर्हास्यलीलाभियुक्ता अरुण अधरबिम्बं शोभमानस्तु आस्

सुभ्रूः सुनासिका तस्याः सुकर्णौ रत्नभूषितौ ।

हेमकान्तिसमोपेतौ कपोलौ दीप्तिसंयुतौ ॥ ५७ ॥

रेखात्रयं प्रशोभेत ग्रीवायां परिसंस्थितम् । सौभाग्यशीलश्रृङ्गारैस्तिस्रो रेखा इहैव

सुस्तनौ कठिनौ पीनौ वर्तुलाकारसन्निभौ । तस्याः कन्दर्पकलशावभिषेकायकल्पि

अंसावतीव शोभेते सुसमौ मानसान्वितौ ।

सुभुजौ वर्तुलौ श्लक्ष्णौ सुवर्णौ लक्षणान्वितौ ॥ ६० ॥

सुसमौ करपद्मौ तु पद्मवर्गौ सुशीतलौ । दिव्यलक्षणसम्पन्नौ पद्मस्वस्तिकसंयुतौ

सरलाः पद्मसंयुक्ता अङ्गुल्यस्तु नखान्विताः ।

नखानि च सुतीक्ष्णानि जलबिन्दुनिभानि च ॥ ६२ ॥

पद्मगर्भप्रतीकाशो वर्णस्तदङ्गसम्भवः । पद्मगन्धा च सर्वाङ्गे पद्मेति भाति भामिनी

सर्वलक्षणसम्पन्ना नगकन्या सुशोभना ।

रक्तोत्पलनिभौ पादौ सुश्लक्ष्णौ चातिशोभनौ ॥ ६४ ॥

रत्नज्योतिःसमाकारा नखाः पादाग्रसम्भवाः ।

यथोद्दिष्टं च शास्त्रेषु तथा चाङ्गेषु दृश्यते ॥ ६५ ॥

सर्वाभरणशोभाङ्गी हारकङ्कणनूपुरा । मेखलाकटिसूत्रेण काञ्चीनादेन राजते ॥ ६

नीलेन पट्टवस्त्रेण परां शोभां गताशुभा । कञ्चुकेनापि दिव्येन सुरक्तेन गुणान्वि

पार्वती कल्पिताद्भावाद् गुणं प्राप्ता महोदयम् ।

कल्पद्रुमान्मुदं लेभे शङ्करं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥

यथोक्तं तु त्वया देव तथा दृष्टो मया द्रुमः । यादृशं कल्प्यते भावस्तादृशं परि

सूतउवाच ।

अथ सा चारुसर्वाङ्गी तयोः पार्श्वं समेत्य च ।
पादाम्बुजं ननामाथ सा भक्त्या भवयोस्तदा ॥ ७० ॥
उवाच वचनं स्निग्धं हृद्यं हारि च सा तदा ।
कस्मात्सृष्टा त्वया मातः कथयस्वात्र कारणम् ॥ ७१ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

य कौतुकाद्भावान्मया वै प्रत्ययः कृतः । सद्यः प्राप्तं फलं भद्रे भवती रूपसम्पदा
अशोकसुन्दरीनाम्ना लोके ख्यातिं प्रयास्यसि ।
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना मम पुत्री न संशयः ॥ ७३ ॥
वंशेषु विख्यातो यथा देवः पुरन्दरः । नहुषो नामराजेन्द्रस्तवनाथो भविष्यति ॥
दत्वा वरं तस्यै जगाम गिरिजा गिरिम् । कैलासं शङ्करेणापि मुदा परमया युता
इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

अशोकसुन्दर्युपाख्यानम् ।

कुञ्जल उवाच ।

कसुन्दरी जाता सर्वयोषिद्वरा तदा । रेमे सुनन्दने पुण्ये सर्वकामगुणान्विते ॥
सुरूपाभिः सुकन्याभिर्देवानां चारुहासिनी ।
सर्वान्भोगान्प्रभुञ्जाना गीतनृत्यविचक्षणा ॥ २ ॥
विप्रचित्तेः सुतो हुण्डो रौद्रस्तीव्रश्च सर्वदा ।
स्वेच्छाचारो महाकामी नन्दनं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥

अशोकसुन्दरीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारसंयुताम् ।
तस्यास्तु दर्शनाद्दैत्यो विद्धःकामस्य मार्गणैः ॥ ४ ॥
तामुवाच महाकायः का त्वं कस्यासि वा शुभे ।
कस्मात्त्वं कारणाच्चात्र आगताऽसि वनोत्तमम् ॥ ५ ॥

अशोकसुन्दर्युवाच ।

शिवस्यापि सुपुण्यस्य सुताहं शृणु साम्प्रतम् ।
स्वसाहं कार्तिकेयस्य जननी गोत्रजापि मे ॥ ६ ॥
बालभावेन सम्प्राप्ता लीलया नन्दनं वनम् । भवान्को हि किमर्थं तु मामेवं परिपृ

हुण्ड उवाच ।

विप्रचित्तेः सुतश्चाहं गुणलक्षणसंयुतः । हुण्डेतिनाम्ना विख्यातो बलवीर्यमदे
दैत्यानामप्यहं श्रेष्ठो मत्समो नास्ति राक्षसः । देवेषु मर्त्यलोकेषु तपसा यशसा
अन्येषु नागलोकेषु धनभोगैर्वरानने । दर्शनात्ते विशालाक्षि हतःकन्दर्पमार्गणैः
शरणं ते ह्यहं प्राप्तः प्रसादसुमुखी भव । भवस्व वल्लभा भार्या मम प्राणसमा

अशोकसुन्दर्युवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि सर्वसम्बन्धकारणम् । भवितव्या सुजातस्य लोकेस्त्री पुरु
भवितव्यस्तथा भर्ता स्त्रिया यः सदृशो गुणैः ।
संसारे लोकमार्गोऽयं शृणु हुण्ड यथाविधि ॥ १३ ॥
अस्त्येव कारणं चात्र यथा तेन भवाम्यहम् । सुभार्या दैत्यराजेन्द्र शृणुष्व यत्न
वृक्षराजादहं जाता यदा काले महामते । शम्भोर्भावं सुसङ्गृह्य पार्वत्या कल्पिता
देवस्यानुमते देव्या सृष्टो भर्ता ममैव हि । सोमवंशे महाप्राज्ञ स धर्मात्मा भवि
जिष्णुर्जिष्णुसमो वीर्ये तेजसा पावकोपमः । सर्वज्ञः सत्यसन्धश्च त्यागे वैश्रव
यज्वा दानपतिः सोऽपि रूपेण मन्मथोपमः ।
नहुषो नाम धर्मात्मा गुणशीलमहानिधिः ॥ १८ ॥
देव्या देवेन मे दत्तः ख्यातो भर्ता भविष्यति ।

तस्मात्सर्वगुणोपेतं पुत्रमाप्स्यामि सुन्दरम् ॥ १९ ॥
[इन्द्र]ोपेन्द्रसमं लोके ययातिं जनवल्लभम् । लप्स्याम्यहं रणे धीरं तस्माच्छम्भोःप्रसादतः
[अह]ं पतिव्रतावीर परभार्याविशेषतः । अतस्त्वं सर्वथा हुण्ड त्यज भ्रान्तिमितो व्रज
प्रहस्यैव वचो ब्रूते अशोकसुन्दरीं प्रति ॥ २२ ॥

हुण्ड उवाच ।

[...]व युक्तं त्वया प्रोक्तं देव्या देवेन चैव हि । नहुषो नाम धर्मात्मा सोमवंशे भविष्यति
[...]ती वयसा श्रेष्ठा कनिष्ठो न स युज्यते । कनिष्ठा स्त्री प्रशस्ता तु पुरुषो न प्रशस्यते
[...]दा स पुरुषो भद्रे तव भर्ता भविष्यति । तारुण्यं यौवनं चापि नाशमेवं प्रयास्यति
[यौ]वनस्य बलेनापि रूपवत्यः सदा स्त्रियः । पुरुषाणां वल्लभत्वं प्रयान्ति वरवर्णिनि ॥
[तारु]ण्यं हि महामूलं युवतीनां वरानने । तस्याऽऽधारेण भुञ्जन्ति भोगान्कामान्मनोऽनुगान्
कदासोऽभ्येष्यते भद्रे आयोः पुत्रः शृणुष्व मे ।
यौवनं वर्ततेऽद्यैव वृथा चैव भविष्यति ॥ २८ ॥
[बा]ल्यत्वं शिशुत्वं च कौमारं च निशामय । कदाऽसौ यौवनोपेतस्तव योग्यो भविष्यति
[यौ]वनस्य प्रभावेण पिबस्व मधु माधवी । मया सह विशालाक्षि रमस्व त्वं सुखेन वै
[हु]ण्डस्य वचनं श्रुत्वा शिवस्य तनया पुनः । उवाच दानवेन्द्रं तं साध्वसेन समन्विता
[अष्टा]विंशतिके प्राप्ते द्वापराख्ये युगे तदा । शेषावतारो धर्मात्मा वसुदेवसुतो बलः ॥
रेवतस्य सुतां दिव्यां भार्यां स च करिष्यति ।
सापि जाता महाभाग कृताख्ये हि युगोत्तमे ॥ ३३ ॥
[यु]गत्रयप्रमाणेन सा हि ज्येष्ठा बलादपि । बलस्य सा प्रिया जाता रेवती प्राणसंमिता
[अष्टा]विंश्यद्वापरे प्राप्त इह सा तु भविष्यति । मायावती पुरा जाता गन्धर्वतनया वरा ॥
[अप]हृत्य नियस्यैव शम्बरो दानवोत्तमः । तस्या भर्ता समाख्यातो माधवस्य सुतो बली
[प्रद्यु]म्नो नाम वीरेशो यादवेश्वरनन्दनः । तस्मिन्युगे भविष्ये तु भाव्यं दृष्टं पुरातनैः ॥
व्यासादिभिर्महाभागैर्ज्ञानवद्भिर्महात्मभिः ।
एवं हि दृश्यते दैत्य वाक्यं देव्या तदोदितम् ॥ ३८ ॥

मां प्रति हि जगद्धात्र्या पुत्र्या हिमवतस्तदा ।
त्वं तु लोभेन कामेन लुब्धो वदसि दुष्कृतम् ॥ ३९ ॥
किल्बिषेण समाजुष्टं वेदशास्त्रविवर्जितम् । यद्यस्य दिष्टमेवास्ति शुभं वाप्यशुभं
पूर्वकर्मानुसारेण तत्तस्य परिजायते । देवानां ब्राह्मणानां च वदने यत्सुभाषित
निःसरेद्यदि सत्यं तदन्यथा नैव जायते । मद्भाग्यादेवमाज्ञातं नहुषस्यापि तस्य
समायोगं विचार्यैवं देव्या प्रोक्तं शिवेन च ।
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ त्यज भ्रान्ति मनःस्थिताम् ॥ ४३ ॥
नैव शक्तो भवान्दैत्य मे मनश्चालितुं ध्रुवम् ।
पतिव्रतादृढं चित्तं स को मे चालितुं क्षमः ॥ ४४ ॥
महाशापेन धक्ष्यामि इतो गच्छ महासुर । एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं हुण्डो वै दानवो
मनसा चिन्तयामास कथं भार्या भवेदियम् ।
विचिन्त्य हुण्डो मायावी अन्तर्धानं समागतः ॥ ४६ ॥
अन्यस्मिन्दिवसे प्राप्ते भार्यां कृत्वात मौमयीम् ।
दिव्यं मायामयं रूपं कृत्वा नार्यास्तु दानवः ॥ ४७ ॥
मायया कन्यकारूपो बभूव मम नन्दन । सा कन्याऽपि वरारोहा मायारूपाऽऽगम
हास्यलीलासमायुक्तं यत्राऽऽस्ते भवनन्दिनी। उवाच वाक्यं स्निग्धेव अशोकसुन्दरीं
कासि कस्यासि सुभगे तिष्ठसि त्वं तपोवने । किमर्थं क्रियते बाले कामशोषणकं
तन्ममाचक्ष्व सुभगे कन्निमित्तं सुदुष्करम् ।
तन्निशम्य शुभं वाक्यं दानवेनापि भाषितम् ॥ ५१ ॥
मायारूपेण छन्नेन साभिलाषेण सत्वरम् । आत्मसृष्टिसुवृत्तान्तं प्रवृत्तं तु यथा
तपसः कारणं सर्वं समाचष्ट सुदुःखिता । उपप्लवं तु तस्यापि दानवस्य दुरात्म
मायारूपं न जानाति सौहृदात्कथितं तया ॥ ५३ ॥

हुण्ड उवाच।

पतिव्रतासि हे देवि साधुव्रतपरायणा । साधुशीलसमाचारा साधुचारा महास

हं पतिव्रता भद्रे पतिव्रतपरायणा । तपश्चरामि सुभगे भर्तुरर्थे महासती ॥ ५५ ॥
म भर्त्ता हतस्तेन हुण्डेनापि दुरात्मना । तस्य नाशाय वै घोरं तपस्यामि महत्तपः ॥
हि मे स्वाश्रमे पुण्ये गङ्गातीरे वसाम्यहम् । अन्यैर्मनोहरैर्वाक्यैरुक्ता प्रत्ययकारकैः ॥
ण्डेन सखि भावेन मोहिता शिवनन्दिनी । समाकृष्टा सुवेगेन महामोहेन मोहिता ॥

आनीताऽऽत्मगृहं दिव्यमनौपम्यं सुशोभनम् ।
मेरोस्तु शिखरे पुत्र वैडूर्य्याख्यं पुरोत्तमम् ॥ ५९ ॥

स्ति सर्वगुणोपेतं काञ्चनाख्यं महाशिवम् । तुङ्गप्रसादसम्बाधैः कलशैर्दण्डचामरैः
नावृक्षसमोपेतैर्वनैर्नीलैर्घनोपमः । वापीकूपतडागैश्च नदीभिस्तु जलाशयैः ॥ ६१ ॥
भमानं महारत्नैः प्राकारैर्हेमसंयुतैः । सर्वकामसमृद्धार्थं सम्पूर्णं दानवस्य हि ॥
दृशे सा पुरं रम्यमशोकसुन्दरी तदा । कस्य देवस्य संस्थानं कथयस्व सखे मम ॥
ोवाच दानवेन्द्रस्य दृष्टपूर्वस्य वै त्वया । तस्य स्थानं महाभागे सोऽहं दानवपुङ्गवः

मय त्वं तु समानीता मायया वरवर्णिनि ।
तामाभाष्य गृहं नीता शातकौम्भं सुशोभनम् ॥ ६५ ॥

नावेश्मैः समाजुष्टं कैलासशिखरोपमम् । निवेश्य सुन्दरीं तत्र दोलायां कामपीडितः
ः स्वरूपी दैत्येन्द्रः कामबाणप्रपीडितः । करसम्पुटमाबध्य उवाच वचनं सदा ॥

यं यं त्वं वाञ्छसे भद्रे तं तं ददुमि न संशयः ।
भज मां त्वं विशालाक्षि भजन्तं कामपीडितम् ॥ ६८ ॥

अशोकसुन्दर्युवाच ।

व चालयितुं शक्तो भवान्मां दानवेश्वर । मनसापि न वै धार्यं मम मोहं समागतम्
वादृशैर्महापापैर्देवैर्वा दानवाधमैः । दुष्प्राप्याहं न सन्देहो मा वदस्व पुनः पुनः ॥

स्कन्दानुजा सा तपसाभियुक्ता जाज्वल्यमाना महता रुषा च ।
संहर्तुकामा परिदानवं तं कालस्य जिह्वेव यथा स्फुरन्ति ॥ ७१ ॥

नरुवाच सा देवी तमेवं दानवाधमम् । उग्रं कर्म कृतं पाप ! चात्मनाशनहेतवे ॥७२॥

आत्मवंशस्य नाशाय स्वजनस्यास्य वै त्वया ।

दीप्ता स्वगृहमानीता सुशिखा कृष्णवर्त्मनः ॥७३ ॥

यथाऽशुभः कूटपक्षी सर्वशोकैः समुद्गतः । गृहं तु विशते यस्य तस्य नाशं प्रयच्छति ।

स्वजनस्य च सर्वस्य सधनस्य कुलस्य च ।

सद्विजो नाशमिच्छेत विशत्येव यदा गृहम् ॥ ७५ ॥

तथा तेऽहं गृहं प्राप्ता तव नाशं समीहती । पुत्राणां धनधान्यस्य तव वंशस्य साम्प्रतम् ।

जीवं कुलं धनं धान्यं पुत्रपौत्रादिकं तव ।

सर्वं ते नाशयित्वाऽहं यास्यामि च न संशयः ॥ ७७ ॥

यथा त्वयाऽहमानीता चरन्ती परमं तपः । पतिकामा प्रवाञ्छन्ती नहुषं चायुनन्दनम् ।

तथा त्वां मम भर्त्ता च नाशयिष्यति दानव! । मन्निमित्त उपायोऽयं दृष्टो देवेन वै पुरा ।

सत्येयं लौकिकी गाथा यां गायन्ति विदो जनाः ।

प्रत्यक्षं दृश्यते लोके न विन्दन्ति कुबुद्धयः ॥ ८० ॥

येनयत्र प्रभोक्तव्यं यस्माद्दुःखसुखादिकम् । स एव भुञ्जते तत्र तस्माद्देव न संशयः ।

कर्मणोऽस्य फलं भुङ्क्ष्व स्वकीयस्य महीतले ।

यास्यसे निरयस्थानं परदाराभिमर्शनात् ॥ ८२ ॥

सुतीक्ष्णं हि सुधारं तु सुखड्गं च विघट्टति ।

अङ्गुल्यग्रेण कोपाय तथा मां विद्धि साम्प्रतम् ॥ ८३ ॥

सिंहस्य संमुखं गत्वा क्रुद्धस्य गर्जितस्य च ।

को लुनाति मुखात्केशान्साहसाकारसंयुतः ॥ ८४ ॥

सत्याचारां दमोपेतां नियतां तपसि स्थिताम् ।

निधनं चेच्छते यो वै सवै मां भोक्तुमिच्छति ॥ ८५ ॥

समणिं कृष्णसर्पस्य जीवमानस्य साम्प्रतम् ।

ग्रहीतुमिच्छते सो हि यथा कालेन प्रेषितः ॥ ८६ ॥

भवांस्तु प्रेषितो मूढ कालेन कालमोहितः ।

तदा ते ईदृशी जाता कुमतिः किं न पश्यसि ॥ ८७ ॥

[सु]ते तु आयुपुत्रेण समालोकयते हि कः । अन्यो हि निधनं याति ममरूपावलोकनात्
एवमाभाषयित्वा तं गङ्गातीरं गता सती ।
सशोका दुःखसंविग्ना नियता नियमान्विता ॥ ८६ ॥
[पू]र्वमाचरितं घोरं पतिकामनया तपः । तव नाशार्थमिच्छन्ती चरिष्ये दारुणं पुनः ॥
[य]दा त्वां निहतं दुष्टं नहुषेण महात्मना । निशितैर्वज्रसङ्काशैर्बाणैराशीविषोपमैः ॥
[र]णे निपतितं पापमुक्तकेशं सलोहितम् । गतासुं च प्रपश्यामि तदा यास्याम्यहं पतिम्
[ए]वं सुनियमं कृत्वा गङ्गातीरमनुत्तमम् । संस्थिता हुण्डनाशाय निश्चला शिवनन्दिनी
वह्नेर्यथा दीप्तिमती शिखोज्ज्वला तेजोऽभियुक्ता प्रदहेत्सुलोकान् ।
क्रोधेन दीप्ता विबुधेशपुत्री गङ्गातटे दुश्चरमाचरत्तपः ॥ ६४ ॥

कुञ्जल उवाच ।

[ए]वमुक्त्वा महाभाग शिवस्य तनया गता । गङ्गाम्भसि ततः स्नात्वा स्वपुरे काञ्चनाह्वये
[त]पश्चचार तन्वङ्गी हुण्डस्य वधहेतवे । अशोकसुन्दरी बाला सत्येन च समन्विता ॥
[हु]ण्डोऽपि दुःखितो भूतः शापदग्धेन चेतसा । चिन्तयामास सन्तप्त अतीववचनानलैः
[स]माहूय अमात्यं तं कम्पनाख्यमथाब्रवीत् । समाचष्ट स वृत्तान्तं तस्याः शापोद्भवं महत्
शप्तोऽस्म्यशोकसुन्दर्या शिवस्यापि सुकन्यया ।
नहुषस्यापि मे भर्त्तुस्त्वं तु हस्तान्मरिष्यसि ॥६६॥
नैव जातस्त्वसौ गर्भ आयोर्भार्या च गुर्विणी ।
यथासस्याद्व्यलीकस्तु तस्याः शापस्तथा कुरु ॥ १०० ॥

कम्पन उवाच ।

[अप]हृत्य प्रियां तस्य आयोश्चापि समानय । अनेनापि प्रकारेण तव शत्रुर्न जायते ॥
[अथ]वा प्रपातयस्व त्वं गर्भं तस्याः प्रभीषणैः । अनेनापि प्रकारेण तव शत्रुर्न जायते ॥
[जन्म]कालं प्रतीक्षस्व नहुषस्य दुरात्मनः । अपहृत्य समानीय जहि त्वं पापचेतनम् ॥
[ए]वं संमन्त्र्य तेनापि कम्पनेन स दानवः । अभूत्स उद्यमोपेतो नहुषस्य प्रणाशने ॥
[ऐल]पुत्रो महाभाग आयुर्नाम क्षितीश्वरः । सार्वभौमः स धर्मात्मा सत्यव्रतपरायणः ॥

इन्द्रोपेन्द्रसमो राजा तपसा यशसा बलैः। दानयज्ञैः सुपुण्यैश्च सत्येन नियमेन च॥
एकच्छत्रेण वै राज्यं चक्रे भूपतिसत्तमः। पृथिव्यां सर्वधर्मज्ञः सोमवंशस्य भूषणम्॥
पुत्रं न विन्दते राजा तेन दुःखी व्यजायत।
चिन्तयामास धर्मात्मा कथं मे जायते सुतः॥ १०८॥
इति चिन्तां समापेदे आयुश्च पृथिवीपतिः। पुत्रार्थं परमं यत्नमकरोत्सुसमाहितः॥
अत्रिपुत्रो महात्मा वै दत्तात्रेयो महामुनिः। क्रीडमानः स्त्रिया सार्द्धं मदिरारुणलोचनः॥
वारुण्या मत्तधर्मात्मा स्त्रीवृन्दैश्च समावृतः। अङ्के युवतिमाधायसर्वयोषिद्वरां शुभाम्॥
गायते नृत्यते विप्रः सुरां च पिवते भृशम्। विना यज्ञोपवीतेन महायोगीश्वरोत्तमः॥
पुष्पमालाभिर्दिव्याभिर्मुक्ताहारपरिच्छदैः। चन्दनागुरुदिग्धाङ्गो राजमानो मुनीश्वरः॥
तस्याश्रमं नृपो गत्वा तं दृष्ट्वा द्विजसत्तमम्।
प्रणाममकरोन्मूर्ध्ना दण्डवत्सुसमाहितः॥ ११४॥
अत्रिपुत्रः स धर्मात्मा समालोक्य नृपोत्तमम्।
आगतं पुरतो भक्त्या अथ ध्यानं समास्थितः॥ ११५॥
एवं वर्षशतं प्राप्तं तस्य भूपस्य सत्तम। निश्चलं शान्तिमापन्नं मानसं भक्तितत्परम्॥
समाहूय उवाचेदं किमर्थं क्लिश्यसे नृप।
ब्रह्माचारेण हीनोऽस्मि ब्रह्मत्वं नास्ति मे कदा॥ ११७॥
सुरामांसप्रलुब्धोऽस्मि स्त्रियासक्तः सदैव हि। वरदाने न मे शक्तिरन्यं शुश्रूष ब्राह्मणम्॥
आयुरुवाच।
भवादृशो महाभाग नास्ति ब्राह्मणसत्तमः। सर्वकामप्रदाता वै त्रैलोक्ये परमेश्वरः॥
अत्रिवंशे महाभाग गोविन्दः परमेश्वरः। ब्राह्मणस्य स्वरूपेण भवान्वै गरुडध्वजः॥
नमोऽस्तु देवदेवेश नमोऽस्तु परमेश्वर। त्वामहं शरणं प्राप्तः शरणागतवत्सल॥
उद्धरस्व हृषीकेश मायां कृत्वा प्रतिष्ठसि।
विश्वस्थानां प्रजानां तु विद्वांसं विश्वनायकम्॥ १२२॥
जानाम्यहं जगन्नाथं भवन्तं मधुसूदनम्। मामेव रक्ष गोविन्द विश्वरूप नमोऽस्तु ते॥

कुञ्जल उवाच ।

गते बहुतिथे काले दत्तात्रेयो नृपोत्तमम् । उवाच मत्तरूपेण कुरुष्व वचनं मम ॥
कपाले मे सुरां देहि पाचितं मांसभोजनम् ।
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं स चायुः पृथिवीपतिः ॥ १२५ ॥
उत्सुकस्तु कपालेन सुरामाहृत्य वेगवान् ।
पलं सुपाचितं चैव च्छित्त्वा हस्तेन सत्वरम् ॥ १२६ ॥
नृपेन्द्रः प्रददौ चापि दत्तात्रेयाय सत्तम । अथप्रसन्नचेताः स सञ्जातो मुनिपुङ्गवः ॥
दृष्ट्वा भक्ति प्रभावं च गुरुशुश्रूषणं परम् । समुवाच नृपेन्द्रं तमायुं प्रणतमानसम्
वरं वरय भद्रं ते दुर्लभं भुवि भूपते । सर्वमेव प्रदास्यामि यं यमिच्छसि साम्प्रतम् ॥

राजोवाच ।

भवान्दाता वरं सत्यं कृपया मुनिसत्तम । पुत्रं देहि गुणोपेतं सर्वज्ञं गुणसंयुतम् ॥
देवतीर्थार्चनकरमजेयं दिवदानवैः । क्षत्रियैराक्षसैर्घोरैर्दानवैः किन्नरैस्तथा ॥ १३१ ॥
देवब्राह्मणसम्भक्तः प्रजापालो विशेषतः । यज्वा दानपतिः शूरः शरणागतवत्सलः ॥
दाता भोक्ता महात्मा च वेदशास्त्रेषु पण्डितः । धनुर्वेदेषु निपुणः शास्त्रेषु च परायणः
अनाहतमतिर्धीरः सङ्ग्रामेष्वपराजितः । एवं गुणः सुरूपश्च यस्माद्वंशः प्रसूयते ॥
देहि पुत्रं महाभाग मम वंशप्रधारकम् । यदि चापि वरोदेयस्त्वया मे कृपया विभो

दत्तात्रेय उवाच ।

एवमस्तुमहाभाग तव पुत्रो भविष्यति । गृहे वंशकरः पुण्यः सर्वजीवदयाकरः ।
एभिर्गुणैस्तु संयुक्तो वैष्णवांशेन संयुतः । राजा च सार्वभौमश्च इन्द्रतुल्यो नरेश्वरः
एवं खलु वरं दत्त्वा ददौ फलमनुत्तमम् । भूपमाह महायोगी सुभार्यायै प्रदीयताम् ॥
एवमुक्त्वा विसृज्यैव तमायुं प्रणतं पुरः । आशीर्भिरभिनन्द्यैव अन्तर्द्धानमधीयत ॥
इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्येच्यवनचरित्रे
त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

———

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

इन्दुमतीगर्भवर्णनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

गते तस्मिन्महाभागे दत्तात्रेये महामुनौ । आजगाम महाराज आयुश्च स्वपुरं प्रति ।
इन्दुमत्या गृहं हृष्टः प्रविवेश श्रियान्वितम् । सर्वकामसमृद्धार्थमिन्द्रस्य सदनोपमम् ।
राज्यं चक्रे स मेधावी यथा स्वर्गे पुरन्दरः । स्वर्भानुसुतया सार्द्धमिन्दुमत्या द्विजोत्तम
सा च इन्दुमती राज्ञी गर्भमाप फलाशनात् । दत्तात्रेयस्य वचनाद्दिव्यतेजःसमन्वितम्
इन्दुमत्या महाभाग स्वप्नं दृष्टमनुत्तमम् । रात्रौ दिवान्वितं तात बहुमङ्गलदायकम्

गृहान्तरे विशन्तं च पुरुषं सूर्यसन्निभम् ।
मुक्तामालान्वितं विप्रं श्वेतवस्त्रेण शोभितम् ॥ ६ ॥

श्वेतपुष्पकृतामाला तस्य कण्ठे विराजते । सर्वाभरणशोभाङ्गो दिव्यगन्धानुलेपनः ।
चतुर्भुजः शङ्खपाणिर्गदाचक्रासिधारकः । छत्रेण ध्रियमाणेन चन्द्रबिम्बानुकारिणा ।
शोभमानो महातेजा दिव्याभरणभूषितः । हारकङ्कणकेयूरैर्नूपुराभ्यां विराजितः ।

चन्द्रबिम्बानुकाराभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजितः ।
एवं विधो महाप्राज्ञो नरः कश्चित्समागतः ॥ १० ॥

इन्दुमती समाहूय स्नापिता पयसा तदा । शङ्खेन क्षीरपूर्णेन शशिवर्णेन भामिनी ।
रत्नकाञ्चनबद्धेन सम्पूर्णेन पुनःपुनः । श्वेतं नागं सुरूपं च सहस्रशिरसं वरम्
महामणियुतं दीप्तं धामज्वालासमाकुलम् । क्षिप्तं तेन मुखप्रान्ते दत्तं मुक्ताफलं पुनः

कण्ठे तस्याः स देवेश इन्दुमत्या महायशाः ।
पद्मं हस्ते ततो दत्त्वा स्वस्थानं प्रतिजग्मिवान् ॥ १४ ॥

एवं विधं महास्वप्नं तया दृष्टं सुतोत्तमम् । समाचष्ट महाभागा आयुं भूमिपतीश्वरम्
समाकर्ण्य महाराजश्चिन्तयामास वै पुनः । समाहूय गुरुं पश्चात्कथितं स्वप्नमुत्तमम्

शौनकं सुमहाभागं सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम् ॥ १७ ॥

राजोवाच ।

अद्यरात्रौ महाभाग मम पत्न्या द्विजोत्तम ।
विप्रो गेहं विशन्दृष्टः किमिदं स्वप्नकारणम् ॥ १८ ॥

शौनक उवाच ।

वरो दत्तस्तु ते पूर्वं दत्तात्रेयेण धीमता । आदिष्टं च फलं राज्ञा सुगुणं सुतहेतवे ॥
तत्फलं किंकृतं राजन्कस्मै त्वया निवेदितम् । सुभार्यायै मयादत्तमिति राज्ञोदितं वचः
श्रुत्वोवाच महाप्राज्ञ शौनको द्विजसत्तमः । दत्तात्रेयप्रसादेन तव गेहे सुतोत्तमः ॥
वैष्णवांशेन संयुक्तो भविष्यति न संशयः । स्वप्नस्य कारणं राजन्नेतत्ते कथितं मया
इन्द्रोपेन्द्रसमः पुत्रो दिव्यवीर्यो भविष्यति । पुत्रस्ते सर्वधर्मात्मा सोमवंशस्य वर्द्धनः

धनुर्वेदे च वेदे च सगुणोऽसौ भविष्यति ।
एवमुक्त्वा स राजानं शौनको गतवान्गृहम् ॥ २४ ॥
हर्षेण महताविष्टो राजाभूत्प्रियया सह ॥ २५ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डेवेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

———

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

हुण्डेनइन्दुमत्याःप्रसूतबालकस्यछद्मनाग्रहणम् ।

कुञ्जल उवाच ।

गतासा नन्दनवनं सखीभिः सह क्रीडितुम् । तत्राकर्ण्य महद्वाक्यमप्रियं तु तदा पितुः
चारणानां सुसिद्धानां भाषतां हर्षणेन तु । आयोर्गेहे महावीर्यो विष्णुतुल्यपराक्रमः
भविष्यति सुतश्रेष्ठो हुण्डस्यान्तं करिष्यति । एवं विधं महद्वाक्यमप्रियं दुःखदायकम्

समाकर्ण्य समायाता पितुरग्रे निवेदितम् । समासेन तया तस्य पुरतो दुःखदायकम्
पितुरग्रे जगादाऽथ पिता श्रुत्वा स विस्मितः ।
शापमशोकसुन्दर्याः सस्मार च पुरा कृतम् ॥ ५ ॥
एतस्यार्थे तपस्तेपे सेयं चाशोकसुन्दरी । गर्भस्य नाशनायैव इन्दुमत्याः स दानवः ॥
विचक्रे उद्यमं दुष्टः कालाकृष्टो दुरात्मवान् ।
छिद्रान्वेषी ततो भूत्वा इन्दुमत्यास्तु नित्यशः ॥ ७ ॥
यदा पश्यति तां राज्ञीं रूपौदार्यगुणान्विताम् ।
दिव्यतेजःसमायुक्तां रक्षितां विष्णुतेजसा ॥ ८ ॥
दिव्येन तेजसा युक्तां सूर्यबिम्बोपमां तु ताम् ।
तस्याः पार्श्वं महाभाग रक्षणार्थं स्थितः सदा ॥ ९ ॥
दूरात्स दानवो दुष्टस्तस्याश्च बहु दर्शयन् ।
नानाविद्यां महोग्रां च भीषिकां सुविभीषिकाम् ॥ १० ॥
गर्भस्य तेजसा युक्ता रक्षिता विष्णुतेजसा । भयं न जायते तस्या मनस्येव कदा पुनः
विफलो दानवो जात उद्यमश्च निरर्थकः । मनीषितं नैव जातं हुण्डस्यापि दुरात्मनः
एवं वर्षशतं पूर्णं पश्यमानस्य तस्य च । प्रसूता सा हि पुत्रं च स्वर्भानोस्तनया तदा
रात्रावेव सुतश्रेष्ठ तस्याःपुत्रो व्यजायत । तेजसातीव भात्येष यथासूर्यो नभस्तले।
अथ दासी महादुष्टा काचित्सूतिगृहागता । अशौचाचारसंयुक्ता महामङ्गलवादिनी ।
तस्याः सर्वं समाज्ञाय सहुण्डो दानवाधमः ।
दास्या अङ्गं प्रविश्यैव प्रविष्टश्चायुमन्दिरे ॥ १६ ॥
महाजने प्रसुप्ते च निद्रयाऽतीव मोहिते । तं पुत्रं देवगर्भाभमपहृत्य बहिर्गतः ॥ १७॥
काञ्चनाख्यं पुरं प्राप्तः स्वकीयं दानवाधमः ।
समाहूयप्रियां भार्यां विपुलां वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
वधस्वैनं महापापं बालरूपं रिपुं मम । पश्चात्सूदस्य वै हस्ते भोजनार्थं प्रदीयताम्।
नानाभेदैर्विभेदैश्च पाचयस्व हि निर्घृणम् । सूदहस्तान्महाभागे पश्चाद्भोक्ष्ये न संशयः

वाक्यमाकर्ण्य तद्भर्तुर्विपुला विस्मिताऽभवत् ।
कस्मान्निर्घृणतां याति भर्त्ता मम सुनिष्ठुरः ॥ २१ ॥
[स]र्वलक्षणसम्पन्नं देवगर्भोपमं सुतम् । कस्य कस्मात्प्रभक्ष्येत क्षमाहीनः सुनिर्घृणः ॥
[इ]त्येवं चिन्तयामास कारुण्येन समन्विता । पुनः पप्रच्छ भर्तारं कस्माद्भक्ष्यसि बालकम्
[क]स्माद्भवसि सङ्क्रुद्धो अतीवनिरपत्रपः । सर्वं मे कारणं ब्रूहि तत्त्वेन दनुजेश्वर ॥
[आ]त्मदोषं च वृत्तान्तं समासेन निवेदितम् । शापमशोकसुन्दर्या हुण्डेनापि दुरात्मना
तया ज्ञातं तु तत्सर्वं कारणं दानवस्य वै ।
वध्योऽयं बालकः सत्यं नो वा भर्ता मरिष्यति ॥ २६ ॥
[इ]त्येवं प्रविचार्यैव विपुला क्रोधमूर्च्छिता । मेकलां तु समाहूय सैरन्ध्रीं वाक्यमब्रवीत्
[ग]त्वेनं बालकं दुष्टं मेकलेऽद्य महानसे । सूदहस्ते प्रदेहि त्वं हुण्डभोजनहेतवे ॥ २८ ॥
[मे]कला बालकं गृह्य सूदमाहूय चाब्रवीत् । राजाऽऽदेशं कुरुष्वाद्य पचस्वैनं हि बालकम्
[ए]वमाकर्णितं तेन सूदेनापि महात्मना । आदाय बालकं हस्ताच्छस्त्रमुद्यम्य चोद्यतः ॥
[स] वै देवदेवस्य दत्तात्रेयस्य तेजसा । रक्षितस्त्वायुपुत्रश्च स जहास पुनःपुनः ॥३१॥
[ह]सन्तं तं समालोक्य ससूदः कृपयान्वितः । सैरन्ध्री च कृपायुक्ता सूदं तं प्रत्यभाषत
[न] वध्यस्त्वया सूद शिशुरेव महामते । दिव्यलक्षणसम्पन्नः कस्य जातः सुसत्कुले
सूद उवाच ।
[स]त्यमुक्तं त्वया भद्रे वाक्यं वै कृपयान्वितम् । राजलक्षणसम्पन्नो रूपवान्कस्य बालकः
कस्माद्भोक्ष्यति दुष्टात्मा हुण्डोऽयं दानवाधमः ।
येन वै रक्षितो वंशः पूर्वमेव सुकर्मणा ॥ ३५ ॥
[व]नस्थस्त्वपि स जीवेत दुर्गेषु नान्यथा भवेत् । सिन्धुवेगेन नीतस्तु वह्निमध्ये गतोऽथवा
[जी]वते नात्रसन्देहो यश्च कर्मसहायवान् । तस्माद्धि क्रियते कर्म धर्मपुण्यसमन्वितम्
[आ]युष्मन्तो नरास्तेन प्रवदन्ति सुखं ततः । तारकं पालकं कर्म रक्षते जाग्रते हि तत्
[य]स्मिदं जायते नित्यं मैत्रस्थानप्रदायकम् । दानपुण्यान्वितं कर्म प्रियवाक्यसमन्वितम्
[उप]कारयुतं यश्च करोति शुभकृत्तदा । तमेव रक्षते कर्म सर्वदैव न संशयः ॥ ४० ॥

अन्ययोनिं प्रयाति स्म प्रेरितः स्वेन कर्मणा ।

किं करोति पितामाता अन्ये स्वजनबान्धवाः । कर्मणा निहतो यस्तु नस्युस्तस्य च रक्षकाः

कुञ्जल उवाच ।

येनैव कर्मणा चैव रक्षितश्चायुनन्दनः ॥ ४२ ॥

तस्मात्कृपान्वितो जातः सूदः कर्मवशानुगः ।

सैरन्ध्री च तथा जाता प्रेरिता तस्य कर्मणा ॥ ४३ ॥

द्वाभ्यामेव सुतश्चायो रक्षितश्चारुलक्षणः । रात्रावेव प्रणीतोऽसौ तस्माद्गेहान्महा...

वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये सैरन्ध्र्या पुण्यकर्मणा । शुभे पर्णकुटिद्वारे तस्मिन्नेव महा...

गता सा स्वगृहं पश्चान्निक्षिप्य बालकोत्तमम् ।

एवं निपात्य सूदेन पाचितं मांसमेव हि ॥ ४६ ॥

भोजयित्वा सुदैत्येन्द्रो हुण्डो हृष्टोऽभवत्तदा । शापमशोकसुन्दर्या मोघं मेने तदा...

हर्षेण महताविष्टः सहुण्डो दानवेश्वरः । प्रभाते विमले जाते वसिष्ठो मुनिसत्तमः

बहिर्गतो हि धर्मात्मा कुटीद्वारात्प्रपश्यति ।

सम्पूर्णं बालकं दृष्ट्वा दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ ४९ ॥

सम्पूर्णेन्दुप्रतीकाशं सुन्दरं चारुलोचनम् ॥ ५० ॥

वशिष्ठ उवाच ।

पश्यन्तु मुनयः सर्वे यूयमागत्य बालकम् । कस्य केन समानीतं रात्रौ द्वाराङ्गणे...

देवगन्धर्वगर्भाभं राजलक्षणसंयुतम् । कन्दर्पकोटिसङ्काशं पश्यन्तु मुनयोऽमल...

महाकौतुकसंयुक्ता दृष्ट्वा द्विजवरास्ततः । समं पश्यन्सुतं ते आयोश्चैव महात्मनः

वसिष्ठः स तु धर्मात्मा ज्ञानेनालोक्य बालकम् । आयुपुत्रं समाज्ञातं चरित्रेण सम...

वृत्तान्तं तस्य दुष्टस्य हुण्डस्यापि दुरात्मनः । कृपया ब्रह्मपुत्रस्तु समुत्थाय सुबाल...

कराभ्यामथ गृह्णाति यावद्द्विजवरोत्तमः । तावत्पुष्पसुवृष्टिं च चक्रुर्देवाः सतोषि...

ललितं सुस्वरं गीतं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । ऋषयो वेदमन्त्रैस्तु स्तुवन्ति नृपनन्दन...

वसिष्ठस्तं समालोक्य चरं चौ ... ।

नहुषेत्येव ते नाम ख्यातं लोके भविष्यति ॥ ५८ ॥
दूषितो नैव तेनापि बालभावैर्नराधिप । तस्मान्नहुष ते नाम देवपूज्यो भविष्यसि ॥
जातकर्मादिकं कर्म तस्य चक्रे द्विजोत्तमः । व्रतदानं विसर्गं च गुरुशिष्यादिलक्षणम्
वेदं चाधीत्यसम्पूर्णं षडङ्गं सपदक्रमम् ।
सर्वाण्येव च शास्त्राणि अधीत्य द्विजसत्तमात् ॥ ६१ ॥
वशिष्ठाच्च धनुर्वेदं सरहस्यं महामतिः । शस्त्राण्यस्त्राणि दिव्यानि ग्राहमोक्षयुतानि च
ज्ञानशास्त्रादिकं न्यायराजनीतिगुणादिकान् । वशिष्ठादायुपुत्रश्च शिष्यरूपेण भक्तिमान्
एवं स सर्वनिष्पन्नो नहुषश्चातिसुन्दरः । वशिष्ठस्य प्रसादाच्च चापबाणधरोऽभवत्
इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

राज्ञआयोरिन्दुमत्या सहविलापः ।

कुञ्जल उवाच ।

आयुभार्या महाभागा स्वर्भानोस्तनया सुतम् । अपश्यन्ती सुबालं तं देवोपममनौपमम्
हाहाकारं महत्कृत्वा रुरोद वरवर्णिनी । केन मे लक्षणोपेतो हृतो बालः सुलक्षणः ॥
तपसा दानयज्ञैश्च नियमैर्दुष्करैः सुतः । सम्प्राप्तो हि मया वत्स कष्टैश्च दारुणैः पुनः
दत्तात्रेयेण पुण्येन सन्तुष्टेन महात्मना । दत्तःपुत्रो हृतः केन रुरोद करुणान्विता ॥
हा पुत्र वत्स मे तात हा बाल गुणमन्दिर ! ।
काऽसि केनापनीतोऽसि ममशब्दः प्रदीयताम् ॥ ५ ॥
सोमवंशस्य सर्वस्य भूषणोऽसि न संशयः । केन त्वमपनीतोऽसि ममप्राणैः समन्वितः
राजसुलक्षणैर्दिव्यैः सम्पूर्णः कमलेक्षणः ।

—२३

केनाद्याऽपहृतो वत्सः किं करोमि क्व याम्यहम् ॥ ७ ॥
स्फुटं जानाम्यहं कर्म ह्यन्यजन्मनि यत्कृतम् ।
न्यासनाशः कृतः कस्य तस्मात्पुत्रो हृतो मम ॥ ८ ॥

किं वा छलं कृतं कस्य पूर्वजन्मनि पापया । कर्मणस्तस्य वै दुःखमनुभुञ्जामि नान्यथा
रत्नापहारिणीजाता पुत्ररत्नं हृतं मम । तस्माद्दैवेन मे दिव्य अनौपम्यगुणाकरः॥१०

किं वा वितर्कितो विप्रः कर्मणस्तस्य वै फलम् ।
प्राप्तं मया न सन्देहःपुत्रशोकान्वितं भृशम् ॥ ११ ॥
किं वा शिशुविरोधश्च कृतो जन्मान्तरे मया ।
तस्य पापस्य भुञ्जामि कर्मणः फलमीदृशम् ॥ १२ ॥
याचमानस्य चैवाग्रे वैश्वदेवस्य कर्मणः ।
किंवाऽपि नार्पितं चान्नं व्याहृतीभिर्हुतं द्विजैः ॥ १३ ॥

एवं सुदेवमानाच्च स्वर्भानोस्तनया तदा। इन्दुमती महाभाग शोकेन करुणाकुला

पतिता मूर्च्छिता शोकाद्विह्वलत्वं गता सती ।
निःश्वासान्मुञ्चमाना सा वत्सहीना यथा हि गौः ॥ १५ ॥
आयू राजा स शोकेन दुःखेन महतान्वितः ।
बालं श्रुत्वा हृतं तं तु धैर्यं तत्याज पार्थिवः ॥ १६ ॥
तपसश्च फलं नास्ति नास्ति दानस्य वै फलम् ।
यस्मादेवं हृतः पुत्रस्तस्मान्नास्ति न संशयः ॥ १७ ॥

दत्तात्रेयः प्रसादेन वरं मे दत्तवान्पुरा । अजेयं च जयोपेतं पुत्रं सर्वगुणान्वितम्
तस्य वरप्रदानस्य कथं विघ्नो ह्यजायत । इतिचिन्तापरो राजा दुःखितः प्रारुदद् भृशं

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

नारदनहुषस्यस्थितिकथनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

यासौ नारदः स्वर्गादायुराजानमागतः । आगत्य कथयामास कस्माद्राजन्प्रशोचसे
अपहरणं तेऽद्य क्षेमं जातं महामते । देवादीनां महाराज ! एवं ज्ञात्वा तु मा शुचः
वंशः सगुणो भूत्वा सर्वविज्ञानसंयुतः । सर्वकलाभिसम्पूर्ण आगमिष्यति ते सुतः ॥
वाप्यपहृतस्तेऽद्य बालो देवगुणोपमः । आत्मगेहे महाराज कालो नीतो न संशयः ॥

तस्याप्यन्तं स वै कर्त्ता महावीर्यो महाबलः ।
स त्वामभ्येष्यते भूप शिवस्य सुतया सह ॥ ५ ॥
इन्द्रोपेन्द्रसमःपुत्रो भविष्यति स्वतेजसा ।
इन्द्रत्वं भोक्ष्यते सोऽपि निजैश्च पुण्यकर्मभिः ॥ ६ ॥

माभाष्य राजानमायुं देवर्षिसत्तमः । जगाम सहसा तस्य पश्यतः सानुगस्य ह ॥
ते तस्मिन्महाभागे नारदे देवसंमिते । आयुरागत्य तां राज्ञीं तत्सर्वं विन्यवेदयत् ॥
त्रेयेण यो दत्तः पुत्रो देववरोत्तमः । स वै राज्ञि कुशल्यास्ते विष्णोश्चैव प्रसादतः
वाप्यसौ हृतः पुत्रः सगुणो मे वरानने । शिरस्तस्य गृहीत्वा तु पुनरेवाऽऽगमिष्यति
ाह नारदो भद्रे मा कृथाःशोकमेव च । त्यज चैनं महामोहं कार्यधर्मविनाशनम् ॥
र्वाक्यं निशम्यैवं राज्ञी इन्दुमती ततः । हर्षेणाऽपि समाविष्टा पुत्रस्याऽऽगमनं प्रति
ोक्तं देवऋषिणा तत्तथैव भविष्यति । दत्तात्रेयेण मे दत्तस्तनयो ह्यजरामरः ॥१३॥

भविष्यति न सन्देहः प्रतिभात्येवमेव हि ।
इत्येवं चिन्तयित्वा तु ननाम द्विजपुङ्गवम् ॥ १४ ॥
नमोऽस्तु तस्मै परिसिद्धिदाय अत्रेः सुपुत्राय महात्मने च ।
यस्य प्रसादेन मया सुपुत्रः प्राप्तः सुधीरः सुगुणः सुपुण्यः ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा तु सा देवी विरराम सुहर्षिता । आगमिष्यन्तमाज्ञाय नहुषं तनयं पु
इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
नाहुषाख्याने सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

वसिष्ठद्वाराअशोकसुन्दरीतपोवर्णनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

ब्रह्मपुत्रो महातेजा वसिष्ठस्तपतांवरः । नहुषं तं समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
वनं गच्छस्व शीघ्रेण वन्यमानयपुष्कलम् । समाकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नहुषो वनमाययौ
तत्र किंचित्सुवृत्तान्तं शुश्राव नहुषो बलः ।
अयमेष स धर्मात्मा नहुषो नाम वीर्यवान् ॥ ३ ॥
आयोः पुत्रो महाप्राज्ञो बाल्यान्मात्रा वियोजितः ।
अस्यैवाऽतिवियोगेन आयुभार्या प्ररोदिति ॥ ४ ॥
अशोकसुन्दरी तेपे तपः परमदुष्करम् । कदा पश्यति सा देवी पुत्रमिन्दुमती शु
नहुषं नाम धर्मज्ञं हृतं पूर्वं तु दानवैः । तपस्तेपे निरालम्बा शिवस्य तनया
अशोकसुन्दरी बाला आयुपुत्रस्य कारणात् ।
अनेनापि कदा सा हि सङ्गता तु भविष्यति ॥ ७ ॥
एवं सांसारिकं वाक्यं दिवि चारणभाषितम् ।
शुश्राव स हि धर्मात्मा नहुषो विभ्रमान्वितः ॥ ८ ॥
स गत्वा वन्यमादाय वसिष्ठस्याश्रमं प्रति । वन्यं निवेद्य धर्मात्मा वसिष्ठाय महा
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या नमितकन्धरः । तमुवाच महाप्राज्ञं वसिष्ठं तपतां वर
भगवञ्छ्रूयतां वाक्यमपूर्वं चारणेरितम् । एष वै नहुषो नाम्ना आयुपुत्रो वियो

...ना सह सुदुःखैस्तु इन्दुमत्या हि दानवैः । शिवस्य तनया बाला तपस्तेपे सुदुश्चरम्
...निमित्तमस्य धीरस्य नहुषस्येति वै गुरो । एवमाभाषितं तैस्तु तत्सर्वं हि मया श्रुतम्
कोऽसावायुः स धर्मात्मा का सा त्विन्दुमती शुभा ।
अशोकसुन्दरी का सा नहुषेति क उच्यते ॥ १४ ॥
...मे संशयं जातं तद्भवांश्छेत्तुमर्हति । अन्यः कोऽपि महाप्राज्ञः कुत्राऽसौ नहुषेति च
तत्सर्वं तात मे ब्रूहि कारणान्तरमेव हिं ॥ १६ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

आयू राजा स धर्मात्मा सप्तद्वीपाधिपो बली ।
भार्या इन्दुमती तस्य सत्यरूपा यशस्विनी ॥ १७ ॥
...स्यामुत्पादितः पुत्रो भवान्वै गुणमन्दिरम् । आयुना राजराजेन सोमवंशस्य भूषणम्
...स्य कन्या सुश्रोणी गुणरूपैरलङ्कृता । अशोकसुन्दरी नाम्ना सुभगा चारुहासिनी
...स्यहेतोस्तपस्तेपे निरालम्बा तपोवने । तस्या भर्ता भवान्सृष्टो धात्रा योगेन निश्चितः
गङ्गायास्तीरमाश्रित्य ध्यानयोगसमन्विताम् ।
हुण्डश्चदानवेन्द्रो यो दृष्ट्वा चैकाकिनीं सतीम् ॥ २१ ॥
...सा प्रज्वलन्तीं च सुभगां कमलेक्षणाम् । रूपौदार्यगुणोपेतां कामबाणैः प्रपीडितः
तां बभाषेऽन्तिकं गत्वा मम भार्या भवेति च ।
एवं सा तद्वचः श्रुत्वा तमुवाच तपस्विनी ॥ २३ ॥
...ा हुण्ड साहसं कार्षीर्मा जल्पस्व पुनःपुनः । अप्राप्याऽहं त्वया वीर परभार्या विशेषतः
...वेन मे पुरा सृष्ट आयुपुत्रो महाबलः । नहुषो नाम मेधावी भविष्यति न संशयः ॥
देवदत्तो महातेजा अन्यथा त्वं करिष्यसि ।
ततः शापं प्रदास्यामि येन भस्मीभविष्यसि ॥ २६ ॥
...एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं कामबाणैः प्रपीडितः । व्याजेनापि हृता तेन प्रणीता निजमन्दिरे
...त्वा तया महाभाग शप्तोऽसौ दानवाधमः । नहुषस्यैव हस्तेन तव मृत्युर्भविष्यति
अजाते त्वयि सञ्जाता वदसि त्वं यथैव तत् ।

स त्वमायुसुतो वीर हृतो हुण्डेन पापिना ॥ २६ ॥

सूदेन रक्षितो दास्या प्रेषितो मम चाश्रमम् । भवन्तं वनमध्ये च दृष्ट्वा चारणकि
यत्तु वैश्वाचितं वत्स मया ते कथितं पुनः । जहि तं पापकर्तारं हुण्डाख्यं दानवाधम
नेत्राभ्यां हि प्रमुञ्चन्तीमश्रूणि परिमार्जय । इतो गत्वा प्रपश्य त्वं गङ्गातीरं महाव

निपात्य दानवेन्द्रं तं कारागृहात्समानय ।

अशोकसुन्दरी या हि तस्या भर्ता भवस्व हि ॥ ३३ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रश्नस्यास्य हि कारणम् । आभाष्य नहुषं विप्रो विरराम महाम

आकर्ण्य सर्वं मुनिना प्रयुक्तमाश्चर्यभूतं स हि चिन्त्यमानः ।

तस्यान्तमेकः परिकर्तुकाम आयोः सुतः कोपमथो चकार ॥ ३५ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरि
नाहुषाख्यानेऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ।

———

नवाधिकशततमोऽध्यायः

हुण्डस्य अशोकसुन्दरीपार्श्वेगमनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

प्रणिपत्य प्रसाद्यैव वशिष्ठं तपतां वरम् । आमन्त्र्य निर्जगामाऽथ बाणपाणिर्धनु

एणस्य मांसं सुविपाच्य भोजितं बालस्तया रक्षित एव बुद्ध्या ।

आयोः सुपुत्रः सगुणः सुरूपो देवोपमो देवगुणैश्च युक्तः ॥ २ ॥

तेनैव मांसेन सुसंस्कृतेन मृष्टेन पक्वेन रसानुगेन ।

तमेव दैत्यं परिभाष्य सूदो दुष्टं सुहर्षेण व्यभोजयत्तदा ॥ ३ ॥

बुभुजे दानवो मांसं रसस्वादुसमन्वितम् । हर्षेणापि समाविष्टो जगामाशोकसुन्द
तामुवाच ततस्तूर्णं कामोपहतचेतनः । आयुपुत्रो मया भद्रे भक्षितः पतिरेव ते

मामेव भज चार्वङ्गि भुङ्क्ष्व भोगान्मनोऽनुगान्।
किं करिष्यसि तेन त्वं मानुषेण गतायुषा ॥ ६ ॥
[...]मृत्युवाच समाकर्ण्य शिवकन्या तपस्विनी। भर्ता मे दैवतैर्दत्तो अजरो दोषवर्जितः ॥
[...]स्य मृत्युर्न वै दृष्टो देवैरपि महात्मभिः। एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं दानवो दुष्टचेष्टितः ॥
[...]मुवाच विशालाक्षीं प्रहस्यैव पुनःपुनः। अद्यैव भक्षितं मांसमायुपुत्रस्य सुन्दरि ॥
जातमात्रस्य बालस्य नहुषस्य दुरात्मनः।
एवमाकर्ण्य सा वाक्यं कोपं चक्रे सुदारुणम् ॥ १० ॥
[...]प्रोवाच सत्यसंस्था सा तपसा भाविता पुनः। तप एव मया तप्तं मनसा नियमेन वै
आयुसुतश्चिरायुश्च सत्येनैव भविष्यति ॥ ११ ॥
[...]तो गच्छ दुराचार यदि जीवितुमिच्छसि। अन्यथा त्वामहं शप्स्ये पुनरेव न संशयः
[...]वमाकर्णितं तस्याः सूदेन नृपतिं प्रति। परित्यज्य महाराज एतामन्यां समाश्रय ॥
[...]सूदेन प्रेषितो दैत्यः सहुण्डः पापचेतनः। निर्जगाम त्वरायुक्तः स स्वां भार्यां प्रियां प्रति
[...]र्णितं नैव जानाति दास्या सूदेन यत्कृतम्। तस्यै निवेदितं सर्वं प्रियायै वृत्तमेव च
[...]शोकसुन्दरी सा च महता तपसा किल। दुःखशोकेन सन्तप्ता कृशीभूता तपस्विनी
चिन्तयन्ती प्रियं कान्तं तं ध्यायति पुनःपुनः।
किं न कुर्वन्ति वै दैत्या उपायैर्विविधैरपि ॥ १७ ॥
[...]पायज्ञः सदाबुद्ध्या उद्यमेनाऽपि सर्वदा। वर्तन्ते दनुजश्रेष्ठा नानाभावैश्च सर्वदा ॥
[...]पायोपायेन योगेन हृताऽहं पापिना पुरा। तथा स घातितः पुत्र आयोश्चैव भविष्यति
[...] दृष्ट्वा दैवयोगेन भवितारमनामयम्। उद्यमेनापि पश्येत किं वा नश्यति वा न वा
किं वा स उद्यमः श्रेष्ठः किं वा तत्कर्मजं फलम्।
भाविभावः कथं नश्येत्ततो वेदः प्रतिष्ठति ॥ २१ ॥
[...]विरोपो भावितो देवैः स कथं चान्यथा भवेत्। एवमेवं महाभागा चिन्तयन्ती पुनःपुनः
किन्नरो विद्वरो नाम बृहद्वंशो महातनुः।
सनाम्योऽर्भनरः कामः प्रशस्याः हि विवर्जितः ॥ २३ ॥

द्विभुजो वंशहस्तस्तु हारकङ्कणशोभितः । दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो भार्यया सह चाग
तामुवाच निरानन्दां स सुतां शङ्करस्य हि । किमर्थं चिन्तसे देवि विद्धरं विद्धि चागत
किन्नरं विष्णुभक्तं मां प्रेषितं देवसत्तमैः । दुःखमेवं न कर्तव्यं भवत्या नहुषं प्रति
हुण्डेन पापचारेण वधार्थं तस्य धीमतः । कृतमेवाखिलं कर्म हृतश्चायुसुतः शुभे ॥
स तु वै रक्षितो देवैरुपायैर्विविधैरपि । हुण्ड एवं विजानाति आयुपुत्रो हृतो मया

भक्षितस्तु विशालाक्षी इति जानाति वै शुभे ।
भवतीं श्रावयित्वा हि गतोऽसौ दानवोऽधमः ॥ २६ ॥

स्वेन कर्मविपाकेन पुण्यस्यापि महायशाः । पूर्वजन्मार्जितेनैव तव भर्त्ता स जीवति
पुण्यस्यापि बलेनैव येषामायुर्विनिर्मितम् । स्वार्जितस्यमहाभागेनाशमिच्छन्तिघातक
दुष्टात्मानोमहापापाःपरतेजोविदूषकाः । तेषां येशोविनाशार्थंप्रपश्चन्ति दिनेदिने॥३
नानाविधैरुपायैस्ते विषशास्त्रादिभिस्ततः । हन्तुमिच्छन्ति तं पुण्यं पुण्यकर्माभिरक्षित
पापिनश्चैवहुण्डाद्या मोहनस्तम्भनादिभिः । पीडयन्ति महापापा नानाभेदैर्बलान्वि
सुकृतस्य प्रयोगेण पूर्वजन्मार्जितेन हि । पुण्यस्यापि महाभागे पुण्यवन्तं सुरक्षितम्

वैफल्यं यान्ति तेषां वै उपायाः पापिनां शुभे ।
यन्त्रतन्त्राणि मन्त्राश्च शस्त्राग्निविषबन्धनाः ॥ ३६ ॥
रक्षयन्ति 'महात्मानं देवपुण्यैः सुरक्षितम् ।
कर्तारो भस्मतां यान्ति स वै तिष्ठति पुण्यभाक् ॥ ३७ ॥

आयुपुत्रस्य वीरस्य रक्षका देवताः शुभे । पुण्यस्य सञ्चयं सर्वं तपसां निधिमेव तु
तस्माच्च रक्षितो वीरो नहुषो बलिनां वरः । सत्येन तपसा तेन पुण्यैश्च संयमैर्दमैः

मा कृथा दारुणं दुःखं मुञ्च शोकमकारणम् ।
स हि जीवति धर्मात्मा मात्रा पित्रा विना वने ॥ ४० ॥

तपोवने वसत्येकस्तपस्विपरिपालितः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदस्य पारगः ॥४

यथा शशी विराजेते स्वकलाभिः स्वतेजसा ।
तथा विराजते सोऽपि स्वकलाभिः शुभप्रभे ॥ ४२ ॥

विद्याभिस्तु महापुण्यैस्तपोभिर्यशसा तथा। राजते परवीरघ्नो रिपुहा सुरवल्लभः ॥
हुण्डं निहत्य दैत्येन्द्रं त्वामेवं हि प्रलप्स्यते।
त्वया सार्द्धं स्त्रिया चैव पृथिव्यामेकभूपतिः ॥ ४४ ॥
भविष्यति महायोगी यथा स्वर्गे तु वासवः।
त्वं तस्मात्प्राप्स्यसे भद्रे सुपुत्रं वासवोपमम् ॥ ४५ ॥
ययातिं नाम धर्मज्ञं प्रजापालनतत्परम्। तथा कन्याशतं चापि रूपौदार्यगुणान्वितम् ॥
तासां पुण्यैर्महाराज इन्द्रलोकं प्रयास्यति। इन्द्रत्वं भोक्ष्यते देवि नहुषः पुण्यविक्रमः
ययातिर्नाम धर्मात्मा आत्मजस्ते भविष्यति। प्रजापालो महाराजः सर्वजीवदयापरः
तस्यपुत्रास्तु चत्वारो भविष्यन्ति महौजसः। बलवीर्यसमोपेता धनुर्वेदस्य पारगाः ॥
प्रथमश्च तुरुर्नाम पुरुर्नाम द्वितीयकः। उरुर्नाम तृतीयश्च चतुर्थो वीर्यवान्यदुः ॥५०॥
एवं पुत्रा महावीर्यास्तेजस्विनो महाबलाः।
भविष्यन्ति महात्मानः सर्वतेजः समन्विताः ॥ ५१ ॥
यदोश्चैव सुता वीराः सिंहतुल्यपराक्रमाः। तेषां नामानि भद्रं ते गदतः शृणु साम्प्रतम्
भोजश्च भीमकश्चापि अन्धकेः कुञ्जरस्तथा।
वृष्णिर्नाम सुधर्मात्मा सत्याधारो भविष्यति ॥ ५३ ॥
...स्तु श्रुतसेनश्च श्रुताधारस्तु सप्तमः। कालदंष्ट्रो महावीर्यः समरे कालजिद्बली॥५४॥
यदोः पुत्रा महावीर्या यादवाख्या वरानने।
तेषां तु पुत्राः पौत्रास्ते भविष्यन्ति सहस्रशः ॥५५॥
...ं नहुषवंशो वै तव देवि भविष्यति। दुःखमेव परित्यज्य सुखेनाऽनुप्रवर्तय ॥५६॥
...ष्यति महाप्राज्ञस्तव भर्ता शुभानने। निहत्य दानवं हुण्डं त्वामेवं परिणेष्यति ॥
दुःखजातानि सोष्णानि नेत्राभ्यां हि पतन्ति च।
अश्रूणि चेन्दुमत्याश्च संमार्जयति मानदः ॥ ५८ ॥
आयोश्च दुःखमुद्धृत्य स्वकुलं तारयिष्यति।
सुखिनं पितरं कृत्वा प्रजापालो भविष्यति ॥ ५९ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं देवानां कथनं शुभे। दुःखं शोकं परित्यज्य सुखेन परिवर्त्तय॥ [illegible]

अशोकसुन्दर्युवाच।

कदा ह्येष्यति मे भर्त्ता विहितो दैवतैर्यदि। सत्यं वदस्व धर्मज्ञ मम सौख्यं विवर्द्धय [illegible]

विद्दुर उवाच।

आचिराद्द्रक्ष्यसि भर्तारं त्वमेवं शृणु सुन्दरि।
एवमुक्त्वा जगामाऽथ गन्धर्वो विबुधालयम्॥ ६२॥
अशोकसुन्दरी सा च तपस्तेपे हि तत्र वै।
कामं क्रोधं परित्यज्य लोभं चापि शिवात्मजा॥ ६३॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे नाहुषाख्या[illegible]
नवाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

नहुषस्यहुण्डवधार्थयुद्धायगमनम्।

कुञ्जल उवाच।

आमन्त्र्य समुनीन्सर्वान्वसिष्ठं तपतां वरम्। समुत्सुको गन्तुकामो नहुषो दानवं प्र[illegible]
ततस्ते मुनयः सर्वे वसिष्ठाद्यास्तपोधनाः। आशीर्भिरनन्द्यैनमायुपुत्रं महाबलम्॥ [illegible]
आकाशे देवताः सर्वा जघ्नुर्वै दुन्दुभीन्मुदा। पुष्पवृष्टिं प्रचक्रुस्ते नहुषस्य च मू[illegible]

अथ देवः सहस्राक्षः सुरैः सार्द्धं समागतः।
ददौ शस्त्राणि चास्त्राणि सूर्यतेजोपमानि च॥ ४॥
देवेभ्यो नृपशार्दूलो जगृहे द्विजसत्तम।
तानि दिव्यानि चास्त्राणि दिव्यरूपोपमोऽभवत्॥ ५॥

अथ ता देवताः सर्वाः [illegible] नहुषाय सु[illegible]

देवानां मतमाज्ञाय वज्रपाणिः स्वसारथिम् । आहूय मातलिं तं तु आदिदेश ततो द्विज
एतं गच्छ महात्मानमुद्यतां स्यन्दनेन वै । सध्वजेन महाप्राज्ञमायुजं समरोद्यतम् ॥
सवोवाच सहस्राक्षं करिष्ये तव शासनम् । एवमुक्त्वा जगामाशु ह्यायुपुत्रं रणोद्यतम्
राजानं प्रत्युवाचैवं देवराजस्य भाषितम् । विजयी भव धर्मज्ञ रथेनाऽनेन सङ्गरे॥१०॥
इत्युवाच सहस्राक्षस्त्वामेव नृपतीश्वर । जहि त्वं दानवं सङ्ख्ये तं हुण्डं पापचेतनम्
समाकर्ण्य स राजेन्द्रः सानन्दपुलकोद्गमः । प्रसादाद्देवदेवस्य वशिष्ठस्य महात्मनः ॥
दानवं सूदयिष्यामि समरे पापचेतनम् । देवानां च विशेषेण मम मायापचारितम् ॥
एवमुक्ते महावाक्ये नहुषेण महात्मना । अथाऽऽयातः स्वयं देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

चक्राच्चक्रं समुत्पाट्य सूर्य्यबिम्बोपमं महत् ।
ज्वलता तेजसा दीप्तं सुवृत्तारं शुभावहम् ॥ १५ ॥

नहुषाय ददौ देवो हर्षेण महताकिल । तस्मै शूलं ददौ शम्भुः सुतीक्ष्णं तेजसाऽन्वितम्
तेन शूलवरेणासौ शोभते समरोद्यतः । द्वितीयः शङ्करश्चासौ त्रिपुरघ्नो यथा प्रभुः ॥
ब्रह्मास्त्रं दत्तवान्ब्रह्मा वरुणः पाशमुत्तमम् । चन्द्रतेजः प्रतीकाशं शङ्खं च नादमङ्गलम्॥
वज्रमिन्द्रस्तथा शक्तिं वायुश्चापं समार्गणम् । आग्नेयास्त्रं तथा वह्निर्ददौ तस्मै महात्मने

शस्त्राण्यस्त्राणि दिव्यानि बहूनि विविधानि च ।
ददुर्देवा महात्मानस्तस्मै राज्ञे महौजसे ॥ २० ॥

अथ आयुसुतो वीरो दैवतैः परिमानितः । आशीर्भिर्नन्दितश्चापि मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः
आरुरोह रथं दिव्यं भास्वरं रत्नमालिनम् । घण्टारवैः प्रणदन्तं क्षुद्रघण्टासमाकुलम्
रथेन तेन दिव्येन शुशुभे नृपनन्दनः । दिवि मार्गे यथा सूर्यस्तेजसा स्वेन वै किल ॥
तपंस्तेजसा तद्वद्दैत्यानां मस्तकेषु सः । जगाम शीघ्रं वेगेन यथा वायुः सदागतिः
यत्रासौ दानवः पापस्तिष्ठते स्वबलैर्युतः । तेन मातलिना सार्द्धं वाहकेन महात्मना ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
नहुषाख्याने दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

युद्धोद्यतायनहुषायदेवस्त्रीभिर्मानप्रदानम्

कुञ्जल उवाच ।

निर्गच्छमाने समराय वीरे नहुषे हि तस्मिन्सुरराजतुल्ये ।
सकौतुकामङ्गलगीययुक्ताः स्त्रियस्तु सर्वाः परिजग्मुरत्र ॥ १ ॥
देवतानां वरा नार्यो रम्भाद्यप्सरसस्तथा । किन्नर्यः कौतुकोत्सुक्यो जगुःस्वरेणसत्
गन्धर्वाणां तथा नार्यो रूपालङ्कारसंयुताः । कौतुकायगतास्तत्र यत्र राजा स तिष्ठ
पुरं महोदयं नाम हुण्डस्यापि दुरात्मनः । नन्दनोपवनैर्दिव्यैः सर्वत्र समलङ्कृतम् ॥
सप्तकक्षान्वितैर्गेहैः कलशैरुपशोभितम् । सपताकैर्महादण्डैः शोभमानं पुरोत्तमम् ॥
कैलासशिखराकारैः सोन्नतैर्दिवमास्थितैः । सर्वश्रियान्वितैर्दिव्यैर्भ्राजमानं पुरोत्तम
वनैश्चोपवनैर्दिव्यैस्तडागैः सागरोपमैः । जलपूर्णैः सुशोभैस्तु पद्मै रक्तोत्पलान्वितैः
प्राकारैश्च महारत्नैरट्टालकशतैरपि । परिखाभिः सुपूर्णाभिर्जलैः स्वच्छैः प्रशोभि
अन्यैश्चैव महारत्नैर्गजाश्वैश्च विराजितम् । सुनारीभिः समाकीर्णं पुरुषैश्च महाप्रभैः
नानाप्रभावैर्दिव्यैश्च शोभमानं महोदयम् । राजश्रेष्ठो महावीरो नहुषो ददृशे पुर
पुरप्रान्ते वनं दिव्यं दिव्यवृक्षैरलङ्कृतम् । तद्विवेश महावीरो नन्दनं हि यथाऽमर
रथेन सह धर्मात्मा तेन मातलिना सह । प्रविष्टः स तु राजेन्द्रो वनमध्ये सरित्
तत्र ता रूपसंयुक्ता दिव्या नार्यः समागताः । गन्धर्वागीततत्त्वज्ञा जगुर्गीतैर्नृपोत्त
सूताश्च मागधाः सर्वे तं स्तुवन्ति नृपोत्तमम् । राजानमायुपुत्रं तं भ्राजमानं यथा र
शुश्राव गीतमधुरं नहुषः किन्निरेरितम् ॥ १५ ॥

इतिश्री पाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरि
नहुषाख्याने एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

अशोकसुन्दर्यानहुषंदृष्ट्वाप्रेमाकुलता ।

कुञ्जल उवाच ।

तदेव गानं च सुराङ्गनाभिर्गीतं समाकर्ण्य च गीतकैर्ध्रुवैः ।
समाकुला चापि बभूव तत्र सा शम्भुपुत्री परिचिन्तमाना ॥ १ ॥
आसनात्तूर्णमुत्थाय महोत्साहेन संयुता । तूर्णं गता वरारोहा तपोभावसमन्विता ॥
तं दृष्ट्वा देवसङ्काशं दिव्यरूपसमप्रभम् ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यमालाभिशोभितम् ॥ ३ ॥
दिव्यैराभरणैर्वस्त्रैः शोभितं नृपनन्दनम् । दीप्तिमन्तं यथासूर्यं दिव्यलक्षणसंयुतम्
किं वा देवो महाप्राज्ञो गन्धर्वो वा भविष्यति ।
किं वा नागसुतः सोऽयं किं वा विद्याधरो भवेत् ॥ ५ ॥
देवेषु नैव पश्यामि कुतो यक्षेषु जायते । अनया लीलया वीरः सहस्राक्षोऽपि जायते
शम्भुरेष भवेत्किं वा किं वा चायं मनोभवः ।
किं वा पितुः सखा मे स्यात्पौलस्त्योऽयं धनाधिपः ॥ ७ ॥
एवं समाचिन्तयती च यावत्तावत्त्वरं रूपगुणाधिपासा ।
समेत्य रम्भा सुमहासखीभिरुवाच तां शम्भुसुतां प्रहस्य ॥ ८ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे
नहुषाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

रम्भायाःप्रश्नकरणम् ।

रम्भोवाच ।

तपएतत्परित्यज्य किं वाऽऽलोकयसे शुभे। तपसः क्षरणं स्याद्वै पुरुषस्यापि चिन्तना

अशोकसुन्दर्युवाच ।

तपसि मे मनो लीनं नहुषस्यापि काम्यया ।
न मां चालयितुं शक्ता देवासुरमहोरगाः ॥ २ ॥
एनं दृष्ट्वा महाभागे मे मनश्चलते भृशम् ।
रन्तुमिच्छाम्यहं गत्वा एवमुत्सुकतां गतम् ॥ ३ ॥

एवं विपर्ययश्चासीन्मनसो मे वरानने । तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि यद्यस्ति ज्ञानमुत्तमम्
आयुपुत्रस्य भार्याऽहं देवैः सृष्टा महात्मभिः। कस्मान्मे धावते चेत उत्सुकं रन्तुमेव

रम्भोवाच ।

सर्वेष्वेव महाभागे देहरूपेषु भामिनि । वसत्यात्मा स्वयं ब्रह्म ज्ञानरूपः सनातनः
यद्यपि प्रक्रियावद्धैरिन्द्रियैरुपकारिभिः । मोहपाशमयैर्वद्धस्तथा सिद्धस्तु सर्वदा

प्रकृतिं नैव जानाति ज्ञानविज्ञानकीं कलाम् ।
अयं शुद्धश्च धर्मज्ञ आत्मा वेत्ति च सुन्दरि ॥ ८ ॥

गच्छन्त्यपि मनस्तापमेनं दृष्ट्वा महामतिम् । पापमेवं परित्यज्य सत्यमेवं प्रधाव
भर्तायमायुपुत्रस्ते एतत्सत्यं न संशयः । अन्यं दृष्ट्वा विशङ्केत पुरुषं पापलक्षणम्

एवं विधिः कृतो देवैः सत्यपाशेन बन्धितः ।
यदस्या आयुपुत्रोऽपि भर्तृत्वमुपयास्यति ॥ ११ ॥
एकमाकर्णितं भद्रे आत्मना तं च सुन्दरि ।
तद्भावसत्यसम्बन्धं परिगृह्य स्थितः स्वयम् ॥ १२ ॥

...त्यं भावं न जानाति आयुपुत्रंच विन्दति। प्रकृतिर्नैव ते देवि पतिं जानाति चागतम्
एवं ज्ञात्वा प्रधानाऽऽत्मा तवाद्यैव प्रधावति।
आत्मा सर्वं प्रजानाति आत्मा देवः सनातनः ॥ १४
अयमेष स वीरेन्द्रो नहुषो नाम वीर्यवान्।
तस्माद्गच्छति चेतस्ते सत्यं सम्बन्धमिच्छते ॥ १५ ॥
ज्ञात्वा चायोः सुतं भद्रे अन्यं चैव न गच्छति।
एतत्ते सर्वमाख्यातं शाश्वतं त्वन्मनोगतम् ॥ १६ ॥
...ण्डं हत्वा महाघोरं समरे दानवाधमम्। त्वां नयिष्यति स्वस्थानमायोश्च गृहमुत्तमम्
...तो दैत्येन वीरेन्द्रो निजपुण्येन शोषितः। बाल्यात्प्रभृति वीरेन्द्रो वियुक्तः स्वजनेन वै
...तृमातृविहीनस्तु गतो वृद्धिं महावने। यास्यत्येव पितुर्गेहं त्वयैव सह साम्प्रतम् ॥
एवमाभाषितं श्रुत्वा रम्भायाः शिवनन्दिनी।
हर्षेण महताऽऽविष्टा तामुवाच समुद्रजाम् ॥ २० ॥
अयमेव स सत्यात्मा मम भर्ता सुवीर्यवान्।
मनो मे धावते ऽत्यर्थं शोकाकुलितविह्वलम् ॥ २१ ॥
नास्ति चित्तसमो देवो जानाति सुविनिश्चितम्।
सत्यमेतन्मया दृष्टं सुचित्रं चारुहासिनी ॥ २२ ॥
...मोभवसमानं तु पुरुषं दिव्यलक्षणम्। न धावति महाचेत एनं दृष्ट्वा यथा सखि॥
...था न धावते भद्रे पुंसमन्यं न मन्यते। एनं गन्तव्यमावाभ्यां सखीभिर्गृहमेव हि ॥
...मेवमाभाष्य सा रम्भा गमनायोपचक्रमे। गमनायोत्सुकां ज्ञात्वा नहुषस्यान्तिकं प्रति
तामुवाच ततो रम्भा कस्माद्देवि न गम्यते ॥ २६ ॥

कुञ्जल उवाच।

सख्या च रम्भया सार्द्धं नहुषं वीरलक्षणम्।
तस्यान्तिकं सुसम्प्राप्य प्रेषयामास तां सखीम् ॥ २७ ॥
...ं गच्छ महाभागे नहुषं देवरूपिणम्। कथयस्व कथामेतां तवार्थे आगता यतः ॥

रम्भोवाच ।

एवं सखि करिष्यामि सुप्रियं तव सुव्रते । एवमुक्त्वा गता रम्भा नहुषं राजनन्द
चापबाणधरं वीरं द्वितीयमिव वासवम् । प्रत्युवाच गता रम्भा सख्यावचनमुत्तमम्
आयुपुत्र! महाभाग ! रम्भाऽहं समुपागता । शिवस्य कन्यया वीर तयाहं परिप्रे
तवार्थं देवदेवेन देव्या देवेन वैपुरा । भार्यारूपं वरं श्रेष्ठं सृष्टं लोकेषु दुर्लभम्
दुष्प्राप्यं तु नरश्रेष्ठैर्देवैस्सेन्द्रैस्तपोधनैः । गन्धर्वैः पन्नगैः सिद्धैश्चारणैः पुण्यलक्षणै

स्वयमेव समायातं तवार्थे शृणु साम्प्रतम् ।
स्त्रीरत्नं तन्महाप्राज्ञ सम्पूर्णं पुण्यनिर्मितम् ॥ ३४ ॥

अशोकसुन्दरीनाम तवार्थं तपसि स्थिता । अत्यर्थं तु तपस्तप्तं भवन्तमिच्छते
एवं ज्ञात्वा महाभाग भजमानां भजस्व हि । त्वामृते सा वरारोहा पुरुषं नैव या
नहुषेण तयोक्तं तु श्रुत्वाऽवधारितं वचः । प्रत्युत्तरं ददौ चाथ रम्भे मे श्रूयतां
तत्तु सर्वं विजानामि यत्त्वयोक्तं ममाग्रतः । ममाग्रे कथितं पूर्वं वसिष्ठेन महात्मन

सर्वमेव विजानामि अस्यास्तु तप उत्तमम् ।
श्रूयतां कारणं भद्रे यथा सौख्यं भविष्यति ॥ ३९ ॥

अहत्वा दानवं हुण्डं न गच्छामि वराङ्गनाम् । सर्वमेतत्सुवृत्तान्तमहं जाने तथैव
ममार्थे तवसम्भूतिस्तपश्च चरितं त्वया । मम भार्या न सन्देहो भवती विधिना

ममार्थे निश्चयं कृत्वा तप आचरितं त्वया ।
हृता तस्मात्सुपापेन भवती नियमान्विता ॥ ४२ ॥

सूतिगृहादहं तेन दानवेनाऽधमेन वै । बालभावस्थितो देवि पितृमातृविना कृतः
तस्मात्तं तु हनिष्यामि हुण्डं वै दानवाधमम् । पश्चात्त्वामुपनेष्येऽहं वशिष्ठस्याश्रमं
एवं कथय भद्रं ते रम्भे मत्प्रियकारिणीम् । एवं विसर्जिता तेन सत्वरं सा गता
अशोकसुन्दरीं देवीं कथयामास तस्य च । समासेन तथा सर्वं रम्भा सा द्विज
अशोकसुन्दरी सा तु अवधार्य सुभाषितम् । नहुषस्य सुवीरस्य हर्षेण च समन्वि

तस्थौ तत्र तया सार्द्धं सुसख्या रम्भया तदा ।

भर्तुश्च कीदृशं वीर्यमिति पश्यामि वै सदा ॥ ४८ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणेद्वितीयेभूमिखण्डे वेनोपाख्यानेगुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

हुण्डदूतस्यनहुषेणवार्तालापः ।

कुञ्जल उवाच ।

अथ ते दानवाः सर्वे हुण्डस्य परिचारकाः । नहुषस्यापि संवादं रम्भया तु यथाश्रुतम्

आचचक्षुश्च दैत्येन्द्रं हुण्डं सर्वं सुभाषितम् ।
तमाकर्ण्य स चुक्रोध दूतं वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ २ ॥

गच्छ वीर ममादेशाज्जानीहि पुरुषं हि तम् । सम्भाषते तया सार्द्धं पुरुषः शिवकन्यया
स्वामिनिर्देशमाकर्ण्य जगाम लघुदानवः । विविक्ते नहुषं वीरमिदं वचनमब्रवीत् ॥४॥
रथेन साश्वसूतेन दिव्येन परितिष्ठसि । धनुषा दिव्यबाणैस्तु सभायां हि भयङ्करः ॥

कस्य केन तु कार्येण प्रेषितः केन वै भवान् ।
अनया रम्भया तेऽद्य अन्यया शिवकन्यया ॥ ६ ॥
किमुक्तं तत्स्फुटं सर्वं कथयस्व ममाऽग्रतः ।
हुण्डस्य देवमर्दस्य न बिभेति भवान्कथम् ॥ ७ ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यदि जीवितुमिच्छसि । सत्वरं गच्छ मा तिष्ठ दुःसहो दानवाधिपः

नहुष उवाच ।

योऽसावायुर्बली राजा सप्तद्वीपाधिपः प्रभुः ।
तस्य मां तनयं विद्धि सर्वदैत्यविनाशनम् ॥ ९ ॥

नहुषं नाम विख्यातं देवब्राह्मणपूजकम् । हुण्डेनापहृतं बाल्ये स्वामिना तव दानव ! ॥

सेयं कन्या शिवस्यापि दैत्येनापहृता पुरा । घोरं तपश्चरत्येषा हुण्डस्यापि वधाय च
योऽहमादौ हृतो बालस्त्वया यः सूतिका गृहात् ।
दास्या अपि करे दत्तः सूदस्यापि दुरात्मना ॥ १२ ॥
वधार्थं श्रूयतां पाप सोऽहमद्य समागतः । अस्यापि हुण्डदैत्यस्य दुष्टस्य पापकर्मण
अन्यांश्च दानवान्घोरान्नयिष्ये यमसादनम् । मामेवंविद्धि पापिष्ठ ! एवं कथयदानव
एवमाकर्ण्य तत्सर्वं नहुषस्यमहात्मनः । गत्वा हुण्डंस दुष्टात्मा आचचक्षेऽस्यभाषित
निशम्य तन्मुखात्तूर्णं चुक्रोध दितिजेश्वरः ।
कस्मात्सूदेन पापेन यदा दास्या न घातितः ॥ १६ ॥
सोऽयं वृद्धिं समायातो मया व्याधिरुपेक्षितः ।
अथैनं घातयिष्यामि अनया शिवकन्यया ॥ १७ ॥
आयोः पुत्रं खलं युद्धे वाणैरेभिः शिलाशितैः ।
एवं सचिन्तयित्वा तु सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
स्यन्दनं योजयस्व त्वं तुरगैः साधुभिः शिवैः । सेनाध्यक्षं समाहूय इत्युवाचसमातु
सज्जतां मम सैन्यं त्वं शूरान्नागान्प्रकल्पय । सारोहैस्तुरगान्योधान्पताकाच्छत्रचाम
चतुरङ्गबलं मेऽद्य योजयस्व हि सत्वरम् । एवमाकर्ण्य तत्तस्य हुण्डस्यापि ततो ल
सेनाध्यक्षो महाप्राज्ञः सर्वं चक्रे यथाविधि । चतुरङ्गेन तेनाऽसौ बलेन महताऽऽवृ
जगाम नहुषं वीरं चापबाणधरं रणे । इन्द्रस्य स्यन्दने युक्तं सर्वशस्त्रभृतां वरम्
उद्यन्तं समरे वीरं दुरापं देवदानवैः । पश्यन्ति गगने देवा विमानस्था महौजसः
तेजोज्वालासमाकीर्णं द्वितीयमिव भास्करम् ।
अथ ते दानवाः सर्वे ववृषुस्तं शरोत्तमैः ॥ २५ ॥
खड्गैः पाशैर्महाशूलैःशक्तिभिस्तु परश्वधैः । युयुधुः संयुगे तेन नहुषेण महात्मना
संरब्धा गर्जमानास्ते यथा मेघा गिरौ तथा । तद्विक्रमं समालोक्य आयुपुत्रः प्रतापव
इन्द्रायुधसमं चापं विस्फार्य सगुणस्वरम् । वज्रस्फोटसमः शब्दश्चापस्यापि महात्म
नहुषेण कृतो विप्रा दानवानां भयप्रदः । महता तेन घोषेण दानवाः प्रचकम्पिरे॥ २

कश्मलाविष्टहृदया भग्नसत्वा महाहवे ॥ ३० ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

युद्धोद्यतयोर्हुण्डनहुषयोःसंल्लापः ।

कुञ्जल उवाच ।

ततस्त्वसौ संयति राजमानः समुद्यतश्चापधरो महात्मा ।
यथैव काल: कुपितः सलोकान्संहर्तुमैच्छत्तु तथा सुदानवान् ॥ १ ॥
महास्त्रजालै रवितेजतुल्यैः सुदीप्तिमद्भिर्निजघान दानवान् ।
वायुर्यथोन्मूलयतीह पादपांस्तथैव राजा निजघान दानवान् ॥ २ ॥
वायुर्यथा मेघचयं च दिव्यं सञ्चालयेत्स्वेन बलेन तेजसा ।
तथा स राजा असुरान्मदोत्कटाननाशयद्बाणवरैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३ ॥
न शेकुर्दानवाः सर्वे बाणवर्षं महात्मनः ।
मृताः केचिद्द्रुताः केचित्केचिन्नष्टा महाहवात् ॥ ४ ॥
महातेजं महाप्राज्ञं महादानवनाशनम् । चुक्रोध हुण्डो दुष्टात्मा दृष्ट्वा तं नृपनन्दनम्
स्थितो गत्वेदमाभाष्य तिष्ठ तिष्ठेति चाहवे ।
त्वामद्य च नयिष्यामि आयुपुत्र ! यमान्तिकम् ॥ ६ ॥

नहुष उवाच ।

स्थितोऽस्मि समरे पश्य त्वामहं हन्तुमागतः ।
अहं त्वां तु हनिष्यामि दानवं पापचेतनम् ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा धनुरादाय बाणानाग्निशिखोपमान् ।

छत्रेण ध्रियमाणेन शुशुभे सोऽपि संयुगे ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य सारथिं दिव्यं मातलिं वाक्यमब्रवीत् ।
वाहयतु रथं मेऽद्य हुण्डस्य संमुखं भवान् ॥ ६ ॥
इत्युक्तस्तेन वीरेण मातलिर्लघुविक्रमः । तुरङ्गांश्चोदयामास महावातजवोपमान्
उत्पेतुश्च ततो वाहा हंसा इव यथाम्बरे । छत्रेण इन्दुवर्णेन रथेनाऽपि पताकिना॥११॥
नभस्तलं तु सम्प्राप्य यथा सूर्यो विराजते । आयुपुत्रस्तथा सङ्ख्ये तेजसा विक्रमेण
अथ हुण्डो रथस्थोऽपि राजमानः स्वतेजसा ।
सर्वायुधैश्च संयुक्तस्तद्वद्वीरव्रते स्थितः ॥ १३ ॥
उभयोर्वीरयोर्युद्धं देवविस्मयकारकम् । तदा आसीन्महाप्राज्ञ दारुणं भीतिदायकम्
सुवाणैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलीमुखैः । हुण्डेन ताडितो राजा सुवाह्वोरन्तरे
सुभाले पञ्चभिर्बाणैर्विद्धः क्रुद्धोऽभवत्तदा । स विद्धस्तु तदाबाणैरधिकं शुशुभे नृप
सारुणः करमालाभिरुदयश्च दिवाकरः । रुधिरेण तु दिग्धाङ्गो हेमबाणैस्तनुस्थितैः
सूर्यवच्छोभते राजा पूर्वकालस्य चाम्बरे ।
दृष्ट्वा तु पौरुषं तस्य दानवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षणं दैत्य पश्य मे लाघवं पुनः । इत्युक्त्वा तु रणे दैत्यं जघान दशभिः
मुखे भाले हतस्तेन मूर्च्छितो निपपात ह । पश्यमानैः सुरैर्दिव्यै रथोपरि महाबलः
देवैश्चचारणैः सिद्धैः कृतः शब्दः सुहर्षजः । जयजयेति राजेन्द्र ! शङ्खान्दध्मुः पुनः पुनः
सकोलाहलशब्दस्तु तुमलो देवतेरितः । कर्णरन्ध्रमाविवेश हुण्डस्य मूर्छितस्य च
श्रुत्वा स धनुरादाय बाणमाशीविषोपमम् ।
स्थीयतां स्थीयतां युद्धे न मृतोऽस्मि त्वया हतः ॥ २३ ॥
इत्युक्त्वा पुनरुत्थाय लाघवेन समन्वितः । एकविंशतिभिर्बाणैर्नहुषं चाऽहनत्पुनः
एकेन मुष्टिमध्ये तु चतुर्भिर्बाहुमध्यतः । चतुर्भिश्च महाश्वांश्च छत्रमेकेन तेन वै ॥२
पञ्चभिर्मातलिं विद्ध्वा रथनीडं तु सप्तभिः ।
ध्वजदण्डं त्रिभिस्तीक्ष्णैर्दानवः शिखिपत्रिभिः ॥ २६ ॥

आदानं तु निदानन्तुलक्ष्मोक्षं दुरात्मनः।
लाघवं तस्य स (ते) दृष्ट्वा देवता विस्मयं गताः॥ २७॥
तस्य पौरुषमापश्य स राजा दानवोत्तमम्।
शूरोऽसि कृतविज्ञोऽसि धीरोऽसि रणपण्डितः॥ २८॥
इत्युक्त्वा दानवं तं तु धनुर्विस्फार्य भूपतिः।
मार्गणैर्दशभिस्तं तु विव्याध लघुविक्रमः॥ २९॥
...भिर्ध्वजं प्रचिच्छेद स पपात धरातले। तुरगान्पातयामास चतुर्भिस्तस्य सायकैः॥
...केन छत्रं तस्यापि चकर्त लघुविक्रमः। दशभिः सारथिस्तस्य प्रेषितो यममन्दिरम्
...नं दशभिश्छित्त्वा शरैश्च विदलीकृतः। सर्वाङ्गेषु च त्रिंशद्भिर्विव्याध दनुजेश्वरम्॥
...श्वो विरथो जातो बाणपाणिर्धनुर्धरः। अभ्यधावत्स वेगेन वर्षयन्निशितैः शरैः॥
...ड्ग चर्मधरो दैत्यो राजानं तमधावत। धावमानस्य हुण्डस्य खड्गं चिच्छेद भूपतिः॥
क्षुरप्रैर्निशितैर्बाणैश्चर्म चिच्छेद भूपतिः।
अथ हुण्डः स दुष्टात्मा समालोक्य समन्ततः॥ ३५॥
...ग्राह मुद्गरं तूर्णं मुमोच लघुविक्रमः। वज्रवेगं समायान्तं ददृशे नृपतिस्तदा॥३६॥
...द्गरं स्वनवन्तं चापातयदम्बरात्ततः। दशभिर्निशितैर्बाणैः क्षुरप्रैश्च स्वविक्रमात्॥
...द्गरं पतितं दृष्ट्वा दशखण्डमयं भुवि। गदामुद्यम्य वेगेन राजानमभ्यधावत॥३८॥
...ड्गेन तीक्ष्णधारेण तस्य बाहुं विचिच्छिदे। सगदं पतितं भूमौ साङ्गदं कटकान्वितम्
...हारावं ततः कृत्वा वज्रस्फोटसमं तदा। रुधिरेणापि दिग्धाङ्गो धावमानो महाहवे
क्रोधेन महताऽऽविष्टो ग्रस्तुमिच्छति भूपतिम्।
दुर्निवार्यः समायातः पार्श्वं तस्य च भूपते॥ ४१॥
...हुषेण महाशक्त्या ताडितो हृदि दानवः। पतितः सहसा भूमौ वज्राहत इवाचलः॥
...स्मिन्दैत्ये गते भूमावितरैदानवा गताः। विविशुः कति दुर्गेषु कति पातालमाश्रिताः
...ताः प्रहर्षमाजग्मुर्गन्धर्वाः सिद्धचारणाः। हते तस्मिन्महापापे नहुषेण महात्मना।
तस्मिन्हते दैत्यवरे महाहवे देवाश्च सर्वे प्रमुदं प्रलेभिरे।

तां देवरूपां तपसा प्रवर्द्धितां स आयुपुत्रः प्रतिलभ्य हर्षितः ॥ ४५ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

———

षोड़शाधिकशततमोऽध्यायः

अशोकसुन्दर्या मेनकया सह नहुषदर्शनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

अशोकसुन्दरी पुण्या रम्भया सह हर्षिता ।
नहुषं प्राप्य विक्रान्तं तमुवाच तपस्विनी ॥ १ ॥

अहं ते धर्मतः पत्नी देवैर्दिष्टा तपस्विनी । उद्वाहयस्व मां वीर यदि धर्ममिहेच्छसि

सदैव चिन्त्यमाना च त्वामहं तपसि स्थिता । भवान्धर्मप्रसादेन मया प्राप्तो नृपोत्त

नहुष उवाच ।

मदर्थे नियता भद्रे यदि त्वं तपसि स्थिता । गुरोर्वाक्यान्मुहूर्तेन तव भर्ता भवाम्यह

अनया रम्भया सार्द्धमावां गच्छाव भामिनि ।
समारोप्य रथे तां तु तां रम्भां तु मनोरमाम् ॥ ५ ॥

तेनैव रथवर्येण वसिष्ठस्याश्रमं प्रति । जगाम लघुवेगेन ताभ्यां सह महायशाः ॥ ६

तमाश्रमगतं विप्रं समालोक्य प्रणम्य च । तया सार्द्धं महातेजा हर्षेण महताऽन्वित

यथा युद्धं रणे जातं निहतो दानवाधमः । निवेदयामास सर्वं वसिष्ठाय महात्मने

वसिष्ठोऽपि समाकर्ण्य नहुषस्य विचेष्टितम् ।
हर्षेण महताऽऽविष्ट आशीर्भिरभिनन्द्य तम् ॥ ९ ॥

तिथौ लग्ने शुभे प्राप्ते तयोस्तु मुनिपुङ्गवः ।
विवाहं कारयामास अग्निब्राह्मणसन्निधौ ॥ १० ॥

आशीर्भिरभिनन्द्यैव मिथुनं प्रेषितं पुनः। मातरं पितरं पश्य द्रुतं गत्वा महामते ॥११॥

त्वां च दृष्ट्वा हि ते माता पिताऽसौ तव सुव्रत !।
हर्षेण वृद्धिमाप्नोतु पर्वणीव तु सागरः ॥ १० ॥

एवं सम्प्रेषितो वीरो मुनिना ब्रह्मसूनुना। तेनैव रथवर्येण जगाम लघुविक्रमः ॥ १३ ॥

नमस्कृत्य द्विजेन्द्रं तं गतो मातलिना तदा। स्वपुरं पितरं द्रष्टुं तथैव च स्वमातरम्

अप्सरा मेनका नाम प्रेषिता दैवतैस्ततः। आयोर्भार्या सुदुःखेन पतिता शोकसागरे

तामुवाच महाभागां देवीमिन्दुमतीं प्रति। मुञ्च शोकं महाभागे तनयं पश्य सत्सुषम्

निहत्य दानवं पापं तव पुत्रापहारकम्। समायान्तं सभार्यां च वीर! श्रिया समन्वितम्

वृत्तं सङ्गरे तस्य नहुषेण यथा कृतम्। तस्यै निवेदयामास इन्दुमत्यै च मेनका ॥

मेनकाया वचः श्रुत्वा हर्षेण महताऽन्विता।
सखि सत्यं ब्रवीषि त्वामित्युवाच स गद्गदम् ॥ १६ ॥

साम्प्रतं सुप्रियं प्रोक्तं मनःप्रोत्साहकारकम्।
जीवादिकं मया देयं त्वयि सर्वस्वमेव हि ॥ २० ॥

एवमाभाष्यतां देवी राजानमिदमब्रवीत्। तव पुत्रो महाबाहुः समायातो हि साम्प्रतम्

आख्याति च महाराज एषा मे वै वराप्सराः। भर्तारमेवमाभाष्य विरराम सुहर्षिता

समाकर्ण्य नृपेन्द्रस्तु तामुवाच प्रियां प्रति। पुरा प्रोक्तं महाभागे मुनिना नारदेन हि॥

पुत्रं प्रति न कर्त्तव्यं दुःखं राजं स्त्वया कदा।
तं निहत्य सुवीर्येण दानवं चैष्यते सुतः ॥ २४ ॥

सञ्जातं सत्यमेवं वै मुनिना भाषितं पुरा। अन्यथा वचनं तस्य कथं देवि! भविष्यति

दत्तात्रेयो मुनिश्रेष्ठः साक्षाद्देवो भविष्यति।
शुश्रूषितस्त्वया देवि मया च तपसा पुरा ॥ २६ ॥

पुत्ररत्नं तेन दत्तं वैष्णवांशप्रधारकम्। सदा हनिष्यति परं दानवं पापचेतनम् ॥

सर्वदैत्यप्रहर्ता च प्रजापालो महाबलः। दत्तात्रेयेण मे दत्तो वैष्णवांशः सुतोत्तमः ॥

एवं सम्भाष्य तां देवीं राजा चेन्दुमतीं तदा। महोत्सवं ततश्चक्रे पुत्रस्यागमनं प्रति ॥

हर्षेण महताऽऽविष्टो विष्णुं सस्मार वै पुनः ॥ ३० ॥
सर्वोपपन्नं सुरवर्गयुक्तमानन्दरूपं परमार्थमेकम् ।
क्लेशापहं सौख्यप्रदं नराणां सद्वैष्णवानामिह मोक्षदं परम् ॥ ३१ ॥

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

नहुषपित्रोःपुत्रदर्शनेनजन्मसाफल्यम् ।

कुञ्जल उवाच ।

नहुषः प्रियया सार्द्धं तया चैव सरम्भया । ऐन्द्रेणापि स दिव्येन स्यन्दनेन वरेण
नागाह्वयं पुरं प्राप्तः सर्वशोभासमन्वितम् । दिव्यैर्मङ्गलकैर्युक्तं भवनैरुपशोभितम् ॥
हेमतोरणसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम् । नानावादित्रनादैश्च बन्दिचारणशोभितम्
देवरूपोपमैः पुण्यैः पुरुषैः समलङ्कृतम् । नारीभिर्दिव्यरूपाभिर्गजाश्वैः स्यन्दनैस्त
नानामङ्गलशब्दैश्च वेदध्वनिसमाकुलम् । गीतवादित्रशब्दैश्च वीणावेणुस्वनैस्तत
सर्वशोभासमाकीर्णं विवेश स पुरोत्तमम् । वेदमङ्गलघोषैश्च ब्राह्मणैश्चैव पूजित
ददृशे पितरं वीरो मातरं च सुपुण्यकाम् । हर्षेण महताऽऽविष्टःपितुः पादौ ननाम

अशोकसुदरी सा तु तयोः पादौ पुनः पुनः ।
ननाम भक्त्या भावेन उभयोः सा वरानना ॥ ८ ॥

रम्भा च सा ननामाथ प्रीतिं चैवाप्यदर्शयत् । नमस्कृत्वा समाभाष्य स्वगुरुं नृपनन्द
अनामयं च पप्रच्छ मातरं पितरं प्रति । एवमुक्तो महाभागः सानन्दपुलकोद्गमः

आयुरुवाच ।

अद्यैव व्याधयो नष्टा दुःखशोकावुभौ गतौ । भवतो दर्शनात्पुत्र सुतुष्ट्या दृष्यते

कृतकृत्योऽस्मि सञ्जातस्त्वयि जाते महौजसि ।
स्ववंशोद्धरणं कृत्वा अहमेव समुद्धृतः ॥ १२ ॥

इन्दुमत्युवाच ।

पर्वणि प्राप्य इन्द्रस्तु तेजो दृष्ट्वा महोदधिः ।
वृद्धिं याति महाभाग तथाऽहं तव दर्शनात् ॥ १३ ॥
...ंदितास्मि सुदृष्टास्मि आनन्देनसमाकुला । दर्शनात्ते महाप्राज्ञ धन्या जाताऽस्मिमानद
एवं सम्भाष्य तं पुत्रमालिङ्ग्य तनयोत्तमम् ।
शिरश्चाघ्राय तस्यापि वत्सं धेनुर्यथा स्वकम् ॥ १५ ॥
...भिनन्द्य सुतं प्राप्तं नहुषं देवरूपिणम् । आशीर्भिश्चार्चयद्देवी पुण्याइन्दुमती तदा
...थाऽसौमातरं पुण्यां देवीमिन्दुमतीं सुतः । कथयामास वृत्तान्तं यथाहरणमात्मनः ॥
स्वभार्यायास्तथोत्पत्तिं प्राप्तिं चैव महायशाः ।
हुण्डेनाऽपि यथायुद्धं हुण्डस्यापि निपातनम् ॥ १८ ॥
...ासेन समस्तं तदाख्यातं स्वयमेव हि । मातापित्रोर्यथावृत्तं तयोरानन्ददायकम् ॥
...ापितरावाकर्ण्य पुत्रस्य विक्रमोद्यमम् । हर्षेण महताऽऽविष्टौ सञ्जातौ पूर्णमानसौ
...शो धनुरादाय इन्द्रस्यस्यन्दने नवे । जिगाय पृथिवीं सर्वां सप्तद्वीपां सपत्तनाम् ॥
...ि समर्पयामास वसुपूर्णां वसुन्धराम् । पितरं हर्षयन्नित्यं दानधर्मैः सुकर्मभिः ॥
...रं याजयामास राजसूयादिभिस्तदा । महायज्ञैश्च दानैश्च व्रतैर्नियमसंयमैः ॥२३॥
...ानैर्यशसा पुण्यैर्यज्ञैः पुण्यमहोदयैः । सुसम्पूर्णौ कृतौ तौ तु पितरौ चायुसूनुना ॥
...थ देवाः समागत्य नागाह्वयं पुरोत्तमम् । अभ्यषिञ्चन्महात्मानं नहुषं वीरमर्दनम् ॥
...निभिश्च सुसिद्धैश्च आयुना तेन भूभुजा । अभिषिच्य स्वराज्ये तं समेतं शिवकन्यया
भार्यायुक्तः स्वकायेन आयूराजा महायशाः ।
दिवं जगाम धर्मात्मा देवैः सिद्धैः सुपूजितः ॥ २७ ॥
...द्रं पदं परित्यज्य ब्रह्मलोकं गतः पुनः । हरलोकं जगामाथ मुनिभिर्देवपूजितः ॥
...कर्मभिर्महाराजः पुत्रस्यापि सुतेजसा । हरेर्लोकं गतः पुण्यैर्निजसत्येष भूपतिः ॥

पुरुषैः पुण्यकर्माख्यैरीदृशं पुण्यमुत्तमम्। जनितव्यं महाभाग किमन्यैः शोककारकैः
यथा जातः स धर्मात्मा नहुषः पितृतारकः। कुलस्य धर्त्ता सर्वस्य नहुषो ज्ञानपण्डितः
एतत्ते सर्वमाख्यातं चरित्रं तस्य भूपतेः। अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि वद पुत्र कपिञ्जल
एवं विधं पुण्यमयं पवित्रं चरित्रमेतद्यशसा समेतम्।
आयोः सुतस्यापि शृणोति मर्त्यो भोगान्स भुक्त्वैति पदं मुरारेः॥ ३३

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे नहुषाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

हुण्डपुत्रविहुण्डस्यतपस्याकरणम्।

कपिञ्जल उवाच।

गङ्गामुखे पुरा तात रोदमाना वराङ्गना। नेत्राभ्यामश्रुविन्दूनि पतन्ति च महाजले
गङ्गामध्ये निमज्जन्ति भवन्ति कमलानि च।
पुष्पाणि दिव्यरूपाणि सौगन्धानि महान्ति च॥ २॥
तस्यास्तात सुनेत्राभ्यां किमर्थं प्रपतन्ति च। गङ्गोदके महाभाग निर्मला अश्रुविन्दवः
अस्थिचर्मावशेषस्तु जटाचीरधरः पुनः।
तानि सौगन्ध्ययुक्तानि पद्मानि विचिनोति सः॥ ४॥
हेमवर्णानि दिव्यानि नीत्वा शिवं समर्चयेत्।
सा का नारी समाचक्ष्व स वा को हि महामते॥ ५॥
अर्चयित्वा शिवं सोऽथ कस्मात्पश्चात्प्ररोदिति। एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यद्यहं वल्लभस्तव

कुञ्जल उवाच।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं देवनिर्मितम्। चरित्रं सर्वपापघ्नं विष्णोश्चैव महात्मनः

योऽसौ हुण्डो महावीर्यो नहुषेण हतो रणे।
तस्य पुत्रस्तु विख्यातो विहुण्डस्तप आस्थितः ॥ ८ ॥
...हतं पितरं श्रुत्वा सामात्यं सपरिच्छदम्। आयुपुत्रेण वीरेण नहुषेण बलीयसा ॥
...स्तपति सक्रोधाद्देवान्हन्तुं समुद्यतः। पौरुषं तस्य दुष्टस्य तपसा वर्द्धितस्य च ॥
...जानन्ति देवताः सर्वा दुःसहं समराङ्गणे। हुण्डात्मजो विहुण्डस्तु त्रैलोक्यं हन्तुमुद्यतः
...तुर्वैरं करिष्यामि हनिष्ये मानवान्सुरान्। एवं समुद्यतः पापी देवब्राह्मणकण्टकः
...द्रवं समारेभे प्रजाः पीडयते च सः। तस्यैव तेजसा दग्धा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥
...णं देवदेवस्य जग्मुर्विष्णोर्महात्मनः। देवदेवं जगन्नाथं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १४ ॥
ऊचुश्च पाहि नो नित्यं विहुण्डस्य महाभयात् ॥ १५ ॥

श्रीविष्णुरुवाच।

...न्तु देवताः सर्वाः सुसुखेन महेश्वराः। विहुण्डं नाशयिष्यामि पापिष्ठं देवकण्टकम्
...माभाष्य तान्देवान्मायां कृत्वा जनार्दनः। स्वयमेव स्थितस्तत्र नन्दने सुमहायशाः
मायामयं चकाराऽथ स्त्रीरूपं च गुणान्वितम्।
विष्णुमाया महाभागा सर्वविश्वप्रमोहिनी ॥ १८ ॥
...कार रूपमतुलं विष्णोर्माया प्रमोहिनी। विहुण्डस्य वधार्थाय रूपलावण्यशालिनी
...देवानां वधार्थाय दिव्यमार्गं जगाम ह। नन्दनान्ते ततो मायामपश्यद्दितिजेश्वरः ॥
तया विमोहितो दैत्यः कामबाणकृतान्तरः।
आत्मनाशं न जानाति कालरूपां वरस्त्रियम् ॥ २१ ॥
तां दृष्ट्वा नवहेमाभां रूपद्रविणशालिनीम्।
लुब्धो विहुण्डः पापात्मा तामुवाच वराङ्गनाम् ॥ २२ ॥
...ऽसि कस्य वरारोहे मम चित्तप्रमाथिनि। सङ्गमं देहि मे भद्रे रक्ष रक्ष वरानने ॥
...माच्च देवेशि यद्यदिच्छसि साम्प्रतम्। तत्तद्ब्रूहि महाभागे दुर्लभं देवदानवैः ॥

मायोवाच।

...मेव भोक्तुमिच्छा चेद्दायं मे देहि दानव। सप्तकोटिमितैश्चैव पुष्पैः पूजय शङ्करम् ॥

कामोदसम्भवैर्दिव्यैः सौगन्धैर्देवदुर्लभैः । तेषां पुष्पकृतां मालां मम कण्ठे तु दानव
आरोपय महाभाग एतद्दायं प्रदेहि मे । तदाहं सुप्रिया भार्या भविष्यामि न संशयः

विहुण्ड उवाच ।

एवं देवि ! करिष्यामि वरं दद्मि प्रयाचितम् ।
वनानि यानि पुण्यानि दिव्यानि दितिजेश्वरः ॥ २८ ॥
बभ्राम मन्मथाऽऽविष्टो न च पश्यति तं द्रुमम् ।
कामोदकाख्यं पप्रच्छ यत्र तत्र गतः स्वयम् ॥ २९ ॥
कामोदाख्यद्रुमो नास्ति वदन्त्येवं महाजनाः ।
पृच्छमानः स दुष्टात्मा कामबाणैः प्रपीडितः ॥ ३० ॥

पप्रच्छ भार्गवं गत्वा भक्त्या नमितकन्धरः । कामोदकं द्रुमं ब्रूहि कान्तपुष्पसमन्वि

शुक्र उवाच ।

कामोदः पादपो नास्ति योषिदेवाऽस्ति दानव । यदा साहस ते चैव प्रसङ्गेन प्रहर्षि
तद्धासाज्जज्ञिरे दैत्यसुगन्धानि वराण्यपि । सुमान्येतानि दिव्यानि कामोदाया न संश
हृद्यानि पीतपुष्पाणि सौरभेण युतानि च । तेनाप्येकेन पुष्पेण यः समर्चति शङ्कर
तस्येप्सितं महाकामं सम्पूरयति शङ्करः । अस्याश्च रोदनाद्दैत्य प्रभवन्ति न संशय

तादृशान्येव पुष्पाणि लोहितानि महान्ति च ।
सौरभेण विना दैत्य तेषां स्पर्शं न कारयेत् ॥ ३६ ॥
एवमाकर्णितं तेन वाक्यं शुक्रस्य भाषितम् ।
उवाच सा तु कुत्राऽस्ति कामोदा भृगुनन्दनम् ॥ ३७ ॥

शुक्र उवाच ।

गङ्गाद्वारे महापुण्ये महापातकनाशने । कामोदाख्यं पुरं तत्र निर्मितं विश्वकर्म
कामोदपत्तने नारी दिव्यभोगैरलङ्कृता । तथाचाभरणैर्भाति सर्वदेवैः सुपूजि
त्वया तत्रैव गन्तव्यं पूजितव्या वराप्सराः । उपायेनाऽपि पुण्येन तां प्रहासय दा
एवमुक्त्वा तु योगीन्द्रः स शुक्रो दानवं प्रति ।

विरराम महातेजाः स्वकार्यायोद्यतोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे कामोदाख्यानेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कामोदाकथानकवर्णनम् ।

कपिञ्जल उवाच ।

स्याः प्रहसनात्तात सुहृद्यानि भवन्ति वै। पुष्पाणि दिव्यगन्धीनि दुर्लभानि सुरासुरैः

कस्मात्तु देवताः सर्वाः प्रवाञ्छन्ति महामते ।
शङ्करः सुखमायाति हास्यपुष्पैः सुपूजितः ॥ २ ॥
को गुणस्तस्य पुष्पस्य तन्मे कथय विस्तरात् ।
कामोदा सा भवेत्का तु कस्य पुत्री वराङ्गना ॥ ३ ॥
हास्यात्तस्या महाभाग सुपुष्पाणि भवन्ति च ।
को गुणस्तत्कथां ब्रूहि सकलां विस्तरेण च ॥ ४ ॥

कुञ्जल उवाच ।

देव महादैत्यैः कृत्वा सौहार्दमुत्तमम् । ममन्थुः सागरं क्षीरममृतार्थं समुद्यताः ॥

थनाद्देवदैत्यानां कन्यारत्नचतुष्टयम् । वरुणेन दर्शितं पूर्वं सोमेनैव तथा पुनः ॥

श्चात्सन्दर्शितं पुण्यमम्मृतं कलशे स्थितम् । कन्याचतुष्टयं पूर्वदेवानां हितमिच्छति

सुलक्ष्मीर्नाम सा चैका द्वितीया वारुणी तथा ।
ज्येष्ठा नाम तथा ख्याता कामोदाऽन्या प्रचक्षते ॥ ८ ॥
तासां मध्ये वरा श्रेष्ठा पूर्वं जाता महामते ।
तस्माज्ज्येष्ठेति विख्याता लोके पूज्या सदैव हि ॥ ९ ॥

वारुणी पानरूपा च पयःफेनसमुद्भवा । अमृतस्य तरङ्गाच्च कामोदाख्या बभूव ह

सोमो राजा तथा लक्ष्मीर्जज्ञाते अमृतादपि ।
त्रैलोक्यभूषणः सोमः सञ्जातः शङ्करप्रियः ॥ ११ ॥
मृत्युरोगहरा जाता सुराणां वारुणी तथा ।
ज्येष्ठा सुपुण्यदा जाता लोकानां हितमिच्छताम् ॥ १२ ॥
अमृतादुत्थिता देवी कामोदा नाम पुण्यदा ।
विष्णोः प्रीत्यै भविष्ये तु वृक्षरूपं प्रयास्यति ॥ १३ ॥
विष्णुप्रीतिकरी सा तु भविष्यति सदैव हि ।
तुलसी नाम सा पुण्या भविष्यति न संशयः ॥ १४ ॥
तया सह जगन्नाथो रमिष्यति न संशयः ।
तुलस्याः पत्रमेकं यो नीत्वा कृष्णाय दास्यति ॥ १५ ॥
मेने तस्योपकाराणां किमस्मै च ददाम्यहम् ।
इत्येवं चिन्तयेन्नित्यं तस्य प्रीतिकरो भवेत् ॥ १६ ॥

एवं कामोदनामासौ पूर्वं जाता समुद्रजा । यदा साहस ते देवी हर्षगद्गदभाषिणी

सौहृद्यानि सुगन्धीनि सुखात्तस्याः पतन्ति वै ।
अम्लानानि सुपुष्पाणि यो गृह्णाति समुद्यतः ॥ १८ ॥

पूजयेच्छङ्करं देवं ब्रह्माणं माधवं तथा । तस्य देवाः प्रतुष्यन्ति यदिच्छति ददन्ति

रोदित्येषा यदा सा च केन दुःखेन दुःखिता ।
नेत्राश्रुभ्यो हि तस्यास्तु प्रभवन्ति पतन्ति च ॥ २० ॥

तानि चैव महाभाग ! हृद्यानि सुमहानि च । सौरभेण विना तैस्तु यः पूजयति शङ्
तस्य दुःखं च सन्तापो जायते नात्र संशयः । पुष्पैस्तु तादृशैर्देवान्सकृदर्चेति पाप
तस्य दुःखं प्रकुर्वन्ति देवास्तत्र न संशयः । एतत्ते सर्वमाख्यातं कामोदाख्यानमुत्त

अथ कृष्णो विचिन्त्यैव दृष्ट्वा विक्रमसाहसम् ।
विहुण्डस्यापि पापस्य उद्यमं साहसं तदा ॥ २४ ॥

[ना]रदं प्रेषयामास मोहयैनं दुरासदम्। नारदस्त्वथ संश्रुत्य वाक्यं विष्णोर्महात्मनः
[गच्छ]मानं दुरात्मानं कामोदां प्रति दानवम्। गत्वा तमाह दैत्येन्द्रं नारदः प्रहसन्निव
क्व यासि त्वं च दैत्येन्द्र ! सत्वरं च समातुरः।
साम्प्रतं केन कार्येण कस्यार्थं केन नोदितः॥ २७॥
[ब्रह्म]ात्मजं नमस्कृत्य प्रत्युवाच कृताञ्जलिः। कामोदपुष्पार्थमहं प्रस्थितो द्विजसत्तम॥
[प्रत्यु]वाच स धर्मात्मा पुष्पैः किं ते प्रयोजनम्। विप्रवर्यं पुनः प्राह कार्यकारणमात्मनः
[नन्द]नस्य वनोद्देशे काचिन्नारी वरानना। तस्यादर्शनमात्रेण गतोऽहं कामवश्यताम्॥
तया प्रोक्तोऽस्मि विप्रेन्द्र पुष्पैः कामोदसम्भवैः।
पूजयस्व महादेवं पुष्पैस्तु सप्तकोटिभिः॥ ३१॥
ततस्ते सुप्रिया भार्या भविष्यामि न संशयः।
तदर्थं प्रस्थितोऽस्म्यद्य कामोदाख्यं पुरं प्रति॥ ३२॥
तामहं कामयिष्यामि सिन्धुजां शृणु साम्प्रतम्।
मनोल्लासैर्महाहासैर्हासयिष्याम्यहं पुनः॥ ३३॥
[स]ा सती महाभागां हसिष्यति पुनःपुनः। तद्धास्यं गद्गदं विप्र ममकार्यप्रवर्द्धनम्॥
तस्माद्धास्यात्पतिष्यन्ति दिव्यानि कुसुमानि च।
तैस्तु देवमुमाकान्तं पूजयिष्यामि साम्प्रतम्॥ ३५॥
[त]त्पूजाप्रदानेन तुष्टो दास्यति मे फलम्। ईश्वरः सर्वभूतेशः शङ्करो लोकभावनः॥
नारद उवाच।
[भो] दैत्य न गन्तव्यं कामोदाख्ये पुरोत्तमे। विष्णुरस्ति सुमेधावी स वै दैत्यक्षयावहः
येनोपायेन पुष्पाणि कामोदाख्यानि दानवः।
तव हस्ते प्रयास्यन्ति तमुपायं वदाम्यहम्॥ ३८॥
गङ्गातोयेषु दिव्यानि पतिष्यन्ति न संशयः।
वाहितानि जलैर्दिव्यैरागमिष्यन्ति साम्प्रतम्॥ ३९॥
तानि त्वं तु प्रति गृहाण सुहृद्यानि महान्ति च।

गृहीत्वा तानि पुष्पाणि साधयस्व मनीषितम् ॥ ४० ॥

नारदो दानवश्रेष्ठं मोहयित्वा ततः पुनः । ततश्च स तु धर्मात्मा चिन्तयामास वै पु
कथमश्रूणि सामुञ्चेत्केनोपायेन दुःखिता । चिन्तमानस्य तस्यैवं क्षणं वै नारदस्य

ततो बुद्धिः समुत्पन्ना कामोदाख्यपुरं गतः ॥ ४३ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे कामोदाख्याने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नारदद्वारा कामोदायै स्वप्नविचारवर्णनम् ।

कुञ्जल उवाच ।

कामोदाख्यं पुरं दिव्यं सर्वदेवसमाकुलम् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थमपश्यन्नारदस्ततः ।

कामोदाया गृहं प्राप्य प्रविवेश द्विजोत्तमः ।

कामोदां तु ततो दृष्ट्वासर्वकामसमाकुलाम् ॥ २ ॥

तया सम्पूजितो विप्रः सुवाक्यैः स्वागतादिभिः ।

दिव्यासने समारूढस्तां पप्रच्छ द्विजोत्तमः ॥ ३ ॥

सुखेन स्थीयते भद्रे विष्णुतेजः समुद्भवे । अनामयं च पप्रच्छ आशीर्भिरभिनन्द्य

कामोदोवाच ।

प्रसादाद्भवतां विष्णोः सुखेन वर्तयाम्यहम् । कथयस्व महाप्राज्ञ त्वं प्रश्नोत्तरकार
महामोहः समुत्पन्नो ममाङ्गे मुनिपुङ्गव । व्यापकः सर्वलोकानां ममाङ्गे मतिवि

तस्मान्निद्रासमुत्पन्ना यथा मर्त्येषु वर्तते ।

सुप्तया तु मया दृष्टः स्वप्नो वै दारुणो मुने ॥ ७ ॥

केनाप्युक्तं समेत्यैव पुरतो द्विजसत्तम । अव्यक्तोऽसौ हृषीकेशः संसारं स गमि

...प्रभृतिः दुःखेन व्यापिताऽहं महामते। तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि भवाञ्ज्ञानवतांवरः

नारद उवाच।

...तिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः। स्वप्नः प्रवर्तते भद्रे! मानवेषु न संशयः
...जायते च देवेषु स्वप्नो निद्रा च सुन्दरी। आदित्योदयवेलायां दृश्यते स्वप्नउत्तमः

सत्स्वप्नो मानवानां हि पुण्यस्य फलदायकः।
अन्यदेव प्रवक्ष्यामि स्वप्नस्य कारणं शुभे॥ १२॥

...वातान्दोलनैश्च चलन्त्यापो वरानने। त्रुटन्त्यम्बुकणाः सूक्ष्मास्तस्मादुदकसञ्चयात्
...हिरेव पतत्न्येते निर्मलाम्बुकणाः शुभे। पुनर्लयं प्रयान्त्येते:दृश्यादृश्या भवन्ति वै॥

तद्वत्स्वप्नस्य वै भावः कथ्यते शृणु भामिनि!।
आत्मा शुद्धो विरक्तस्तु रागद्वेषविवर्जितः॥ १५॥

...भूतात्मकानां च मुषित्वैव सुनिश्चलः। षड्विंशतिसुतत्त्वानां मध्ये चैष विराजते
...आत्मा केवलो नित्यः प्रकृतेः सङ्गतिं गतः। तद्भावैर्वायुरूपैश्च चलते स्थानतो यदा
...त्मनस्तेजसश्चैव प्रतितेजः प्रजायते। अन्तरात्मा शुभं नाम तस्य एव प्रकथ्यते॥

पयसश्च यथा भिन्ना भवन्त्यम्बुकणाः शुभे।
आत्मनस्तु तथा तेज अन्तरात्मा प्रकथ्यते॥ १६॥
स हि पृथ्वी स वै वायुः सचाऽप्याऽऽकाश एव हि।
स वै तोयं स दीप्येत एते पञ्च पुराकृताः॥ २०॥
आत्मनस्तेजसो भूता मलरूपा महात्मनः।
तस्यापि सङ्गतिं प्राप्ता एकत्वं हि प्रयान्ति ते॥ २१॥

...त्मभावप्रदोषेण नाशयन्ति वरानने। तत्पिण्डमन्यमिच्छन्ति वारं वारं वरानने॥
...यां क्रीडाविहारोऽयं सृष्टिसम्बन्धकारणम्। उदकस्य तरङ्गस्तु जायते च विलीयते
...भूतिः पुनर्हानिस्तादृशस्य पुनःपुनः। अपां रूपस्य दृष्टान्तं तद्वदेषां न संशयः॥

आत्मा न नश्यते देवि तेजो वायुर्न नश्यति।
न नश्यतो धराकाशौ न नश्यन्त्याप एव च॥ २५॥

पञ्चैव आत्मना सार्द्धं प्रभवन्ति प्रयान्ति च।
आत्मादयो ह्यमी भद्रे नित्यरूपा न संशयः॥ २६॥
पिण्ड एव प्रणश्येत तेषां सञ्जात एव च। विषयाणां सुदोषैः स रागद्वेषादिभिर्द्विज
प्राणाः प्रयान्ति वै पिण्डात्पञ्चपञ्चात्मका द्विज!।
पिण्डान्ते वसते आत्मा प्रतिरूपस्तु तस्य च॥ २८॥
अन्तरात्मा यथा चाग्नेः स्फुलिङ्गस्तु प्रकाशते।
तथा प्रकाशमायाति दृश्यादृश्यः प्रजायते॥ २९॥
शुद्धात्मा च परं ब्रह्म सदा जागर्ति नित्यशः। अन्तरात्मा प्रबद्धस्तु प्रकृतेश्च महागु
अन्नाहारेण सम्पुष्टैरन्तरात्मा सुखं व्रजेत्। सुसुखाज्जायते मोहस्तस्मान्मनः प्रमु
पश्चात्सञ्जायते निद्रा तामसी लयवर्द्धिनी।
नाडीमार्गेण यः सूर्यो मेरुमुल्लङ्घ्य गच्छति॥ ३२॥
तदा रात्रिः प्रजायेत यावन्नोदयते रविः। विषयान्धकारैर्मुक्तस्तु अन्तरात्मा प्रका
भावैस्तत्त्वात्मकानां तु पञ्चतत्त्वैः प्रपोषितैः। पूर्वजन्मास्थितैः पिण्डैरन्तरात्मा प्रगृ
स यास्यति च वै स्थानमुच्चावचं महामते।
संसार अन्तरात्मा वै दोषैर्बद्धः प्रणीयते॥ ३५॥
कायं रक्षति जीवात्मा पश्चात्तिष्ठति मध्यगः।
उदानः स्फुरते तीव्रस्तस्माच्छब्दः प्रजायते॥ ३६॥
शुष्का भस्त्रा यथा श्वासं कुरुते वायुपूरिता।
तद्वच्छब्दवशाच्छ्वासमुदानः कुरुते बलात्॥ ३७॥
आत्मनस्तु प्रभावेण उदानो बलवान्भवेत्। एवं कायः प्रमुग्धस्तु मृतकल्पः प्र
ततो निद्रा महामाया तस्याङ्गेषु प्रयाति सा।
हृदि कण्ठे तथा चास्ये नासिकाग्रे प्रतिष्ठति॥ ३९॥
बाहू सङ्कुच्य सन्तिष्ठेद्धृद्गतो नाभिमण्डले।
आत्मनस्तु प्रभावाच्च उदानो नाम मारुतः॥ ४०॥

...जायते महातीव्रो बलरोधं करोति सः। यथा रज्ज्वा प्रबद्धस्तु दारुकीलधरः स्थितः
...था वातमसु संलग्नः प्राणवायुर्न संशयः। अन्तरात्मप्रसक्तस्तु प्राणवायुः शुभानने !

बुद्धिवद्रोहितो भद्रे ! अन्तरात्मा प्रधावति।
पूर्वजन्मार्जितान्वासान्स्मृत्वा तत्र प्रधावति ॥ ४३ ॥
तत्र संस्थो महाप्राज्ञः स्वेच्छया रमते पुनः।
एवं नानाविधान्स्वप्नानन्तरात्मा प्रपश्यति ॥ ४४ ॥

...त्तमांश्च विरुद्धांश्च कर्मयुक्तान्प्रपश्यति। गिरींस्तथा सुदुर्गांश्च उच्चावचान्प्रपश्यति
...देव वातिकं विद्धि कफवत्तद्वदाम्यहम्। जलं नदीं तडागं च पयःस्थानानि पश्यति
...र्नि च पश्यते देवि बहुकाञ्चनमुत्तमम्। तदेव पैत्तिकं विद्धि भाव्यं चैव वदाम्यहम्
...भाते दृश्यते स्वप्नो भव्यो वाऽभव्य एव च। कर्मयुक्तो वरारोहे लाभालाभप्रकाशकः

स्वप्नस्याऽपि अवस्था ते कथिता वरानने।
तद्भाव्यं च वरारोहे त्रिष्णोश्चैव भविष्यति ॥ ४९ ॥
तन्निमित्तं त्वया दृष्टो दुःस्वप्नः स तु प्रेक्षितः ॥ ५० ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थे च्यवनचरित्रे
कामोदाख्याने विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कामोदायाःनारदेनशोकोत्पादनम्।

कामोदोवाच।

...विदुर्दैवताः सर्वा यस्यान्तं रूपमेव च। यस्मिँल्लीनस्तु सर्वोऽयं स चैकात्मा प्रकथ्यते
...स्य मायाप्रपञ्चस्तु संसारः शृणु नारद। कस्मात्प्रयाति संसारं मम स्वामी जगत्पतिः
...पैश्चापि सुपुण्यैश्च नरो बद्धस्तु कर्मभिः। संसारं सरते विप्र हरिः कस्माद्व्रजेद्द

नारद उवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्कृतं तेन चक्रिणा। भृगोरग्रे प्रतिज्ञातं यज्ञरक्षां करोम्यहम्
इन्द्रस्य वचनात्सद्यो गतोऽसौ दानवैः सह।
योद्धुं विहाय गोविन्दो भृगोश्चैव मखोत्तमम् ॥ ५ ॥
मखं त्यक्त्वा गते देवे पश्चात्तैर्दानवोत्तमैः। आगत्य ध्वंसितः सर्वः सयज्ञः पापचे
हरिं क्रुद्धः स योगीन्द्रः शशाप भृगुरेव तम्।
दशजन्मानि भुङ्क्ष्व त्वं मच्छापकलुषीकृतः ॥ ७ ॥
कर्मणः स्वस्य सम्भोगं सम्भोक्ष्यति जनार्दनः।
तन्निमित्तं त्वया देवि दुःस्वप्नः परिवीक्षितः ॥ ८ ॥
इत्युक्त्वा तां गतो विप्रो ब्रह्मलोकं स नारदः।
कृष्णस्यापि सुदुःखेन दुःखिता सा भवत्तदा ॥ ९ ॥
रुरोद करुणं बाला हाहेति दती मुहुः। गङ्गातीरोपविष्टा सा जलान्ते शृणु नन्द
सुनेत्राभ्यां तथाऽश्रूणि दुःखेनापि प्रमुञ्चति।
तान्यश्रूणि प्रमुक्तानि गङ्गातोये पतन्त्यपि ॥ ११ ॥
जले चैवनिमज्जन्तितस्याश्चाप्यश्रुविन्दवः। सम्भवन्तिपुनस्तातपद्मरूपाणि तानि
गङ्गातोये प्रफुल्लानि वाहितानि प्रयान्ति वै। ददृशे दानवश्रेष्ठो विष्णुमायाप्रमो
दुःखजानि न जानाति मुनिना कथितान्यपि।
हर्षेण महताऽऽविष्टः परिजग्राह सोऽसुरः ॥ १४ ॥
पद्मैस्तु पुष्पितैः सोऽपि पूजयेद्गिरिजाप्रियम्।
सप्तकोटिभिर्दैत्येन्द्रो विष्णुमायाप्रमोहितः ॥ १५ ॥
अथ क्रुद्धा जगद्धात्री शङ्करं वाक्यमब्रवीत्। पश्यैतस्य विकर्मत्वं दानवस्य महाम
शोकोत्पन्नैः प्रफुल्लैश्च भवन्तं परिपूजयेत्। प्राप्यते दुःखसंतापं मुदं प्राप्तुं न वा

ईश्वर उवाच।

सत्यमुक्तं त्वया भद्रे अनेन पापकारिणा। सत्योद्यमः परित्यक्तः कामोदार्थः कृ

[...]कोत्पन्नानि पद्मानि गङ्गातोयगतानि वै। अयमेष प्रगृह्णाति कामाकुलितचेतनः ॥
[...]येद्यापि दुष्टात्मा शोकसन्तापकारकैः। दुःखजैः शोकजैःपुष्पैस्तैः सुश्रेयः कथं भवेत्
[...]दृशेनापि भावेन मामेव परिपूजयेत्। तादृशेनाऽपि भावेन अस्य सिद्धिर्भविष्यति

सत्यध्यानविहीनोऽयं कामोदान्यस्तमानसः।
सञ्जातः पापचारित्रो जहि देवि! स्वतेजसा ॥ २२ ॥
एवमाकर्ण्य तद्वाक्यं शम्भोश्चैव महात्मनः।
अस्यैव संक्षयं शम्भो करिष्ये तव शासनात् ॥ २३ ॥
एवमुक्त्वा ततो देवी तस्यापि वधकाङ्क्षया।
वर्त्तते हि विहुण्डस्य वधोपायं व्यचिन्तयत् ॥ २४ ॥

[...]त्वा मायामयं रूपं ब्राह्मणस्य महात्मनः। पूजयेच्छङ्करं नाथं सुपुष्पैः पारिजातजैः ॥

समेत्य दानवः पापो दिव्यां पूजां विनाशयेत्।
कामाकुलः सुदुःखार्तस्तद्गतो भावतत्परः ॥ २६ ॥

[...]ण्णोश्चैव महामायां पूर्वदृष्टां स दानवः। सस्मार दानवः पापः कामबाणैः प्रपीडितः
[...]स्याः स्मरणमात्रेण कन्दर्पेण बलीयसा। विरहाकुलदुःखार्तो रोदते हि मुहुर्मुहुः ॥

कालाकृष्टः स दुष्टात्मा शोकजातानि तानि सः।
परिगृह्य समायातः पूजनार्थी महेश्वरम् ॥ २९ ॥
देव्या कृतां हि पूजां च सुपुष्पैः पारिजातजैः।
तां निर्णाश्य सुलोभेन शोकजैः परिपूजयेत् ॥ ३० ॥
नेत्राभ्यां तस्य दुष्टस्य बिन्दवस्तेऽश्रुसम्भवाः।
अविरलास्ततो वत्स पतन्ति लिङ्गमस्तके ॥ ३१ ॥

[...]वी ब्राह्मणरूपेण तमुवाच महामते। को भवान्पूजयेद्देवं शोकाकुलमनाः सदा ॥३२॥
[...]न्त्यश्रूणि देवस्य मस्तके शोकजानि ते। अपवित्राणि मे ब्रूहि एतमर्थं ममाग्रतः ॥

विहुण्ड उवाच।

[...]हं दृष्टा मया नारी सर्वसौभाग्यसम्पदा। सर्वलक्षणसम्पन्ना कामस्यायतनं महत् ॥

तस्या मोहेन सन्दग्धः कामेनाकुलतां गतः ।

तया प्रोक्तं हि सम्भोगे देहि मे दायमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

कामोदसम्भवैः पुष्पैः पूजयस्व महेश्वरम् । तेषां पुष्पकृतां मालां मम कण्ठे परि

कोटिभिः सप्तसङ्ख्यातैः पूजयस्व महेश्वरम् । तदर्थं पूजयाम्येव ईश्वरं फलदाय

कामोदसम्भवैः पुष्पैर्दुर्लभैर्देवदानवैः ॥ ३८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

क्व ते भावः क्व ते ध्यानं क्व ते ज्ञानं दुरात्मनः ।

ईश्वरस्यापि सम्बन्धो नास्ति किंचित्त्वयैवहि ॥ ३९ ॥

कामोदाया वरं रूपं कीदृशं वद साम्प्रतम् ।

क्व लब्धानि सुपुष्पाणि तस्या हास्योद्भवानि च ॥ ४० ॥

विहुण्ड उवाच ।

भवं ध्यानं न जानामि न दृष्टा सा मया कदा ।

गङ्गातोयगतान्येव परिगृह्णामि नित्यशः ॥ ४१ ॥

तैरहं पूजयाम्येकं शङ्करं प्रवदाम्यहम् । ममाग्रे कथितं विप्र शुक्रेणापि महात्म

वचनात्तस्य देवेशमर्चयामि दिने दिने । एतत्ते सर्वमाख्यातं यच्च पृष्टोऽस्मि सा

श्रीदेव्युवाच ।

कामोदारोदनाज्जातैः पुष्पैस्तैर्दुःखसम्भवैः । लिङ्गमर्चयसे दुष्ट ! प्रभाते नित्यमे

यादृशेनापि भावेन पुष्पैश्च यादृशैस्त्वया । अर्चितो देवदेवेशस्तादृशं फलमाप्नु

दिव्यपूजां विनाश्यैवं शोकपुष्पैः प्रपूजसि । असौ दोषस्तवैवाद्यं समुत्पन्नः सुदा

तस्माद्दण्डं प्रदास्यामि भुङ्क्ष्व स्वकर्मजं फलम् ।

तस्या वाक्यं समाकर्ण्य कालकृष्टो बभाष ताम् ॥ ४७ ॥

रे रे दुष्ट ! दुराचार! मम कर्मप्रदूषक ! । हन्मि त्वामिह खड्गेण अनेनापि न संश

इत्युक्त्वा ब्राह्मणं तं स निशितं खड्गमाददे ।

हन्तुकामः स दुष्टात्मा अभ्यधावत दानवः ॥ ४९ ॥

...देवी विप्ररूपेण सङ्क्रुद्धा परमेश्वरी। स्वस्थानमागतं दृष्ट्वा हुङ्कारं विससर्ज ह
...हुङ्कारनादेन पतितो दानवाधमः। निश्चेष्टः कामरूपेण वज्राहत इवाचलः ॥ ५१ ॥

पतिते दानवे तस्मिन्सर्वलोकविनाशके।
लोकाः स्वास्थ्यं गताः सर्वे दुःखतापविवर्जिताः ॥ ५२ ॥

...स्मात्कारणाद्वत्स सा स्त्री वै परिदेवति। गङ्गातीरे वरारोहा दुःखव्याकुलमानसा
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥ ५४ ॥

विष्णुरुवाच।

एवमुक्त्वा सुपुत्रं तं कुञ्जलस्य (?) अण्डजेश्वरः।
विरराम महाप्राज्ञः किञ्चिन्नोवाच भूपते ! ॥ ५५ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे कामोदाख्याने एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

———

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कुञ्जलद्वाराविद्याधरवंशवर्णनम्।

विष्णुरुवाच।

कुञ्जलो धर्मपक्षी स इत्युक्त्वा तान्सुतान्प्रति।
विरराम महाप्राज्ञः किंचिन्नोवाच तान्प्रति ॥ १ ॥

...धःस्थो द्विजश्रेष्ठस्तमुवाच महाशुकम्। को भवान्धर्मवक्ता हि पक्षिरूपेण वर्तते
किं वा देवोऽथ गन्धर्वः किं वा विद्याधरो भवान्।
कस्य शापादिमां प्राप्तो योनिं कीरस्य पातकीम् ॥ ३ ॥

कस्मात्ते ईदृशं ज्ञानं वर्ततेऽतीन्द्रियं शुक !।
सुपुण्यस्य तु कस्यापि कस्य वै तपसः फलम् ॥ ४ ॥

किं वा च्छन्नेन रूपेण अनेनापि महामते।
कस्त्वं सिद्धोऽसि देवो वा तन्मे कथय कारणम् ॥ ५ ॥

कुञ्जल उवाच।

भोः सिद्ध त्वामहं जाने कुलं ते गोत्रमुत्तमम्।
विद्यां तपःप्रभावं च यस्माद्भ्रमसि मेदिनीम् ॥ ६ ॥

सर्वं विप्र ! प्रवक्ष्यामिस्वागतं तवसुव्रत। उपविश्याऽऽसने पुण्येछायामाश्रयशीतल
अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा तस्माज्जज्ञे प्रजापतिः। ब्राह्मणस्तु गुणैर्युक्तो भृगुर्ब्रह्मसमो द्वि

भार्गवो नाम तस्याऽऽसीत्सर्वधर्मार्थतत्त्ववित्।
तस्याऽन्वये भवान्विश्च्यवनः ख्यातिमान्भुवि ॥ ९ ॥
नाहं देवो न गन्धर्वो नाहं विद्याधरः पुनः।
योऽहं विप्र ! प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १० ॥

कश्यपस्य कुले जातः कश्चिद्ब्राह्मणसत्तमः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वकर्मप्रकाशक
विद्याधरेतिविख्यातः कुलशीलगुणैर्युतः। राजमानः श्रिया विप्र ! आचारैस्तपसा
सम्बभूवुः सुतास्तस्य विद्याधरस्य ते त्रयः। वसुशर्मा नामशर्मा धर्मशर्मा च ते त्र
तेषामहं धर्मशर्मा कनिष्ठो गुणवर्जितः। वसुशर्मा मम भ्राता वेदशास्त्रार्थकोविद

आचारेण सुसम्पन्नो विद्यादिसुगुणैः पुनः।
नामशर्मा महाप्राज्ञस्तद्वच्चासीद्गुणाधिकः ॥ १५ ॥

अहमेको महामूर्खः सञ्जातः शृणु सत्तम !। विद्यानामुत्तमं विप्र ! भावमर्थं शुभं क
न शृणोमि न वै यामि गुरुगेहमनुत्तमम्। ततस्तु जनको मे तु मामेवं परिचिन्त्य

धर्मशर्मेति पुत्रस्य नामाऽस्य तु निरर्थकम्।
सञ्जातः क्षितिमध्ये तु न विद्वान्मे गुणाकरः ॥ १८ ॥

इति सञ्चिन्त्य धर्मात्मा मामुवाच सुदुःखितः। व्रज पुत्र गुरोर्गेहं विद्यार्थं परिसा

एवमाकर्ण्य तत्तस्य पितुर्वाक्यं मया शुभम्।
नाहं तात गमिष्यामि गुरोर्गेहं सुदुःखदम् ॥ २० ॥

यत्र वै ताडनं नित्यं भ्रूभङ्गादि च क्रोशनम् । अन्नं न दृश्यते तत्र कर्मणा शृणु सत्तम !॥

दिवारात्रौ न निद्रास्ति नास्ति सुखस्य साधनम् ।
तस्माद्दुःखमयं तात न यास्ये गुरुमन्दिरम् ॥ २२ ॥
विद्याकार्यं करिष्ये न क्रीडार्थमहमुत्सुकः ।
भोक्ष्ये स्वप्स्ये प्रसादात्ते करिष्ये क्रीडनं पितः ! ॥ २३ ॥
डिम्भैः सार्द्धं सुखेनापि दिवारात्रमतन्द्रितः ।
मामुवाच स धर्मात्मा मूढं ज्ञात्वा सुदुःखितः ॥ २४ ॥

मा पुत्र साहसं कार्षीर्विद्यार्थमुद्यमं कुरु । विद्यया प्राप्यते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथाऽतुला
ज्ञानं स्वर्गश्च मोक्षश्च तस्माद्विद्यां प्रसाधय । पूर्वं सुदुःखमूला तु पश्चाद्विद्या सुखप्रदा
तस्मात्साधय पुत्र त्वं विद्यां गुरुगृहं व्रज । पितुर्वाक्यमकुर्वाण अहमेवं दिने दिने ॥
तत्र यत्र स्थितो नित्यमर्थहानिं करोम्यहम् । उपहासः कृतो लोकैर्मम विप्र ! प्रकुत्सनम्
मम लज्जा समुत्पन्ना जीवनाशकरी तदा । विद्यार्थमुद्यतो विप्र ! कं गुरुं प्रार्थयाम्यहम्

इति चिन्तापरो जातो दुःखशोकसमाकुलः ।
कथं विद्यामहं जाने कथं विन्दाम्यहं गुणान् ॥ ३० ॥

कथं मे जायते स्वर्गः कथं मोक्षं व्रजाम्यहम् । इत्येवं चिन्तयन्विप्र वार्द्धक्यमगमं पुनः
देवतायतने दुःखी उपविष्टस्त्वहं कदा । मद्भाग्यैः प्रेरितः कश्चित्सिद्ध एकः समागतः

निराश्रयो जिताहारः सदाऽऽनन्दस्तु निःस्पृहः ।
एकान्तमास्थितो विप्रो योगयुक्तो जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मणि संलीनो ज्ञानध्यानसमाधिमान् । तमहं संश्रितो विप्र ज्ञानरूपं महामतिम् ॥
अहं शुद्धेन भावेन भक्त्या नमितकन्धरः । नमस्कृत्य महात्मानं पुरतस्तस्य संस्थितः
दीनरूपो ह्यहं जातो मन्दभाग्यस्तथा पुनः । तेनाऽहं पृच्छितो विप्र कस्माद्भवान्प्रशोचति

केनाऽभिप्रायभावेन दुःखमेव भुनक्ति वै ।
तेनेत्युक्तोऽस्मि विप्रेन्द्र ! ज्ञानिना योगिना तदा ॥ ३७ ॥

दुःखेन मया तस्य पूर्ववृत्तान्तमेव हि । तमेवं श्रावितं सर्वं सर्वज्ञत्वं कथं व्रजेत् ॥३८॥

एतदर्थं महादुःखी भवान्ममगतिः सदा। सचोवाच महात्मा मे सर्वं ज्ञानस्य कारणम्

इतिश्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने गुरुतीर्थमाहात्म्ये च्यवनचरित्रे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धाज्ज्ञानप्राप्तिवृत्तान्तकथनम् ।

सिद्ध उवाच ।

श्रूयतामभिधास्यामि ज्ञानरूपं तवाऽग्रतः ।
ज्ञानस्य नास्ति वै देहो हस्तौ पादौ च चक्षुषी ॥ १ ॥
नासा कर्णौ न ज्ञानस्य नास्ति चैवास्थिसङ्ग्रहः ।
केन दृष्टं तु वै ज्ञानं कानि लिङ्गानि तस्य वै ॥ २ ॥

आकारैर्वर्जितं नित्यं सर्वं वेत्तिससर्ववित् । दिवाप्रकाशकः सूर्यो रात्रौ प्रकाशयेच्च
गृहं प्रकाशयेद्दीपो लोकमध्ये स्थिता अमी । तत्पदं केन वै धाम्ना दृश्यते शृणु स
न विन्दन्ति हि मूढास्ते मोहिता विष्णुमायया । कायमध्ये स्थितं ज्ञानं ध्यानदीप्तनौप
तत्पदं तेन दृश्येत चन्द्रसूर्यादिभिर्न च । हस्तपादौ विना ज्ञानमचक्षुः कर्णवर्जितम्
सर्वत्र गतिमच्चास्त सर्वं गृह्णाति पश्यति । सर्वमाघ्राति विप्रेन्द्र शृणोत्येवं न सं

नास्ति ज्ञानसमो दीपः सर्वान्धकारनाशने ।
स्वर्गे भूमौ च पाताले स्थाने स्थाने च दृश्यते ॥ ८ ॥
कायमध्ये स्थितं ज्ञानं न विन्दन्ति कुबुद्धयः ।
ज्ञानस्थानं प्रवक्ष्यामि यस्माज्ज्ञानं प्रजायते ॥ ६ ॥

प्राणिनां हृदये नित्यं निहितं सर्वदा द्विज ! । कामादीन्सुमहाभोगान्महामोहादिकान्
विवेकवह्निना सर्वान्दिधक्ष्यति सदैव सः । सर्वशास्त्रिपरो भूत्वा इन्द्रियार्थं प्रम

ततस्तु जायते ज्ञानं सर्वतत्त्वार्थदर्शकम् । तत्त्वमूलमिदं ज्ञानं निर्मलं सर्वदर्शकम् ॥

तस्माच्छान्तिं कुरुष्व त्वं सर्वसौख्यप्रवर्द्धिनीम् ।

समः शत्रौ च मित्रे च यथाऽऽत्मनि तथापरे ॥ १३ ॥

भवस्व नियतो नित्यं जिताहारो जितेन्द्रियः । मैत्रं नैव प्रकर्तव्यं वैरं दूरे परित्यजेत् ॥

निःसङ्गो निःस्पृहो भूत्वा एकान्तस्थानमाश्रितः ।

सर्वप्रकाशको ज्ञानी सर्वदर्शी भविष्यसि ॥ १५ ॥

एकस्थानस्थितो वत्स त्रैलोक्ये यद्भविष्यति ।

वृत्तान्तं वेत्स्यसि त्वं तु मत्प्रसादान्न संशयः ॥ १६ ॥

कुञ्जल उवाच ।

सिद्धेन तेन मे विप्र ! ज्ञानरूपं प्रकाशितम् ।

तस्य वाक्ये स्थितो नित्यं तद्भावेनाऽपि भावितः ॥ १७ ॥

त्रैलोक्ये वर्त्तते यद्यदेकस्थाने स्थितो ह्यहम् । तत्तदेव प्रजानामि प्रसादात्तस्य सद्गुरोः

एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तान्तमेव हि । अन्यत्किं ते प्रवक्ष्यामि तद्ब्रूहि द्विजसत्तम

च्यवन उवाच ।

कीरयोनिं कथं प्राप्तो भवाञ्ज्ञानवतांवरः । तन्मे त्वं कारणं ब्रूहि सर्वसन्देहनाशनम्

कुञ्जल उवाच ।

संसर्गाज्जायते पापं संसर्गात्पुण्यमेव हि । तस्माद्विवर्जयेच्छुद्धो भव्यं विरुद्धमेव च ॥

लुब्धकेनापि पापेन केनाप्येकः शुकःशिशुः । बन्धयित्वा समानीतो विक्रयार्थं समुद्यतः

चाटुकारं सुरूपं तं पटुवाक्यं समीक्ष्य च । गृहीतो ब्राह्मणैकेन मम प्रीत्या समर्पितः

ज्ञानध्यानस्थितो नित्यमहमेव द्विजोत्तम ! ।

स मे बालस्वभावेन कौतुकात्करसंस्थितः ॥ २४ ॥

तस्यकौतुकवाक्यैर्वा मुग्धोऽहं द्विजसत्तम । शुकस्य पुत्ररूपस्य नित्यं तत्परमानसः ॥

मामेवं वदते सोऽपि तातताते ति आस्यताम् ।

स्नातुं गच्छ महाभाग ! देवमर्च्य समाप्यताम् ॥ २६ ॥

इत्यादिचाटुकैर्वाक्यैर्मामेवं परिभाषयेत् । तस्यवाक्यविनोदेन विस्मृतं ज्ञानमुत्तमम् ॥
पुष्पार्थं फलभोगार्थं गतोऽहं वनमेव च । नीतः शुको बिडालेन मम दुःखस्य हेतवे ॥

ममसंसर्गिभिः सर्वैर्वयस्यैः साधुचारिभिः ।
बिडालेन हतः पक्षी तेनैव भक्षितो हि सः ॥ २९ ॥

श्रुत्वा मृत्युं गतं विप्र ! शुकं तं चाटुकारकम् । महतादुःखभावेनअसुखेनाऽतिदुःखित

तस्य दुःखेन मुग्धोऽस्मि तीव्रेणापि सुपीडितः ।
महता मोहजालेन बद्धोऽहं द्विजपुङ्गव ॥ ३१ ॥

प्रालपं रामचन्द्रेति शुकराजेतिपण्डित ! । श्लोकराजेति तं विप्र ! मोहाच्चलितमानस

ततोऽहं दुःखसन्तप्तः सञ्जातः स्वेन कर्मणा ।
वियोगेनापि विप्रेन्द्र शुकस्य शृणु साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥
विस्मृतं तन्मया ज्ञानं सिद्धेनाऽपि प्रकाशितम् ।
संस्मरञ्छोकसन्तप्तस्तं शुकं चाटुकारकम् ॥ ३४ ॥

वत्सवत्सेति नित्यं वै प्रलपञ्छृणु भार्गव । गद्यपद्यमयैर्वाक्यैः संस्कृताऽक्षरसंयुतैः

त्वां विना कश्च मां वत्स बोधयिष्यति साम्प्रतम् ।
कथाभिस्तु विचित्राभिः पक्षिराज प्रसाद्य माम् ॥ ३६ ॥
अस्मिन्सुनिर्जनोद्याने विहाय क्व गतो भवान् ।
केन दोषेण लिप्तोऽस्मि तन्मे कथय साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥

एवंविधैरहं वाक्यैः करुणैस्तैस्तु मोहितः । एवमादि प्रलप्याऽहं शोकेनापि सुपीडि
मृतोऽहं तेन मोहेन तद्भावेनाऽपि मोहितः । मरणे यादृशो भावो मतिश्चासीच्च यादृ
तादृशेनापि भावेन जातोऽहं द्विजसत्तम ! । गर्भवासो मया प्राप्तो ज्ञानस्मृतिविधाय
स्मृतं पूर्वकृतं कर्म स्वयमेव विचेष्टितम् । मया पापेन मूढेन किं कृतं ह्यकृतात्म
गर्भयोगसमारूढः पुनस्तं चिन्तयाम्यहम् । तेन मे निर्मलं ज्ञानं जातं वै सर्वदर्शकम्

गुरोस्तस्य प्रसादाच्च प्राप्तं वै ज्ञानमुत्तमम् ।
तस्य वाक्योदकैः स्वच्छैः कायस्य मलमेव च ॥ ४३ ॥

सबाह्याभ्यन्तरं विप्र क्षालितं निर्मलं कृतम् ।
तिर्यक्त्वं च मया प्राप्तं शुकजातिसमुद्भवम् ॥ ४४ ॥

शुकस्य ध्यानभावेन मरणे समुपस्थिते । तस्मिन्काले मृतो विप्र ! तद्भावेनापि भावितः
तादृशोऽस्मि पुनर्जातः शुकरूपी महीतले । मरणे यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते

तादृशाः स्युस्तु सत्त्वास्तेत द्रूपास्तत्परायणाः ।
तद्गुणास्तत्स्वरूपास्ते भावभूता भवन्ति हि ॥ ४७ ॥

मृत्युकालस्य विप्रेन्द्र भावेनाऽपि न संशयः । अतुलं प्राप्तवाञ्ज्ञानमहमत्र महामते ॥
तेन सर्वं विपश्यामि यद्भूतं यद्भविष्यति । वर्तमानं महाप्राज्ञ ! ज्ञानेनापि महामते ॥

सर्वं विदाम्यहं ह्यत्र संस्थितोऽपि न संशयः ।
तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम् ॥ ५० ॥

नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज । एतत्ते सर्वमाख्यातं शृणु भार्गवनन्दन ! ॥

यत्त्वया पृच्छितं विप्र तत्ते सर्वं प्रकाशितम् ।
स्थलजाच्चोदकात्सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति ॥ ५२ ॥

जन्मान्तरकृतान्पापान्गुरुतीर्थं प्रणाशयेत् । संसारतारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम् ॥

विष्णुरुवाच ।

शुक एवं महाप्राज्ञश्च्यवनाय महात्मने । तत्त्वं प्रकाशयित्वा तु विरराम नृपोत्तम ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं जङ्गमं तीर्थमुत्तमम् । वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्त्तते ॥५५॥

वेन उवाच ।

नाहं राज्यस्य कामार्थी नान्यत्किंचित्प्रकामये ।
सदेहो गन्तुमिच्छामि तव कायं जनार्दन ! ॥ ५६ ॥
एवं वरमहं मन्ये यदि दातुमिहेच्छसि ॥ ५७ ॥

विष्णुरुवाच ।

यज त्वमश्वमेधेन राजसूयेन भूपते ! । गोभूस्वर्णाम्बुधान्यानां कुरु दानं महामते ॥
दानान्नश्यति वै पापं ब्रह्मवध्यादिघोरकम् । चतुर्वर्गस्तु दानेन सिद्ध्यत्येव न संशयः

तस्माद्दानं प्रकर्तव्यं मामुद्दिश्य च भूपते। यादृशेनाऽपि भावेन मामुद्दिश्य ददाति यः
तादृशं तस्य वै भावं सत्यमेवं करोम्यहम्। ऋषीणां दर्शनात्स्पर्शाद्‌भ्रष्टस्ते पापसञ्चयः
आगमिष्यसि यज्ञान्ते मम देहं न संशयः। एवमाभाष्य तं वेनमन्तर्द्धानं गतो हरिः।
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पञ्चाधिकपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां वेनोपाख्याने
गुरुतीर्थमाहात्म्यसम्पूर्तिवर्णने च्यवनचरित्रसमाप्तौ च त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पृथोर्यज्ञार्थराजाज्ञाम्विधाय तपसेप्रस्थानम्।

सूत उवाच।

अन्तर्द्धानं गते विष्णौ वेनो राजा महामतिः। क्व गतो देवदेवेश इति चिन्तापरोऽभवत्
हर्षेण महताऽऽविष्टश्चिन्तयित्वा नृपोत्तमः। समाहूय नृपश्रेष्ठं तं पृथुं मधुराक्षरैः॥
तमुवाच महात्मानं हर्षेण महता तदा। त्वया पुत्रेण भूलोके तारितोऽस्मि सुपातक
नीत उज्ज्वलतां वत्स वंशो मे साम्प्रतं पृथो!।
मया विनाशितो दोषैस्त्वया गुणैः प्रकाशितः॥ ४॥
यजेऽहमश्वमेधेन दास्ये दानान्यनेकशः। विष्णुलोकं व्रजाम्यद्य सकायस्ते प्रसादत
सम्भरस्व महाभाग सम्भारांस्त्वं नृपोत्तम। आमन्त्रय महाभाग ब्राह्मणान्वेदपारगान्
एवं पृथुः समादिष्टो वेनेनापि महात्मना। प्रत्युवाच महात्मा स वेनं पितरमादरात्
कुरु राज्यं महाराज! भुङ्क्ष्व भोगान्मनोऽनुगान्।
दिव्यान्वा मानुषान्पुण्यान्यज्ञैर्यज जनार्दनम्॥ ८॥
एवमुक्त्वा प्रणम्यैव पितरं ज्ञानतत्परम्। धनुरादाय पृथ्वीशः सर्वाणं यत्नपूर्वकम्
आदिदेश भटान्सर्वान्घोषध्वं भूतले मम। पापमेव न कर्तव्यं कर्मणा त्रिविधेन वै
करिष्यन्ति च यत्पापं आज्ञा वेनस्य भूपतेः।

उल्लङ्घ्य वध्यतां सो हि यास्यते नात्र संशयः ॥ ११ ॥
दानमेव प्रदातव्यं यज्ञैश्चैव जनार्दनम् । यजध्वं मानवाः सर्वे तन्मनस्का विमत्सराः ॥
एवं शिक्षां प्रदत्त्वा ऽसौ राज्यं भृत्येषु वेनजः ।
निक्षिप्य च गतो विप्रास्तपोऽर्थे (तपस्यार्थं) तपोवनम् ॥ १३ ॥
सर्वान्दोषान्परित्यज्य संयम्य विषयेन्द्रियान् । शतवर्षप्रमाणं वै निराहारो बभूव ह ॥
तपसा तस्य वै तुष्टो ब्रह्मा पृथुमुवाच ह । तपस्तपसि कस्मात्त्वं तन्मे त्वं कारणं वद॥

पृथुरुवाच ।

वेन एषमहाप्राज्ञः पितामे कीर्तिवर्द्धनः । समाचरति यः पापमस्य राज्ये नराधमः ॥
शिरश्छेत्ता भवत्वेष तस्य देवो जनार्दनः । अदृष्टैश्च महाचक्रैर्हरिः शास्ता भवेत्स्वयम्
मनसा कर्मणा वाचा कर्तुं वाञ्छन्ति पातकम् ।
तेषां शिरांसि त्रुट्यन्तु फलं पक्वं यथा द्रुमात् ॥ १८ ॥
एतदेव वरं मन्ये त्वत्तः शृणु सुरेश्वर ! । प्रजानां दोषभावेन न लिप्यति पिता मम ॥
तथा कुरुष्व देवेश ! वरं दातुं यदीच्छसि । ददस्व उत्तमं कामं चतुर्मुख ! नमोऽस्तु ते

ब्रह्मोवाच ।

एवमस्तु महाभाग पिता ते पूततां गतः ।
विष्णुना शासितो वत्स ! पुत्रेणापि त्वया पृथो ! ॥ २१ ॥
एवं पृथुं समुद्दिश्य वरं दत्त्वा गतो विभुः । पृथुरेव समायातो राज्यकर्मणि संस्थितः
वैन्यस्य राज्ये विप्रेन्द्राः पापं कश्चिन्न चाचरेत् ।
यस्तु चिन्तयते पापं त्रिविधेनाऽपि कर्मणा ॥ २३ ॥
शिरश्छेदो भवेत्तस्य यथा चक्रैर्निकृन्तितः । तदाप्रभृति वै पापं नैव कोऽपि समाचरेत्
तस्याज्ञा वर्तते तस्य वैन्यस्यापि महात्मनः । सर्वलोकाः समाचारैः परिवर्तन्ति नित्यशः
दानभोगैः प्रवर्तन्ते सर्वधर्मपरायणाः । सर्वसौख्यैः प्रवर्द्धन्ते प्रसादात्तस्य भूपतेः ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे वेनोपाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

———

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

वेनस्याश्वमेधादियज्ञकरणपूर्वकंविष्णुलोकगमनम् ।

सूतउवाच ।

वेनस्याज्ञां सुसम्प्राप्य पृथुः परमधार्मिकः ।
सम्बभ्रे सर्वसंस्भारान्नानापुण्यान्नृपात्मजः ॥ १ ॥

निमन्त्र्य ब्राह्मणान्सर्वान्नानादेशोद्भवानपि । अथ वेन इयाजासावश्वमेधेन भूपति

दानान्यदाद्ब्राह्मणेभ्यो नानारूपाण्यनेकशः ।
जगाम वैष्णवं लोकं सकायो जगतीपतिः ॥ ३ ॥

विष्णुना सह धर्मात्मा नित्यमेव प्रवर्तते । एतद्वः सर्वमाख्यातं चरित्रं तस्य भूपते
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखविनाशनम् । पृथुरेव स धर्मात्मा राजा पृथ्वीं प्रशास्ति
त्रैलोक्ये न समं पृथ्वीं दुदोह नृपसत्तमः । प्रजास्तु रञ्जितास्तेन पुण्यधर्मानुकर्म
एतत्ते सर्वमाख्यातं भूमिखण्डमनुत्तमम् । प्रथमं सृष्टिखण्डं तु द्वितीयं भूमिखण्ड

भूमिखण्डस्य माहात्म्यं कथयिष्याम्यहं पुनः ।
अस्य खण्डस्य वै श्लोकं यः श्रृणोति नरोत्तमः ॥ ८ ॥
दिनस्यैकस्य वै पापं तस्य चैव प्रणश्यति ।
यो नरो भावसंयुक्तोऽध्यायं संश्रृणुते सुधीः ॥ ६ ॥

तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः । दत्तस्य गोसहस्रस्य ब्राह्मणेभ्यः सुपर्व
यत्फलं तत्प्रजायेत विष्णुस्तस्य प्रसीदति । अस्य पद्मपुराणस्य पठमानस्य नित्य

कलौ युगे तु विघ्नाश्च न जायन्ते नरस्य वै ॥ १२ ॥

व्यासउवाच ।

कस्मात्कलौ न जायन्ते श्रृण्वानस्य च पद्मज ! ।
नरस्य पुण्ययुक्तस्य नानाविघ्नाः सुदारुणाः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

...स्यास्याप्यश्वमेधस्य यत्फलं परिकथ्यते । तत्फलं दृश्यते तात ! पुराणे पद्मसंज्ञके ॥
...अश्वमेधमखः पुण्यः कलौ नैव प्रवर्तते । पुराणं चापि यत्तद्वदश्वमेधसमं किल ॥१५॥

अश्वमेधस्य यत्पुण्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।

न भुञ्जन्ति नराः पापाः पापमार्गेषु संस्थिताः ॥ १६ ॥

...पुराणस्यास्य पुण्यस्य पद्मसंज्ञस्य सत्तम !। अश्वमेधसमं पुण्यं न भुञ्जन्ति कलौ नराः
...कलौ युगे नरैःपापैर्गन्तव्यं नरकार्णवम् । कस्माच्छ्रोष्यन्ति तत्पुण्यं चतुर्वर्गप्रसाधनम्
...न श्रुतमिदं पुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञकम् । सर्वं हि साधितं तेन चतुर्वर्गस्य साधनम् ॥
...अश्वमेधादयो यज्ञास्तस्मान्नष्टा महामते । कलौ युगे गताः स्वर्गं सवेदाः साङ्गसस्वराः

यःकोऽपि सत्त्वसम्पन्नः श्रद्धावान्भगवत्परः ।

श्रोतुमिच्छति धर्मात्मा सपुत्रो भार्यया सह ॥ २१ ॥

...श्रवणार्थं महाश्रद्धा पूर्वं तस्य प्रजायते । शृण्वानस्य नरस्यापि महाविघ्नो न सञ्चरेत्
...श्रद्धा जायते पूर्वं पाठकस्य नरस्य च । लोभश्च जायते तस्य शृण्वानस्य द्विजोत्तम !

प्रेषितो विष्णुदेवेन महामोहः सदारुणः ।

अकरोत्स विनाशं तु शृण्वतश्चास्य नित्यशः ॥ २४ ॥

दूषकाः कुत्सकाः पापाः सम्भवन्ति दिने दिने ।

ज्ञातव्यं तु सुबुद्धेन विघ्नरूपं ममाधुना ॥ २५ ॥

सञ्जातं दृश्यते व्यास ! तथा होमं समाचरेत् ।

वैष्णवैश्च महामन्त्रैर्विष्णुसूक्तैः सुपुण्यदैः ॥ २६ ॥

...विष्णोरराट मन्त्रेण सहस्रशीर्षकेन च । इदं विष्णु सुमन्त्रेण आब्रह्मेण पुनः पुनः ॥
...त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण होममेवं समाचरेत् । बृहत्साम्ना सुमन्त्रेण द्वादशाक्षरकेण च ॥
...यस्य देवस्य यो होमस्तस्य मन्त्रेण होमयेत् । अष्टोत्तरतिलाज्यैश्च पालाशैः समिधैरपि
...ग्रहाणामपि कर्तव्यं स्थापनं पूजनं द्विज ! विघ्नेशं पूजयेत्तत्र शारदां च सुरेश्वरीम् ॥

जातवेदां महामायां चण्डिकां क्षेत्रनायकम् ।

तिलैश्च तण्डुलैराज्यैस्तेषां मन्त्रसमुद्यतैः ॥ ३१ ॥
एवं होमः प्रकर्त्तव्यो ब्राह्मणेभ्यो ददेद्धनम् ।
यथा सम्भविकां तात ! दक्षिणां धेनुसंयुताम् ॥ ३२ ॥
ततो विघ्नाः प्रणश्यन्ति पुराणं सिद्धिमाप्नुयात् ।
एवं न कुरुते यो हि तस्य विघ्नं वदाम्यहम् ॥ ३३ ॥
तस्याङ्गे जायते रोगो बहुपीडाप्रदायकः । भार्याशोकः पुत्रशोको धनहानिः प्रजा
नानाविधान्महान्रोगान् भुञ्जते नात्र संशयः ।
यस्य गेहे नास्ति वित्तमुपवासं समाचरेत् ।
एकादशीं सुसम्प्राप्य पूजयेन्मधुसूदनम् । षोडशैश्चोपचारैश्च भावयुक्तेन चेतसा ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथा वित्तानुसारतः। केशवाय ततो दत्वासङ्कल्पंहविषाऽग्नि
स्वयं कुर्य्यात्ततः प्राज्ञो भोजनं सह बान्धवैः ।
पुत्रैस्तु भर्यया युक्तस्ततः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
पुराणसंहितापूर्णा श्रोतव्या धर्मतत्परैः । चतुर्वर्गस्य वै सिद्धिर्जायते तस्य नान्य
सपादं लक्षमेकं तु ब्रह्माख्यं पुष्करं शृणु ।
कृते युगे तु निष्पापाः शृण्वन्ति मनुजा द्विज ! ॥ ४० ॥
लक्षस्यार्द्धं ततः कृत्स्नं पुराणं पद्मसंज्ञकम् ।
श्लोकानां तु सहस्राभ्यां द्वाभ्यामेव तथाधिकम् ॥ ४१ ॥
त्रेतायुगे तथा प्राप्ते यदा श्रोष्यन्ति मानवाः ।
चतुर्वर्गफलं भुक्त्वा ते यास्यन्ति हरिं पुनः ॥ ४२ ॥
द्वाविंशतिसहस्राणि संहिता पद्मसंज्ञिता । द्वापरे कथिता विप्र ! ब्रह्मणा परमात्
द्वादशैव सहस्राणां पद्माख्या सा तु संहिता ।
कलौ युगे पठिष्यन्ति मानवा विष्णुतत्पराः ॥ ४४ ॥
एकोऽर्थश्चैकभावश्च चतुर्ष्वपि प्रवर्तितः । संहितास्वेव विप्रेन्द्र ! शेषाख्यानप्रविस्त
द्वादशैव सहस्राणि नाशं यास्यन्ति सत्तम ! ।

कलौ युगे तु सम्प्राप्ते प्रथमं हि भविष्यति ॥ ४६ ॥
[भ]ूमिखण्डं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । मुच्यते सर्वदुःखेभ्यः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥
[अ]न्यत्सर्वं परित्यज्य जपं दानं तथा श्रुतम् । श्रोतव्यं हि प्रयत्नेन पद्माख्यं पापनाशनम्
[प्रथ]मं सृष्टिखण्डं तु द्वितीयं भूमिखण्डकम् । तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम्
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या पञ्चखण्डान्यनुक्रमात् ॥ ५० ॥
[गो]मदानसहस्रस्य मानवो लभते फलम् । महाभाग्येन लभ्यन्ते पञ्चखण्डानि भूसुराः ॥
श्रुतानि मोक्षदानि स्युः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५२ ॥

[इ]ति श्रीपाद्मपुराणे द्वितीये भूमिखण्डे पञ्चपञ्चाशत्सहस्रसंहितायां वेनोपाख्याने पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

* समाप्तोऽयं भूमिखण्डो द्वितीयः *

* शुभमस्तु *



* श्रीगणेशाय नमः *

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

पद्मपुराणम्

अथतृतीयं स्वर्गखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

श्रीपुराणपुरुषायनमः ।

नैमिषेस्वर्गखण्डकृतेशौनकादीनां सूतम्प्रतिप्रश्नः ।

ॐनमो विघ्नहर्त्रेॐनमःश्रीमते ।

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरावन्दितमुत्तमाढ्यम् ।
जगज्जनानां हृदि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम् ॥ १ ॥
...ज्ञा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसन्निभाः । हिमवद्वासिनो वेदवेदाङ्गपरिनिष्ठिताः ॥
त्रिकालज्ञा महात्मानो नानापुण्याश्रमाश्रयाः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ॥ ३ ॥
...र्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः । श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥
...र्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः । जम्बूमार्गरता ये च ये च सत्यनिवासिनः
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः ॥ ६ ॥
पूजयित्वा विधिवत्तेन ते च सुपूजिताः । आसनेषु विचित्रेषु बृस्यादिषु यथाक्रमम्
शौनकेन प्रदत्तेषु आसीनास्ते तपोधनाः ।
कृष्णाश्रिताः कथाः पुण्याः परस्परमथाब्रुवन् ॥ ८ ॥

कथान्ते ततस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्। आजगाम महातेजाः सूतस्तत्र महा
व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः। तान्प्रणम्य यथान्यायं स तैश्चैवाऽभिपू
उपविष्टं यथायोग्यं शौनकाद्या महर्षयः। व्यासशिष्यं सुखासीनं सूतं वै रोमह

तं पप्रच्छुर्महाभागाः शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ १२ ॥

ऋषय ऊचुः।

पौराणिक! महाबुद्धे! रोमहर्षण! सुव्रत!।
त्वत्तः श्रुता महापुण्याः पौराणिक्यःकथाःपुरा ॥ १३ ॥
साम्प्रतं च प्रवृत्ताः स्म कथायां सक्षणा हरेः।
स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ १४ ॥

पुनः पुराणमाचक्ष्व हरिवार्तासमन्वितम्। हरेरन्या कथा सूत श्मशानसदृशी स
हरिस्तीर्थस्वरूपेण स्वयं तिष्ठति तच्छ्रुतम्। तीर्थानां पुण्यदातॄणां नामानि कि
कुत एतत्समुत्पन्नं केन वा परिपाल्यते। कस्मिन्विलयमभ्येति जगदेतच्चराच

क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पूज्याः शिलोच्चयाः।
नद्यश्च काः पराः पुण्या नृणां पापहराःशुभाः ॥ १८ ॥
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥ १९ ॥

सूतउवाच।

साधु साधु महाभागाः साधु पृष्टं तपोधनाः। तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसं
पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं विद्याधारं विपुलमतिदं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं स्वमतिविषयं शुद्धतेजोविशालं वेदव्यासं विततयशसं सर्वदाऽहं न
नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे। यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथा
प्रवक्ष्यामि महापुण्यं पुराणं पद्मसंज्ञितम्। सहस्रं पञ्चपञ्चाशत्सप्तखण्डैः समन्वि

तत्राऽऽदौ सृष्टिखण्डं स्याद्भूमिखण्डं ततः परम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ॥ २४ ॥

पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च। क्रियाखण्डं सप्तमं स्यादित्येवं खण्ड

एतदेव महापद्ममद्भुतं यन्मयं जगत् । तद्वृत्तान्ताश्रयं तस्मात्पाद्ममित्युच्यते बुधैः
एतत्पुराणममलं विष्णुमाहात्म्यमुत्तमम् । देवदेवो हरिर्यद्वै ब्रह्मणे प्रोक्तवान्पुरा ॥२७॥
ब्रह्मा तन्नारदायाऽऽह नारदोऽस्मद्गुरोः पुरः ।
व्यासः सर्वपुराणानि सेतिहासानि संहिताः ॥ २८ ॥
अध्यापयामास मुहुर्मामतिप्रियमात्मनः । तदहं सम्प्रवक्ष्यामि पुराणमतिदुर्लभम् ॥
यच्छ्रुत्वा ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नरः । सर्वतीर्थाभिषेकं च लभते शृणुते हि यः
श्रद्धया परया भक्त्या श्रुतमात्रेण मुक्तिदः । अश्रद्धयाऽपि शृणुते लभते पुण्य सञ्चयम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाद्मं शृणुत मन्मुखात् ॥ ३२ ॥
तत्रादिखण्डं वक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्व सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः ॥ ३३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे सूतप्रतिशौनकादिमहर्षिणां स्वर्गखण्ड विषयकप्रश्नकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

अव्याकृतब्रह्मणःमहाभूतादि ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

आदिसर्गमहं तावत्कथयामि द्विजोत्तमाः । ज्ञायते येन भगवान्परमात्मा सनातनः ॥
सर्वतः प्रलयादूर्ध्वं नासीत्किञ्चिद्द्विजोत्तमाः । ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योतिर्वै सर्वकारकम्
नित्यं निरञ्जनं शान्तं निर्मलं नित्यनिर्मलम् ।
आनन्दसागरं स्वच्छं यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥ ३ ॥
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् । अविनाशि सदास्वच्छमच्युतं व्यापकं महत् ॥
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम् । आत्मलीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे

तस्मात्प्रधानमुद्भूतं ततश्चाऽपि महानभूत् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥ ६ ॥
प्रधानेनावृतो ह्येव त्वचावीजमिवावृतम् । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः
त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत । यथा प्रधानेन महान्महता स तथावृतः ॥ ८
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः । ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणं
शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः सममावृणोत् । शब्दमात्रं तथाऽऽकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज
वलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत्
ततोवायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ १२ ॥
स्पर्शमात्रस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसमात्राणि तानि तु ।
रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ॥ १४ ॥
विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे ।
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाऽधिका ॥ १५ ॥
ससङ्घातोयतस्तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रात्तेन तन्मात्रता स्मृता ॥ १६ ॥
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशोऽपराः । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात्
कीर्तितस्तुसमासेन मुनिवर्यास्तपोधनाः । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश
एकादशं मनश्चात्र कीर्तितं तत्वचिन्तकैः । ज्ञानेन्द्रियाणिपञ्चाऽत्रपञ्चकर्मेन्द्रियाणि
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावनाः ।
श्रवणं त्वक्चक्षुर्जिह्वा नासिका चैव पंञ्चमी ॥ २० ॥
शब्दादिज्ञानसिद्ध्यर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै । पायूपस्थं हस्तपादौ कीर्तिता वाक्पञ्चमी
विसर्गानन्दनादानगत्युक्तिकर्म तत्स्मृतम् । आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी
शब्दादिभिर्गुणैर्विप्राः संयुक्ता उत्तरोत्तरैः ।

नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ॥ २३ ॥
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागत्य कृत्स्नशः ।
समेत्यान्योऽन्य संयोगपरस्परमथाश्रयात् ॥ २४ ॥

एकसङ्घातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः । पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानाऽनुग्रहेण च
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते । तत्क्रमेण विवृद्धं तु जलबुद्बुदवत्सदा
भूतेभ्योऽण्डं महाप्राज्ञा वृद्धं तदुदकेशयम् । प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम्
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः । ब्रह्मरूपं समास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः
स्वेदजाण्डमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः । गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभून्महदात्मनः ॥
अद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसङ्ग्रहः । तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्
अनादिनिधनस्यैव विष्णोर्नाभेः समुत्थितम् । यत्पद्मं तद्धैममण्डमभूद्धृषीकेशवेच्छया
रजोगुणधरो देवः स्वयमेव हरिः परः । ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्स्रष्टुं प्रवर्तते ॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना । नारसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥३३॥

स ब्रह्मरूपं विसृजन्महात्मा जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति बभूव रुद्रो जगदेतदत्तुम् ॥ ३४ ॥

इतिश्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे अव्याकृतब्रह्मणःपञ्चभूतादि
ब्रह्माण्डोत्पत्तिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

द्वीपादिविभागवर्णनम् ।

ऋषयऊचुः ।

नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सर्वशः । तथा जनपदानां च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः
प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्याः किल सर्वतः । निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सत्तम

सूत उवाच ।

पञ्चेमानि महाप्राज्ञ महाभूतानि सङ्ग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च । गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधान
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः । भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदि
चत्वारोऽप्सु गुणा विप्रा गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ॥ ६ ॥
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव च ।
एते पञ्च गुणा विप्रा महाभूतेषु पञ्चसु ॥ ७ ॥
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः । अन्योन्यं नातिवर्तन्ते साम्यं भवति वै
यदा तु विषमीभावमाविशान्ति परस्परम् । तदादेहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्य
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः । सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वर
यत्र यत्र हि दृश्यन्ते धावन्नि पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तान्न तर्केण साधयेत् ।
सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु मुनिपुङ्गवाः ॥ १२ ॥
परिमण्डलो महाभागा द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ।
नदीजलपरिच्छिन्नः पर्वतैश्चाब्धिसन्निभैः ॥ १३ ॥
पुरैश्चविविधाकारैरम्यैर्जनपदैस्तथा । वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नो धनधान्यवा
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः । यथा हि पुरुषः पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ॥१
एवं सुदर्शनो द्वीपो दृश्यते चक्रमण्डलः । द्विरंशे पिप्पलस्तस्य द्विरंशे च शशो मह
सर्वौषधीः समादाय सर्वतः परिवारितः । आपस्ततोऽन्या विज्ञेयाः शेषः संक्षेप उ

ऋषयऊचुः ।

उक्तो यस्य च संक्षेपो बुद्धिमन्विधिवत्त्वया ।

तत्त्वज्ञश्चासि सर्वस्य विस्तरं सूत ! नो वद ॥ १८ ॥
वान्भूम्यवकाशोऽयं दृश्यते शशलक्षणे तस्य प्रमाणं प्रब्रूहि ततो वक्ष्यसि पिप्पलम्
एवं तैः किल पृष्टः स सूतो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ २० ॥

सूत उवाच ।

यता महाप्राज्ञाः षडेते रत्नपर्वताः । अवगाढा ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥
वान्हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः । नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतश्च शशिसन्निभः ॥
धातुपिनद्धश्च शृङ्गवान्नामपर्वतः । एते वै पर्वता विप्राः सिद्धचारणसेविताः ॥
मन्तरविष्कम्भा योजनानि सहस्रशः । तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि सत्तमाः
न्ति तेषां सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः । इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥
कूटात्परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण च ॥ २६ ॥
प्रागायतो महाभागा माल्यवान्नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ २७ ॥
मण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः । आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥
जनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः । अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां द्विजोत्तमः
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्यो तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता द्विजाः ॥ ३० ॥
श्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च सत्तमाः । उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥
विहङ्गसुमुखो यस्तु सुपार्श्वस्यात्मजः किल ।
स वै विचिन्तयामास सौवर्णान्प्रेक्ष्य वायसान् ॥ ३२ ॥
त्तममध्यानामधमानां च पक्षिणाम् । अविशेषकरो यस्मात्तस्मादेनं त्यजाम्यहम्
दित्योऽनुपर्येति सततं ज्योतिषां वरः । चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो वायुश्चैव प्रदक्षिणः
र्वतो महाप्राज्ञा ! दिव्यपुष्पसमन्वितः । भवनैरावृतैः सर्वैर्जांबूनदमयैः शुभैः ॥३५॥
देवगणा विप्रा गन्धर्वासुरराक्षसाः । अप्सरोगणसंयुक्ताः शैले क्रीडन्ति सर्वदा
ब्रह्मा च रुद्रश्च शक्रश्चापि सुरेश्वरः । समेत्य विविधैर्यज्ञैर्यजन्तेऽनेकदक्षिणैः

तुम्बुरुर्नारदश्चैव विश्वावसुर्हाहाहूहूः । अभिगम्याऽमरश्रेष्ठं स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः

सप्तर्षयो महात्मानः कश्यपश्च प्रजापतिः ।

तत्र गच्छन्ति भद्रं वः सदा पर्वणि पर्वणि॥ ३६ ॥

तस्यैव मूर्द्धन्युशना ! काव्यो दैत्यैर्महीयते । तस्य हैमानि रत्नानि तस्यैते रत्नपर्व

तस्मात्कुबेरोभगवाँश्चतुर्थं भागमश्नुते । ततःकलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छ

पर्वतस्यान्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् । कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुच्छ्रि

तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यभूतैः समावृतः । उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः

कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रदापादलम्बिनीम् ।

त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्द्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ ४४ ॥

तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।

पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥ ४५ ॥

तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा द्विजोत्तमाः । विश्वरूपात्परिमिता भीमनिर्घातनिस्वन

पुण्यापुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा । प्लवन्ती च प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे

तया ह्युत्पादितः पुण्यः सह्रदः सागरोपमः । तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि

शतं वर्षसहस्राणि शिरसैव पिनाकधृक् । मेरोस्तु पश्चिमे पार्श्वे केतुमालो द्विजोत्त

जम्बूखण्डे तु तत्रैव महाजनपदो द्विजाः । आयुर्दशसहस्राणि वर्षाणां तत्र सत्तमा

सुवर्णवर्णाश्च नराःस्त्रियश्चाप्सरसां समाः ।

अनामया वीतशोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ ५१ ॥

जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः । गन्धमादनश्रृङ्गेषु कुबेरः सह राक्षसैः ॥

संवृतोऽप्सरसां सङ्घैर्मोदते गुह्यकाधिपः । गन्धमादनपार्श्वे तु परे विगतपातका

एकादशसहस्राणि वर्षाणां परमायुषः । तत्र कृष्णा नरा विप्रास्तेजोयुक्ता महाबला

स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ।

नीलोत्पलधरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं वरम् ॥ ५५ ॥

वर्षमैरावतं विप्रा नानाजनपदावृतम् । धनुषी ते महाभागा द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥

इलावृतं मध्यगं तु पञ्चवर्षाणि चैव हि। उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः॥५७॥
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः। समन्वितानि भूतानि तेषु सर्वेषु सत्तमाः
एवमेषा महाभागाः पर्वतैः पृथिवी चिता। हेमकूटस्तु सुमहान्कैलासो नामपर्वतः॥
तत्र वैश्रवणो देवो गुह्यकैः सह मोदते। अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति॥

हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः।
तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम्॥ ६१॥
रम्यं विष्णुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः।
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः॥ ६२॥
यूपामणिमयास्तत्र क्षेत्राश्चापि हिरण्मयाः।
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः॥ ६३॥

स्रष्टा भूतिपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातनः। उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः॥
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः। तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता
ब्रह्मलोकादपाक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते। वटोदका सा नलिनी पार्वती च सरस्वती॥

जम्बूनदी च सीता च गङ्गासिन्धुश्च सप्तमी।
अचिन्त्या दिव्यसंज्ञा सा प्रभावैश्च समन्विता॥ ६७॥

उपास्यते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये। दृश्याऽदृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती॥
एता दिव्याः सप्तगङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः। रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे च गुह्यकाः
सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम्। देवासुराणां सर्वेषां श्वेतः पर्वत उच्यते
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा। शृङ्गवांस्तु महाभागा देवानां प्रतिसञ्चरः॥

इत्येतानि महाभागाः सप्तवर्षाणि भागशः।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च॥ ७२॥

तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषा। अशक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेया तु विभूषिता

यां तु पृच्छथ मां विप्रा दिव्यामेनां शशाकृतिम्।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे॥ ७४॥

कर्णे तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च । कर्णद्वीपशिलो विप्राः श्रीमान्मलयपर्वतः ॥
एतद्द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशिसंस्थितम् ॥ ७६ ॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानाद्वीपविभागवर्णनेषड्रत्नमेरुपर्वतादिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

मेरुपर्वतस्योत्तरप्रान्तवर्णनम् ।

ऋषयऊचुः ।

मेरोरथोत्तरं पश्चात्पूर्वमाचक्ष्व सूत नः । निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥

सूत उवाच ।

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो विप्राः पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥ २ ॥
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा द्विजोत्तमाः ।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र द्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥
ये क्षरन्ति सदा क्षीरं तत्रं पञ्चामृतोपमम् । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च
सर्वा मणिमयीभूमिःसूक्ष्मकाञ्चनवालुका । सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निर्मलाश्च तपोधनाः ।
देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः । शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः
मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥ ८ ॥
मिथुनं जायते काले समन्ताच्च प्रवर्द्धते । तुल्यरूपगुणोपेतं समवेशं तथैव च ॥ ९

एकमेवानुरूपं च चक्रद्वयसमं द्विजाः । निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । जीवन्ति ते महाभागा न चान्योन्यं जहत्युत ॥
भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डामहाबलाः । तान्निर्हरन्तीहमृतान्दरीषु प्रक्षिपन्ति च
उत्तराः कुरवो विप्रा व्याख्यातास्ते समासतः । मेरुपार्श्वमहं पूर्वं प्रवक्ष्यामि यथातथम्
तस्य मूर्द्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य तपोधनाः । भद्रशालवनं यत्र कालाम्राश्च महाद्रुमाः
कालाम्रास्तु महाभागा नित्यं पुष्पफलाः शुभाः ।
द्रुमाश्च योजनोत्सेधाः सिद्धचारणसेविताः ॥ १५॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः
चन्द्रवर्णाश्चतुर्वर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्राश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥
दशवर्षसहस्राणि तत्रायुर्द्विजसत्तमाः । कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥
सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः । तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः
योजनानां सहस्रं च शतं च द्विजसत्तमाः । तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वे पूर्वानुगान्तकाः
योजनानां सहस्राणि पञ्चाशन्माल्यवान्द्विजाः । महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः
ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे च ब्रह्मवादिनः । तपस्तप्यन्ति ते दिव्यं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ति दिवाकरम् । षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च
अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् । षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ॥
आदित्यतापतप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ २५ ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मेरुपर्वतस्योत्तरप्रान्तवर्णनंनाम

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———

पञ्चमोऽध्यायः

मेरुप्रदेशस्यदक्षिणप्रान्तवर्णनम् ।

ऋषयऊचुः ।

वर्षाणां चैव नामानि पर्वतानां च सत्तम । आचक्ष्व नो यथातत्त्वं ये च पर्वतवासि

सूत उवाच ।

दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु । वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः । निःसपत्नाश्च ते सर्वे जायन्ते तत्र मानवा
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति ते महाभागा नित्यं मुदितमानस
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु । वर्षं हिरण्मयं नाम यत्र हैरण्वती नदी
यत्र चायं महाप्राज्ञाः पक्षिराट् पतगोत्तमः । यज्ञानुगा विप्रवरा धन्विनः प्रियदर्श
महाबलास्तत्र जना विप्रा मुदितमानसाः । एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते तपोध

आयुः प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ।
शृङ्गाणि च पवित्राणि त्रीण्येव द्विजपुङ्गवाः ॥ ८ ॥

एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् । सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥

तत्र स्वयं प्रभा देवी नित्यं वसति शृङ्गिणी ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥

वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गवतः परम् । न तु तत्र सूर्यगतिर्जीर्यन्ते न च मानवा
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवाऽऽवृतः । पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणा
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः । अनिष्पन्ना नष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रि

देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो द्विजाः ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥

आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा धार्मिकपुङ्गवाः । क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः

हरिस्तिष्ठति वैकुण्ठः शकटे कनकामये। अष्टचक्रं हि तद्यानं भूतयुक्तं मनोजवम्॥
अग्निवर्णं महातेजो जाम्बूनदविभूषितम्। सप्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च द्विजसत्तमाः॥
संक्षेपे विस्तरे चैव कर्त्ता कारयिता तथा।
पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च सत्तमाः॥ १८॥
सयज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः॥ १९॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मेरुपर्वतस्यदक्षिणप्रदेशवर्णनंनाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

भारतवर्षवर्णनेनतस्यकुलपर्वतमहानदीदेशवर्णनम्।

ऋषयऊचुः।

यदिदं भारतं वर्षं पुण्यं पुण्यविधायकम्।
तत्सर्वं नः समाचक्ष्व त्वं हि नो बुद्धिमान्मतः॥ १॥

सूत उवाच।

अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि वर्षं भारतमुत्तमम्। प्रियमित्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च
पृथोश्च प्राज्ञो वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः। ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च
तथैव मुचुकुन्दस्य कुबेरोशीनरस्य च। ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा॥४॥
कुशिकस्यैव राजर्षेर्गाधेश्चैव महात्मनः। सोमस्य चैव राजर्षेर्दिलीपस्य तथैव च॥
अन्येषां च महाभागाः क्षत्रियाणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव भूतानां प्रियं भारतमुत्तमम्॥ ६॥
ततो वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमहो द्विजाः। महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षवानपि
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः। तेषां सहस्रशो विप्राः पर्वतास्ते समीपतः

अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ।
अन्ये तु ये परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ॥ ९ ॥
आर्यम्लेच्छसधर्माणस्ते मिश्राः पुरुषद्विजाः ।
नदीं पिबन्ति विमलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ॥ १० ॥
गोदावरीं नर्मदां च बहुदां च महानदीम् । शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ॥
दृषद्वतीं वितस्तां च विपाशां स्वच्छबालुकाम् ।
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णां वेणीं च निम्नगाम् ॥ १२ ॥
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ।
वेदस्मृतिं वेदशिरां त्रिदिवां सिन्धुलाकृमिम् ॥ १३ ॥
करीषिणीं चित्रवहां त्रिसेनां चैव निम्नगाम् ।
गोमतीं धूतपापां च चन्दनां च महानदीम् ॥ १४ ॥
कौशिकीं त्रिदिवां हृद्यां नाचितां रोहितारणीम् ।
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च द्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥
चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा । शरावतीं पयोष्णीं च भीमां भीमरथीम्
कावेरीं चुलुकां चापि तापीं शतमलामपि ।
नीवारां महितां चापि सुप्रयोगां तथा नदीम् ॥ १७ ॥
पवित्रां कृष्णलां सिन्धुं वाजिनीं पुरमालिनीम् ।
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमां मालावतीं तथा ॥ १८ ॥
पलाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् । करिषिणीमसिक्नीं च कुशचीरीं महानदीम्
मरुतां प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा । अनावतीमनुष्णां च सेव्यां कापीं च सत्
सदावीरामधृष्यां च कुशचीरां महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥ २१ ॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुचीरामम्बुवाहिनीम् । वैनन्दीं पिङ्गलां वेणां तुङ्गवेगां महानदीम्
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।

धेनुं सकामां वेदस्वां हविःस्रावां महापथाम् ॥ २३ ॥
क्षिप्रां च पिच्छलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम् ।
कौणिकीं निम्नगां शोणां वाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥ २४ ॥
दुर्गामन्तःशिलां चैव ब्रह्ममेध्यां दृषद्वतीम् । परोक्षामथरोहीं च तथा जम्बूनदीमपि ॥
सुनासां तमसां दासीं सामान्यां वरणामसिम् ।
नीलां धृतिकरीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ २६ ॥
मानवीं वृषभां भासां ब्रह्ममेध्यां दृषद्वतीम् । एताश्चान्याश्च वहुला महानद्यो द्विजर्षभाः
सदा निरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च सत्तमाः ॥ २८ ॥
चित्रोत्पलां चित्ररथामतुलां रोहिणीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोकां चापि महानदीम् ॥ २९ ॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम् । लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम्
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च सत्तमाः ॥ ३१ ॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा न नद्यः सुप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥
इत्येतास्सरितो विप्राः समाख्याता यथास्मृति ।
अतऊर्ध्वं जनपदान्निबोधत वदाम्यहम् ॥ ३३ ॥
तत्रेमे कुरुपाञ्चलाः शाल्वमात्रेयजाङ्गलाः । शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बौधा मालास्तथैव च
मत्स्याः कुशट्टाः सौगन्ध्याः कुत्सपाः काशिकोशलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ३५ ॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैःसह । पञ्चालाःकोशलाश्चैव नैकपृष्ठयुगन्धराः ॥
बोधमद्राः कलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः । जठराः कुकुराश्चैव सुदशार्णाः सुसत्तमाः
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः । गोमन्तामल्लकाः पुण्ड्रा विदर्भा नृपवाहिकाः

अश्मकाः सोत्तराश्चैव गोपराष्ट्राः कनीयसः । अधिराज्यकुशट्टाश्च मल्लराष्ट्राश्च केरलाः ॥
मालवाश्चोपवास्याश्च चक्रावाक्त्रालयाः शकाः ।
विदेहा मगधाः सह्मा मलजाविजयास्तथा ॥ ४० ॥
अङ्गा बङ्गाः कलिङ्गाश्च यक्रुल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा महिषाः शशकास्तथा ॥ ४१ ॥
बाह्लिकावाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पङ्कलाश्चर्मचण्डिकाः ॥ ४२ ॥
अटवीशेखाराश्चैव मेरुभूताश्च सत्तमाः । उपावृत्तानुपावृत्ताः सुराष्ट्राः केकयास्तथा ॥
कुट्टापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्धाश्च बहवो विप्रा अन्तर्गिर्यस्तथैव च ॥ ४४ ॥
बहिर्गिर्य्योऽङ्गमलदा मगधामालवार्घटाः । सत्वतराः प्रावृषेया भार्गवाश्च द्विजर्षभ ॥
पुण्ड्राभार्गाःकिराताश्च सुदेष्णा भासुरास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ॥ ४६ ॥
पूर्णलाः पूतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कुशकास्तथा ।
तरिग्रहाश्शूरसेना ईजिकाः कल्पकारणाः ॥ ४७ ॥
तिलभागामसाराश्च मधुमत्ताः ककुन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥ ४८ ॥
अभीसाराः कुद्रुताश्च सौरिला वाह्लिकास्तथा । दर्वी च मालवादर्वावातजामरथोरगाः ॥
बलरट्टास्तथा विप्राः सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वन्धा करीकषाश्चैव कुलिन्दा गन्धिकास्तथा ॥ ५० ॥
वना यवोदशाः पार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
काच्छा गोपालकच्छाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५१ ॥
किराता बर्बराः सिद्धाःवैदेहास्ताम्रलिप्तिकाः ॥
ओड्रम्लेच्छाः ससैरिन्द्राः पार्वतीयाश्च सत्तमाः ॥ ५२ ॥

अथाऽपरे जनपदा दक्षिणा मुनिपुङ्गवाः। द्रविडाः केरलाः प्राच्यामूषिकावालमूषिकाः
कर्णाटका माहिषका विकन्धा मूषिकास्तथा।
झल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदानलकाननाः ॥ ५४ ॥
कौक्कुटकास्तथा बोलाः कोङ्कणा मणिवालकाः।
समङ्गाः कनकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ५५ ॥
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिवर्गा माल्यसेनयः।
व्यूढकाः कोरकाः प्रोष्टाः सङ्गवेगधरास्तथा ॥ ५६ ॥
तथैव विन्ध्यरुलिकाः पुलिन्दा वल्वलैः सह। मालवामलराश्चैव तथैवापरवर्तकाः ॥५७॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव चण्डकाः कुरटास्तथा।
मुशलास्तनवालाश्च सतीर्थाः पूतिसृञ्जयाः ॥ ५८ ॥
अनिदायाः शिवाटाश्च तपनाः सूतपास्तथा। ऋषिकाश्च विदर्भाश्च स्तङ्गनापरतङ्गकाः
उत्तराश्चापरे म्लेच्छा जना हि मुनिपुङ्गवाः।
जवनाश्च सकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६० ॥
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारिसिकैः सह।
तथैव रमणाश्चान्यास्तथा च दशमालिकाः ॥ ६१ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च। शूराभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह॥
खाण्डीकाश्चतुषाराश्च पह्नगा गिरिगह्वराः।
आद्रेयाः सभिरादाजास्तथैव स्तनपोषकाः ॥ ६३ ॥
द्रोपकाश्च कलिङ्गाश्च किरातानां च जातयः। तोमराहन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥
एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता द्विजाः ॥ ६५ ॥
यथागुणवलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीपाद्मपुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भारतवर्षस्य कुलपर्वतमहानदीदेशादीना-
म्वर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

भारतवर्षस्थकालनिर्णयपुरःसरंलोकस्थितिवर्णनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च । प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशु
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च सत्तम । आचक्ष्व नो विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ।

सूत उवाच ।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनिपुङ्गवाः । कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च द्विजसत्तमाः
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं द्विजाः । तत्पश्चाद्द्वापरं चाथ ततस्तिष्यः प्रवर्ते

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुङ्गवाः ।
आयुः सङ्ख्या कृतयुगे सङ्ख्याता हि तपोधनाः ॥ ५ ॥
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायामायुषो विदुः ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥
तत्प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्ये तु मुनिपुङ्गवाः ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः । प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्र
द्विजाः कृतयुगे विप्रा बलिनः प्रियदर्शनाः । प्रजायन्ते च जाताश्च मुनयो वै तपोध

महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शा वपुष्मन्तो महावीर्य्या धनुर्धराः ॥ १० ॥
वीरा हि युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसंमताः ।
त्रेतायां क्षत्रियास्तावत्सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥ ११ ॥

सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदैव द्वापरे युगे । महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परवधैषिण

तेजसान्त्रेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषाःकिलः ।

लुब्धाश्चानृतकाश्चैव तिष्ये जायन्ति भो द्विजाः ! ॥ १३ ॥
ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवन्ति भूतानां रागोलोभश्च सत्तमाः ॥ १४ ॥
संक्षेपो वर्त्तते विप्रा द्वापरे युगमध्यगे । गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥ १५ ॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भारतवर्षस्थकालनिर्णयपुरस्सरंलोकस्थिति वर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

जम्बूद्वीपविष्कम्भपरिमाणं शाकद्वीपवर्णनञ्च।

ऋषय ऊचुः ।

जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सत्तम ! ।
विष्कम्भस्य च प्रब्रूहि परिमाणं हि तत्त्वतः ॥ १ ॥
समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शन ! ।
शाकद्वीपं च नो ब्रूहि कुशद्वीपं च धार्मिक ! ॥ २ ॥
शाल्मलं चैव तत्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

विप्राः सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् । सप्तद्वीपान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजपुङ्गवाः
अष्टादशसहस्राणि योजनानि द्विजोत्तमाः ।
षट्चतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥ ५ ॥
लवणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः । सिद्धचारणसङ्कीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥
शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह सत्तमाः । शृणुताद्य यथान्यायं ब्रुवतो मम धार्मिकाः

जम्बूद्वीपप्रमाणेन द्विगुणः स द्विजर्षभाः। विष्कम्भेन महाभागाः सागरोऽपि विभागशः
क्षीरोदो मुनिशार्दूला येन सम्परिवारितः। तत्र पुण्या जनपदास्तत्र न म्रियते जनः।
कुत एव हि दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते। शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावन्मुनिसत्तमाः
उक्त एष महाभागाः किमन्यत्कथयामि वः ॥ ११ ॥

ऋषयऊचुः।

शाकद्वीपस्य संक्षेपो यथावदिह धार्मिक!। उक्तस्त्वया महाप्राज्ञ विस्तरं ब्रूहि तत्त्वतः

सूत उवाच।

तथैव पर्वता विप्राः सप्ताऽत्र मणिपर्वताः। रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि वच्मि
अतीवगुणवत्सर्वं तत्त्वं पृच्छथ धार्मिकाः। देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते
प्रागायतो महाभागा मलयो नाम पर्वतः। ततो मेघाः प्रवर्त्तन्ते प्रभवन्ति च सर्वशः
ततः परेण मुनयो जलधारो महागिरिः।
ततोनित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ॥ १६ ॥

ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले द्विजोत्तमाः। उच्चैर्गिरीरैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठितम्
रैवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः। उत्तरेण तु विप्रेन्द्राः श्यामो नाम महागिरिः
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः। यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा मुदितमानसाः

ऋषयऊचुः।

सुमहान्संशयोस्स्माकं प्राप्तोऽयं सूत यत्त्वया।
प्रजाः कथं सूतसम्यक्सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ॥ २० ॥

सूत उवाच।

सर्वेष्वेव महाप्राज्ञा द्वीपेषु मुनिपुङ्गवाः। गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे द्विजाः
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामगिरिः स्मृतः।
ततः परं मुनिश्रेष्ठा दुर्गशैलो महोदयः ॥ २२ ॥

केशरीकेशरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते। तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः
वर्षाणि तेषु विप्रेन्द्राःसम्प्रोक्तानि मनीषिभिः। महामेरुर्महाकाशो जलदः कुमुदो

जलधारो महाप्राज्ञः सुकुमार इतिस्मृतः । रैवतस्य तु कौमारः श्यामश्च मणिकाञ्चनः
केशरस्याऽथ मौदाकी परेण तु महान्पुमान् । परिवार्य्य तुविप्रेन्द्रा दैर्घ्यं ह्रस्वत्वमेव च
जम्बूद्वीपेन सङ्ख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ।
शाको नाम महाप्राज्ञाः प्रजास्तस्य सहाऽनुगाः ॥ २७ ॥
तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शङ्करः । तत्र गच्छन्ति सिद्धाश्च चारणा दैवतानि च
धार्मिकाश्च प्रजाः सर्वाश्चत्वारो गतमत्सराः ।
वर्णाः स्वकर्मनिरता न च स्तेनोऽत्र दृश्यते ॥ २६ ॥
दीर्घायुषो महाप्राज्ञा जरामृत्युविवर्जिताः । प्रजास्तत्र विवर्द्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः
नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधागता । सुकुमारी कुमारी च शीता शीतोदका तथा
महानदी च भो विप्रास्तथा मणिजला नदी । इक्षुवर्द्धनिका चैव नदी मुनिवराः स्मृताः
ततः प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः परमशोभनाः । सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः
न तासां नामधेयानि परिस्मर्तुं तथैव च ।
शक्यन्ते परिसङ्ख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ॥ ३४ ॥
ततः पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकविश्रुताः । मृगाश्च मशकाश्चैव मानसा मल्लकास्तथा
मृगाश्च ब्रह्मभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता द्विजाः ।
मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ॥ ३६ ॥
मानसाश्च महाभागा वैश्यधर्मोपजीविनः । सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः
शूद्रास्तु मल्लका नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ।
न तत्र राजा विप्रेन्द्रा न दण्डो न च दण्डिकाः ॥ ३८ ॥
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् । एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ॥
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४० ॥

इतिश्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे जम्बूद्वीपविष्कम्भपरिमाणंशाकद्वीप-
वर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

घृततोयसमुद्रप्रभृतिसर्वावशिष्टद्वीपविभागवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

उत्तरेषु च भो विप्रा द्वीपेषु श्रूयते कथा । एवं तत्र महाभागा ब्रुवतस्तन्निबोधत
घृततोयः समुद्रोऽथ दधिमण्डोदकोऽपरः । सुरोदसागरश्चैव तथान्यो दुग्धसागरः
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा द्विजर्षभाः । पर्वताश्च महाप्राज्ञाः समुद्रैः परिवारिताः

गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मनःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो द्विजाः ॥ ४ ॥

तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः । प्रसन्नश्चाभवत्तत्र प्रजानां व्यदधात्सुखं

शरद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य ह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके द्विजाः ॥ ६ ॥

क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरीरत्नचयाकरः । सम्पूज्यते भो विप्रेन्द्राश्चातुर्वर्ण्येन नित्यशः
गोमन्तः पर्वतो विप्राः सुमहान्सर्वधातुकः । यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः

मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु विप्रेन्द्राः पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥

सुनामा च सुदुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः । द्युतिमान्नाम विप्रेन्द्रास्तृतीयः कुमुदो गिरिः
चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः । षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः । औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं रेणुमण्डलम्
तृतीयं सुरथं नाम चतुर्थं लम्बनं स्मृतम् । धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम्
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्बकाः । एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च मुदिता द्विजाः

विहरन्ति रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा द्विजाः ॥ १५ ॥

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च सत्तमाः। अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि द्विजपुङ्गवाः॥
यथाश्रुतं महाप्राज्ञा वर्ण्यते श्रृणुत द्विजाः।
क्रौञ्चद्वीपे महाभागाः क्रौञ्चो नाम महागिरिः॥ १७॥
क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः। अन्धकारात्परो विप्रा मैनाकः पर्वतोत्तमः
मैनाकात्परतो विप्रा गोविन्दो गिरिरुत्तमः। गोविन्दात्परतश्चैव पुण्डरीको महागिरिः
पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः।
पुरस्ताद्द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो मुनिपुङ्गवाः॥ २०॥
देशांस्तत्रप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः श्रृणु। क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः
मनोऽनुगात्परो देश उष्णो नाम तपोधनाः। उष्णात्परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः। मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः॥
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरः प्रायो जनः स्मृतः।
एते देशाः समाख्याता देवगन्धर्वसेविताः॥ २४॥
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान्। तत्र नित्यं प्रसरति स्वयं देवः प्रजापतिः
पर्युपासन्ति तं नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः।
वाग्भिर्मनोऽनुकूलाभिः पूजयन्ति द्विजोत्तमाः॥ २६॥
जम्बूद्वीपात्प्रवर्त्तन्ते रत्नानि विविधानि च। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां मुनिसत्तमाः।
विप्राणां ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च। आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं,ततः
एते जनपदा विप्रा द्वीपेषु तेषु सत्तमाः। उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रवर्त्तते॥२९॥
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः। द्वीपानेतान्मुनिवरा रक्षंस्तिष्ठति:सर्वदा॥
स राजा स शिवो विप्राः स पिता स पितामहः।
गोपायति द्विजश्रेष्ठाः प्रजा स द्विजपण्डिताः॥ ३१॥
भोजनं चात्र विप्रेन्द्राः प्रजाः स्वयमुपस्थितम्।
सिद्धमेव महाभागा भुञ्जते तद्धि नित्यशः॥ ३२॥
ततः परं महाशैलो दृश्यते लोकसंस्थितिः।

चतुरस्त्रं महाप्राज्ञः सर्वतः परिमण्डलः ॥ ३३ ॥
तत्र तिष्ठन्ति विप्रेन्द्राश्चत्वारो लोकसंमताः ।
दिग्गजा हि मुनिश्रेष्ठा वामनैरावताञ्जनाः ॥ ३४ ॥
सुप्रतीकस्तथा विप्राः प्रभिन्नकरटामुखाः । तस्येह परिमाणं न सङ्ख्यातुमहमुत्सहे
असङ्ख्यातः सुनित्यं हि तिर्यगूर्द्ध्वमधस्तथा ।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्यः एव च ॥ ३६ ॥
असम्बन्धा मुनिश्रेष्ठास्तान्निगृह्णन्ति ते गजाः । पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकर्षन्ति महाप्र
शतधा पुनरेवाशु ते तान्मुञ्चन्ति नित्यशः । श्वसद्भिर्मुखनासाभ्यां दिग्गजैरिवमा
आगच्छन्ति द्विजश्रेष्ठास्तत्र तिष्ठन्ति वै प्रजाः ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वेदं पृथिवीमानं पुण्यदं च मनोऽनुगम् ।
श्रीमांस्तरति विप्रेन्द्राः सिद्धार्थः साधुसंमतः ॥ ४० ॥
आयुर्बलं च कीर्त्तिश्च तस्य तेजश्च वर्द्धते । यः शृणोति समाख्यानं पर्वणीदं धृतव्र
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ४२ ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे घृततोयसमुद्रप्रभृतिसर्वावशिष्ट-
द्वीपविभागवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

पृथिवीस्थतीर्थवर्णनम् तेषांमाहात्म्यञ्च ।

ऋषयऊचुः ।

पृथिव्या हि परीमाणं संस्थानं सरितस्तथा । त्वत्तः श्रुत्वा महाभाग अमृतं पीतमेव
तत्र भूमौ च तीर्थानि पावनानीति नः श्रुतम् ।

आचक्ष्व तानि सर्वाणि यथाफलकराणि च ॥ २ ॥
सविशेषं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम हेतव ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

[...]न्यं पुण्यं महाख्यानं पृष्टमेव तपोधनाः । यथामति प्रवक्ष्यामि यथायोगं यथाश्रुतम्
[...]पुरा वृत्तं प्रवक्ष्यामि देवर्षेर्नारदस्य हि । युधिष्ठिरेण संवादं शृणुत द्विजसत्तमाः ॥
हृतराज्याः पाण्डुपुत्रा वने तस्मिन्महारथाः ।
निवसन्ति महाभागा द्रौपद्या सह पाण्डवाः ॥ ६ ॥
[...]थापश्यन्महात्मानं देवर्षिं तत्र नारदम् । दीप्यमानं श्रिया ब्राह्मयादीप्ताग्निसमतेजसम्
[...]स तैः परिवृतः श्रीमान्भ्रातृभिः कुरुनन्दनः । दिवि भाति हि दीप्तौजा देवैरिव शतक्रतुः
[...]था व देवान्सावित्री याज्ञसेनी तथा पतीन् । न जहौ धर्मतः पार्थान्मेरुमर्कप्रभा यथा
[...]तिगृह्य ततः पूजां नारदो भगवानृषिः । आश्वासयद्धर्मपुत्रं युक्तरूपप्रियेण च ॥१०॥
उवाच च महात्मानं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ किं प्रार्थ्यं हि ददामि ते ॥ ११ ॥
[...]थ धर्मसुतो राजा प्रणम्य भ्रातृभिः सह । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं नारदं देवसंमितम्
[...]त्वयि तुष्टे महाभाग सर्वलोकाभिपूजिते । कृतमित्येव मन्ये हि प्रसादात्तव सुव्रत ! ॥
[...]दि त्वहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ! । सन्देहं मे मुनिश्रेष्ठ हृत्स्थं त्वं छेत्तुमर्हसि
प्रदक्षिणां यः कुरुते पृथिवीं तीर्थतत्परः ।
किं फलं तस्यकात्स्न्येन तद्ब्रह्मन्वक्तुमर्हसि ॥ १५ ॥

नारद उवाच ।

[...]णु राजन्नवहितो दिलीपेन यथा पुरा । वसिष्ठस्य सकाशाद्वै सर्वमेतदुपश्रुतम् ॥
[...]पुरा भागीरथी तीरे दिलीपो राजसत्तमः । धर्म्यं व्रतं समास्थाय न्यवसन्मुनिवत्तदा
[...]शुभे देशे महाराज पुण्ये देवर्षिपूजिते । गङ्गाद्वारे महातेजा देवगन्धर्वसेविते ॥ १८ ॥
[...]पितॄंस्तर्पयामास देवांश्च परमद्युतिः । ऋषींश्च तर्पयामास विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१९॥
[...]स्यचिरत्वथ कालस्य जपन्नेव महामनाः । ददर्श भूतसङ्काशं वसिष्ठमृषिमुत्तमम् ॥

पुरोहितं स तं दृष्ट्वा दीप्यमानमिव श्रिया।
प्रहर्षमतुलं लेभे विस्मयं परमं ययौ ॥ २१ ॥

उपस्थितं महाराज पूजयामास भारत। स हि धर्म्मभृतां श्रेष्ठो विधिदृष्टेन कर्मणा।
शिरसा चार्घ्यमादाय शुचिः प्रयतमानसः। नाम सङ्कीर्त्तयामास तस्मिन्ब्रह्मर्षिसत्त
दिलीपोऽहं तु भद्रं ते दासोऽस्मि तव सुव्रत ! । तव सन्दर्शनादेव मुक्तोऽहं सर्वकिल्बि

एवमुक्त्वा महाराजो दिलीपो द्विपदां वरः।
वाग्यतः प्राञ्जलिर्भूत्वा तूष्णीमासीद्युधिष्ठिर ॥ २५ ॥
तं दृष्ट्वा नियमेनाऽथ स्वाध्यायेन च कर्शितम्।
दिलीपं नृपतिश्रेष्ठं मुनिः प्रीतमनाभवत् ॥ २६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे पृथिवीस्थतीर्थवर्णनं दिलीपस्यवशिष्ठे
सहसमागमकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

———

एकादशोऽध्यायः

वशिष्ठदिलीपसंवादे वशिष्ठप्रतिपादितपुष्करतीर्थमाहात्म्यकथनम्।

वसिष्ठ उवाच।

अनेन तव धर्मज्ञ ! प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन च महाभाग ! तुष्टोऽस्मि तव सर्वश

यस्येदृशस्ते धर्मोऽयं पितरस्तारितास्त्वया।
तेन पश्यसि मां पुत्र याज्यश्चासि ममानघ ॥ २ ॥
प्रीतिम वर्द्धते तेऽद्य ब्रूहि किं करवाणि ते।
यद्वक्ष्यसि नरश्रेष्ठ ! तस्य दाताऽस्मि तेऽनघ ॥ ३ ॥

दिलीप उवाच।

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ सर्वलोकाभिपूजित। कृतमित्येव मन्ये हि यदहं दृष्टवान्प्रभुम् ॥ ४

यदि त्वहमनुग्राह्यस्तव धर्मभृतां वर। प्रक्ष्यामि हृत्स्थं सन्देहं तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थे यो धर्मसंशयः।
तदहं श्रोतुमिच्छामि पृथक्सङ्कीर्तनं त्वया॥ ६॥
प्रदक्षिणां यः पृथिवीं करोति द्विजसत्तम!। किं फलं तस्य विप्रर्षे! तन्मे ब्रूहि तपोधन

वसिष्ठ उवाच।

कथयिष्यामि तदहमृषीणां मत्परायणम्। तदेकाग्रमनास्तात शृणु तीर्थेषु यत्फलम्॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ९॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥१०॥
अकल्किको निराहारोऽलब्धाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वदोषैर्यः स तीर्थफलमश्नुते॥ ११॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्वपि यथाक्रमम्।
फलं चैव यथातत्त्वं प्रेत्य चेह च सर्वशः॥ १३॥
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते। बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भरविस्तराः॥
प्राप्यन्ते पार्थिवैरेते समृद्धैर्वा नरैःक्वचित्। न निर्धनैर्नरगणैरेकात्मभिरसाधनैः॥१५॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं जनेश्वर!।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध महीपते!॥ १६॥
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं धर्म्मभृतां वर!। तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते॥
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थाभिगमनेन च। अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः। न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्
नृलोके देवलोकस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। पुष्करं तीर्थमासाद्य देवदेवसमो भवेत्॥
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीपते!।
सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं सूर्यवंशज!॥ २१॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव तत्र सन्निहिताः प्रभो ! ॥ २२ ॥
यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा ।
दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महता द्विजाः ॥ २३ ॥
मनसाऽप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनीषिणः । पूयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठे च पू
अस्मिंस्तीर्थे महाभाग ! नित्यमेव पितामहः । उवास परमप्रीतो देवदानवसंमतः
पुष्करेषु महाभाग ? देवाः सर्षिपुरोगमाः ।
सिद्धिं परमिकां प्राप्ताः पुण्येन महताऽन्विताः ॥ २६ ॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः । अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः
अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ।
तेनैति पूजितांल्लोकान्ब्रह्मणः सदने स्थितान् ॥ २८ ॥
सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः । उपस्पृष्टं भवेत्तेन सर्वतीर्थेषु पा
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा । पुष्करे गतमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्य
यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः । तथैव पुष्करो राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते
उष्ट्वा द्वादशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ।
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ ३२ ॥
यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निमहोत्रमुपाचरेत् । कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव त
दुष्करं पुष्करे गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः । दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्क
त्रीणि श्रृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादितीर्थानि न विद्मस्तत्र कारकम् ॥ ३५ ॥
उष्ट्वा द्वादशवर्षाणि नियतो नियताशनः । समुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वक्रतुफलं ल
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे पुष्करतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकादशोऽध्याय

———

द्वादशोऽध्यायः

नानातीर्थाश्रममाहात्म्यकथनम् ।

वसिष्ठउवाच ।

प्रदक्षिणमुपावृत्तो जम्बूमार्गं समाविशेत् । जम्बूमार्गं समाविश्य पितृदेवर्षिपूजितम् ॥

अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ।

तत्रोष्य रजनीः पञ्च षष्ठे कालेऽश्नुवन्नरः ॥ २ ॥

न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिंचाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम् ।

जम्बूमार्गादुपावृत्तो गच्छेत्तु दुलिकाश्रमम् ॥ ३ ॥

न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोके च पूज्यते । अगस्त्याश्रममासाद्य पितृदेवार्चने रतः ॥

त्रिरात्रोपोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।

शाकवृत्तिः फलैर्वापि कौमारं विन्दते परम् ॥ ५ ॥

कन्याश्रमं समासाद्य श्रीपुष्टं लोकपूजितम् । धर्मारण्यं हि तत्पुण्यमाद्यं च पार्थिवर्षभ !

यत्र प्रविष्टमात्रो वै पापेभ्यो विप्र! मुच्यते । अर्चयित्वापि तन्देवान्प्रयतो नियताशनः

सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते । प्रादक्षिण्यं ततः कृत्वा ययातिपतनं व्रजेत् ॥

हयमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति तत्र वैः । महाकालमतो गच्छेन्नियतो नियताशनः

कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत् । ततो गच्छेत् धर्मज्ञ स्थानं तीर्थमुमापतेः ॥

नाम्ना भद्रवटं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तत्राभिगम्य चेशानं गोसहस्रफलं लभेत्

महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यमवाप्नुयात् । समृद्धमसपत्नं तु श्रियायुक्तं नरोत्तम ॥

नर्मदां तु समासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् । तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत्

इतिश्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानातीर्थाश्रममाहात्म्यकथनं

नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

———

त्रयोदशोऽध्यायः

युधिष्ठिरप्रश्नोत्तरे नारदेनसविस्तरंनर्मदामाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वसिष्ठेन दिलीपाय कथितं तीर्थमुत्तमम् । नर्मदेति च विख्यातं पापपर्वतदारणम् ॥
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय नारद ! । नर्मदायाश्च महात्म्यं वसिष्ठोक्तं द्विजो
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता । नर्मदा नाम्न विख्याता तन्मम ब्रूहि नार

नारद उवाच ।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि

नर्मदायास्तु माहात्म्यं वसिष्ठोक्तं मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! सर्वं हि कथयामि ते ॥ ५ ॥

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्म
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्म
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके । पुण्या च त्रिषुलोकेषु रमणीया मनोरमा
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः । तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां ग

तत्र स्नात्वा महाराज नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥ १० ॥
जनेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ११ ॥

पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेप
प्रीता तस्य भवेत्सर्वा रुद्रकोटिर्न संशयः । पर्वते पश्चिमस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वर

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पितृकार्यं तु कुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १४ ॥

तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत्पितृदेवताः । आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे तिष्ठति पाण्डव !॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । अप्सरोगणसङ्कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले
धनवान्दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते । पुनः स्मरति तत्तीर्थगमनं तत्र कुर्वते ॥१८॥
तारयित्वा कुलशतं रुद्रलोकं स गच्छति । योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ॥
विस्तारेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमन्तरम् । षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके । ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः
सर्वहिंसानिवृत्तश्च सर्वभूतहितेरतः । एवं सर्वसमाचारः क्षेत्रपालान्परिव्रजेत् ॥ २२ ॥
तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणुष्वाऽवहितो हि मे । शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव
अप्सरोगणसङ्कीर्णे दिव्यस्त्रीपरिचारिते । दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः ॥
क्रीडते देवलोके तु दैवतैः सह मोदते । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्
गृहं स लभते चैव नानारत्नविभूषितम् । स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैडूर्यभूषितैः ॥२६॥

आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां ह्रेषितेन च ॥ २७ ॥

क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा । राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः ॥
तस्मिन्गृहे उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्वितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ॥
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके । अग्निप्रवेशेऽथ जले तथा चैव अनाशने ॥

अनिवर्तिका गतिस्तस्य पर्वतस्याम्बरे यथा ।
पतनं पतते यस्तु स नरो मानवाधिपः ॥ ३१ ॥
कन्यास्त्रीणि सहस्राणि एकैकस्यापि चापरे ।
तिष्ठन्ति भवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च ॥ ३२ ॥

दिव्यभोगसमुत्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम् । पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते
यादृशोऽयं नरश्रेष्ठ पर्वतेऽमरकण्टके । कोटितीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे ॥३४॥
तत्रो जालेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः । तस्य पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा

पितरो दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति ते । दक्षिणे नर्मदायास्तु कपिलाख्या महा

सरलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ।

अस्ति पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ३७ ॥

तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर । पुराणे श्रूयते राजन्सर्वं कोटिगुणं भ

तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।

नर्मदातोयसंयुक्तास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ३९ ॥

द्वितीया तु महाभाग ! विशल्यकरणा शुभा ।

तत्र तीरे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् ॥ ४० ॥

तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः । यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ॥

सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके । तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोध

नर्मदा संश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः ।

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ४३ ॥

तत्र स्नात्वा नरोराजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारये

कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ! ।

ईश्वरेण पुराणोक्ता लोकानां हितकाम्यया ॥ ४५ ॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् । अनशनं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नरा

सर्वपापविशुद्धात्मा इन्द्रलोकं स गच्छति । नर्मदायां तु राजेन्द्र ! पुराणं यच्छ्रुतं

तत्र तत्र नरः स्नात्वा अश्वमेधफलं लभेत् । । ये वसन्त्युत्तरे कूलइन्द्रलोके वस

सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर !

समं दानं च स्नानं च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥ ४६ ॥

परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके । वर्षकोटिशतं साग्रमिन्द्रलोके महीयते ॥

नर्मदायाजलं पुण्यं फेनोर्मिसमलङ्कृतम् । पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमुच्य

नर्मदा सर्वपुण्या च ब्रह्महत्यापहारिणी । अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥

एवं पुण्या च रम्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन । त्रयाणामपि लोकानां पुनात्येषा मह

घटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने । एतेषु सर्वस्थानेषु येऽर्दिताः संशितव्रताः ॥५४॥
श्रूयते दशगुणं पुण्यं नर्मदोद्वास सङ्गमे ॥ ५५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदामाहात्म्यकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

ज्वालेश्वरतीर्थोत्पत्तिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा पुण्या पुण्यतमा त्रिषु ।
मुनिभिस्तु महाभागैर्विभक्ता धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ १ ॥
यज्ञोपवीतमात्राणि प्रविभक्तानि पाण्डव । तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते
लेश्वरं च यत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तस्योत्पत्तिं कथयतः शृणु पाण्डवनन्दन॥
रमुनिगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः । स्तुवन्ति ते महात्मानं देवदेवं महेश्वरम्
स्तुवमानास्तु सम्प्राप्ता यत्र देवो महेश्वरः । विज्ञापयन्ति देवेशं सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः
भयोद्विग्नान्विरूपाक्ष परित्रायस्व नः प्रभो ॥ ६ ॥

ईश्वर उवाच ।

स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठाः किमर्थमिह चागताः ।
किं दुःखं को नु सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ॥ ७ ॥
कथयध्वं महाभागा एतदिच्छामि वेदितुम् । एवमुक्तास्तु रुद्रेणाकथयन्नमितव्रताः ॥

ऋषयऊचुः ।

अपि घोरो महावीर्यो दानवो बलदर्पितः ।
वाणो नामेति विख्यातो यस्य वै त्रिपुरं पुरम् ॥ ९ ॥

गगने तु वसेद्दिव्यं भ्रमते तस्य तेजसा । तस्माद्भीता विरूपाक्ष त्वामेव शरणं ग
त्रायस्व महतोदुःखाद् देवत्वं हि परागतिः । एवं प्रसादं देवेश सर्वेषां कर्तुमर्हसि
येनदेवाः सुप्रसन्नाः सुखमेधन्ति शङ्कर । परां निर्वृ ति मायान्ति तत्प्रभो कर्तु मर्हसि

देव उवाच ।

एतत्सर्वं करिष्यामि मा विषादं करिष्यथ । अचिरेणैव कालेन कुर्यां युष्मत्सुखाव
आश्वासयित्वा तान्सर्वान्नर्मदातटमास्थितः ।
चिन्तयामास सर्वेशस्तद्वधं प्रति पाण्डव ॥ १४ ॥
कथं केन प्रकारेण हन्तव्यस्त्रिपुरो मया । एवं सञ्चिन्त्य भगवान्नारदं स्मरते त
स्मरणाद्देवसम्प्राप्तो नारदः समुपस्थितः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

आज्ञापय महादेव किमर्थं संस्मृतो ह्यहम् । किं कार्यं तु मया देव कर्त्तव्यं कथयस

ईश्वर उवाच ।

गच्छ नारद तत्रैव यत्रतत्त्रिपुरं पुरम् । बाणस्य दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गच्छाथ तत्कु
भर्तारो देवताभाश्च स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । तासां वै तेजसा विप्र भ्रमते त्रिपुरं दि
तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र मन्त्रमन्यं प्रचोदय । देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितवि
स्त्रीणां हृदयनाशाय प्रविष्टस्तं पुरं प्रति । शोभते तत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभि
शतयोजनविस्तीर्णं ततोद्विगुणमायतम् । ततः पश्यति तत्रैव बाणं तु बलदर्पितम्
मालाकुण्डलकेयूरैर्मुकुटेन विराजितम् । हाररत्नैश्च संछन्नं चन्द्रकान्तिविभूषितम्
ललनास्तस्य रत्नाढ्यकराः कनकमण्डिताः ।
उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥ २४ ॥

बाण उवाच ।

सदेवर्षिः स्वयं प्राप्तो मद्गृहं प्रति सम्प्रति । अर्घं पाद्यं यथान्यायं क्रियतां द्विजस
चिरात्समागतो विप्र स्थीयतामिदमासनम् ।
एवं सम्भावयित्वा तु नारदं समुपस्थितम् ॥ २६ ॥

तस्य भार्या महादेवी अनौपम्या तु नामतः ॥ २७ ॥

अनौपम्योवाच ।

भगवन्मानुषे लोके देवास्तुष्यन्ति केन व । व्रतेन नियमेनापि दानेन तपसाऽथवा ॥

नारद उवाच ।

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे । ससागरा नवद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः । मोदते चाक्षयं कालं सुचिरं कृतशासनः ॥
आम्रातककपित्थानि कदलीवनमेव च । कदम्बचम्पकाशोका अनेकचिविधद्रुमाः

अष्टमी च चतुर्थी च द्वादशी च तथा उभे ।
सङ्क्रान्तिर्विषुवं चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा ॥ ३२ ॥
पुण्यान्येतानि सर्वाणि उपवसन्ति याःस्त्रियः ।
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गे वासो न संशयः ॥ ३३ ॥

कलिकालात्तु निर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः । उपवासरता नार्यो नोपसर्पन्ति तापसाः
एवं श्रुत्वा तु सुश्रोणि ! यथेष्टं कर्तुमर्हसि । नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत्
प्रसादं कुरु विप्रेन्द्र दानं गृह्ण यथेप्सितम् । सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च
दत्ते दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्ल्लभम् । प्रतिगृह्ण द्विजश्रेष्ठ प्रीयतां हरिशङ्करौ

नारद उवाच ।

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिश्च यो द्विजः ।
वयं तु शीलसम्पन्ना भक्तिस्तु क्रियते मया ॥ ३८ ॥

एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासामुपदिश्य वा । जगाम भरतश्रेष्ठ ! स्वकीयं स्थानकं पुनः
अन्याक्रान्तमनास्तास्तु अन्यत्र गतमानसाः । पुरिच्छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे ज्वालेश्वरतीर्थोत्पत्तिवर्णनम् नारदस्य-त्रिपुरेबाणपत्न्याअनौपम्याख्याउपदेशदानेनमनोहृत्वागमनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥

———

पञ्चदशोऽध्यायः

हरस्य प्रेरणया वह्निना त्रिपुरदहनवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय! तन्निबोध त्र तच्छृणु । एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थि

नाम्ना महेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्मिन्स्थाने महादेवश्चिन्तयंस्त्रैपुरं वधम् ॥ २ ॥
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ।
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम् ॥ ३ ॥

अग्रे चाग्निं प्रतिष्ठाप्य मुखे वायुः समर्पितः । हयाश्च चतुरो वेदाः सर्वदेवमयं रथम्

चक्रगौ चाश्विनौ देवा वक्षे चक्रधरः स्वयम् ।
स्वयमिन्द्रश्च चापान्ते बाणे वैश्रवणःस्थितः ॥ ५ ॥
यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः ।
चक्राणामारकेन्यस्ता गन्धर्वा लोकविश्रुताः ॥ ६ ॥

प्रजापती रथश्रेष्ठे ब्रह्मा चैव तु सारथिः । एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम्

सोऽतिष्ठत्स्थाणुभूतो हि सहस्रं परिवत्सरान् ।
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षचराणि च ॥ ८ ॥

त्रिपुराणि त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः । शरः प्रचोदितस्तत्र रुद्रेण त्रिपुरं प्रति
भ्रष्टतेजा स्त्रियो जाता बलं तेषां व्यशीर्यत । उत्पाताश्च पुरे तस्मिन्प्रादुर्भूताः सहस्र
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपोऽभवत्तदा । अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति रूपाः काष्ठमयास्त
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति चित्रकर्मणा । स्वप्ने पश्यन्ति चात्मानं रक्तान्तरविभूषि

स्वप्ने पश्यन्ति ते चैवं विपरीतानि यानि तु ।
एतान्पश्यन्ति तूत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः ॥ १३ ॥

तेषां बलं च बुद्धिश्च हरक्रोधेन नाशितम् । संवर्तको नामवायुर्युगान्तप्रतिमो महान् ॥
समीरितोऽनलश्चे उत्तमाङ्गेषु बाधते । ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च

सर्वन्तद्भयाकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम् ।
भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तु प्रज्ज्वलन्ति च ॥ १६ ॥
तेनैव दीपितं सर्वं ज्वलते विशिखैः शिखैः ।
द्रुमा आरामगण्डानि गृहाणि विविधानि च ॥ १७ ॥

दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समिद्धो हव्यवाहनः । ततः शिलाः प्रमुञ्चन्ति दिशोदशविभागशः
शिखासहस्रैरत्युग्रैः प्रज्वलन्ति हुताशनैः । सर्वं किंशुकसम्प्रख्यं ज्वलितं दृश्यते पुरम्
गृहाद्गृहान्तरे नैव गन्तुं धूमैश्च शक्यते । हरकोपानलादग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम् ॥
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम् । प्रासादशिखराग्राणि विशीर्यन्ति सहस्रशः ॥
नानारत्नविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा । गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना
आहतो द्रुमखण्डेषु जनस्थाने तथैव च । देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्ते ज्वलन्त्यपि ॥

सीदन्ति चानलस्पृष्टाः क्रन्दन्ति विविधैः स्वरैः ।
गिरिकूटनिभास्तत्र दृश्यन्तेऽङ्गारराशयः ॥ २४ ॥

स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व मां प्रभो ! । अन्योन्यं च परिष्वज्य हुताशनप्रपीडिताः
दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः । हंसकारण्डवाकीर्णा नलिनीसहपङ्कजाः ॥

दह्यतेऽनलदग्धानि पुरोद्यानानि दीर्घिकाः ।
अम्लानैः पङ्कजैश्छन्ना विस्तीर्णा योजनैः शतैः ॥ २७ ॥

गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादारत्नभूषिताः । पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव ॥
सस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु । निर्दयो दहते वह्निर्हरकोपेन प्रेरितः ॥ २६ ॥
सपत्नीकाश्चैव सुप्ताः संसुप्ता बहवो जनाः । पुत्रमालिङ्ग्यते गाढं दह्यते त्रिपुरारिणा
अथ तस्मिन्पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः । अग्निज्वालाहतास्तत्र पतन्ति धरणीतले

काचिद्बाला बिशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता ।
धूमेनाकुलिता सा तु प्रतिबुद्धाशिखार्दिता ॥ ३२ ॥

सुतं सञ्चिन्तमाना सा पतिता धरणीतले । काचित्सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता
धूमेनाऽऽकुलिता सा तु पतिता धरणीतले । अन्या गृहीतहस्ता तु दह्यते सह बालकैः
अनेन दिव्यरूपान्या दृष्ट्वा मदविमोहिता । शिरसा प्राञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम्
यदि त्वमिच्छसे वैरं पुरुषेष्वपकारिषु । स्त्रियः किमपराध्यन्ते गृहपञ्जरकोकिलाः

पाप ! निर्दय ! निर्लज्ज ! कस्ते कोपोऽङ्गनासु वै ।
ना दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौचवर्तिता ॥ ३७ ॥

अनेकरूपवर्णाढ्या उपलभ्या वदस्व ह । किं त्वया न श्रुतं लोके अवध्याः सर्वयोषितः
किंतु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनस्यार्दनं प्रति । न कारुण्यं दया वापि दाक्षिण्यं वाङ्गनोपरि

दयां कुर्वन्ति म्लेच्छाश्च दहनं प्रेक्ष्य योषितः ।
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवार्यो ह्यचेतनः ॥ ४० ॥

एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति । आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं विनिपातने
दुष्टनिर्घृणनिर्लज्ज हुताश ! मन्दभाग्यक ! । निराशस्त्वं दुराचारबालान्दहसि निर्दय

एवं प्रलपमानास्ता जल्पमाना बहु स्वरम् ।
अन्याः क्रोशन्ति सङ्क्रुद्धा बालशोकेन मोहिताः ॥ ४३ ॥

दहते निर्दयो वह्निः सङ्क्रुद्धः सर्वशत्रुवत् । पुष्करिण्यां जले ज्वालाकूपेष्वपि तथैव

अस्मान्सन्दह्य म्लेच्छत्वं कां गतिं प्राप्स्यसेऽशुभाम् ।
एवं प्रलपतां तासां वह्निर्वचनमब्रवीत् ॥ ४५ ॥

वैश्वानर उवाच ।

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम् । अहमादेशकर्ता वै नाहं कर्त्ताऽस्म्यतुभ्यः

अत्र क्रोधसमाविष्टो विचरामि यदृच्छया ।
ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम् ॥ ४७ ॥

आसनस्थोऽब्रवीद्देवमहं देवैर्विनाशितः । अल्पसारैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितः

अपरीक्ष्य ह्यहं दग्धः शङ्करेण महात्मना ।
नान्यः शत्रुस्तु मां हन्तुं वर्जयित्वा महेश्वरम् ॥ ४६ ॥

उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् ।
निर्गतः स पुरद्वारात्परित्यज्य सुहृत्स्वयम् ॥ ५० ॥
रत्नानि सुविचित्राणि स्त्रियो नानाविधास्तथा ।
गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं न्यस्तं नगरमण्डले ॥ ५१ ॥

स्तुवते देवदेवेशं त्रैलोक्याधिपतिं शिवम् । हर! त्वयाऽहं निर्द्धो यदि वध्योऽस्मि शङ्कर
त्वत्प्रसादान्महादेव मामे लिङ्गं विनश्यतु । अर्चितं हि महादेव! भक्त्या परमया सदा
त्वया यद्यपि वध्योऽहं मा मे लिङ्गं विनश्यतु । प्राप्यमेतन्महादेव! त्वत्पादग्रहणं मम
जन्मजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम् । तोटकच्छन्दसादेवं स्तुत्वा तु परमेश्वरम् ॥

ओं शिव शङ्कर सर्वकराय नमो भव भीम महेश शिवाय नमः ।
कुसुमायुध! देहविनाशकर! त्रिपुरान्तकरान्धकचूर्णकर! ॥ ५६ ॥
प्रमदाप्रिय! कामविभक्त नमो हि नमः सुरसिद्धगणैर्नमितः ।
हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखैरतिह्रस्वसुदीर्घमुखैश्च गणैः ॥ ५७ ॥
उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैर्व्यथितो न शरीरशतैर्बहुभिः ।
प्रणतो भगवान्बहुभक्तिमता चलचन्द्रकलाधरदेव! नमः ॥ ५८ ॥
सहपुत्रकलत्रकलापधनैः सततं जय देहि अनुस्मरणम् ।
व्यथितोऽस्मि शरीरशतैर्बहुभिर्गमिताऽद्य महानरकस्य गतिः ॥ ५९ ॥
न निवर्तति यन्ममपापगतिः शुचिकर्म्मविशुद्धमपि त्यजति ।
अनुकम्पति दिग्भ्रमति भ्रमति भ्रम एष कुबुद्धि निवारयति ॥ ६० ॥

यः पठेत्तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः । बाणस्यैव यथा रुद्रस्तस्यैव वरदो भवेत्
इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः । प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं देवो महेश्वरः

ईश्वर उवाच ।

न भेतव्यं त्वया वत्स! सौवर्णे तिष्ठ दानव! । पुत्रपौत्रैः सपत्नीकै भार्याभृत्यजनैः सह
अद्यप्रभृति बाण! त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि । भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव! ॥
अक्षयश्चाव्ययो लोके चिचार ह निर्भयः । ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तथा ॥

तृतीयं रक्षितं तस्य शङ्करेण महात्मना । भ्रमते गगने नित्यं रुद्रतेजः प्रभावतः ॥६६॥
एवं तु त्रिपुरं दग्धं शङ्करेण महात्मना । ज्वालामालाप्रदीप्तं तु पतितं धरणीतले ॥
एकं निपातितं तस्य श्रीशैले त्रिपुरान्तके । द्वितीयं पातितं तत्र पर्वतेऽमरकण्टके ॥
दग्धे तु त्रिपुरे राजन्रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता । ज्वलन्तं पातितं तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः ।

ऊर्ध्वेन प्रस्थिता तस्य दिव्या ज्वाला दिवं गता ।
हाहाकारस्तदा जातो सदेवासुरकिन्नरान् ॥ ७० ॥

तं शरं स्तम्भयेद्रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे । एवं व्रजेत यस्तस्मिन्पर्वतेऽमरकण्टके ॥ ७१ ॥
चतुर्दशभुवनानि स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन ! । वर्षकोटिसहस्रं तु त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः

ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ।
पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते नास्त्यत्र संशयः ॥ ७३ ॥

एष पुण्यो महाराज सर्वतोऽमरकण्टकः । चन्द्रसूर्योपरागेषु गच्छेद्योऽमरकण्टकम् ॥
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः । स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम् ॥
सन्निहत्यागमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे । तदेव निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके ॥
पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । तत्र ज्वालेश्वरो नाम पर्वतेऽमरकण्टके

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
ज्वालेश्वरे महाराज ! यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ७८ ॥

चन्द्रसूर्योपरागे तु भक्त्या पि शृणु तत्फलम् । अमरा नाम देवास्ते पर्वतेऽमरकण्टके
रुद्रलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् । अमरेश्वरस्य देवस्य पर्वतस्य तटे जले ॥
कोटिशऋषिमुख्यास्ते तपस्तप्यन्ति सुव्रताः । समन्ताद्योजनं राजन्क्षेत्रं चामरकण्टकम्

अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले ।
स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ८२ ॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे अमरकण्टकपतितपुराज्वालेश्वरोत्पत्तिस-
न्माहात्म्यवर्णनं नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

कावेरीनर्मदासङ्गममाहात्म्येकुवेराख्यानवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

च्छन्ति ते महात्मानो नारदं हि महाजनाः । युधिष्ठिरपराः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः

आख्याहि भगवंस्तथ्यं कावेरी सङ्गमं महत् ।

लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च विवृद्धये ॥ २ ॥

सदा पापरता ये तु नरा दुष्कृतिकारिणः ।

मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम् ॥ ३ ॥

एतदिच्छामो विज्ञातुं भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

श्रृण्वं सहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः । अत्र कृत्वा महायज्ञं कुबेरः सत्यविक्रमः ॥

इदं तीर्थमनुप्राप्य साम्राज्यादधिकोऽभवत् ।

सिद्धिं प्राप्तो महाराज ! तन्मे निगदतः श्रृणु ॥ ६ ॥

कावेरीं नर्मदां यत्र सङ्गता लोकविश्रुताम् ।

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः ॥ ७ ॥

प्यति यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत् । तस्य तुष्टो महादेवः प्रदद्याद्वरमुत्तमम् ॥

भो यक्ष ! महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम् । ब्रूहि कार्यं यथेष्टं तु यद्वा मनसि वर्त्तते

कुवेर उवाच ।

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम ।

आदिकृच्चैव सर्वेषां यक्षाणामाधिपो भवेत् ॥ १० ॥

स्य वचः श्रुत्वा तुष्टो देवो महेश्वरः । एवमस्तु ततश्चोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥

पि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं यक्षकुलं गतः । पूजितः सर्वयक्षेन्द्रैरभिषिक्तस्तु पार्थिवः

कावेरीसङ्गमं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् । ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः । कावेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र अर्चयेद्वृषभध्वजम् । अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते

अग्निप्रवेशं यः कुर्याद्यश्च कुर्यादनाशनम् ।
अनिवर्तिकागतिस्तस्य यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीभिर्मोदते दिवि रुद्रवत् । षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथा
मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र यत्रैव गच्छति । पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः

भोगवान्धर्मशीलश्च महांश्चैव कुलोद्भवः ।
तत्र पीत्वा जलं सम्यक्चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ १९ ॥
स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्या ये पिबन्ति जलं शुभम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं यान्ति मानवाः ॥ २० ॥

कावेरीसङ्गमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते । एवं तु तस्य राजेन्द्र कावेरीसङ्गमं म

पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कावेरीनर्मदासङ्गममाहात्म्येकुबेरा
ख्यानवर्णनं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

नर्मदोत्तरतीर्थस्थपत्रेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

उत्तरे नर्मदाकूले तीर्थं योजनविस्तरम् । पत्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते । पञ्चवर्ष सहस्राणि क्रीडते कामरू
गर्जनं तु ततो गच्छेद्यत्र मेघ उपस्थितः । इन्द्रजिन्नाम सम्प्राप्तं तस्य तीर्थस्य

...वं ततो गच्छेद्यत्र मेघाभिगर्जितम् । मेघनादो गणस्तत्र वरसम्पन्नतां गतः ॥४॥
...तो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम् । तत्र सन्निहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठर
...त्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते । ततोऽङ्गारेश्वरे तीर्थे नियतो नियमासनः ॥
...र्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति । ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्

तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोप्रदान फलं लभेत् ।
काञ्चीतीर्थं ततो गच्छेद्देवर्षिगण सेवितम् ॥ ८ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोलोकं समवाप्नुयात् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कुण्डलेश्वरसुत्तमम् ॥ ९ ॥

...त्र सन्निहितो रुद्रस्तिष्ठते उमया सह । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र अवध्यस्त्रिदशैरपि
...पलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनम् । तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! रुद्रलोके महीयते ॥
...तो गच्छेत्तु राजेन्द्र विमलं पिप्पलेश्वरम् । तत्र देव शिखा रम्या ईश्वरेण निपातिता

तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ १३ ॥

...नमात्रे नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् । नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता
...येत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च । सर्वदेवातिदेवेन ईश्वरेण महात्मना ॥

कथिता ऋषिसङ्घेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः ।
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी ॥ १६ ॥

...देहाद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया । सर्वपापहरा नित्यं सर्वप्राणिनमस्कृता
...स्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च । नमः पुण्यजले आद्ये नमः सागरगामिनि ॥

नमोऽस्तु ते ऋषिगणैः शङ्करदेहनिःसृते ॥ १९ ॥
नमोऽस्तु ते धर्मवृते वरानने नमोऽस्तु ते देवगणैकवन्दिते ।
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने नमोस्तु ते सर्वजगत्सुपूजिते ॥ २० ॥
यश्चेदं पठतेस्तोत्रं नित्यं शुद्धस्तु मानवः ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ २१ ॥

वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभांगतिम् । अन्नार्थी लभते ह्यन्नं स्मरणादेव नि
नर्मदा सेविते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः । तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारि
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदातीरवर्तिपत्रेश्वरतीर्थमाहात्म्येनर्म
स्तोत्रकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

नर्मदातीरेशूलभेदादिनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तदा प्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः । सेवन्ते नर्मदां राजन्कामक्रोधविवर्जिता
तस्मिन्निपतितं दृष्ट्वा शूलंदेवस्य भूतले । तस्यपुण्यं समाख्यातं शङ्करेण महात्म
शूलभेदेति विख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत् । तत्र स्नात्वार्च्चयेद्देवं गोसहस्रफलं ल
त्रिरात्रं कारयेद्यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्य
भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नर्मदेश्वरमुत्तमम् । आदित्येशं महापुण्यं तथाऽऽज्यमधुना स
मल्लिकेश्वरमभ्यर्च्य पर्याप्तं जन्मनः फलम् ।
वरुणेशं ततः पश्येन्नीराजेश्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात् । ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र युद्धं वै यत्र सा
कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र योधिताः । यत्र ते निहता राजन्दानवा बलद
तेषां शिरांसि गृह्यन्ते निहतास्ते समागताः । तैस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्म
कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः ।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमावहेत् ॥ १० ॥
तदा इन्द्रेण क्षुद्रत्वाद्वज्रकीलेन यन्त्रितः । तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमत्वं निवा
सघृतं श्रीफलं दत्त्वा कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ।

सर्वतः सह देवेन शिरसाऽऽदाय धारयेत् ॥ १२ ॥
...र्वकामेन सम्पूर्णो राजा भवति पाण्डव । मृतो रुद्रत्वमाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥
स्वर्गं गत्वा ततो राज्यं कृत्वाऽऽगत्य ततो दिवम् ।
महादेवं तथोपास्य त्रयोदश्यां हि मानवाः ॥ १४ ॥
...ातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं परमशोभनम् ॥
...णां पापनाशाय अगस्त्येश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया
...र्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षचतुर्दशी । घृतेन स्नापयेद्देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः
एकविंशकुलोपेतो न मुच्येदैश्वरात्पदात् ।
यानं चोपानहौ छत्रं तथा दद्याच्च कम्बलम् ॥ १८ ॥
...जनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र रविस्तवमनुत्तमम्
...त्र स्नात्वा नरो राजन्सिंहासनगतिर्भवेत् । नर्म्मदादक्षिणे कूले तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्
...ोष्य रजनीमेकां स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नानं कृत्वा यथान्यायमर्च्चयेत्तु जनार्दनम्
...सहस्रफलं तस्य विष्णुलोकं स गच्छति । ऋषितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं नृणाम्
...ातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते । नारदस्य च तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥२३॥
...ातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । देवतीर्थं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ।
अमरकण्टकं ततो गच्छेदमरस्थापितं पुरा ॥ २५ ॥
...ातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र वामनेश्वरमुत्तमम् ॥
...त्र वामनकं दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया । ऋषितीर्थं ततो गच्छेदीशानेशं पुमान्ध्रुवम् ॥
वटेश्वरं ततो दृष्ट्वा पर्य्याप्तं जन्मनः फलम् ।
भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ २८ ॥
...ातमात्रो नरो राजन्सर्वदुःखात्प्रमुच्यते । ततो गच्छेत राजेन्द्र वारणेश्वरमुत्तमम् ॥
...त्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वदुःखात्प्रमुच्यते । सोमतीर्थं ततो गच्छेत्पश्येच्चन्द्रमनुत्तमम्
तत्र स्नात्वा नरो राजन्भक्त्या परमया युतः ।

तत्क्षणाद्दिव्यदेहस्थः शिववन्मोदते चिरम् ॥ ३१ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ॥
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात् । तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छे
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतकुलस्य च । तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते
यस्तु प्राणपरित्यागं तत्र कुर्य्यान्नराधिप ! । अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाक
नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठन्ति ये तु मानवाः । ते मृताः स्वर्गमायान्ति तथा सुकृतिनो
सुरभिकेश्वरं गच्छन्नारकं कोटिकेश्वरम् । गङ्गावतरणे तत्र दिने पुण्यो न संशय

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।

तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते ॥ ३८ ॥

ततोद्वीपेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम् । निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी
हुङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नरा

व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतो वाञ्छितं लभते फलम् ।

सूत्रेण वेष्टयेद्यस्तु दीप्तं देवं सवेदिकम् ॥ ४१ ॥

क्रीडते ह्यक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव सः । ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम्

सङ्गमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।

एरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी ॥ ४३ ॥

अथवाश्वयुजे मासे शुक्लपक्षस्य चाष्टमी । शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपर
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता । एरण्डीसङ्गमे स्नात्वा भक्तिभावानु

शुक्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च वै जलम् ।

नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ ४६ ॥

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसु
ततः सुवर्णतिलके स्नात्वा दत्त्वा च काञ्चनम् । काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके म

ततः स्वर्गच्युतः कालाद्राजा भवति वीर्यवान् ।

ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम् ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्ये विश्रुतं दिव्यं तत्र सन्निहितः शिवः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गाणपत्यमवाऽऽप्नुयात् ॥ ५० ॥
[न]न्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् । आजन्मनः कृतं पापं स्नानमात्राद्व्यपोहति
[आ]ङ्गिरसं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते
लाङ्गलतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ५३ ॥
[स]प्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । वटेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥
[तत्र] स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् । सङ्गमेशं ततो गच्छेत्सर्वपापहरं परम् ॥
[तत्र] स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः । भद्रतीर्थं समासाद्य दानं दद्यात्तु यो नरः
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।
अथ नारी भवेत्काऽपि तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ ५७ ॥
गौरी तुल्या भवेत्सा तु इन्द्रं याति न संशयः ।
अङ्गारेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ५८ ॥
[स्ना]तमात्रो नरस्तत्र रूद्रलोके महीयते । अङ्गारक्यां चतुर्थ्यां तु स्नानं तत्र समाचरेत्
[अक्ष]यं मोदते कालं मुरारीकृतशासनः । अयोनिसङ्गमे स्नात्वा न पश्येद्योनिमन्दिरम् ॥
[पा]ण्डवेश्वरकं गत्वा स्नानं तत्र समाचरेत् । अक्षयं मोदते कालमवध्यस्तु सुरासुरैः
विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडाभोगसमन्वितः ।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्मर्त्ये राजाऽभिजायते ॥ ६२ ॥
कम्बोतिकेश्वरं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
उत्तरायणे सम्प्राप्ते यदिच्छेत्तस्य तद्भवेत् ॥ ६३ ॥
[चन्द्र]भागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते
[ततो] गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् । पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम् ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दानं दत्त्वा च काञ्चनम् ।
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत् ॥ ६६ ॥

वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च। तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसे
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्। अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्रेषु नरा
स्वामी भवति मर्त्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ब्रह्मावर्त्तमनु
तत्र स्नात्वा नरो राजंस्तर्पयेत्पितृदेवताः। उपोष्य रजनीमेकां पिण्डं दत्त्वा यथा

कन्यागते यथाऽऽदित्यं अक्षयं सञ्चितं भवेत्।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ ७१ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्कपिलां यः प्रयच्छति।
सम्पूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाऽप्नुयात् ॥ ७२ ॥

नर्मदेशात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं ल
तत्र सर्वगतो राजा पृथिव्यामभिजायते। सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जि
नार्मदीयोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्। आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेण तु भावि

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! दानं दत्त्वा च शक्तितः।
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ ७६ ॥
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये च दुष्कृतकर्मिणः।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च ॥ ७७ ॥
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमीम्।
वसेदायतने यस्तु निरन्नो यो जितेन्द्रियः ॥ ७८ ॥
न जायन्ते व्याधितश्च कालेऽन्धो बधिरस्तथा।
सुभगो रूपसम्पन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥ ७९ ॥

इदं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्। ये प्रयान्ति न राजेन्द्र ! वञ्चितास्ते न

मासेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वलोकमवाऽऽप्नुयात् ॥ ८१ ॥

मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। ततः समीपतः स्थित्वा नागेश्वरं त

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः।

बहुभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम् ॥ ८३ ॥
कुबेरभवनं गच्छेत्कुबेरो यत्र संस्थितः । कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः ॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसम्पदमाप्नुयात् । ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुतालयमुत्तमम्
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
काञ्चनं तु ततो दद्यादन्नं शक्त्या तु बुद्धिमान् ॥ ८६ ॥
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति । मम तीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर !
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत् ।
नक्तं भोज्यं ततः कुर्यान्न गच्छेद्योनिसङ्कटम् ॥ ८८ ॥
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र अप्सरोभिः प्रमोदते ॥ ८९ ॥
पारमेश्वरे तपस्तप्त्वा अहल्या मुक्तिमागमत् ।
चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥ ९० ॥
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां तु प्रपूजयेत् । यत्र तत्र समुत्पन्नो नरस्तत्र प्रियो भवेत्
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः ।
अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् ॥ ९२ ॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ।
सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानमात्रं समाचरेत् ॥ ९३ ॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते । सोमग्रहे तु राजेन्द्र ! पापक्षयकरं भवेत् ॥
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम् ।
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ॥ ९५ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति । अग्निप्रवेशे तु जलेऽप्यथवाऽपि ह्यनाशने
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नासौ मर्त्योऽभिजायते ।
स्तम्भतीर्थे ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ ९७ ॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! विष्णुतीर्थमनुत्तमम्॥

यो धनीपुरविख्यातं विष्णुतीर्थमनुत्तमम् । असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटि
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः प्रीतो भवेदिह । अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोह
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तापसेश्वरमुत्तमम् । अमोहकमिति ख्यातं पितॄन्यस्तत्र त
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृपिण्डं तु दापयेत् ॥ १०२ ॥
गजरूपाः शिलास्तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिताः ।
तस्मिंस्तु दापयेत्पिण्डं वैशाखे तु विशेषतः ॥ १०३ ॥
तृप्यन्ति पितरस्तावद्यावत्तिष्ठति मेदिनी । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सिद्धेश्वरमनुत्तम
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र ! गणपत्यन्तिकं व्रजेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! लिङ्गो यत्र ज
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! विष्णुलोके महीयते । नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशो
कामदेवः स्वयं तत्र तपस्तप्यत्यसौ महान् । दिव्यं वर्षसहस्रं तु शङ्करं पर्युपास
समाधिपदग्धस्तु शङ्करेण महात्मना । श्वेतपर्वोपमश्चैव हुताशः शुक्लपर्वणि ॥ १
एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः । दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्व
उमया सहितो रुद्रस्तेषां तुष्टो वरप्रदः ।
विमोक्षयित्वा तान्सर्वान्नर्म्मदातटमास्थितान् ॥ ११० ॥
तस्य तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागतः । त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं च भवतूत्त
अर्धयोजनविस्तीर्णं तीर्थं दिक्षु समन्ततः । तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपर
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते । वैश्वानरे यमेनैव कामदेवेन वायवे ॥ १
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र ! तत्रैव च पुरागतैः । अन्धोनस्य समीपे तु नातिदूरे तु त
स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम् ।
अग्निवेशे जले वापि अथवाऽपि अनाशने ॥ ११५ ॥
अनिवर्तिकागतिस्तस्य मृतस्याप्यर्द्धयोजने । त्रैयम्बकेण तोयेन स्नापयेन्नर
अन्धोनमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ११७ ॥

उत्तरायणे सम्प्राप्ते तत्र स्नानं करोति यः।
पुरुषो वापि स्त्री वापि वसेदायतने शुचिः ॥ ११८ ॥
सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रभाते पूजनान्नरः। सतां गतिमवाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः ॥
यदा च तीर्थकालेन रूपवान्सुभगो भवेत्। मर्त्ये भवति राजासावासमुद्रान्तगोचरे ॥
क्षेत्रपालं न पश्येच्च दण्डपालं महाबलम्।
वृथा तस्य भवेद्यात्रा अदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम् ॥ १२१ ॥
एतत्तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः। मुञ्चन्ति पुष्पवृष्टिं तु स्तुवन्ति कुसुमेश्वरम्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदातीर्थस्थशूलभेदादिनानातीर्थमाहात्म्य-
वर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

————

एकोनविंशोऽध्यायः

भार्गवेश्वरतीर्थमाहात्म्यशुक्लतीर्थोत्पत्तिवृत्तान्तं माहात्म्यञ्च।

नारद उवाच।

भार्गवेशं ततो गच्छेद्भक्त्या यत्र च विष्णुना।
हुङ्कारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः ॥ १ ॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।
शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ! ॥ २ ॥
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते। तरुणादित्यसङ्काशे तप्तकाञ्चनसन्निभे ॥ ३ ॥
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले। जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुष्पोपशोभिते ॥
तत्रासीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम्। लोकानुग्राहकं शान्तं गणवृन्दैः समावृतम् ॥
स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः। उमया सहितं देवं मार्कण्डः परिपृच्छति ॥
देव ! देव महादेव इन्द्रकामादिसंस्तुत ! । संसारभवभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे ॥ ७ ॥

भगवन्भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम् । तीर्थानां परमं तीर्थं तद्वदस्व महेश्वर ! ॥

ईश्वर उवाच ।

श्रृणु विप्र महाभाग ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।

स्नानादि कुरु गच्छ त्वं ऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥ ६ ॥

मन्वत्रियाज्ञवल्क्याश्च काश्यपश्चैव चाङ्गिराः । यमापस्तम्वसंवर्ताः कात्यायनबृह

नारदो गौतमश्चैव पृच्छन्ति धर्मकाङ्क्षिणः ।

गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गया ॥ ११ ॥

कुरुक्षेत्रं तु पुण्यं च राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम् ॥ १२ ॥

दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव स्नानाद्ध्यानात्तपोऽर्जनात् ।

होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थफलं महत् ॥ १३ ॥

शुक्लतीर्थं महापुण्यं नद्यां तु संव्यवस्थितम् ।

चाणिक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः ॥ १४ ॥

एतत्क्षेत्रं समुत्पन्नं योजनावृत्तिसंस्थितम् । शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाश

पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अहमत्र ऋषिश्रेष्ठ ! तिष्ठामि ह्युमया सह

वैशाखे विमले मासि कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

कैलासाच्चापि निर्गत्य तत्र सन्निहितो ह्यहम् ॥ १७ ॥

देवकिन्नरगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा । गणाश्चाप्सरसो नागाः सर्वे देवाः समा

गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सर्वकामकैः ।

शुक्लतीर्थे तु राजेन्द्र आगता धर्मकाङ्क्षिणः ॥ १९ ॥

रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा । आजन्मसञ्चितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपो

स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्ड ! ऋषिसत्तम ! । शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भवि

पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः । अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपो

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः । देवदानेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि ॥

र्तिकस्य च मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी । घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् ॥
कविंशत्कुलोपेतो न च्यवेच्चैश्वरात्पदात् । शुक्लतीर्थं परं तीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्

तत्र स्नात्वा ततो राजन्पुनर्जन्म न विद्यते ।
स्नात्वा वै शुक्लतीर्थेऽपि अर्चयेद्वृषभध्वजम् ॥ २६ ॥

गारं कारयेत्तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः । प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम् ॥

आचार्यं भोजयेत्पश्चाच्छिवव्रतपरः शुचिः ।
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ २८ ॥

क्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत् । एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु
व्ययानसमारूढः स्तूयमानोऽप्सरोगणैः । शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम् ॥
तीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम् । घृतेन स्नापयेद्देवं कुमारं चाभिपूजयेत्

एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु ।
मोदते देवलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३२ ॥
अयने वा चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ विषुवे तथा ।
स्नात्वा तु सोपवासः स निर्जितात्मासमाहितः ॥ ३३ ॥

नं दद्याद्यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशङ्करौ । शुक्लतीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥
नाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा । उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
वत्तद्रोमसङ्ख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च । तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥३६॥
ति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भार्गवेश्वरतीर्थमाहात्म्यशुक्लतीर्थोत्पत्ति-
वृत्तान्तमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

————

विंशतितमोऽध्यायः

नरकतीर्थादिनानातीर्थमाहात्म्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

ततस्तु नरकं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र नरकं न च पश्

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन ! ।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥
विलयं यान्ति सर्वाणि रूपवाञ्जायते नरः ।
गोतीर्थं तु ततो गच्छेद्दृष्ट्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कपिलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं ल

ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः ।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम् ।
सघृतं श्रीफलं दत्त्वा कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥

घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति । शिवतुल्यो नरो भूत्वा न चेह जायते पु

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।
स्नापयित्वा शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥ ८ ॥

अङ्गारकनवम्यां तु अमावास्यां तथैव च । स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवे
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद्भक्तितो द्विजान् । पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारित
शैवं पदमवाप्नोति नात्र चाभिगतं भवेत् । अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव च
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः । राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाञ्जायते बल
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ऋषितीर्थमनुत्तमम् । तृणबिन्दुऋषिर्नाम शापदग्धो व्यवस्थि
स तत्तीर्थप्रभावेण पापमुक्तोऽभवद्द्विजः । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गणेश्वरमनुत्तमम्

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ॥ १५ ॥
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात्। गणेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ॥
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १७ ॥
सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्। पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात्
प्रयागे यत्फलं दृष्टं शङ्करेण महात्मना। तदेव निखिलं पुण्यं गङ्गाराह्वर्कसङ्गमे ॥१६॥
तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः। दशाश्वमेधिकं नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्
उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा।
अमावास्यां नरः स्नात्वा व्रजेद्वै यत्र शङ्करः ॥ २१ ॥
सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्। पितॄणां तर्पणं कृत्वा अश्वमेधफलं लभेत् ॥
दशाश्वमेधात्पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः। दिव्यं वर्षसहस्रं तु ईश्वरं पर्युपासत॥२३॥
वल्मीकावस्थितश्चासौ दक्षिणं च निकेतनम्। आश्चर्यं च महज्जातमुमाया शङ्करस्य च
गौरी तु पृच्छते देवं कोऽयमत्र तु संस्थितः।
देवो वा दानवो वाथ कथयस्व महेश्वर! ॥ २५ ॥

ईश्वर उवाच।

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः। ध्यायते मां समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये!
तत्र प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत। धूमावर्तशिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसि ॥
दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥

देव उवाच।

न जानासि महादेवि! अयं क्रोधेन चेष्टितः। दर्शयामि यथातथ्यं प्रियं ते च करोम्यहम्
स्मारितो देवदेवेन धर्मरूपो वृषस्तदा। स्मरणादेव देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः ॥२६॥
प्राहासौ मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो।
वल्मीकैश्छादितो विप्र! एनं भूमौ निपातय ॥ ३० ॥

योगस्थस्तु ततो ध्यायंस्ततस्तेन निपातितः ।
तत्क्षणात्क्रोधसन्तप्तो हस्तमुत्क्षिप्तवान्वृषम् ॥ ३१ ॥
एवं सम्भाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष ! ।
अद्य त्वामथ पाप्मानं प्रत्यक्षं हन्म्यहं वृष ! ॥ ३२ ॥
धर्षितस्तु तदा विप्रो ह्यन्तरिक्षं गतं वृषम् । आकाशे प्रेक्षते भूप ! एतदद्भुतमुत्तमम्
ततः प्रहसिते रुद्रे ऋषिरग्रे व्यवस्थितः । तृतीयं लोचनं दृष्ट्वा वै लक्ष्यात्पतितो भु
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्तुते वै परमेश्वरम् ॥ ३४ ॥
प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवम् त्वामहं दिव्यरूपम् ।
भवभीतो भुवनपते भूतं विज्ञापये किंचित् ॥ ३५ ॥
त्वद्गुणनिकरान्वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाथ ! ॥
वासुकिरयं हि कदाचिद्वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥ ३६ ॥
भक्त्या तवाऽपि शङ्कर भुवनपते त्वत्स्तुतौ तु मुखरस्य ।
वन्द्य क्षमस्व भगवन्प्रसीद मे तव चरणपतितस्य ॥ ३७ ॥
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तौ विनाशने देव ! ।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते ! भुवनेश्वर ! नैव दैवतं किंचित् ॥ ३८ ॥
यमनियमयज्ञदानैर्वेदाभ्यासावधारणोद्योगात् ।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति कलासहस्रांशेन ॥ ३९ ॥
उत्कृष्टरसरसायनखड्गाञ्जनपादुकादिसिद्धिर्वा ।
चिह्नानिभवत्प्रणतानां दृश्यन्त इह जन्मनि प्रकटम् ॥ ४० ॥
शाठ्येननमतियद्यपि ददासि त्वंधर्ममिच्छतांदेव ।
भक्तिर्भवच्छेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ ॥ ४१ ॥
परदारपरस्वरतं परिभवपरिदुःखशोकसन्तप्तम् ।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि ॥ ४२ ॥
अलोकाभिमानदग्धं क्षणभङ्गुरविभवविलसितं देव ।

क्रूरं कुपथाभिमुखं पतितं मां त्राहि देवेश ! ॥ ४३ ॥
दीनेन्द्रियगणसार्थैर्बन्धुजनैरेव पूरिता आशा ।
तुच्छा तथापि शङ्कर ! किं मूढं मां विडम्बयसि ॥ ४४ ॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं मे देहि हृदयवासिनीं नित्याम् ।
छिन्धि मदमोहपाशानुत्तारय मां महादेव ! ॥ ४५ ॥
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सिद्धिदं दिव्यम् ।
यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येद् भृगोर्यथा हि शिवः ॥ ४६ ॥

ईश्वर उवाच ।

अहं तुष्टोऽस्मि ते विप्र वरं प्रार्थय स्वेप्सितम् ।
उमया सहितो देवो वरं तस्य हि दापयेत् ॥ ४७ ॥

भृगुरुवाच ।

दि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम । रुद्रवेदीभवमेतत्सम्पादयस्व मे ॥ ४८ ॥

ईश्वर उवाच ।

वं भवतु विप्रेन्द्र क्रोधस्थानं भविष्यति । न पितापुत्रयोश्चैव एकवाक्यं भविष्यति
प्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वे देवाः सकिन्नराः । उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः ॥
र्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते । अवशाः स्ववशाश्चापि म्रियन्ते तत्र जन्तवः
ातिगुह्यस्य गतिस्तेषां निःसंशया भवेत् । एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
औपानहं तदा छत्रं देयमन्नं च काञ्चनम् ॥ ५३ ॥
जनं च यथाशक्त्या अक्षयं तस्य तद्भवेत् । सूर्योपरागे यो दद्याद्दानं चैव यथेच्छया ॥
र्यस्नानं तु यद्दानमक्षयं तस्य तद्भवेत् । चन्द्रसूर्योपरागेषु वृषोत्सर्गमनुत्तमम् ॥५५॥
न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः ।
नर्मदायां स्थितं दिव्यं वृषतीर्थं नराधिप ! ॥ ५६ ॥
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः सकृत् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ५७ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गौतमेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः ।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते । धौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु ॥
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
तस्मिंस्तीर्थे महाराज ! प्राणत्यागं करोति यः । चतुर्भुजस्त्रिनेत्रस्तु रुद्रतुल्यबलो भवेत् ।
वसेत्कल्पायतं साग्रं रुद्रतुल्यपराक्रमः । कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराड् भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! एरण्डीतीर्थमुत्तमम् । प्रयागे यत्फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम् ।
तत्फलं लभते राजन्स्नातमात्रस्तु मानवः । मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षस्य चाष्टमी ।
उपोष्य रजनीमेकां तत्र स्नानं समाचरेत् । यमदूतैर्न बाध्येत इन्द्रलोकं स गच्छति ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः । हिरण्यद्वीपविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।

तत्र स्नात्वा नरो राजन्धनवान्रूपवान्भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं कनखलं महत् ॥ ६७ ॥

गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप !। विख्यातं सर्वलोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति ।
क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति । तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ईशतीर्थमनुत्तमम् । ईशस्तत्र विनिर्मुक्तो गत ऊर्ध्वं न संशयः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सिद्धो यत्र जनार्दनः । वाराहं रूपमास्थाय अचिन्त्यः परमेश्वरः ।

वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां तु विशेषतः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरकं तु न गच्छति ॥ ७२ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र सोमतीर्थमनुत्तमम् । पौर्णमास्यां विशेषेण तत्र स्नानं समाचरेत् ।
प्रणिपत्य च ईशानं बलिस्तस्य प्रसीदति । हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे तु दृश्यते ।
चक्रध्वजे समावृत्ते सुप्ते नागारिकेतने । नर्मदातोयवेगेन रुरुकच्छोपसेवितम् ।

तस्मिन्स्थाने निवासं च विष्णुः शङ्करमब्रवीत् ।
द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद्बहुसुवर्णकम् ॥ ७६ ॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र रुद्रकन्यां तु सङ्गमे । स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ।

देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! दैवतैः सह मोदते ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! शिखितीर्थमनुत्तमम् । तत्र वै दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्
अपरपक्षेऽमावास्यां स्नानं तत्र समाचरेत् । ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता
भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र ! तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता ।
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नायीत मानवः ॥ ८१ ॥
अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते । तत्र सिद्धिमवाप्नोति भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः ॥
अवतारः कृतस्तेन शङ्करेण महात्मना ॥ ८३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नरकतीर्थादिनानातीर्थमाहात्म्यकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

विहगेश्वराद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ततो गच्छेत राजेन्द्र विहगेश्वरमुत्तमम् । दर्शनात्तस्य राजेन्द्र ! मुच्यते सर्वपातकैः ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र! नर्मदेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके महीयते ॥
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् । सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाञ्जायते नरः ॥
पितामहं ततो गच्छेद्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिंडं तु दापयेत् ॥ ४ ॥
तिलदर्भविमिश्रं तु उदकं तु प्रदापयेत् । तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥५॥
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् । विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते
मनोहरं च तत्रैव तीर्थं परम् शोभनम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्पितृलोके महीयते ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! क्रतुतीर्थमनुत्तमम् । विख्यातं सर्वलोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ॥

यान्यान्प्रार्थयते कामान्पशुपुत्रधनानि च ।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ॥ १० ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
तत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रताः ॥ ११ ॥

भर्त्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः । प्रीतस्तेषां महादेवश्चण्डरूपधरो हरः ॥१२
विकृताननबीभत्सस्तच्च तीर्थमुपागतः । तत्र कन्या महाराज ! वराय परमेश्वरः ॥१३

कन्याऋद्धिं च यः सेवेत्कन्यादानं प्रयच्छति ।
तीर्थं तत्र महाराज दशकन्येति विश्रुतम् ॥ १४ ॥

तत्र स्नात्वाऽर्च्चयेद्देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो गच्छेत राजेन्द्र स्वर्गबिन्दुरिति श्रुत

तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं च न पश्यति ।
अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥ १६ ॥

क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते। ततो गच्छेत राजेन्द्र ! नरकं तीर्थमुत्त
तत्र स्नात्वाऽर्च्चयेद्देवं नरकं च न गच्छति । भारभूतं ततो गच्छेदुपवासपरायणः
एतत्तीर्थं समासाद्य अवतारं तु शाम्भवम् । अर्चयित्वा हि रूपाक्षं रुद्रलोके महीय

तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूते महात्मनः ।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ॥ २० ॥

कार्तिकस्य तु मासस्य अर्चयित्वा महेश्वरम् । अश्वमेधाच्छतगुणं प्रवदन्ति मनीषि
दीपकानां शतं कृत्वा घृतपूर्णं तु दापयेत् । विमानैः सूर्यसङ्काशैर्व्रजते यत्र शङ्क
वृषभं यः प्रयच्छेत शङ्खकुन्देन्दुसंनिभम् । वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छ
चरुमेकं तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि
यथाशक्त्यनु राजेन्द्र भोजयेत्सहदक्षिणम् । तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भ

नर्मदाया जलं सिक्त्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिं च न पश्यन्ति तत्तीर्थस्य प्रभावतः ॥ २६ ॥

एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् । सर्वपापविशुद्धात्मा व्रजते यत्र शङ्करः
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप । हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ॥
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः । गङ्गाद्याः सरितो यावत्तावत्स्वर्गे महीयते
अनाशनं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! । गर्भवासे तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते नरः

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! अटवीतीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्याऽर्द्धासनं लभेत् ॥ ३१ ॥

शृङ्गतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् । तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः॥
एरण्डी नर्मदायाश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् । तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
उपवासपरो भूत्वा नित्यं ब्रह्मपरायणः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! नर्मदोदधिसङ्गमम् । जमदग्निरिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः॥

यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसङ्गमे ॥ ३६ ॥
त्रिगुणस्याश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
पश्चिमोदधिसायुज्यं मुक्तिद्वारविघाटनम् ॥ ३७ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वाः ऋषयः सिद्धचारणाः ।
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ॥ ३८ ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते । विमलेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् । सर्वपापविनिर्मुक्ता रुद्रलोकं व्रजन्ति ते
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! केशिनीतीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः॥
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः । तत्र तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥४२॥

सर्वतीर्थाभिषेकं च यः पश्येत्सागरेश्वरम् ।
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठेदावर्ते संस्थितः शिवः ॥ ४३ ॥
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टानि स्यु र्न संशयः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ॥ ४४ ॥

नर्मदासङ्गमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् । तत्रान्तरे महाराज ! तीर्थ कोट्यो दश स्थिताः ।
तीर्थात्तीर्थाटनं चर्या ऋषिकोटिनिषेविता । अग्निहोत्रैश्च दिव्यांशैः सर्वैर्ज्ञानपरायणैः ।
सेवितास्तेन राजेन्द्र ! ईप्सितार्थप्रदायिकाः । यश्चेदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽपि भक्तितः ।

तं तु तीर्थानि सर्वाणि अभिषिञ्चन्ति पाण्डव ! ।
नर्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्रसंशयः ॥ ४८ ॥

प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः । वन्ध्या च लभते पुत्रान्दुर्भगा सुभगा भवे

कुमारीं लभते भर्त्ता यच्च यो वाञ्छते फलम् ।
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५० ॥
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यस्तु लभते धान्यं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥

मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । नरकं च न पश्येत वियोनिं च न गच्छ

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विहगेश्वराद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

नर्मदामाहात्म्येप्रमोहिन्यादिगन्धर्वकन्यानामितिहासवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

एवं ते कथितं राजन्नर्मदातीर्थमुत्तमम् । पुरा गन्धर्वकन्यानां शापजं भयमुल्बणम्
नाशितं तन्महाराज ! रेवाजलकणाग्निना । रेवाजलकणस्पर्शान्मुक्तो भवति मानव

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन्बहुकन्याभिः शापो लब्धः कथं कुतः ।
कस्यापत्यानि तास्तासां नाम किं कीदृशं वयः ॥ ३ ॥

कथं रेवाजलस्पर्शाद्विपाकाच्छापसम्भवात् ।
विमुक्ताः कुत्र ताः सस्नुः सर्वं मे कथय प्रभो ! ॥ ४ ॥
नर्मदातीर्थमाहात्म्यं चमत्कारकरं भवेत् । श्रवणादपि पापानां मलनाशनमुच्यते ॥५॥
नर्मदानर्मदाशब्दो येन केनचिदुच्यते । तस्य स्याच्छाश्वती मुक्तिर्यावदाचन्द्रतारकम् ॥
व्याहृतं भवता पूर्वं रेवामाहात्म्यमुत्तमम् । तथापि चरितं साधो ! यदेतत्तन्निगद्यताम्
अथ चोत्तमावार्ता या सेवितव्या मनीषिभिः ।
अतः पृच्छामि विप्रेन्द्र रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ।
इतिहासं वद विभो ! कन्यानां चरितोज्ज्वलम् ॥ ८ ॥

नारद उवाच ।

श्रूयतां राजशार्दूल ! धर्मगर्भा परा कथा । यथा रणिर्वह्निगर्भा धर्म्मस्तु ब्रह्मसूरिव ॥
गन्धर्वः शुकसङ्गीतस्तस्य कन्याप्रमोहिनी ।
सुशीलस्य सुशीला च सुस्वरा स्वरवेदिनः ॥ १० ॥
सुतारा चन्द्रकान्तस्य चन्द्रिका सुप्रभस्य च । इमानि वरनामानि तासामप्सरसां नृप
कुमार्यः पञ्चसर्वास्ता वयसा सुभगाः पुनः । भाषन्ते च मिथस्तास्तु भगिन्य इव सर्वदा
चन्द्रादिव विनिष्क्रान्ताश्चन्द्रिका इव सोज्ज्वलाः ।
चन्द्राननाः सुकेश्यश्च चन्द्रकान्ता इवोज्ज्वलाः ॥ १३ ॥
रूपोपेता विलासिन्यः कौमुद्यः कैरवेष्विव । लावण्यपिण्डसम्भूता दिव्यरूपा मनोहराः
उद्भिन्नकुचपद्मिन्यः केतक्य इव माधवे । उत्पन्नयौवनैः कान्ता वल्लीव नवपल्लवैः ॥
हेमगौराश्च हेमाभा हेमाभरणभूषिताः । हेमचम्पकमालिन्यो हेमच्छविसुवाससः ॥
स्वरग्रामावलीहासु विविधामूर्च्छनासु च । तालवाद्यविनोदेषु वेणुवीणाप्रवादने ॥
मृदङ्गनादसम्भिन्नलास्यमध्यलयेषु च । चित्रादिषु विनोदेषु कलासु च विशारदाः ॥
एवं भूताश्च ताः कन्या मुमुदुः क्रीडनैर्वरैः । पितृभिर्लालिताः सर्वाश्चेरुश्च धनदालये
कौतुकादेकदा पञ्च मिलित्वा मासि माधवे ।
कन्यामन्दारपुष्पाणि विचिन्वन्त्यो वनाद्वनम् ॥ २० ॥

गौरीं समाराधयितुं सुराङ्गनाः कदाचिदच्छोदसरोवरं ययुः ।
हेमाम्बुजानि प्रवराणि ताः पुनस्तस्मादुपादाय वरोत्पलैः सह ॥ २१ ॥
वैडूर्यशुद्धस्फटिकप्रकुट्टिमे स्नात्वा तु घट्टे परिधाय चाम्बरम् ।
मौनेन च स्थण्डिलपिण्डिकामुमां सुवर्णमुक्ताभरणां विनिर्ममुः ॥ २२ ॥
समर्चितां चन्दनगन्धकुङ्कुमैरभ्यर्च्य गौरीं वरपङ्कजादिभिः ।
नानोपहारैः शुभभक्तिभाविता लास्यप्रयोगैर्ननृतुः कुमारिकाः ॥ २३ ॥
गान्धर्वमाश्रित्य परं स्वरं ततो गेयं स्वभावध्वनिभिः समूर्छनम् ।
एणीदृशस्ताः प्रजगुः कलाक्षरं तारप्रवृद्धं गतिभिश्च सुस्वरम् ॥ २४ ॥
तस्मिन्सुभावे रसवर्षहर्षं कन्यास्वलं निर्भरचित्तवृत्तिषु ।
अच्छोदतीर्थे प्रवरे तदागतः स्नातुं मुनेर्वेदनिधेः सुतोऽग्रजः ॥ २५ ॥
रूपेण निःसीमतरो वराननः प्रफुल्लपद्मायतलोचनो युवा ।
विस्तीर्णवक्षाः सुभुजोऽतिसुन्दरः श्यामच्छविः काम इवापरो हि सः
स ब्रह्मचारी सुशिखो हि शोभते दण्डेन युक्तो धनुषेव मन्मथः ।
एणाजिनप्रावरणः समुद्वधृग्घेमाभमौञ्जीकटिमेखलः परः ॥ २७ ॥
तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं बालास्तास्तत्र सरसस्तटे ।
जहृषुः कौतुकाविष्टा अयं नो भविताऽतिथिः ॥ २८ ॥
सम्मुक्तगीतनृत्यास्तास्तस्याऽऽलोकनलालसाः ।
हरिण्यो लुब्धकेनैव विद्धाः कामेन सायकैः ॥ २९ ॥
पश्यपश्येति जल्पन्त्यो मुग्धाः पश्च ससम्भ्रमम् ।
तस्मिन्विप्रवरे यूनि कामदेवभ्रमं ययुः ॥ ३० ॥
पुनःपुनस्तमभ्यर्च्य नयनैः पङ्कजैरिव । पश्चाद्विचारमारब्धमप्सरोभिः परस्पर
यद्ययं कामदेवो हि रतिहीनः कथं भवेत् । अथवा ह्यश्विनौ देवौ तावुभौ युगवा
गन्धर्वः किन्नरो वाऽथसिद्धो वा कामरूपधृक् ।
ऋषिपुत्रोऽथवा कश्चित्कश्चिद्वा मनुजोत्तमः ॥ ३३ ॥

अस्ति वा कश्चिदेवायं धात्रा सृष्टो हि नः कृते ।
यथा भाग्यवतामर्थे निधानं पूर्वकर्मभिः ॥ ३४ ॥

यथाऽस्माकं कुमारीणां गौर्याऽऽनीतो वरोत्तमः । करुणाजलकल्लोललब्धार्द्रीकृतचित्तया
यथावृतस्त्वया चायं त्वया वृतस्तथानया । एवं पञ्चसु कन्यासु वदन्तीषु नृपोत्तम ॥

श्रुत्वा तद्वचनं तत्र कृतमाध्याह्निकक्रियः ।
चिन्तयामास मेधावी किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ ३७ ॥
गाधिसम्भवपराशरादयः कण्डुदेवलमुखाश्च ये द्विजाः ।
तेऽपि योगिबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरद्भुतम् ॥ ३८ ॥
योषितां नयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलतासुदृढचापनिर्गतैः ।
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतति वा मनोभृशम् ॥ ३९ ॥
तावदेव नयधीर्विराजते तावदेव जनताभयं भवेत् ।
तावदेव धृतचित्तता भृशं तावदेव गणना कुलस्य च ॥४०॥
तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव शमसेवनं नृणाम् ।
यावदेव ललनेक्षणासवैर्माद्यते द्रुतमदैर्न पूरुषः ॥ ४१ ॥
मोहयन्ति मदयन्ति रागिणं योषितः स्वललितैर्मनोहरैः ।
मोदयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि स्वैर्गुणैः ॥ ४२ ॥
मांसरक्तमलमूत्रनिर्मिते योषितां वपुषि निर्गुणेऽशुचौ ।
कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामाविशन्ति सुविमूढचेतसः ॥ ४३ ॥
दारुणा हिं परिकीर्तिताङ्गना साधुभिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः ।
यावदेव न समीपगा इमास्तावदेव हि गृहं व्रजाम्यहम् ॥ ४४ ॥

समीपं तस्य यावन्न आगच्छन्ति वरस्त्रियः । वैष्णवेन प्रभावेण तावदन्तर्दधे द्विजः
तस्य योगबलाद्भूप गतस्यादर्शनं तदा । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म वैष्णवब्रह्मचारिणः ॥

वित्रस्तनयना बालाः कुरङ्ग्य इव कातराः ।
सङ्क्रान्तनयना शून्या ददृशुस्ता दिशो दश ॥ ४७ ॥

कन्या ऊचुः ।

इन्द्रजालं स्फुटं वेत्ति मायां जानाति वा पुनः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टरूपोऽभूदित्यूचुस्ताः परस्परम् ॥ ४८ ॥
व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना । ज्वलद्दावानलेनैव सुस्निग्धं सर्वकाल
त्यजेन्द्रजालिकां विद्यां कान्त दर्शय सत्वरम् ।
आत्मानं न हि ते त्यक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकोपमम् ॥ ५० ॥
हा कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा त्वं घटितः कुतः । ज्ञातं महानुसन्तापहेतुर्नः स्वं विनि
कच्चित्ते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मासु नो मतिः ।
कच्चित्क्रूरोऽसि हे कान्त कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥ ५२ ॥
कच्चिन्न प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मान्परीक्षसे ।
कच्चिन्निर्ममता शीलः कच्चिन्मायाविशारदः ॥ ५३ ॥
कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं च वेत्सि विज्ञानलाघवम् ।
कच्चिन्निष्क्रमणोपायं न जानासि कुतः पुनः ॥ ५४ ॥
कच्चिद्विनाऽपराधं तु किमस्मासु प्रकुप्यसे ।
कच्चिद्दुःखं न जानासि परेषां विप्रलम्भनम् ॥ ५५ ॥
त्वद्दर्शनं विना नष्टा हृदयेश्वर साम्प्रतम् । न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शना
वयं नीयामहै तत्र शीघ्रं यत्र गतो भवान् ।
त्वद्दर्शनहरो धाता व्यधान्मोहाङ्कुरच्छिदाम् ॥ ५७ ॥
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा । पर्यन्तं न प्रपश्यन्ति कस्यचित्सुजना
इत्थं विलप्य ताः कन्याः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
पितुर्भयाद्गृहं गन्तुं शीघ्रमारेभिरे ततः ॥ ५९ ॥
तत्प्रेमनिगडैर्बद्धा भृशं विरहविक्लवाः । कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य ताः स्वं स्वं गृहम
आगत्य पतिताः सर्वा मातॄणां तु समीपतः ।
किमेतन्मातृभिः पृष्टाः कुतः कालात्ययोऽभवत् ॥ ६१ ॥

कन्या ऊचुः ।

क्रीडन्त्यः किन्नरीभिस्तु सार्द्धं सङ्गतकं यदा ।
संस्थितास्तेन न ज्ञातो दिवसोऽच्छोदसरोवरे ॥ ६२ ॥
पथि श्रान्ता वयं मातः सन्तापस्तेन नस्तनौ । मोहेन महता वक्तुं न केनाप्युत्सहामहे

नारद उवाच ।

इत्युक्त्वा लुठितास्तत्र मणिभूमौ कुमारिकाः ।
आकारं गोपयन्त्यस्ता मुग्धा जल्पन्ति मातृभिः ॥ ६४ ॥
काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । न पाठयति तं कीरं पञ्जरेऽन्या कुतूहलात् ॥
लालयेन्नकुलं नान्या नोल्लापयति सारिकाम् । अपरातीव संमुग्धा नैव खेलति सारसैः
भेजिरे न विनोदं ता रेमिरे नैव मन्दिरे । ऊचिरे बान्धवैर्नालं वीणावाद्यं न चक्रिरे ॥
कल्पद्रुमप्रसूनं यत्सर्वं तच्चानलोपमम् । मन्दारकुसुमामोदि न पपुर्मधुरं मधु ॥ ६८ ॥
योगिन्य इव ताः कन्या नासाग्रन्यस्तलोचनाः ।
अलक्ष्यध्यानसन्तानाः पुरुषोत्तममानसाः ॥ ६९ ॥
चन्द्रकान्तमणिच्छन्ने स्रवद्वारिणि कन्दरे । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयन्त्रगृहे क्षणम्
रचयन्ति क्षणं शय्यां दीर्घिकाम्भोजिनीदलैः ।
वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैर्नलिनीदलैः ॥ ७१ ॥
इत्थं युगसमां रात्रिमनयंस्ता वरस्त्रियः । कथंचिद्धारणं कृत्वा विह्वलाः सज्वरा इव
प्रातर्व्योममणिं दृष्ट्वा मन्यमानाः स्वजीवितम् ।
विज्ञाप्य मातरं स्वां स्वां गौरीं पूजयितुं गताः ॥ ७३ ॥
स्नात्वा तेन विधानेन पुष्पैर्धूपैस्तथा पुनः ।
विधाय पूजनं देव्या गायन्त्यस्तत्र ताः स्थिताः ॥ ७४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रः स्नातुं सोऽपि समागतः । पितुराश्रमतस्तस्मादच्छोदेऽत्र सरोवरे
मित्रं दृष्ट्वैव राज्यन्ते पद्मिन्य इव कन्यकाः ।
तत्फुल्लनयना जातास्तं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणम् ॥ ७६ ॥

गत्वा तत्रैव ताः कन्याः समीपं ब्रह्मचारिणः । सव्यापसव्यबन्धेन भुजपाशं च च
गतोऽसि प्रिय पूर्वेद्युर्गन्तुमद्य न लभ्यते । वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र तेऽस्ति विचार
इत्युक्तो ब्राह्मणः प्राह प्रहसन्बाहुपाशगः । युष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं प्रियं व
प्रथमाश्रमनिष्ठस्य किं तु नश्येत मे व्रतम् । विद्याभ्यसनशीलस्य नाभूत्पारं गुरोः
आश्रमे यत्र योधर्मो रक्षणीयः सुपण्डितैः । विवाहोऽयमतो मन्ये न धर्म इतिक

आकर्ण्य विप्रवाक्यानि विप्रमूचुर्वरस्त्रियः ।
सकलध्वनिसोत्कण्ठयः कोकिला इव माधवे ॥ ८२ ॥

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामात्सुखफलोदयः । इत्येवं निश्चयज्ञास्ते वर्णयन्ति विप
सकामो धर्मबाहुल्यात्पुरतस्ते समुत्थितः । सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वच्छाभूमिरियं
श्रुत्वा तद्वचनं तासां प्राह गम्भीरया गिरा । तथ्यं वो वचनं किं तु ममाप्यावश्यकं

प्राप्यानुज्ञां गुरोः कुर्वे विवाहकर्म नान्यथा ।
इत्युक्ताः पुनरूचस्ताः स्फुटं मूढोऽसि सुन्दर ॥ ८६ ॥
सिद्धौषधं ब्रह्मधिया रसायनं सिद्धिर्निधिः साधुकुलावराङ्गनाः ।
मन्त्रस्तथासिद्धरसश्च धर्मतो मुने निषेव्याः सुधिया समागताः ॥ ८७ ॥
कार्यं नु दैवाद्यदिसिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च यान्ति नीतिगाः ।
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥ ८८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् । नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुल

सान्द्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्तासुगिरः स्वयंवराः ।
कन्याः सुरूपाः खलु चारुयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥ ९

क्व वयं सुरसुन्दर्य्यः क्व भवांस्तापसो बटुः । दुर्घटस्य विधानेन मन्ये धातैव प

तस्मादस्मानिदानीं तु स्वीकुर्य्यान्मङ्गलं भवान् ।
गान्धर्वेण विवाहेन अन्यथा नोपजीवनम् ॥ ९२ ॥
श्रुत्वा वाक्यं ततः प्राह ब्राह्मणो धर्मवित्तमः ।
भो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मधनैर्नरैः ॥ ९३ ॥

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् । यथोक्तं फलदं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम्
अकालेऽहं व्रती कुर्यामतो दारपरिग्रहम् । न क्रियाफलमाप्नोति क्रियाकालं न वेत्ति यः
अतो धर्मविचारेऽस्मिन्प्रसक्तं मम मानसम् । तस्माच्छृणुत हे कन्या न समीहे स्वयंवरम्

एवं ज्ञात्वाऽऽशयं तस्य समीक्ष्यैव परस्परम् ।
करात्करं विमुच्याथ जग्राहाङ्घ्रिं प्रमोहिनी ॥ ९७ ॥
भुजौ जगृहतुस्तस्य सुशीला सुस्वरा तथा ।
आलिलिङ्ग सुतारा च वक्त्रं चुम्बति चन्द्रिका ॥ ९८ ॥

तथापि निर्विकारोऽसौ प्रलयानलसन्निभः । शशाप ब्रह्मचारी ताः क्रोधेनात्यन्तमूर्च्छितः

पिशाच्य इव मां लग्नास्तत्पिशाच्यो भविष्यथ ।
एवं तेनाशु शप्तास्तास्तं त्यक्त्वा पुरतः स्थिताः ॥ १०० ॥
किमेतच्चेष्टितं पापं ह्यनागसि विचेष्टया ।
प्रियङ्कृतोऽप्रियं कृत्वा धिक्त्वां धर्मकृतान्तकम् ॥ १०१ ॥

अनुरक्तेषु भक्तेषु मित्रेषु द्रोहकारिणः । पुंसो लोकोभयोः सौख्यं नाशमेतीति नः श्रुतम्

तस्मात्त्वमपि नः शापात्पिशाचो भव सत्वरम् ।
इत्युक्त्वापि च ता बाला निःश्वसन्त्यः क्रुधाकुलाः ॥ १०३ ॥

दैवात्योन्यसंरम्भात्तस्मिन्सरसि पार्थिव ! । ताः कन्या ब्रह्मचारी च सर्वे पैशाच्यमागताः

स पिशाचः पिशाच्यस्ताः क्रन्दमानाः सुदारुणम् ।
क्षपयन्ति विपाकांस्तान्पूर्वोपात्तस्य कर्मणः ॥ १०५ ॥

स्वकाले प्रभवत्येव पूर्वोपात्तं शुभाशुभम् । स्वच्छायेव च दुर्वारं देवानामपि पार्थिव
रुदन्ति पितरस्तासां मातरस्तत्र तत्र च । भ्रातरश्चैव बालानां दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥
अतऊर्ध्वं पिशाचास्ते आहारार्थं सुदुःखिताः । इतस्ततश्च धावन्तो वसन्ति सरसस्तटे

इति श्री पाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रमोहिन्यादिगन्धर्वकन्यानामितिहासवर्णनं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

लोमशमुनिनासह पिशाचीगणसहितस्य पिशाचस्य संवादः।

नारद उवाच ।

एवं बहुतिथे काले लोमशो मुनिसत्तमः । आगतश्च महाभागस्तत्र यादृच्छिको मुनि

तं दृष्ट्वा ब्राह्मणं सर्वे पिशाचाः क्षुत्समाकुलाः ।

धावन्तो ह्यत्तुकामास्ते मिलित्वा यूथवर्त्तिनः ॥ २ ॥

दह्यमानास्तु तीव्रेण तेजसा लोमशस्य तु ।

असमर्थाः पुरः स्थातुं ते सर्वे दूरतः स्थिताः ॥ ३ ॥

तत्र पूर्वकर्मबलात्पिशाचैः सह वै द्विजः । समीक्ष्य लोमशं राजन्साष्टाङ्गं प्रणिपत्य

उवाच सूनृतां वाचं बद्ध्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।

महाभाग्योदये विप्र साधूनां सङ्गतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वथा । यः करोति सतांसङ्गं तयोः सत्सङ्गमो

गुरूणां सङ्गमो विप्र दृष्टादृष्टफलौ भुवि । स्वर्गदो रोगहारी च किं तमोऽपहरो

इत्युक्त्वा कथयामास पूर्ववृत्तान्तमद्भुतम् ।

इमा गन्धर्वकन्यास्ता मुने सोऽहं द्विजात्मजः ॥ ८ ॥

सर्वे पिशाचरूपेण मिथःशापविमोहिताः । दीनाननास्तुतिष्ठामस्तवाग्रे मुनिसत्तमा

त्वद्दर्शनेनबालानां निस्तारो नो भविष्यति । सूर्योदये तमस्तोमः किं न नश्येत पुण्य

श्रुत्वैतल्लोमशोवाक्यं कृपार्द्रीकृतमानसः । प्रत्युवाच महातेजाः दुःखितं तं मुनेः सु

मत्प्रसादाच्च सर्वेषां स्मृतिः सपदि जायताम् ।

धर्मे च वर्ततां येन मिथः शापो लयं व्रजेत् ॥ १२ ॥

पिशाच उवाच ।

महर्षे ! कथ्यतां धर्मो मुच्येम येन किल्बिषात् ।

नायं कालो विलम्बस्य शापाग्निर्दारुणो यतः ॥ १३ ॥

लोमश उवाच।

मया सार्द्धं प्रकुर्वन्तु रेवास्नानं विधानतः।
शापान्मोक्ष्यति वो रेवा नान्यथा निष्कृतिर्भवेत् ॥ १४ ॥
[बहु]पुण्यावहितो विप्र पापनाशो ध्रुवं नृणाम्। रेवास्थानेन जायेत इति मे निश्चिता मतिः
[पूर्व]जन्मकृतं पापं वर्तमानं च पातकम्। रेवास्नानं दहेत्सर्वं तूलराशिमिवानलः ॥१६॥
[प्र]ायश्चित्तं न पश्यन्ति यस्मिन्पापे पिशाचक। तत्सर्वं नर्मदातोये स्नानमात्रेण नश्यति
[म]ानकृन्नर्म्मदास्नानमतो मोक्षफला हि सा। हिमवत्पुण्यतीर्थानि सर्वपापहराणि वै
[ब्र]ह्मलोकप्रदं हीदं निर्मितं ब्रह्मवादिभिः। सर्वकामफला रेवा मोक्षदा परिकीर्तिता ॥
[पा]पघ्नी पापहारिणी सर्वकामफलप्रदा। विष्णुलोकदआप्लावोनार्मदःपापनाशनः ॥
[य]मुनः सूर्यलोकाय भवेदाप्लाव उत्तमः। सारस्वतोऽथ विध्वंसी ब्रह्मलोकफलप्रदः ॥
[व]िशालफलदा प्रोक्ता विशाला हि पिशाचक। पापेन्धनदवाग्निस्तु गर्भहेतुक्रियापहः ॥
[व]िष्णुलोकाय मोक्षाय नार्मदः परिकीर्तितः। सरयूगण्डकीसिन्धुश्चन्द्रभागा च कौशिकी
तापी गोदावरी भीमा पयोष्णी कृष्णवेणिका।
कावेरी तुङ्गभद्रा च अन्याश्चापि समुद्रगाः ॥ २४ ॥
तासु रेवा परा प्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी।
[स]ा तु प्राप्यते पुण्यैः पूर्वजन्मकृतैर्द्विज। अपुनर्भवदं तत्र मज्जनं मुनिपुत्रक ॥ २५ ॥
गायन्ति देवाः सततं दिविष्ठा रेवा कदा दृष्टिगता हि नो भवेत्।
स्नाता नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ ॥ २६ ॥
मज्जन्ति ये प्रत्यहमत्र मानवा रेवासु तोये बहुपापकञ्चुकाः।
मज्जन्ति ते नो निरयेषु धर्म्मतः स्वर्गे तु ते चारु चरन्ति देववत् ॥ २७ ॥
तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः सार्धं विधात्रा तुलया धृता पुरा।
रेवापिशाचाऽऽशु तयोर्द्वयोरभूद्रेवा वरा तत्र च मोक्षसाधिका ॥ २८ ॥

नारद उवाच।

[इत्याक]र्ण्य त्वा वचस्तस्य लोमशस्य पिशाचकाः। तेन सार्द्धं ययुः शीघ्रं रेवामज्जनहेतवे

ततो दैवात्समुत्पन्नो रेवारोधसि मारुतः । तेषां प्रवाहस्पृष्टानां गात्रे जलकणप्रदः ।
रेवाजलकणस्पर्शात्पैशाच्यात्ते विमोचिताः । तत्क्षणाद्दिव्यवपुषः प्रशशंसुश्च नर्मदाम् ।
ततो लोमशवाक्येन ताश्च गन्धर्वकन्यकाः । परिणीताः सुखं तेन विप्रेण नर्मदातटे ।
उवास सुचिरं कालं स्नानपानावगाहनैः । अर्चित्वा नर्मदामत्र विष्णुलोकं गताश्च ते ।
एवं ते कथितो राजन्नर्मदागुणसंश्रयः । इतिहासो महापुण्यः श्रवणात्पापनाशनः ।
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नर्मदामाहात्म्यवर्णनेपैशाच्यान्मोचनं नाम

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

अन्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

अथान्यानि तु तीर्थानि वासिष्ठोक्तानि मे वद ।
श्रुत्वा यानि च पापानि विलयं यान्ति नारद ! ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

शृणुष्वात्र हि तीर्थानि वसिष्ठोक्तानि पार्थिव ! ।
दक्षिणं सिन्धुमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ २ ॥

अग्निष्टोममवाप्नोति विमानं चाधिरोहति । चर्मण्वतीं समासाद्य नियतो नियताशनः ।
रन्तिदेवाभ्यनुज्ञातश्चाग्निष्टोमफलं लभेत् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! हिमवत्सुतमर्बुदम् ।
पृथिव्या यत्र वै छिद्रं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर । तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् । पिङ्गातीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी नराधिप ।
कपिलानां नरव्याघ्र! शतस्य फलमाप्नुयात् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! प्रभासंलोकविश्रुतम् ।
यत्र सन्निहितो नित्यं स्वयमेव हुताशनः । देवतानां मुखं वीर ! अनलोऽनिलसारथिः ।

तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः ।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ६ ॥
ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च सङ्गमम् ।
गोसहस्रफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥ १० ॥

दीप्यमानोऽग्निवन्नित्यं प्रभया भरतर्षभ ! । तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः
त्रिरात्रमुषितस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः । विराजति यथा सोमो वाजिमेधं च विन्दति ॥
वरदानं ततो गच्छेत्तीर्थं भरतसत्तम ! । विष्णोर्दुर्वाससा यत्र वरो दत्तो युधिष्ठिर !
वरदाने नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत । ततो द्वारवतीं गच्छेन्नियतो नियताशनः

पिण्डारके नरः स्नात्वा लभेद्‍ बहुसुवर्णकम् ।
तस्मिंस्तीर्थे महाराज ! पद्मलक्षणलक्षिताः ॥ १५ ॥

अद्यापि मुद्रा दृश्यन्ते तदद्भुतमरिन्दम ! । त्रिशूलाङ्कानि पद्मानि दृश्यन्ते कुरुनन्दन ॥
महादेवस्य सान्निध्यं तत्रैव भरतर्षभ ! । सागरस्य च सिन्धोश्च सङ्गमं प्राप्य भारत !
तीर्थे सलिलराजस्य स्नात्वा प्रयतमानसः । तर्पयित्वा पितॄन्देवानृषींश्च भरतर्षभ ! ॥

प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानः स्वतेजसा ।
शङ्कुकर्णेश्वरं देवमर्चयित्वा युधिष्ठिर ! ॥ १६ ॥

अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः । प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ ॥ २० ॥
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तिमीति नाम्ना विख्यातं सर्वपापप्रमोचनम्
यत्र शक्रादयो देवा उपासन्तेमहेश्वरम् । तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च रुद्रं देवगणैर्वृतम्
जन्मप्रभृति पापानि कृतानि मुदते नरः । तिमिरत्र नरश्रेष्ठ सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ २३ ॥

तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ हयमेधमवाऽऽप्नुयात् ।
जित्वा तत्र महाप्राज्ञ। विष्णुना दितिनन्दनम् ॥ २४ ॥

पुरा शौचं कृतं राजन्हत्वा दैवतकण्टकम् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! वसुधाराममभिष्टुताम्
गमनादेव तस्यां हि हयमेधमवाप्नुयात् । स्नात्वा कुरुवरश्रेष्ठ ! प्रयतात्मा तु मानवः ॥
तर्पयित्वा पितॄन्देवान्विष्णुलोके महीयते । तीर्थं चापि परं तत्र वसूनां भरतर्षभ ! ॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च वसूनां सम्मतो भवेत् ।
सिन्धुत्तममिति ख्यातं सर्वपापप्रनाशनम् ॥ २८ ॥
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ लभेद्बहुसुवर्णकम् । ब्रह्मतुङ्गं समासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति सुकृती विरजा नरः । कुमारिकाणां शक्रस्य तीर्थं सिद्धनिषेवितम्
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ शक्रलोकमवाप्नुयात् । रेणुकायाश्च तत्रैव तीर्थं देवनिषेवितम्
स्नात्वा तत्र भवेद्विप्रो विमलश्चन्द्रमा इव । अथ पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः
पञ्चयज्ञानवाप्नोति क्रमशो ये तु कीर्तिताः ।
ततो गच्छेत धर्मज्ञ भीमायाः स्थानमुत्तमम् ॥ ३३ ॥
तत्र स्नात्वा न योन्यां वै नरो भरतसत्तम! । देव्याः पुत्रो भवेद्राजंस्तत्र कुण्डलवि...
गवां शतसहस्रस्य फलं चैवाऽऽप्नुयान्महत् । गिरिकुञ्जं समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्
पितामहं नमस्कृत्य गोसहस्रफलं लभेत् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! विमलं तीर्थमुत्तमम्
अद्यापि यत्र दृश्यन्ते मत्स्याः सौवर्णराजताः ।
तत्र स्नात्वा नरश्रेष्ठ वाजपेयमवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत्परमिकां गतिम् ॥ ३८ ॥
इतिश्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे नानातीर्थमाहात्म्यकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः

———

पञ्चविंशोऽध्यायः

काश्मीरस्थतक्षकनागभवनवितस्तादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

वितस्तां च समासाद्य सन्तर्प्य पितृदेवताः । नरः फलमवाप्नोति वाजपेयस्य भा...
काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च ।
वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ २ ॥

...त्र स्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात् । सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम्
...तो गच्छेत मलदं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । पश्चिमायां तु सन्ध्यायामुपस्पृश्य यथाविधि
...रुं सप्तार्चिषे राजन्यथाशक्ति निवेदयेत् । पितॄणामक्षयं दानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
...वां शतसहस्रेण राजसूयशतेन च । अश्वमेधसहस्रेण श्रेयान्सप्तार्चिषश्चरुः ॥ ६ ॥
...तो निवृत्तो राजेन्द्र ! रुद्रास्पदमथाविशेत् । अभिगम्य महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ॥
...णिमन्तं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः । एकरात्रोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्
...थ गच्छेत राजेन्द्र ! देविकां लोकविश्रुताम् । प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ !

त्रिशूलपाणेःस्थानं यत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
देविकायां नरः स्नात्वा अभ्यर्च्य च महेश्वरम् ॥ १० ॥

...थाशक्ति नरस्तत्र निवेद्य भरतर्षभ । सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥११॥

कामाख्यं तत्र रुद्रस्य तीर्थं देवर्षिसम्मतम् ।
तत्र स्नात्वा नरःक्षिप्रं सिद्धिमाप्नोति भारत ! ॥ १२ ॥

...नं याजनं गत्वा तथैव ब्रह्मवालकम् । पुष्पन्यास उपस्पृश्य न शोचेन्मरणं ततः ॥
...र्धयोजनविस्तारां पञ्चयोजनमायताम् । एतावद्देविकामाहुःपुण्यां देवर्षिसंमताम् ॥
...तो गच्छेत धर्मज्ञ ! दीर्घसत्रं यथाक्रमम् । यत्र ब्रह्मादयोदेवाःसिद्धाश्च परमर्षयः ॥
...र्घसत्रमुपासन्ते दीक्षिता नियतव्रताः । गमनादेव राजेन्द्र दीर्घसत्रमरिन्दम ! ॥१६॥
...जसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः । ततो विनाशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः
...च्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती । चमसे च शिवोद्भेदे नागोद्भेदे च दृश्यते॥१८॥

स्नात्वा तु चमसोद्भेदे अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शिवोद्भेदे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १९ ॥

...गोद्भेदे नरःस्नात्वा नागलोकमवाप्नुयात् । शशयानं च राजेन्द्र ! तीर्थमासाद्य दुर्लभम्
...शरूपप्रतिच्छन्नाःपुष्करा यत्र भारत । सरस्वत्यां महाभाग ! अनुसंवत्सरं हि ते ॥

स्नायन्ते भरतश्रेष्ठ ! वृत्ता वै कार्त्तिकीं सदा ।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! द्योतते शिववत्सदा ॥ २२ ॥

गोसहस्रफलंचैव प्राप्नुयाद्भरतर्षभ। कुमारकोटिमासाद्य नियतःकुरुनन्दन! ॥ २
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चनेरतः। गवामयुतमाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ २

ततो गच्छेत धर्मज्ञ रुद्रकोटिं समाहिताः।
पुरा यत्र महाराज! ऋषिकोटिः समाहिता ॥ २५ ॥

वर्षेण च समाविष्टा देवदर्शनकाङ्क्षया। अहं पूर्वमहं पूर्वं द्रक्ष्यामि वृषभध्वज
एवं सम्प्रस्थिता राजन्नृषयःकिल भारत। ततो योगीश्वरेणापि योगमास्थाय भू

तेषां मन्युप्रशान्त्यर्थमृषीणां भावितात्मनाम्।
सृष्टा तु कोटीरुद्राणामृषीणामग्रतःस्थिता ॥ २८ ॥

मया पूर्वं हरोदृष्ट इति ते मेनिरे पृथक्। तेषां तुष्टो महादेव ऋषीणामुग्रतेजसा
भक्त्या परमया राजन्वरं तेषां प्रदत्तवान्। अद्यप्रभृति युष्माकं धर्मवृद्धिर्भविष्यति
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र! रुद्रकोट्यां नरःशुचिः। अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समु
ततो गच्छेत राजेन्द्र! सङ्गमं लोकविश्रुतम्। सरस्वत्यां महापुण्यमुपासीत जनार्द
यत्र ब्रह्मादयोदेवा ऋषयःसिद्धचारणाः। अभिगच्छन्ति राजेन्द्र चैत्रशुक्लचतुर्दशी
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र! विन्देद् बहुसुवर्णकम्। सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकं च गच्छ
ऋषीणां यत्र सत्राणि समाप्तानि नराधिप!। तत्रावसानमसाद्य गोसहस्रफलं ल
इतिश्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे काश्मीरस्थतक्षकनागभवनवितस्तादि
माहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

कुरुक्षेत्रमत्तर्णकपारिप्लवतीर्थनैमिषादितीर्थानांनानाह्रदनदनदीनाञ्चवर्णनम्

नारद उवाच।

ततो गच्छेत राजेन्द्र! कुरुक्षेत्रमभिष्टुतम्। पापेभ्यो विप्रमुच्यन्ते तद्गताःसर्वज
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्। य एवं सततं ब्रूयात्सर्वपापैःप्रमुच्यते

त्र मासं वसेद्धीरःसरस्वत्यां नराधिप। यत्र ब्रह्मादयोदेवा यत्र ब्रह्मर्षिचारणाः॥
न्धर्वाप्सरसो यक्षाःपन्नगाश्च महीपते!। ब्रह्मक्षेत्रं महापुण्यमभिगच्छन्ति भारत!॥
नसाप्यभिकामस्य कुरुक्षेत्रे युधिष्ठिर। पापानि विप्रणश्यन्ति ब्रह्मलोकं च गच्छति
त्वा हि श्रद्धया युक्तःकुरुक्षेत्रं कुरूद्वह!। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥
तोमत्तर्णकं राजन्द्वारपालं महाबलम्। यंवै समभिवाद्यैव गोसहस्रफलं लभेत्॥ ७॥

ततो गच्छेत धर्मज्ञ विष्णोःस्थानमनुत्तमम्।
सततं नाम राजेन्द्र! यत्र सन्निहितो हरिः॥ ८॥
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च त्रिलोकप्रभवं हरिम्।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति॥ ९॥
ततःपारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः॥ १०॥

थिव्यां तीर्थमासाद्य गोसहस्रफलं लभेत्। ततःशालिकिनीं गत्वा तीर्थसेवी नराधिप!
शाश्वमेधिके स्नात्वा तदेव लभते फलम्। सर्पनीविं समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्
ग्निष्टोममवाप्नोति नागलोकं च गच्छति। ततो गच्छेत धर्मज्ञ द्वारपालमतर्णकम्॥
ष्योष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत्। ततःपञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः॥
टिरितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलं लभेत्। अश्विनीतीर्थमागम्य रूपवानभिजायते॥
तो गच्छेत धर्मज्ञ! वाराहं तीर्थमुत्तमम्। विष्णुर्वाराहरूपेण पुरा यत्रस्थितोऽभवत्॥

तत्र स्थित्वा नरव्याघ्र! अग्निष्टोमफलं लभेत्।
ततो जयिन्यां राजेन्द्र सोमतीर्थं समाविशेत्॥ १७॥

त्वा फलमवाप्नोति राजसूयस्य मानवः। एकहंसे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्
शौचं समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह!। पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेच्च सः॥
तो मुञ्जावटं नाम महादेवस्य धीमतः। तत्रोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात्॥

तत्रैव च महाराज! जयां लोकपरिश्रुताम्।
स्नात्वाऽभिगम्य राजेन्द्र सर्वकाममवाप्नुयात्॥ २१॥

कुरुक्षेत्रस्य तद्‌द्वारं विश्रुतं भरतर्षभ ! । प्रदक्षिणमुपावृत्य तीर्थसेवी समावृतः ॥ २२ ॥

संस्मृते पुष्कराणां तु स्नात्वार्च्य पितृदेवताः ।

जामदग्न्येन रामेण आहूते वै महात्मना ॥ २३ ॥

कृतकृत्यो भवेद्राजन्नश्वमेधं च विन्दति । ततो रामह्रदं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप !

तत्र रामेण राजेन्द्र ! तरसा दीप्ततेजसा । क्षत्रमुत्सार्य वीर्येण ह्रदाःपञ्च निवेशिताः

पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नःश्रुतम् । पितरस्तर्पिताःसर्वे तथैव प्रपितामहाः

ततस्ते पितरःप्रीता राममूचुर्महीपते ! । रामराम महाभाग ! प्रीताःस्मस्तव भार्गव

अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च तेऽनघ ।

वरं वृणीष्व भद्रं ते किमिच्छसि महामते ॥ २८ ॥

एवमुक्तःस राजेन्द्र ! रामःप्रवदतांवरः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पितॄन्स गगनेस्थितान्

भवन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि ।

पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायनं पुनः ॥ ३० ॥

यच्चरोषाऽभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया । ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसाहम् तत्र

ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः । एतच्छ्रुत्वा शुभंवाक्यं रामस्य पितरस्तदा

प्रत्यूचुःपरमप्रीता रामं तोषसमन्विताः । तपस्ते वर्द्धतां भूयः पितृभक्त्या विशेषतः

यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया ।

ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं निहतास्ते स्वकर्मणा ॥ ३४ ॥

ह्रदाश्च तवतीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः । ह्रदेष्वेतेषु यःस्नात्वा पितॄन्सन्तर्पयेत्ततो

पितरस्तस्य वै प्रीता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ।

ईप्सितं मनसःकामं स्वर्गलोकं च शाश्वतम् ॥ ३६ ॥

एवं दत्त्वा वरं राजन्रामस्य पितरस्तदा । आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तर्दधुस्तदा

एवं रामह्रदाःपुण्या भार्गवस्य महात्मनः । स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुभव्रतः

राममभ्यर्च्य राजेन्द्र ! लभेद्‌बहु सुवर्णकम् । वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह

स्ववंशमुद्धरेद्राजन्स्नात्वा वै वंशमूलके । कायशोधनमासाद्य तीर्थं भरतसत्तम !

शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन्नसंशयः ।
शुद्धदेहस्तु संयाति शुभांल्लोकाननुत्तमान् ॥ ४१ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
लोका यत्रोद्धृताःपूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ४२ ॥
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
स्नात्वा तीर्थवरे राजँल्लोकानुद्धरते स्वकान् ॥ ४३ ॥
श्रीतीर्थं च समासाद्य विन्दते श्रियमुत्तमाम् ।
कपिलातीर्थमासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ४४ ॥
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवानिह पितॄंस्तथा ।
कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानवः ॥ ४५

सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः । अर्चयित्वा पितॄन्देवानुपवासपरायणः ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति । गवां भवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम्
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत् । गङ्गातीर्थं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप !
देव्यास्तीर्थे नरःस्नात्वा लभते वीर्यमुत्तमम् । ततोगच्छेत राजेन्द्र द्वारपालं लवर्णकम्

तस्य तीर्थे सरस्वत्यां यथेन्द्रस्य महात्मनः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५० ॥

ततो गच्छेत धर्मज्ञ ब्रह्मावर्तं नराधिप । ब्रह्मावर्ते नरःस्नात्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ सुतीर्थकमनुत्तमम् । यत्र सन्निहिता नित्यं पितरोदैवतैःसह ॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चनेरतः । अश्वमेधमवाप्नोति पितृलोकं च गच्छति ॥
ततोऽन्यतीर्थं धर्मज्ञ ! समासाद्य यथाक्रमम् । काशीश्वरस्य तीर्थेषु स्नात्वा भरतसत्तम
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य पार्थिव !
प्रजा विवर्द्धते राजन् स्वर्गतिं समवाप्नुयात् । ततःशीतवनं गच्छेन्नियतोनियताशनः ॥
तीर्थं तत्र महाराज ! महदन्यत्रदुर्लभम् । पुनाति दर्शनादेव दण्डेनैकं नराधिप ! ॥५७॥
केशानवप्य वै तस्मिन्पूतोभवति भारत । तत्र तीर्थवरं चान्यत्स्नातलोकार्तिहं स्मृतम्

तत्र विप्रा नरव्याघ्र ! विद्वांसस्तत्र तत्पराः । गतिं गच्छन्ति परमां स्नात्वा भरतसत्तम ।
स्वर्णलोमापनयने तीर्थे भरतसत्तम ! । प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ।
पूतात्मानश्च राजेन्द्र ! प्रयान्ति परमां गतिम् । दशाश्वमेधिकेचैव तस्मिंस्तीर्थे महीपते ।

तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! गच्छन्ति परमां गतिम् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! मानुषं लोकविश्रुतम् ॥ ६२ ॥

तत्र कृष्णामृगा राजन्व्याधेन शरपीडिताः । विगाह्य तस्मिन्सरसि मानुषत्वमुपागताः ।

तस्मिंस्तीर्थे नरःस्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥ ६४ ॥

मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रं महीपते ! । आपगानाम विख्याता नदी सिद्धनिषेविता ।
श्यामाकभोजनं तत्र यःप्रयच्छति मानवः । देवान्पितॄन्समुद्दिश्य तस्य धर्मफलं महत् ।

एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा ॥ ६७ ॥

उषित्वा रजनीमेकामग्निष्टोमफलं लभेत् । ततो गच्छेत धर्मज्ञ ब्रह्मणःस्थानमुत्तमम् ।
ब्रह्मानुस्वरमित्येवं प्रकाशं भुवि भारत ! । तत्र सप्तर्षिकुण्डेषु स्नातस्य भरतर्षभ ।
केदारे चैव राजेन्द्र! कपिलस्य महात्मनः । ब्रह्माणमभिगम्याथ शुचिःप्रयतमानसः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोकं प्रपद्यते । कपिष्ठलस्य केदारं समासाद्य सुदुर्लभम् ।

अन्तर्धानमवाप्नोति तपसा दग्धकिल्बिषः ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! सर्वकं लोकविश्रुतम् ॥ ७२ ॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामभिगम्य वृषध्वजम् । लभते सर्वकामान्हि स्वर्गलोकं च गच्छति ।
तिस्रःकोट्यश्च तीर्थानां प्रवरं कुरुनन्दन ! । रुद्रकोट्यां तथाकूपे ह्रदेषु च समन्ततः ।
इलास्पदं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तमम् । तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितॄंस्तथा ।
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति । किं दाने च नरःस्नात्वा किं यज्ञे च महीपते ।
अप्रमेयमवाप्नोति दानं यज्ञं तथैव च । कलश्यां वाप्युपस्पृश्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । सरकस्य तु पूर्वेण नारदस्य महात्मनः ।

कुरुश्रेष्ठ शुभं तीर्थं रामजन्मेतिविश्रुतम् । तत्र तीर्थे नरःस्नात्वा प्राणांश्चोत्सृज्य भारत

नारदेनाभ्यनुज्ञातो लोकानाप्नोति दुर्ल्लभान् ।
शुक्लपक्षे दशम्यां तु पुण्डरीकं समाविशेत् ॥ ८० ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुण्डरीकफलं लभेत् ।
ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ८१ ॥

तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी । तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम्
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! फलकीवनमुत्तमम्
तत्र देवाः सदा राजन्फलकीवनमाश्रिताः । तपश्चरन्ति विपुलं बहुवर्षसहस्रकम्॥८४॥

दृषत्पाने नरःस्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं विन्दति मानवः ॥ ८५ ॥

तीर्थे च सर्वदेवानां स्नात्वा भरतसत्तम ! । गोसहस्रस्य राजेन्द्र ! फलमाप्नोतिमानवः ॥

पाणिख्याते नरःस्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
अवाप्नुते राजसूयमृषिलोकं च गच्छति ॥ ८७ ॥

ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! मिश्रकं लोकविश्रुतम् । तत्र तीर्थानि राजेन्द्र मिश्रितानि महात्मना

व्यासेन नृपशार्दूल द्विजार्थमिति नःश्रुतम् ।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः ॥ ८९ ॥

ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः । मनोजवे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्

गत्वा मधुवनीं चापि देव्याः स्थानं नरः शुचिः ।
तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्देवान्पितॄंश्च नियतःशुचिः ॥ ९१ ॥

स देव्या समनुज्ञातो गोसहस्रफलं लभेत् । कौशिक्याःसङ्गमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत
स्नातो वै नियताहारःसर्वपापैःप्रमुच्यते । ततो व्यासस्थलीनाम यत्र व्यासेन धीमता
पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागाय निश्चयः । कृतो देवैश्च राजेन्द्र पुनरुत्थापितस्तथा ॥

अभिगम्य स्थलीं तस्य गोसहस्रफलं लभेत् ।
ऋणान्तं कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ॥ ९५ ॥

गच्छेत परमां सिद्धिमृणैर्मुक्तो नरेश्वर। वेदीतीर्थे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
अहश्च सुदिनश्चैव द्वेतीर्थे नृपदुर्लभे। तयोःस्नात्वा नरश्रेष्ठ सूर्यलोकमवाप्नुयात्।
मृगधूमं ततो गच्छेत्त्रिषुलोकेषु विश्रुतम्। तत्र रुद्रपदेस्नात्वा समभ्यर्च्य च मानवः

शूलपाणिं महात्मानमश्वमेधफलं लभेत्।
कोटितीर्थे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ९९ ॥
अथ वामनकं गत्वा त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा समभ्यर्च्य च वामनम् ॥ १०० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात्। कुलम्पुने नरःस्नात्वा पुनाति स्वकुलं
पवनस्य ह्रदं गत्वा मरुतांतीर्थमुत्तमम्। तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! वायुलोके महीयते
अमराणां ह्रदेस्नात्वा समभ्यर्च्यामराधिपम्। अमराणां प्रभावेण स्वर्गलोके महीयते

शालिहोत्रस्य राजेन्द्र ! शालिसूर्ये यथाविधि।
स्नात्वा नरवरश्रेष्ठ गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १०४ ॥

श्रीकुञ्जं च सरस्वत्यां तीर्थं भरतसत्तम!। तत्र स्नात्वा नरो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्
ततो नैमिषिकुञ्जं च समासाद्य सुदुर्लभम्। ऋषयःकिल राजेन्द्र नैमिषेयास्तपोधनाः
तीर्थयात्रां पुरस्कृत्य कुरुक्षेत्रे गताःपुरा। ततःकुञ्जःसरस्वत्यां कृतो भरतसत्तम

ऋषीणामवकाशःस्याद्यथातुष्टिकरो महान्।
तस्मिन्कुञ्जे नरःस्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १०८ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानानदनदीनांमाहात्म्यवर्णनं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

कन्यांतीर्थसोमतीर्थादितीर्थानांमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तो गच्छेत धर्मज्ञ कन्यातीर्थमनुत्तमम् । कन्यातीर्थे नरःस्नात्वा अनिष्टोमफलं लभेत्

ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! ब्रह्मणःस्थानमुत्तमम् ।

तत्र वर्णावरःस्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ॥ २ ॥

ाह्मणस्तु विशुद्धात्मा गच्छेत परमांगतिम् । ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! सोमतीर्थमनुत्तमम्

त्र स्नात्वा नरो राजन्सोमलोकमवाप्नुयात् । सप्तसारस्वतं तीर्थं ततो गच्छेन्नराधिप !

त्र मङ्कणकःसिद्धो ब्रह्मर्षिर्लोकविश्रुतः । पुरामङ्कणको राजन्कुशाग्रेणेतिविश्रुतम् ॥

क्षतःकिल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ।

स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाऽऽविष्टो महातपाः ॥ ६ ॥

र्तं किलविप्रर्षिर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः । ततस्तस्मिन्प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत्॥

तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम् । ब्रह्मादिभिस्ततो देवैर्ऋषिभिश्च तपोधनैः ॥

ज्ञप्तो वै ऋषेरर्थे महादेवो नराधिप ! । नायं नृत्येद्यथा देव ! तथात्वं कर्तुमर्हसि ॥

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाऽऽविष्टेन चेतसा ।

नृत्यन्तमब्रवीच्चैनं स्थिराणां हितकाम्यया ॥ १० ॥

हो महर्षे ! धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् । हर्षस्थानं किमर्थं वा तवाद्य मुनिपुङ्गव ! ॥

ऋषिरुवाच ।

तपस्विनो धर्म्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ! ।

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् ! क्षताच्छाकरसं स्रुतम् ॥ १२ ॥

ं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तोऽहं हर्षेण महताऽऽवृतः । तं प्रहस्याब्रवीद्देव ऋषिं रागेण मोहितम्

हं तु विस्मयं विप्र न गच्छामीह पश्य माम् । एवमुक्त्वा नरश्रेष्ठ महादेवेन वै तदा ॥

अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र ! स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽनघ ! ।
तस्य भस्मक्षताद्राजन्निस्सृतं हिमसन्निभम् ॥ १५ ॥
तं दृष्ट्वा व्रीडितो राजन्स मुनिः पादयोर्गतः । नान्यं देवमहम्मन्ये रुद्रात्परतरं म
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृक् ! ।
त्वया सृष्टमिदं विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १७ ॥
त्वामेव भगवन्सर्वे प्रविशन्ति युगक्षये । देवैरपिन शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो म
त्वयि सर्वेश ! दृश्यन्ते सुराः शक्रादयोऽनघ ! ।
सर्वस्त्वमसि लोकानां कर्ता कारयिताऽन्वहम् ॥ १९ ॥
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्तेऽत्राकुतोभयाः ।
एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽब्रवीत् ॥ २० ॥
त्वत्प्रसादान्महादेव ! तपो मे न क्षरेत वै । ततो देवः प्रहृष्टात्मा ब्रह्मर्षिमिदमब्रवी
तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा । आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धं महामु
सप्तसारस्वते स्नात्वा अर्चयिष्यन्ति ये तु माम् ।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिदिहलोके परत्र वा ॥ २३ ॥
गच्छेत्सारस्वतं चापि लोकं नास्त्यत्र संशयः ॥ २४ ॥

नारद उवाच ।

एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवाऽन्तरधीयत । ततस्त्वौशनसं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रु
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्चतपोधनाः । कार्तिकेयश्च भगवांस्त्रिसन्ध्यं किल भा
सान्निध्यमकरोत्तत्र भार्गवप्रियकाम्यया । कपालमोचनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशन
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते । अग्नितीर्थं ततोगच्छेत्स्नात्वा च भरतर्ष
अग्निलोकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् । विश्वामित्रस्य तत्रैव तीर्थं भरतस
तत्र स्नात्वा महाराज ! ब्राह्मण्यमभिजायते । ब्रह्मयोनिं समासाद्य शुचिः प्रयतमा
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र ! ब्रह्मलोकं प्रपद्यते । पुनात्यासप्तमं चैव कुलं नास्त्यत्रसंश
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । पृथूदकमिति ख्यातं कार्तिकेयस्य वै

तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः। अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रियो वा पुरुषेण वा
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना। तत्सर्वं नश्यते तत्र स्नातमात्रस्य भारत!॥
अश्वमेधफलं चापि लभते स्वर्गमेव च। पुण्यमाहुः कुरुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रात्सरस्वतीम्॥

सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम्।
उत्तमे सर्वतीर्थानां यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्॥ ३६॥

पृथूदके जप्यपरो नैव संसरणं लभेत्। गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना॥
वेदे च नियतं राजन्नभिगच्छेत्पृथूदकम्। पृथूदकात्पुण्यतमं नान्यत्तीर्थं नरोत्तम!॥

एतन्मेध्यं पवित्रं च पावनं च न संशयः।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति अपि पापकृतो जनाः॥ ३९॥

पृथूदके नरश्रेष्ठ! प्राहुरेवं मनीषिणः। मधुश्रवं च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम॥ ४०॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्।
ततो गच्छेन्नरश्रेष्ठ! तीर्थं देव्या यथाक्रमम्॥ ४१॥
सरस्वत्यारुणायाश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम्।
त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ४२॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं चैव समश्नुते। पुनात्याऽऽसप्तमं चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः
अवकीर्णं च तत्रैव तीर्थं कुरुकुलोद्वह!। विप्राणामनुकम्पार्थं दर्भिणा निर्मितं पुरा॥

व्रतोपनयनाभ्यां चाऽप्युपवासेन वा द्विजः।
क्रियामन्त्रैश्च संयुक्तो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः॥ ४५॥

क्रियामन्त्रविहीनोऽपि तत्र स्नात्वा नरर्षभ!। चीर्णव्रतो भवेद्विप्रो दृष्टमेतत्पुरातनम्

समुद्राश्चापि चत्वारः समानीताश्च दर्भिणा।
तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र! न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥ ४७॥
फलानि गोसहस्राणां चतुर्णां विन्दते च सः।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं शतसहस्रकम्॥ ४८॥

साहस्रकं च तत्रैव द्वे तीर्थे लोकविश्रुते। उभयोर्हि नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्

दानं वाप्युपवासो वा सहस्रगुणितो भवेत्। ततो गच्छेत राजेन्द्र! रेणुकातीर्थमुत्तमम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः। सर्वपापविशुद्धात्मा अग्निष्टोमफलं लभेत्।
विमोचनउपस्पृश्य जितमन्युर्जितेन्द्रियः। प्रतिग्रहकृतैः पापैः सर्वैः सम्परिमुच्यते।
ततः पञ्चवटं गत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। पुण्येन महता युक्तः स्वर्गलोके महीयते।
यत्र योगीश्वरः स्थाणुः स्वयमेव वृषध्वजः। तमर्चयित्वा देवेशं गमनादेव सिध्यति।
तैजसं वारुणं तीर्थं दीप्यते स्वेन तेजसा। यत्र ब्रह्मादिभिर्देवैर्ऋषिभिश्च तपोधनैः।
सैनापत्ये च देवानामभिषिक्तो गुहस्तदा। तैजसस्य तु पूर्वेण कुरुतीर्थं कुरूद्वह!।
कुरुतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं प्रपद्यते।
स्वर्गद्वारं ततो गच्छेन्नियतो नियताशनः। अग्निष्टोममवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति।
ततो गच्छेद्नरकं तीर्थसेवी नराधिप!। तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाऽऽप्नुयात्।
तत्र ब्रह्मा स्वयं नित्यं देवैस्सह महीयते। अध्यास्ते पुरुषव्याघ्र! नारायणपुरोगमैः।
सान्निध्यं चैव राजेन्द्र! रुद्रवेद्यां कुरूद्वह!। अभिगम्य तु तां देवीं न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
तत्रैव च महाराज विश्वेश्वरमुमापतिम्। अभिगम्य महादेवं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
नारायणं चाभिगम्य पद्मनाभमरिन्दम!। शोभमानो महाराज! विष्णुलोकं प्रपद्यते।
तीर्थेषु सर्वदेवानां स्नातमात्रो नराधिप!। सर्वदुःखपरित्यक्तो द्योतते शिववत्सदा।
ततस्त्वस्थिपुरं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप। पावनं तीर्थमासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति भारत। गङ्गाह्रदश्च तत्रैव कूपश्च भरतर्षभ!।
तिस्रःकोट्यस्तु तीर्थानां तस्मिन्कूपे महीपते!। तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकं प्रपद्यते।

आपगायां नरः स्नात्वा अर्चयित्वा महेश्वरम्।
गतिं परामवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्॥ ६८॥
ततः स्थाणुवटं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्र स्नात्वा स्थितो रात्रिं रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ ६९॥

बदरीणां वनं गच्छेद्वसिष्ठस्याश्रमं ततः। बदरी भक्ष्यते यत्र त्रिरात्रोपोषितो नरः।
सम्यग्द्वादशवर्षाणि बदरीं भक्षयेत्तु यः। त्रिरात्रोपोषितश्चैव भवेत्तुल्यो नराधिप!।

ब्रह्ममार्गं समासाद्य तीर्थसेवी नराधिप!। अहोरात्रोपवासेन स्वर्गलोके महीयते ॥
एकरात्रं समासाद्य एकरात्रोषितो नरः। नियतः सत्यवादी च ब्रह्मलोके महीयते ॥
तथा गच्छेच्च राजेन्द्र! तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
आदित्यस्याश्रमो यत्र तेजोराशेर्महात्मनः ॥ ७४ ॥
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयित्वा विभावसुम्।
आदित्यलोकं व्रजति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ७५ ॥
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा तीर्थसेवी कुरूद्वह। सोमलोकमवाप्नोति नरो नास्त्यत्रसंशयः
ततो गच्छेत धर्मज्ञ! दधीचस्य नराधिप। तीर्थं पुण्यतमं राजन्पावनं लोकविश्रुतम्
यत्र सारस्वतो यातः सिद्धिं स तपसो निधिः।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ ७८ ॥
सारस्वतीं मतिं चैव लभते नात्र संशयः। ततः कन्याश्रमं गत्वा नियतो ब्रह्मचर्यया
त्रिरात्रमुषितो राजन्नुपवासपरायणः। लभेत्कन्याशतं दिव्यं ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥
ततो गच्छेत धर्मज्ञ तीर्थं सन्निहितीमपि। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः
मासि मासि समेष्यन्ति पुण्येन महताऽन्विताः।
सन्निहित्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८२ ॥
अश्वमेधशतं तेन इष्टं भवति शाश्वतम्। पृथिव्यां यानि तीर्थानि अन्तरिक्षचराणि च
उदपानाश्चविप्राश्चपुण्यान्यायतनानि च। निस्संशयममायां वै समेष्यन्ति नराधिप! ॥
मासि मासि नरव्याघ्रसन्निहित्यांजनेश्वर। तीर्थसन्नयनादेव सन्निहिती भुवि श्रुता ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च स्वर्गलोके महीयते।
अमावास्यां तथा चैव राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ८६ ॥
यः श्राद्धं कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु। अश्वमेधसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम्
स्नात एव तदाप्नोति श्राद्धं कृत्वा च मानवः।
यत्किञ्चिद्दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ ८८ ॥
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः। पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥

अभिवाद्य ततो नाम्ना द्वारपालं मचक्रुकम्। गङ्गाह्रदश्च तत्रैव तीर्थं भरतसत्तम! ॥६४॥
तत्र स्नायीत धर्मज्ञ ! ब्रह्मचारी समाहितः। राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः॥
पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते॥
पांसवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुनाऽतिसमीरिताः। अपि दुष्कृतकर्म्माणं नयन्ति परमां गतिम्॥
दक्षिणेन सरस्वत्यामुत्तरेण सरस्वतीम्। ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे॥
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम्। अप्येवं वाचमुत्सृज्य स्वर्गलोके महीयते॥
ब्रह्मवेद्यां कुरुक्षेत्रं पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम्। तस्मिन्वसन्ति ये राजन्न ते शोच्याः कथञ्चन॥

तरण्डकारण्डकयोर्यदन्तरं रामह्रदानां चमचक्रुकस्य च।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ ६७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कन्यातीर्थसोमतीर्थादितीर्थानां माहात्म्य-
वर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

धर्मतीर्थकलापवनादितीर्थानां माहात्म्यवर्णनम्।

नारद उवाच।

ततोगच्छेत धर्म्मज्ञ ! धर्म्मतीर्थं पुरातनम्। यत्र धर्मो महाभागस्तप्तवानुत्तमं तपः॥
तेन तीर्थं कृतं पुण्यं स्वेन नाम्ना च चिह्नितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्धर्मशीलः समाहितः ॥ २ ॥
आसप्तमं कुलं चैव पुनीते नाऽत्रसंशयः। ततो गच्छेत धर्मज्ञ ! कलापवनमुत्तमम् ॥३॥
कृच्छ्रेण महता गत्वा तत्र स्नात्वा समाहितः।
अग्निष्टोममवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ४ ॥
सौगन्धिकं वनं राजंस्ततो गच्छेत मानवः। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः॥

सिद्धचारणगन्धर्वाः किन्नराः समहोरगाः। तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
ततो हि सा सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी।
प्लक्षाद्देवी स्मृता राजन्महापुण्या सरस्वती ॥ ७ ॥
तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निस्सृते जले। अर्चयित्वा पितॄन्देवानश्वमेधफलं लभेत्
ईशानाध्युषितं नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम्। षड्गुणं यन्निपातेषु वल्मीकादिति निश्चयः
कपिलानां सहस्रं च वाजिमेधं च विन्दति। तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र! दृष्टमेतत्पुरातनैः
सुगन्धां शतकुम्भां च पञ्चयज्ञं च भारत। अभिगम्य नरश्रेष्ठ! स्वर्गलोके महीयते ॥
त्रिशूलपात्रं तत्रैव तीर्थमासाद्य दुर्लभम्। तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः ॥
गाणपत्यं च लभते देहं त्यक्त्वा न संशयः।
ततो राजगृहं गच्छेद्देव्याः स्थानं सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥
शाकम्भरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता। दिव्यं वर्षसहस्रं च शाकेन किल भारत
आहारं सा कृतवती मासि मासि नराधिप!।
ऋषयोऽभ्यागतास्तत्र देव्या भक्तास्तपोधनाः ॥ १५ ॥
आतिथ्यं च कृतं तेषां शाकेन किल भारत।
ततः शाकम्भरीत्येवं नाम तस्याः प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥
शाकम्भरीं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः। त्रिरात्रमुषितः शाकं भक्षयेन्नियतः शुचिः
शाकाहारस्य यत्सम्यग्वर्षैर्द्वादशभिः फलम्। तत्फलं तस्य भवति देव्याश्छन्देन भारत!
ततो गच्छेत्सुवर्णाख्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। यत्र कृष्णः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा
वरांश्च सुबहूँल्लेभे दैवैरपि सदुर्लभान्। उक्तश्च त्रिपुरघ्नेन परितुष्टेन भारत! ॥ २० ॥
अपि चात्माप्रियतरो लोके कृष्ण! भविष्यसि।
त्वन्मुखं च जगत्कृत्स्नं भविष्यति न संशयः ॥ २१ ॥
तत्राभिगम्य राजेन्द्र! पूजयित्वा वृषध्वजम्। अश्वमेधमवाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति
धूमावतीं ततो गच्छेत्त्रिरात्रमुषितो नरः। मनसा प्रार्थितान्कामाँल्लभते नात्र संशयः ॥
देव्यास्तु दक्षिणार्धेन रथावर्तो नराधिप!। तत्रागत्य तु धर्मज्ञ! श्रद्दधानो जितेन्द्रियः

महादेवप्रसादेन गच्छेत परमां गतिम् । प्रदक्षिणमुपावृत्य गच्छेत भरतर्षभ ! ॥ ३१ ॥
धरां नाम महाप्राज्ञ ! सर्वपापप्रणाशिनीम् । तत्रस्नात्वा नरव्याघ्र ! न शोचति नराधिप !
ततो गच्छेन्नरव्याघ्र ! नमस्कृत्य महागिरिम् । स्वर्गद्वारेण तत्तुल्यं गङ्गाद्वारं न संशयः
तत्राऽभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थे समाहितः । लभते पुण्डरीकं तु कुलं चैव समुद्धरेत्
उष्यैकां रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च शक्रावर्त्ते च तर्पयन्
देवान्पितॄंश्च विधिवत्पुण्यलोके महीयते । ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः

अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।
कपिलावटं तु गच्छेत तीर्थसेवी नराधिप ! ॥ ३१ ॥

उष्यैकां रजनी तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । नागराजस्य राजेन्द्र ! कपिलस्य महात्मनः
तीर्थं कुरुवरश्रेष्ठ ! सर्वलोकेषु विश्रुतम् । तत्राभिषेकं कुर्वीत नागतीर्थे नराधिप !

कपिलानां सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
ततो ललितकां गच्छेच्छन्तनोस्तीर्थमुत्तमम् ॥ ३४ ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे धर्मतीर्थकलापवनादि तीर्थानां माहात्म्य
वर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

यमुनातीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! कालिन्दीतीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे ब्रह्मावर्त्ते पृथूदके । अविमुक्ते सुवर्णाख्ये यत्फलं लभते नरः ।

तत्फलं समवाप्नोति यमुनायां नरोत्तम ! । स्वर्गभोगेऽतिरागो वै येषां मनसि वर्तते
यमुनायां विशेषेण स्नानदानेन सत्तम ! । आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपयौवनतागुणे ॥४॥

येषां मनोरथस्तैस्तु न त्याज्यं यमुनाजलम् ।
ये बिभ्यति नरकाद्दारिद्र्याद्येऽत्र सन्ति च ॥ ५ ॥

सर्वथा तैः प्रयत्नेन तत्र कार्यं निमज्जनम् । दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय वै ॥

ऋते वै यामुनं तोयं न चान्योऽस्ति युधिष्ठिर ! ।
श्रद्धाहीनानि कर्माणि मतान्यर्धफलानि वै ॥ ७ ॥

फलं ददातिसम्पूर्णं यामुनं स्नानमात्रतः । अकामो वा सकामो वा यामुने सलिलेनृप !
इहामुत्र च दुःखानि मज्जनान्नैव पश्यति । पक्षद्वये यथा चन्द्रः क्षीयते वर्द्धते तथा ॥

पातकं नश्यते तत्र स्नानात्पुण्यं विवर्द्धते ।
यथाब्धौ सुखमायान्ति रत्नानि विविधानि च ॥ १० ॥
आयुर्वित्तं कलत्राणि सम्पदः सम्भवन्ति च ।
कामधेनुर्यथाकामं चिन्तामणिर्विचिन्तितम् ॥ ११ ॥

ददाति यमुनास्नानं तद्वत्सर्वं मनोरथम् । कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा ॥
द्वापरे च कलौ दानं कालिन्दी सर्वदा शुभा । सर्वेषां सर्ववर्णानामाश्रमाणांच भूपते !
यामुने मज्जनं धर्मं धाराभिः खलु वर्षति । अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः ॥

कालिन्द्यस्नायिनां नृणां निष्फलं जन्म कीर्त्तितम् ।
नैश्वर्यं गगने यद्वच्चान्द्रेऽमायां तु मण्डले ॥ १५ ॥
तद्वन्न भाति सत्कर्म यमुनामज्जनं विना ।
व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ॥ १६॥

न मज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः । न समं विद्यते किञ्चित्तेजः सौरेण तेजसा
तद्वत् यमुनास्नानसमानाः क्रतुजाः क्रियाः । प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापपनुत्तये ॥
कालिन्द्यां मज्जनं कुर्यात्स्वर्गलाभाय मानवः । किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥
अध्रुवेण सुदेहेन यमुनामज्जनं विना । अस्थिस्तम्भं स्नायुबन्धं मांसक्षतजलेपनम् ॥

चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः। जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥
रागमूलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम्। परोपकारपापार्तिपरद्रोहपरैषिकम् ॥
लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा। निष्ठुरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयविदूषितम् ॥
अशुचि तापि दुर्गन्धितापत्रयविमोहितम्। निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम्
कामक्रोधमहालोभनरकद्वारसंस्थितम्। कृमिवर्चस्तु भस्मादिपरिणामगुणावहम्
ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि यमुनामज्जनं विना। बुद्बुदा इव तोयेषु प्रत्यण्डा इव पक्षिषु
जायन्ते मरणायैव यमुनास्नानवर्जिताः। अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमपिण्डकम्
अब्रह्मण्यं हतं क्षत्रमनाचारहतं कुलम्। सदम्भश्च हतो धर्म्मः क्रोधेनैव हतं तपः
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम्। परभक्त्या हता नारी ब्रह्मचारी स्त्रिया हतः

अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भक्तिः समायिका।
उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रिया हता ॥ ३० ॥
शूद्रभक्षो हतो योगः कृपणस्य हतं धनम्।
अनभ्यासहता विद्या हतो बोधो विरोधकृत् ॥ ३१ ॥

जीवितार्थं हतं तीर्थं जीवनार्थं हतं व्रतम्। असत्या च हता वाणी तथा पैशुन्यवादिनी
षट्कर्मगो हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः। हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः
अश्रद्धया हतं सर्वं यत्कृतं पारलौकिकम्। इह लोके हतो नृणां दरिद्राणां यथा

मनुष्याणां हतं जन्म कालिन्दीमज्जनं विना।
उपपातकसर्वाणि पातकानि महान्ति च ॥ ३५ ॥

भस्मीभवन्ति सर्वाणि यमुनामज्जनान्नृप। वेपन्ते सर्वपापानि यमुनायां गते नरे

नाशके सर्वपापानां यदि स्नास्यन्ति वारिणि।
पावका इव दीप्यन्ते यमुनायां नरोत्तमाः ॥ ३७ ॥

विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः। आर्द्रशुष्कलघुस्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः
तत्र स्नातं दहेत्पापं पावकः समिधो यथा। प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च

स्नानमात्रेण नश्येत यमुनायां नृपोत्तम ! ।
निष्पापास्त्रिदिवं यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ॥ ४० ॥
सन्देहो नात्र कर्त्तव्यः स्नाने वै यमुनाजले ।
सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ तथा नृप ! ॥ ४१ ॥
सर्वेषां सर्वदा देवी यमुना पापनाशिका । एष एव परो मन्त्र एतच्च परमं तपः ॥४२॥
प्रायश्चित्तं परं चैव यमुनास्नानमुत्तमम् । नृणां जन्मान्तराभ्यासात्कालिन्दीमज्जने मतिः
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप ! । संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥
पावनं पावनानां च यमुनास्नानमुत्तमम् । स्नातास्तत्र च ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ॥
सुखांश्च भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् । यमुना मोक्षदा प्रोक्ता मथुरासङ्गता यदि
मथुरायां च कालिन्दी पुण्याधिकविवर्द्धिनी ।
अन्यत्र यमुना पुण्या महापातकहारिणी ॥ ४७ ॥
विष्णुभक्तिप्रदा देवी मथुरासङ्गता भवेत् ।
भक्तिभावेन संयुक्तः कालिन्द्यां यदि मज्जयेत् ॥ ४८ ॥
कल्पकोटिसहस्राणि वसते सन्निधौ हरेः ।
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं साङ्ख्येन वर्जिताः ॥ ४९ ॥
पितरस्तस्य तृप्यन्ति तृप्ताः कल्पशतैर्दिवि । ये पिबन्ति नरा राजन्यमुनासलिलं शुभम्
अगम्यसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् । कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्
तत्र दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ ५२ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यमुनातीर्थस्नानमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

———

त्रिंशोऽध्यायः

हेमकुण्डलवैश्यपुत्रयोरितिहासवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । पुरा कृतयुगे राजन्निषधे नगरे वरे ॥ १

आसीद्वैश्यः कुवेराभो नामतो हेमकुण्डलः । कुलीनः सत्क्रियो देवद्विजपावकपूजकः

कृषिवाणिज्यकर्त्ताऽसौ विविधक्रयविक्रयी । गोघोटकमहिष्यादिपशुपोषणतत्परः

पयोदधीनि तक्राणि गोमयानि तृणानि च ।
काष्ठानि फलमूलानि लवणार्द्रादिपिप्पली ॥ ४ ॥
धान्यानि शाकतैलानि वस्त्राणि विविधानि च ।
धातूनिक्षुविकारांश्च विक्रीणीते स सर्वदा ॥ ५ ॥

इत्थं नानाविधैर्वैश्य उपायैरपरैस्तथा । उपार्जयामास सदा अष्टौ हाटककोटयः ।

एवं महाधनः सोऽथ ह्याकर्णपलितोऽभवत् । पश्चाद्विचार्य संसारक्षणिकत्वं स्वचे

तद्धनस्य षडंशेन धर्मकार्यं चकार सः । विष्णोरायतनं चक्रे गृहं चक्रे शिवस्य

तडागं खानयामास विपुलं सागरोपमम् । वाप्यश्च पुष्करिण्यश्च वहुधा तेन कारि

वटाश्वत्थाम्रकङ्कोलजम्बूनिम्बादिकाननम् । स्वसत्त्वेन तदा चक्रे तथा पुष्पवनं

उदयास्तमनं यावदन्नदानं चकार सः । पुराद्बहिश्चतुर्दिक्षु प्रपां चक्रेऽतिशोभ

पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि दानानि भूपते ! ।
ददौ तानि स धर्म्मात्मा नित्यं दानपरस्तदा ॥ १२ ॥

यावज्जीवकृते पापे प्रायश्चित्तमथाऽकरोत् । देवपूजापरो नित्यं नित्यं चाऽतिथिपू

तस्येत्थं वर्त्तमानस्य सञ्जातौ द्वौ सुतौ नृप ! ।
तौ सुप्रसिद्धनामानौ श्रीकुण्डलविकुण्डलौ ॥ १४ ॥

तयोर्मूर्ध्नि गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम् । तत्राराध्य परं देवं गोविन्दं वरदं

तपःक्लिष्टशरीरोऽसौ वासुदेवमनाः सदा ।
प्राप्तः स वैष्णवं लोकं यत्र गत्वा न शोचति ॥ १६ ॥
अथ तस्य सुतौ राजन्महामानसमन्वितौ । तरुणौ रूपसम्पन्नौ धनगर्वेण गर्वितौ ॥
दुःशीलौ व्यसनासक्तौ धर्मकर्माद्यदर्शकौ । न वाक्यं चागतौ मातुर्वृद्धानां वचनं तथा
कुमार्गगौ दुरात्मानौ पितृमित्रनिषेधकौ । अधर्मनिरतौ दुष्टौ परदाराभिगामिनौ ॥
गीतवादित्रनिरतौ वीणावेणुविनोदिनौ ।
वारस्त्रीशतसंयुक्तौ गायन्तौ चेरतुस्तदा ॥ २० ॥
चाटुकारजनैर्युक्तौ विम्बोष्ठीषु विशारदौ । सुवेषौ चारुवसनौ चारुचन्दनरूषितौ ॥
तथा सुगन्धिमालाढ्यौ कस्तूरीलक्ष्मलक्षितौ ।
नानालङ्कारशोभाढ्यौ मौक्तिकाहारहारिणौ ॥ २२ ॥
गजवाजिरथौघेन क्रीडन्तौ तावितस्ततः । मधुपानसमायुक्तौ परस्त्रीरतिमोहितौ ॥
नाशयन्तौ पितृद्रव्यं सहस्रं ददतुः शतम् । तस्थतुः स्वगृहे रम्ये नित्यं भोगपरायणौ
इत्थं तु तद्धनं ताभ्यां विनियुक्तमसद्व्ययैः । वारस्त्रीविटशैलूषमल्लचारणवन्दिषु ॥
अपात्रे तद्धनं दत्तं क्षिप्तं बीजमिवोषरे । न सत्पात्रे च तद्दत्तं न ब्राह्मणमुखे हुतम् ॥
अर्चितो भूतभृद्विष्णुः सर्वपापप्रणाशनः । उभयोरेव तद्द्रव्यमचिरेण क्षयं ययौ ॥
ततस्तौ दुःखमापन्नौ कार्पण्यं परमं गतौ ।
शोचमानौ तु मुह्यन्तौ क्षुत्पीडादुःखपीडितौ ॥ २८ ॥
तयोस्तु तिष्ठतोर्गेहे नास्ति यद्भुज्यते तदा । स्वजनैर्बान्धवैस्सर्वैः सेवकैरुपजीविभिः
द्रव्याभावे परित्यक्तौ चिन्तमानौ ततः पुरे । पश्चाच्चौर्यं समारब्धं ताभ्यां च नगरे नृप
राजतो लोकतो भीतौ स्वपुरान्निस्सृतौ तदा । चक्रतुर्वनवासं तौ सर्वेषामुपपीडितौ
जघ्नतुः सततं मूढौ शितैर्बाणैर्विषार्पितैः । नानापक्षिवराहांश्च हरिणान्रोहितांस्तथा ॥
शशकाञ्छल्लकान्गोधाञ्छ्वापदांश्चेतरान्बहून् । महाबलौ भिल्लसङ्गावाखेटकभुजौ सदा
नित्यं मांसमयाहारौ पापहारौ परन्तप ! । कदाचिद्भूधरं प्राप्तो ह्येकोऽन्यश्च वनं गतः॥
शार्दूलेन हतो ज्येष्ठः कनिष्ठः सर्पदंशितः । एकस्मिन्दिवसे राजन्पापिष्ठौ निधनं गतौ

यमदूतैस्ततो बद्ध्वापाशैर्नीतौ यमालयम् । गत्वाभिजगदुः सर्वे ते दूताः पापिनावुभौ
धर्मराज ! नरावेतावानीतौ तव शासनात् ।
आज्ञां देहि स्वभृत्येषु प्रसीद करवाम किम् ॥ ३७ ॥
आलोच्य चित्रगुप्तेन तदा दूताञ्जगौ यमः । एकस्तु नीयतां वीर ! निरयं तीव्रवेदनम्
अपरः स्थाप्यतां स्वर्गे यत्र भोगा ह्यनुत्तमाः ।
कृतान्ताज्ञां ततः श्रुत्वा दूतैश्च क्षिप्रकारिभिः ॥ ३९ ॥
निक्षिप्तो रौरवे घोरे यो ज्येष्ठो हि नराधिप ! । तेषां दूतवरः कश्चिदुवाच मधुरं वचः
विकुण्डल ! मया सार्द्धमेहि स्वर्गं ददामि ते ।
भुङ्क्ष्व भोगान्सुदिव्यांस्त्वमर्जितान्स्वेन कर्मणा ॥ ४१ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे हेमकुण्डलवैश्यपुत्रयोरितिहासवर्णनं
नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

विकुण्डलस्यपूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ततो हृष्टमनाः सोऽथ दूतं पप्रच्छ तं पथि । सन्देहं हृदि कृत्वा तु विस्मयं परमं
विचारयन्हृदि स्वर्गः कस्य हेतोः फलं मम ॥ १ ॥

विकुण्डल उवाच ।

हे दूतवर ! पृच्छामि संशयं त्वामहं परम् । आवां जातौ कुले तुल्ये तुल्यं कर्म तथा
दुर्मृत्युरपि तुल्योऽभूत्तुल्यो दृष्टो यमस्तथा । कथं स नरके क्षिप्तस्तुल्यकर्मा मम
ममाऽभवत्कथं नाकमिति मे छिन्धि संशयम् ।
देवदूत ! न पश्यामि मम स्वर्गस्य कारणम् ॥ ४ ॥

देवदूत उवाच।

माता पिता सुतो जाया स्वसा भ्राता विकुण्डल!।
जन्महेतोरियं संज्ञा जन्तोः कर्म्मोपभुक्तये ॥ ५ ॥
एकस्मिन्पादपे यद्वच्छकुनानां समागमः। यद्यत्समीहितं कर्म कुरुते पूर्वभावितः ॥
तस्य तस्य फलं भुङ्क्ते कर्म्मणः पुरुषः सदा।
सत्यं वदामि ते प्रीत्या नरैः कर्म शुभाशुभम् ॥ ७ ॥
स्वकृतं भुज्यते वैश्य! काले काले पुनःपुनः। एकः करोति कर्माणि एकस्तत्फलमश्नुते
अन्यो न लिप्यते वैश्य! कर्मणाऽन्यस्य कुत्रचित्। अपतन्नरके पापैस्तव भ्राता सुदारुणैः
त्वं च धर्मेण धर्मज्ञ स्वर्गं प्राप्नोषि शाश्वतम् ॥ ६ ॥

विकुण्डल उवाच।

आबाल्यान्मम पापेषु न पुण्येषु रतं मनः। अस्मिञ्जन्मनि हे दूत! दुष्कृतं हि कृतं मया
देवदूत! न जानामि सुकृतं कर्म चात्मनः। यदि जानासि मत्पुण्यं तन्मे त्वं कृपया वद

देवदूत उवाच।

शृणु वैश्य! प्रवक्ष्यामि यत्त्वया पुण्यमार्जितम्।
जानामि तदहं सर्वं न त्वं वेत्सि सुनिश्चितम् ॥ १२ ॥
हरिमित्रसुतो विप्रः सुमित्रो वेदपारगः। आसीत्तस्याश्रमः पुण्यो यमुनादक्षिणे तटे
तेन सख्यं वने तस्मिंस्तव जातं विशांवर!। तत्सङ्गेन त्वया स्नातं माघमासद्वयं तथा
कालिन्दीपुण्यपानीये सर्वपापहरे वरे। तत्तीर्थे लोकविख्याते नाम्ना पापप्रणाशने ॥
एकेन सर्वपापेभ्यो विमुक्तस्त्वं विशांपते!। द्वितीयमाघपुण्येन प्राप्तः स्वर्गस्त्वयाऽनघ!
त्वं तत्पुण्यप्रभावेण मोदस्व सततं दिवि। नरकेषु तव भ्राता महतीं पापयातनाम् ॥
छिद्यमानोऽसिपत्रैश्च भिद्यमानस्तु मुद्गरैः। चूर्ण्यमानः शिलापृष्ठे तप्ताङ्गारेषु भर्जितः
इति दूतवचः श्रुत्वा भ्रातृदुःखेन दुःखितः।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो दीनोऽसौ विनयान्वितः ॥ १६ ॥
उवाच तं देवदूतं मधुरं निपुणं वचः। मैत्री सप्तपदी साधो सतां भवति सत्फला ॥

मित्रभावं विचिन्त्य त्वं मामुपाकर्तुमर्हसि ।
ततो हि श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञस्त्वं मतो मम ॥ २१ ॥
यमलोकं न पश्यन्ति कर्मणा केन मानवाः । गच्छन्ति निरयं येन तन्मे त्वं कृपया

देवदूत उवाच ।

सम्यक्पृष्टं त्वया वैश्य ! नष्टपापोऽसि साम्प्रतम् ।
विशुद्धे हृदये पुंसां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥ २३ ॥
यद्यप्यवसरो नास्ति मम सेवापरस्य वै । तथापि च तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि यथा
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
परपीडां न कुर्वन्ति न ते यान्ति यमालयम् ॥ २५ ॥
न वेदैर्न च दानैश्च न तपोभिर्न चाध्वरैः ।
कथञ्चित्स्वर्गतिं यान्ति पुरुषाः प्राणिहिंसकाः ॥ २६ ॥
अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं तपः । अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मुनयः स
मशकान्सरीसृपान्दंशान्यूकाद्यान्मानवांस्तथा ।
आत्मौपम्येन पश्यन्ति मानवा ये दयालवः ॥ २८ ॥
तप्ताङ्गारमयस्कीलं मादं प्रेततरङ्गिणीम् । दुर्गतिं नैव गच्छन्ति कृतान्तस्य च ते
भूतानि येऽत्र हिंसन्ति जलस्थलचराणि च ।
जीवनार्थं च ते यान्ति कालसूत्रं च दुर्गतिम् ॥ ३० ॥
श्वमांसभोजनास्तत्र पूयशोणितपायिनः । मज्जन्तश्च वसापङ्के दष्टाः कीटैरधोमु
परस्परं च खादन्तो ध्वान्ते चान्योन्यघातिनः ।
वसन्ति कल्पानेकांस्ते रुदन्तो दारुणं रवम् ॥ ३२ ॥
कृमियोनिशतं गत्वा स्थावराः स्युश्चिरं तु ते ।
ततो गच्छन्ति ते क्रूरास्तिर्यग्योनिशतेषु च ॥ ३३ ॥
पश्चाद्भवन्ति जातान्धाः काणाः कुब्जाश्च पङ्गवः ।
दरिद्राश्चाङ्गहीनाश्च मानुषा प्राणिहिंसकाः ॥ ३४ ॥

तस्माद्वैश्य परत्रेह कर्मणा मनसा गिरा । लोकद्वयसुखप्रेप्सुर्धर्मज्ञो न तदाचरेत् ॥

लोकद्वयेन विन्दन्ति सुखानि प्राणिहिंसकाः ।
ये न हिंसन्ति भूतानि न ते बिभ्यति कुत्रचित् ॥ ३६ ॥

प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः । सर्वे धर्मा अहिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढम् ॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अभयं येन भूतेभ्यो दत्तमत्र विशांवर ! ॥

ये नियोगांश्च शास्त्रोक्तान्धर्माधर्मविमिश्रितान् ।
पालयन्तीह ये वैश्य ! न ते यान्ति यमालयम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा । स्वधर्मनिरताः सर्वे नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥

यथोक्तचारिणः सर्वे वर्णाश्रमसमन्विताः ।
नराः जितेन्द्रिया यान्ति ब्रह्मलोकं तु शाश्वतम् ॥ ४१ ॥

इष्टापूर्तरता ये च पञ्चयज्ञरताश्च ये । दयान्विताश्च ये नित्यं नेक्षन्ते ते यमालयम् ॥

इन्द्रियार्थनिवृत्ता ये समर्था वेदवादिनः । अग्निपूजारता नित्यं ते विप्राः स्वर्गगामिनः

अदीनवदनाः शूराः शत्रुभिः परिवेष्टिताः । आहवेषु विपन्ना ये तेषां मार्गो दिवाकरः

अनाथस्त्रीद्विजार्थे च शरणागतपालने ।
प्राणांस्त्यजन्ति ये वैश्य ! न च्यवन्ति दिवस्तु ते ॥ ४५ ॥

पङ्ग्वन्धबालवृद्धांश्च रोग्यनाथदरिद्रितान् ।
ये पुष्णन्ति सदा वैश्य ! ते मोदन्ते सदा दिवि ॥ ४६ ॥

गां दृष्ट्वा पङ्कनिर्मग्नां रोगमग्नं द्विजं तथा ।
उद्धरन्ति नरा ये च तेषां लोकोऽश्वमेधिनाम् ॥ ४७ ॥

गोग्रासं ये प्रयच्छन्ति ये शुश्रूषन्ति गाः सदा ।
ये नारोहन्ति गोपृष्ठे ते स्वर्लोकनिवासिनः ॥ ४८ ॥

गर्तमात्रं तु ये चक्रुर्यत्र गौस्तृषा भवेत् । यमलोकमदृष्ट्वैव ते यान्ति स्वर्गतिं नराः

अग्निपूजादेवपूजागुरुपूजारताश्च ये । द्विजपूजारता नित्यं ते विप्राः स्वर्गगामिनः ॥

वापीकूपतडागादौ धर्मस्यान्तो न विद्यते । पिबन्ति स्वेच्छया यत्र जलस्थलचरास्तदा

नित्यं दानपरः सोऽत्र कथ्यते विबुधैरपि ।
यथा यथा च पानीयं पिबन्ति प्राणिनो भृशम् ॥ ५२ ॥
तथा तथाऽक्षयः स्वर्गो धर्मबुद्ध्या विशांवर ! ।
प्राणिनां जीवनं वारि प्राणा वारिणि संस्थिताः ॥ ५३ ॥
नित्यं स्नानेन पूयन्ते येऽपि पातकिनो नराः ।
प्रातःस्नानं हरेद्वैश्य बाह्याभ्यन्तरजं मलम् ॥ ५४ ॥
प्रातःस्नानेन निष्पापो नरो न निरयं व्रजेत् ।
स्नानं विना तु यो भुङ्क्ते मलाशी स सदा नरः ॥ ५५ ॥
अस्नायी यो नरस्तस्य विमुखाः पितृदेवताः ।
स्नानहीनो नरः पापः स्नानहीनो नरोऽशुचिः ॥ ५६ ॥
अस्नायी नरकं भुङ्क्ते पुंस्कीटादिषु जायते । ये पुनः स्रोतसि स्नानमाचरन्तीह पर्वा
ते नैव नरकं यान्ति न जायन्ते कुयोनिषु ।
दुःस्वप्ना दुष्टचिन्ताश्च वन्ध्या भवन्ति सर्वदा ॥ ५८ ॥
प्रातःस्नानेन शुद्धानां पुरुषाणां विशांवर ! । तिलांश्च तिलपात्रांश्च तिलप्रस्थं यथावि
दत्त्वा प्रेतपतेर्भूमौ न व्रजन्ति नराः क्वचित् ।
पृथिवीं काञ्चनं गां च दत्त्वा दानानि षोडश ॥ ६० ॥
गत्वा न विनिवर्तन्ते स्वर्गलोकाद्विकुण्डल ! ।
पुण्यासु तिथिषु प्राज्ञो व्यतीपाते च सङ्क्रमे ॥ ६१ ॥
स्नात्वा दत्त्वा च यत्किञ्चिन्नैव मज्जति दुर्गतौ ।
नैवाक्रामन्ति दातारो दारुणं गौरवं पथम् ॥ ६२ ॥
इह लोके न जायन्ते कुले धनविवर्जिते । सत्यवादी सदा मौनी प्रियवादी च यो
अक्रोधनः समाचारो नातिवाद्यनसूयकः । सदा दाक्षिण्यसम्पन्नः सदा भूतदयान्वि
परस्य मर्मणां गोप्ता वक्ता परगुणस्य च । परस्वं तृणमात्रं च मनसापि न यो ह
न पश्यन्ति विशांश्रेष्ठ ! ह्येते नरकयातनाम् ।

परापवादी पाखण्डः पापेभ्योऽपि मतोऽधिकः ॥ ६६ ॥

पच्यते नरके तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् । वक्ता परुषवाक्यानां मन्तव्यो नरकागतः ॥

सन्देहो न विशांश्रेष्ठ ! पुनर्याति च दुर्गतिम् ।

न तीर्थैर्न तपोभिश्च कृतघ्नस्यास्ति निष्कृतिः ॥ ६८ ॥

सहते यातनां घोरां स नरो नरके चिरम् ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषु मज्जति यो नरः ॥ ६९ ॥

जितेन्द्रियो जिताहारो न स याति यमालयम् ।

न तीर्थे पातकं कुर्यान्न च तीर्थोपजीवनम् ॥ ७० ॥

तीर्थे प्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः । दुर्जरं पातकं तीर्थे दुर्जरश्च प्रतिग्रहः

तीर्थे च दुर्जरं सर्वमेतत्किन्नरकं व्रजेत् । सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा

नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत् । व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च ॥

गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ।

अन्यतीर्थसमां गङ्गां यो ब्रवीति नराधमः ॥ ७४ ॥

स याति नरकं वैश्य ! दारुणं रौरवं महत् । धर्मद्रवं ह्यपां बीजं वैकुण्ठचरणच्युतम् ॥

धृतं मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममलं जलम् । तद्ब्रह्मैव न सन्देहो निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥

तेन किं समतां गच्छेदपिब्रह्माण्डगोचरे । गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥

नरो न नरकं याति किं तया सदृशं भवेत् । नान्येन दह्यते सद्यः क्रिया नरकदायिनी ।

गङ्गाम्भसि प्रयत्नेत स्नातव्यं तेन मानवैः । प्रतिग्रहनिवृत्तो यः प्रतिग्रहक्षमोऽपि सन्

स द्विजो द्योतते वैश्य ! तारारूपश्चिरं दिवि ।

गामुद्धरन्ति ये पङ्काद्ये रक्षन्ति च रोगिणः ॥ ८० ॥

म्रियन्ते गोग्रहे ये च तेषां नभसि तारकाः । यमलोकं न पश्यन्ति प्राणायामपरायणाः

अपि दुष्कृतकर्माणस्तैरेव हतकिल्बिषाः । दिवसे दिवसे वैश्य प्राणायामास्तु षोडश

अपि ब्रह्महणं साक्षात्पुनन्त्यहरहः कृताः ।

तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ॥ ८३ ॥

गोसहस्रप्रदानं च प्राणायामस्तु तत्समः ।

अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे नरः पिबेत् ॥ ८४ ॥

संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामस्तु तत्समः । पातकं तु महद्यच्च तथा क्षुद्रोपपातकम्
प्राणायामैः क्षणात्सर्वं भस्मसात्कुरुते नरः । मातृवत्परदारान्ये मन्यन्ते वै नरोत्तम
न ते यान्ति नरश्रेष्ठ ! कदाचिद्यमयातनाम् । मनसाऽपि परेषां यः कलत्राणि न सेवते
सह लोकद्वयेनास्ति तेन वैश्य ! धरा धृता । तस्माद्धर्म्मान्वितैस्त्याज्यं परदारोपसेवनम्
नयन्ति परदारास्तु नरकानेकविंशतिम् । लोभो न जायते येषां परदारेषु मानसे
ते यान्ति देवलोकं तु न यमं वैश्यसत्तम ! । शश्वत्क्रोधनिदानेषु यः क्रोधेन न जीयते
जितस्वर्गः स मन्तव्यः पुरुषोऽक्रोधनो भुवि । मातरं पितरं पुत्र आराधयति देववत्
अप्राप्ते वार्द्धके काले न याति च यमालयम् । पितुश्चाधिकभावेन येऽर्चयन्ति गुरुं नराः

भवन्त्यतिथयो लोके ब्रह्मणस्ते विशांवर ! ।

इह चैव स्त्रियो धन्याः शीलस्य परिरक्षणात् ॥ ९३ ॥

शीलभङ्गे च नारीणां यमलोकः सुदारुणः । शीलं रक्ष्यं सदा स्त्रीभिर्दुष्टसङ्गविवर्जनात्
शीलेन हि परः स्वर्गः स्त्रीणां वैश्य ! न संशयः । शूद्रस्य पाकयज्ञेन निषिद्धाचरणेन च

दुर्गतिर्विहता वैश्य ! तस्य सा नारकी गतिः ।

विचारयन्ति ये शास्त्रं वेदाभ्यासरताश्च ये ॥ ९६ ॥

पुराणं संहितां ये च श्रावयन्ति पठन्ति च ।

व्याकुर्वन्ति स्मृतीर्ये च ये धर्मप्रतिबोधकाः ॥ ९७ ॥

वेदान्तेषु निषण्णा ये तैरियं जगती धृता । तत्तदभ्यासमाहात्म्यैः सर्वे ते हतकिल्बिषाः
गच्छन्ति ब्रह्मणो लोकं यत्र मोहो न विद्यते । ज्ञानमज्ञाय यो दद्याद्वेदशास्त्रसमुद्भवम्
अपि वेदास्तमर्चन्ति भवबन्धविदारणम् । श्रूयतामद्भुतं ह्येतद्रहस्यं वैश्यसत्तम !

सम्मतं धर्मराजस्य सर्वलोकामृतप्रदम् ।

न यमं यमलोकं च न भूतान्घोरदर्शनान् ॥ १०१ ॥

पश्यन्ति वैष्णवा नूनं सत्यं सत्यं मयोदितम् ।

प्राहास्मान्यमुनाभ्राता सदैव हि पुनःपुनः ॥ १०२ ॥
भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्या न ते स्युर्मम गोचराः ।
स्मरन्ति ये सकृद्भूताः प्रसङ्गेनापि केशवम् ॥ १०३ ॥
ते विध्वस्ताखिलाघौघा यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
दुराचारो दुष्कृतोऽपि सदाचाररतोऽपि यः ॥ १०४ ॥
भवद्भिः स सदा त्याज्यो विष्णुं च भजते नरः ।
वैष्णवो यद्गृहे भुङ्क्ते येषां वैष्णवसङ्गतिः ॥ १०५ ॥
तेऽपि वः परिवार्याः स्युस्तत्सङ्गहतकिल्विषाः ।
इत्थं वैश्यानुशास्त्यस्मान्देवो दण्डधरः सदा ॥ १०६ ॥
अतो नो वैष्णवा यान्ति राजधानीं यमस्य तु ।
विष्णुभक्तिं विना नृणां पापिष्ठानां विशांवर ! ॥ १०७ ॥
उपायो नास्ति नास्त्यन्यः सन्तर्तुं नरकाम्बुधिम् ।
श्वपाकमपि नेक्षेत लोकेष्टं वैश्य ! वैष्णवम् ॥ १०८ ॥
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम् ॥ १०९ ॥
एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥
नरके तु चिरं मग्नाः पूर्वे ये च कुलद्वये । तदैव यान्ति ते स्वर्गं यदार्चन्ति मुदा हरिम्
विष्णुभक्तस्य ये दासा वैष्णवान्नभुजश्च ये ।
ते तु क्रतुभुजां वैश्य गतिं यान्ति निराकुलाः ॥ ११२ ॥
प्रार्थयेद्वैष्णवस्यान्नं प्रयत्नेन विचक्षणः । सर्वपापविशुद्ध्यर्थं तदभावे जलं पिबेत् ॥
गोविन्देति जपन्मन्त्रं कुत्रचिन्म्रियते यदि । स नरो न यमं पश्येत्तं च नेक्षामहे वयम्
साङ्गं समुद्रं सध्यानं सऋषिच्छन्ददैवतम् । दीक्षया विधिवन्मन्त्रं जपेद्वै द्वादशाक्षरम्
अष्टाक्षरं च मन्त्रेशं ये जपन्ति नरोत्तमाः ।
तान्दृष्ट्वा ब्रह्महा शुद्ध्येद् भ्राजते विष्णुवत्स्वयम् ॥ ११६ ॥

शङ्खिनश्चक्रिणो भूत्वा ब्रह्माभ्यन्तरगामिनः। वसन्ति वैष्णवे लोके विष्णुरूपेण ते नराः
हृदि सूर्ये जले वाथ प्रतिमा स्थण्डिलेऽपि च।
समभ्यर्च्य हरिं यान्ति नरास्तद्वैष्णवं पदम्॥ ११८॥
अथवा सर्वदा पूज्यो वासुदेवो मुमुक्षुभिः। शालग्रामे मणौ चक्रे वज्रकीटविनिर्मिते
अधिष्ठानं हि तद्विष्णोः सर्वपापप्रणाशनम्। सर्वपुण्यप्रदं वैश्य! सर्वेषामपि मुक्तिदम्
यः पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे। राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरे॥ १२१॥
सदामनन्तिवेदान्ता ब्रह्मनिर्वाणमच्युतम्। तत्प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्चनात्
महाकाष्ठस्थितो वह्निर्मखस्थाने प्रकाशते। यथा तथा हरिर्व्यापी शालग्रामे प्रकाशते
अपि पापसमाचाराः कर्म्मण्यनधिकारिणः।
शालग्रामार्चका वैश्य! नैव यान्ति यमालयम्॥ १२४॥
न तथा रमते लक्ष्म्यां न तथा स्वपुरे हरिः। शालग्रामशिलाचक्रे यथा स रमते सदा
अग्निहोत्रं कृतं तेन दत्ता पृथ्वी ससागरा। येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे
शिला द्वादश भो वैश्य! शालग्रामशिलोद्भवाः।
विधिवत्पूजिता येन तस्य पुण्यं वदामि ते॥ १२७॥
कोटिद्वादशलिङ्गैस्तु पूजितैः स्वर्णपङ्कजैः। यत्स्याद्द्वादशकालेषु दिनेनैकेन तद्भवेत्
यः पुनः पूजयेद्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम्। उषित्वा स हरेर्लोके चक्रवर्त्तीह जायते
कामैः क्रोधैः प्रलोभैश्च व्याप्तो यत्र नराधमः।
सोऽपि याति हरेर्लोकं शालग्रामशिलार्चनात्॥ १३०॥
यः पूजयेच्च गोविन्दं शालग्रामे मुदा नरः। आभूतसम्प्लवं यावन्न स प्रच्यवते दिवः
विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना मतिम्।
मुक्तिं यान्ति नरा वैश्य शालग्रामशिलार्चनात्॥ १३२॥
नरकं गर्भवासं च तिर्यक्त्वं कृमियोनिताम्।
न याति वैश्य! पापोऽपि शालग्रामशिलार्चकः॥ १३३॥
दीक्षाविधानमन्त्रज्ञो यश्चक्रे बलिमाहरेत्। गङ्गागोदावरीरेवानद्यो मुक्तिप्रदाश्च याः

निवसन्ति हि ताः सर्वाः शालग्रामशिलाजले । नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैर्धूपदीपैर्विलेपनैः ॥
गीतवादित्रस्तोत्राद्यैः शालग्रामशिलार्चनम् । कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः
कल्पकोटिसहस्राणि रमते सन्निधौ हरेः । लिङ्गैस्तु कोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलं पूजितैस्तु तैः
शालग्रामशिलायास्तु ह्येकेनाह्ना हि तत्फलम् । सकृदभ्यर्चिते लिङ्गे शालग्रामशिलोद्भवे
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजा नूनं साङ्ख्येन वर्जिताः ।
शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः ॥ १३९ ॥
व देवाः सुरा यक्षा भुवनानि चतुर्दश । शालग्रामशिलायां तु यः श्राद्धं कुरुते नरः
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पशतं दिवि ।
ये पिबन्ति नरा नित्यं शालग्रामशिलाजलम् ॥ १४१ ॥
पञ्चगव्यसहस्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम् । कोटितीर्थसहस्रैस्तु सेवितैः किंप्रयोजनम्
यं यदि पिबेत्पुण्यं शालग्रामशिलाङ्कजम् । शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनत्रयम्
दानं च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् । शालग्रमशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुना समम्
तुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेद्विष्णुभाङ्नरः । शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः॥
कोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं परम् । शालग्रामशिलाचक्रं यो दद्याद्दानमुत्तमम्
चक्रं तेन दत्तं स्यात्सशैलवनकाननम् । शालग्रामशिलाया यो मूल्यमुत्पादयेन्नरः ॥
क्रेता चानुमन्ता यः परीक्षासु च मोदते । ते सर्वे नरकं यान्ति यावदाभूतसम्प्लवम्
संवर्जयेद्वैश्य चक्रस्य क्रयविक्रयम् । बहुनोक्तेन किं वैश्य कर्तव्यं पापभीरुणा ॥
रणं वासुदेवस्य सर्वपापहरं हरेः । तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये नियतेन्द्रियः॥१५०॥
फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुड़ध्वजम् । कृत्वाऽपि बहुशः पापं नरो मोहसमन्वितः
याति नरकं नत्वा सर्वपापहरं हरिम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च
तानि सर्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ।
देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणाः ॥ १५३ ॥
न तेषां यमसालोक्यं न ते स्युर्नरकौकसः ।
वैष्णवः पुरुषो वैश्य ! शिवनिन्दां करोति यः ॥ १५४ ॥

न विन्देद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं महत् । उपोष्यैकादशीमेकां प्रसङ्गेनापि मा
न याति यातनां यामीमिति लोमशतः श्रुतम् । नेदृशं पावनं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु वि
उभयं पद्मनाभस्य दिनं पातकनाशनम् । तावत्पापानि देहेऽस्मिन्वसन्तीह विशांव
यावन्नोपवसेज्जन्तुः पद्मनाभदिनं शुभम् । अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं वैश्य ! मा
एकादश्युपवासेन तत्सर्वं विलयं व्रजेत् । एकादशीसमं किञ्चित् पुण्यं लोके न वि

व्याजेनापि कृता यैस्तु वशं यान्ति न भास्करेः ।
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी ॥ १६१ ॥

सुकलत्रप्रदा ह्येषा जीवत्पुत्रप्रदायिनी । न गङ्गा न गया वैश्य ! न काशी न च पुष्क
न चापि वैष्णवं क्षेत्रं तुल्यं हरिदिनेन तु । यमुना चन्द्रभागा न तुल्या हरिदिने
अनायासेन येनात्र प्राप्यते वैष्णवं पदम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा समुपोष्य हरेर्दि
दश वै पैतृके पक्षे मातृके दशपूर्वजाः । प्रियाया दश ये वैश्य ! तानुद्धरति निश्चित

द्वन्द्वसङ्गपरित्यक्ता नागारिकृतकेतनाः ।
स्रग्विणः पीतवसनाः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥ १६६ ॥
बालत्वे यौवने वापि वार्द्धके वा विशांवर ! ।
उपोष्यैकादशीं नूनं नैति पापोऽतिदुर्गतिम् ॥ १६७ ॥
उपोष्येह त्रिरात्राणि कृत्वा वा तीर्थमज्जनम् ।
दत्त्वा हेमतिलान्गाश्च स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥ १६८ ॥
तीर्थे स्नान्ति न ये वैश्य ! न दत्तं काञ्चनं च यैः ।
नैव तप्तं तपः किञ्चित्ते स्युः सर्वत्र दुःखिताः ॥ १६९ ॥

संक्षिप्य कथितं धर्म्मं नरकस्य निरूपणम् । अद्रोहः सर्वभूतेषु वाङ्मनःकायक
इन्द्रियाणां निरोधश्च दानं च हरिसेवनम् । वर्णाश्रमक्रियाणां च पालनं विधित
स्वर्गार्थी सर्वदा वैश्य ! तपोदानं न कीर्तयेत् । यथाशक्ति तथा दद्यादात्मनो हितका
उपानद्वस्त्रमन्नानि पत्रं मूलं फलं जलम् । अवन्ध्यं दिवसं कार्य्यं दरिद्रेणापि वै

इह लोके परे चैव न दत्तं नोपतिष्ठते । दातारो नैव पश्यन्ति तां तां वै यमयातनाम् ॥
दीर्घायुषो धनाढ्याश्च भवन्तीह पुनः पुनः । किमत्र वहुनोक्तेन यान्त्यधर्मेण दुर्गतिम्
आरोहन्ति दिवं धर्म्मैर्नराः सर्वत्र सर्वदा । तेन वालत्वमारभ्य कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः ॥
इति ते कथितं सर्वं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १७७ ॥

विकुण्डल उवाच ।

श्रुत्वा त्वद्वचनं सौम्य ! प्रसन्नं चित्तमेव मे । गङ्गोदं पापहं सद्यः पापहारि सतां वचः
उपकर्तुं प्रियं वक्तुं गुणो नैसर्गिकः सताम् ।
शीतांशुः क्रियते केन शीतलोऽमृतमण्डलः ॥ १७६ ॥
देवदूत! ततो ब्रूहि कारुण्यान्मम पृच्छतः । नरकान्निष्कृतिः सद्यो भ्रातुर्मे जायते कथम्
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदूतो जगाद ह ।
ध्यानं दृष्ट्वा क्षणं ध्यात्वा तन्मैत्रीरज्जुबन्धनः ॥ १८१ ॥
यत्ते वैश्याष्टमे पुण्यं त्वया जन्मनि सञ्चितम् ।
तद्भ्रात्रे दीयतां सर्वं स्वर्गं तस्य यदीच्छसि ॥ १८२ ॥

विकुण्डल उवाच ।

किं तत्पुण्यं कथं जातं किं जन्म च पुरातनम् ।
तत्सर्वं कथ्यतां दूत ततो दास्यामि सत्वरम् ॥ १८३ ॥

देवदूत उवाच ।

शृणु वैश्य ! प्रवक्ष्यामि तत्पुण्यं च सहेतुकम् । पुरा मधुवने पुण्ये ऋषिरासीच्च शाकुनिः
तपोऽध्ययनसम्पन्नस्तेजसा ब्रह्मणा समः । जज्ञिरे तस्य रैवत्यां नवपुत्रा ग्रहा इव ॥
ध्रुवः शीलो वुधस्तारो ज्योतिस्मानुतपञ्चमः । अग्निहोत्ररता ह्येते गृहधर्मेषु रेमिरे ॥
निर्मोहो जितकामश्च ध्यानकोशो गुणाधिकः । एते गृहविरक्ताश्च चत्वारो द्विजसूनवः
चतुर्थाश्रममापन्नाः सर्वकामविनिस्पृहाः । ग्रामैकवासिनः सर्वे निःसङ्गा निष्परिग्रहाः
निराशा निष्प्रयत्नाश्च समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ।
येन केनचिदाच्छन्ना येन केनचिदाशिताः ॥ १८६ ॥

सायं ग्रहास्तथा नित्यं विष्णुध्यानपरायणाः ।
जितनिद्रा जिताहारा वातशीतसहिष्णवः ॥ १६० ॥
पश्यन्तो विष्णुरूपेण जगत्सर्वं चराचरम् ।
चरन्ति लीलया पृथ्वीं तेऽन्योन्यं मौनमास्थिताः ॥ १६१ ॥
न कुर्वन्ति क्रियां काञ्चिदर्थमात्रं हि योगिनः ।
दृष्टज्ञाना असन्देहाश्चिद्विकारविशारदाः ॥ १६२ ॥

एवं ते तव विप्रस्य पूर्वमष्टमजन्मनि । तिष्ठतो मध्यदेशेषु पुत्रदारकुटुम्बिनः ॥१
गेहं तावकमाजग्मुर्मध्याह्ने क्षुत्पिपासिताः । वैश्वदेवान्तरे काले त्वया दृष्टा गृहाङ्ग
सगद्गदं साश्रुनेत्रं सहर्षं च ससम्भ्रमम् । दण्डवत्प्रणिपातेन बहुमानपुरःसरम् ॥१

प्रणम्य चरणौ मूर्ध्ना कृत्वा पाणियुगाञ्जलिम् ।
तदाभिनन्दिताः सर्वे तया सूनृतया गिरा ॥ १६६ ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं तथा ।
अद्य विष्णुः प्रसन्नो मे सनाथोऽद्यास्मि पावनः ॥ १६७ ॥
धन्योऽस्म्यद्य गृहं धन्यं धन्या अद्य कुटुम्बिनः ।
ममाद्य पितरो धन्या धन्या गावः श्रुतं धनम् ॥ १६८ ॥

अदृष्टौ भवतां पादौ तापत्रयहरौ मया । भवतां दर्शनं यस्माद्धन्यस्यैव हरेरि
एवं सम्पूज्य कृत्वा तु पादप्रक्षालनं तथा । धृतं मूर्ध्नि विशांश्रेष्ठ ! श्रद्धया परया त
यत्र पादोदकं वैश्य ! श्रद्धया शिरसा धृतम् । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्भावपुरःसर
सम्पूज्य सुन्दरान्नेन भोजिता यतयस्तथा । तृप्ताः परमहंसास्ते विश्रान्ता मन्दिरे ति

ध्यायन्तश्च परं ब्रह्म यज्ज्योतिर्ज्योतिषां मतम् ।
तेषामातिथ्यजं पुण्यं जातं यत्ते विशांवर ! ॥ २०३ ॥

न तद्वक्त्रसहस्रेण वक्तुं शक्नोम्यहं खलु । भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिनां मतिजीवि
मतिमत्सु सुराः श्रेष्ठा नरेषु ब्रह्मजातयः । ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्ध
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः । अतएव सुपूज्यास्ते तस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्र

सत्सङ्गतिर्विशांश्रेष्ठ ! महापातकनाशिनी । विश्रान्ता गृहिणो गेहे सन्तुष्टा ब्रह्मवेदिनः
आजन्मसञ्चितं पापं नाशयन्तीक्षणेन वै । सञ्चितं यद्गृहस्थस्य पापमामरणान्तिकम्
विनिर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः । स्वभ्रात्रे देहि तत्पुण्यं नरकाद्येन मुच्यते ॥

इति दूतवचः श्रुत्वा ददौ पुण्यं स सत्वरम् ।
हृष्टेन चेतसा भ्राता निरयात्सोऽपि निर्गतः ॥ २१० ॥

देवैस्तु पुष्पवर्षेण पूजितौ च दिवंगतौ । ताभ्यां सम्पूजितः सम्यग्गतो दूतो यथागतः

अखिलभुवनबोधं देवदूतस्य वाक्यं निगमवचनतुल्यं वैश्यपुत्रो निशम्य ।
स्वकृतसुकृतदानाद्भ्रातरं तारयित्वा सुरपतिवरलोकं तेन सार्द्धं जगाम ॥

इतिहासमिमं राजन्यः पठेच्छृणुयादपि । स गोसहस्रदानस्य विशोको लभते फलम् ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विकुण्डलश्रीकुण्डलयोःस्वर्गप्राप्तिवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सुगन्धतीर्थरुद्रावर्तादितीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

ततो गच्छेत राजेन्द्र सुगन्धं लोकविश्रुतम् । सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥
रुद्रावर्तं ततो गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ! । तत्र स्नात्वा नरो राजन्स्वर्गलोके महीयते

गङ्गायाश्च नरः श्रेष्ठ सरस्वत्याश्च सङ्गमे ।
स्नातोऽश्वमेधमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ३ ॥
तत्र कर्णह्रदे स्नात्वा देवमभ्यर्च्य शङ्करम् ।
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ ४ ॥

ततः कुब्जाम्रकं गच्छेत्तीर्थसेवी यथाक्रमम् । गोसहस्रमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति

अरुन्धतीवटं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप!। सामुद्रकमुपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो
गोसहस्रफलं विन्देत्स्वर्गलोकं च गच्छति। ब्रह्मावर्त्तं ततो गच्छेद्ब्रह्मचारी समाहि
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। यमुनाप्रभवं गच्छेत्समुपस्पृश्य याम
अश्वमेधफलं लब्ध्वा ब्रह्मलोके महीयते। दर्वीसङ्क्रमणं प्राप्य तीर्थं त्रैलोक्यवि

अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति।
सिन्धोश्च प्रभवं गत्वा सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥ १०॥

तत्रोष्य रजनीः पञ्च दद्याद्बहुसुवर्णकम्। अथ देवीं समासाद्य नरः परमदुर्गम
अश्वमेधमवाप्नोति गच्छेच्चौशनसीं गतिम्। ऋषिकुल्यां समासाद्य वसिष्ठं चैव

वसिष्ठं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः।
ऋषिकुल्यां नरः स्नात्वा ऋषिलोकं प्रपद्यते॥ १३॥

यदि तत्र वसेन्मासं शाकाहारो नराधिप!। भृगुतुङ्गं समासाद्य वाजिमेधफलं
गत्वा वीरप्रमोक्षं च सर्वपापैः प्रमुच्यते। कार्त्तिकमाघयोश्चैव तीर्थमासाद्य दु

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां फलं प्राप्नोति पुण्यकृत्।
ततः सन्ध्यां समासाद्य विद्यातीर्थमनुत्तमम्॥ १६॥

उपस्पृशेत्स विद्यानां सर्वासां पारगो भवेत्। महाश्रमे वसेद्रात्रिं सर्वपापप्रमो
एककालं निराहारो लोकान्संवसते शुभान्। षष्ठकालोपवासेन मासमुष्य मह
तीर्णस्तारयते जन्तून्दशपूर्वान्दशापरान्। दृष्ट्वा माहेश्वरं पुण्यं परं सुरनमस्
कृतार्थः सर्वकृत्येषु न शोचेन्मरणं क्वचित्। सर्वपापविशुद्धात्मा विन्देद्बहुसुव
अथ वेतसिकां गच्छेत्पितामहनिषेविताम्। अश्वमेधमवाप्नोति गतिं च परमां
अथसुन्दरिकां तीर्थं प्राप्य सिद्धनिषेविताम्। रूपस्य भागी भवति दृष्टमेतत्पु
ततो ब्राह्मणिकां गत्वा ब्रह्मचारी समाहितः। पद्मवर्णेन यानेन ब्रह्मलोकं प्र
ततश्च नैमिषं गच्छेत्पुण्यं द्विजनिषेवितम्। तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मदेवगणैः
नैमिषं प्रार्थयानस्य पापस्यार्द्धं प्रणश्यति। प्रविष्टमात्रस्तु नरः सर्वपापात्प्रमु
तत्र मासं वसेद्धीरो नैमिषे तीर्थतत्परः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि नैमिषे तानि

अभिषेकं तत्र कृत्वा नियतो नियताशनः । राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः
पुनात्यासप्तमं चैव कुलं भरतसत्तम ! । यस्त्यजेन्नैमिषे प्राणानुपवासपरायणः ॥२८॥
स मोदेत्स्वर्गलोकस्थ एवमाहुर्मनीषिणः । नित्यं मेध्यं च पुण्यं च नैमिषं नृपसत्तम !
गङ्गोद्भेदं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः । वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत्सदा॥
सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः । सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥
ततश्च बाहुदां गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ! । तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते ।
देवसत्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः । ततश्च रजनीं गच्छेत्पुण्यां पुण्यजनैर्वृताम्
पितृदेवार्चनरतो वाजपेयमवाप्नुयात् । विमलाशोकमासाद्य विराजति यथा शशी ॥
तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते । गोप्रतारं ततो गच्छेत्सरयूतीर्थमुत्तमम् ॥
यत्र रामो गतः स्वर्गं सभृत्यबलवाहनः । गेहं त्यक्त्वा पुरा राजंस्तस्य तीर्थस्य तेजसा

रामस्य च प्रसादेन व्यवसायाच्च भारत ! ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोप्रतारे नराधिप ! ॥ ३७ ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते । रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोमत्यां कुरुनन्दन !
अश्वमेधमवाप्नोति पुनाति स्वकुलं नरः । शतसाहस्रकं तत्र तीर्थं भरतसत्तम ॥ ३९ ॥
तत्रोपस्पर्शनं कृत्वा नियतो नियताशनः । गोसहस्रफलं पुण्यमाप्नोति भरतर्षभ ! ॥

ततो गच्छेत धर्मज्ञ ऊर्ध्वस्थानमनुत्तमम् ।
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा अर्चयित्वा गृहं नृप ! ॥ ४१ ॥
गोसहस्रफलं विन्देत्तेजस्वी चापि जायते ।
ततो वाराणसीं गत्वा पूजयित्वा वृषध्वजम् ॥ ४२ ॥

कपिलानां ह्रदे स्नात्वा राजसूयफलं लभेत् । मार्कण्डेयस्य राजेन्द्र ! तीर्थमासाद्य दुर्लभम्
गोमतीगङ्गयोश्चैव सङ्गमे लोकविश्रुते । अग्निष्टोममवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे सुगन्धतीर्थरुद्रावर्तादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

———

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

विस्तरेण वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

वाराणस्याश्च माहात्म्यं संक्षेपात्कथितं त्वया ।
विस्तरेण मुने ! ब्रूहि तदा प्रीणाति मे मनः ॥ १ ॥

नारद उवाच ।

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि वाराणस्या गुणाश्रयम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ २ ॥

मेरुशृङ्गे पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम् । देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत ॥

देव्युवाच ।

देवदेव ! महादेव ! भक्तनामार्तिनाशन ! । कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति

साङ्ख्ययोगस्तथा ध्यानं कर्मयोगोऽथ वैदिकः ।
आयासबहुला लोके यानि चान्यानि शङ्कर ! ॥ ५ ॥

येन विश्रान्तचित्तानां योगिनां कर्मिणामपि ।
दृश्यो हि भगवान्सूक्ष्मः सर्वेषामथ देहिनाम् ॥ ६ ॥

एतद्गुह्यतमं ज्ञानं गूढं शक्रादिसेवितम् । हिताय सर्वभूतानां ब्रूहि कामाग्निनाशन

ईश्वर उवाच ।

अवाच्यमत्रविज्ञानं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम् । वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः

परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी । सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी ।

तत्र भक्त्या महादेवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः ।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः ॥ १० ॥

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत् । ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं

स्थानान्तरपवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च।
श्मशानसंस्थितान्येव दिव्यभूमिगतानि च ॥ १२ ॥
[भू]लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्। अमुक्तास्तत्र पश्यन्ति मुक्ताः पश्यन्ति चेतसा
[श्म]शानमेतद्विख्यातमविमुक्तमिति श्रुतम्। कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि!
[दे]वीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम। मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति च
[द]त्तं जप्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्। ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ॥
[ज]न्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम्। अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च वर्णसङ्कराः।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥ १८ ॥
[की]टाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने
[च]न्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः। शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥
नाविमुक्ते मृतःकश्चिन्नरकं याति किल्बिषी।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ २१ ॥
मोक्षं सुदुर्ल्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम्।
अर्चनाचरणे मुक्त्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥ २२ ॥
[दु]र्ल्लभा तपसा चापि मृतस्य परमेश्वरि!। यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी
[प्र]सादाज्जायते सम्यङ्मम शैलेन्द्रनन्दिनि!। अप्रबुद्धा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः
[वि]ण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनःपुनः। हन्यमानोऽपि यो विद्वान्वसेद्विघ्नशतैरपि
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
जन्ममृत्युजरामुक्तं परं याति शिवालयम् ॥ २६ ॥
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्यन्ति पण्डिताः ॥ २७ ॥
[न] दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया। प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याऽविमुक्ते तु लभ्यते
नानावर्गा विवर्णाश्च चाण्डालाद्या जुगुप्सिताः।

किल्विषैः पूर्णदेहाश्च विशिष्टैः पातकैस्तथा ॥ २९ ॥

भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः । अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम् ॥ ३०
अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम् । कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति
तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम् । प्रयागं नैमिषारण्यं श्रीशैलोऽथ महाबल
केदारं भद्रकर्णं तु गयापुष्करमेव च । कुरुक्षेत्रं भद्रकोटिनर्मदाऽऽम्रातकेश्वरी ॥ ३
शालग्रामं च कुब्जाम्रं कोकामुखमनुत्तमम् । प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं भद्रकर्णं

एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि ह ।
न यास्यन्ति परं तत्त्वं वाराणस्यां यथा मृताः ॥ ३५ ॥

वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी । प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृ
अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तपो जपः । व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराणस्यां सुदुर्ल
जपेच्च जुहुयान्नित्यं ददात्यर्चयतेऽमरान् । वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो

यदि पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः ।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति सकलं कुलम् ॥ ३६ ॥
वाराणस्यां येऽर्चयन्ति महादेवं स्तुवन्ति वै ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः ॥ ४० ॥

अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवाऽन्यतः । प्राप्यते तत्परं स्थानं सहस्रेणैव जन्म
ये भक्ता देवदेवेशि ! वाराणस्यां वसन्ति वै । ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्
यत्र योगस्तथाज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना । अविमुक्तं तदासाद्य नान्यदिच्छेत्तपोवन
यतो मयाऽविमुक्तं तदविमुक्तं ततः स्मृतम् । तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद्विज्ञानमुच्य

ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम् ।
या गतिर्विदिता सुभ्रू ! साऽविमुक्ते मृतस्य तु ॥ ४५ ॥
यानि चैवाविमुक्तस्य देहे दृष्टानि कृत्स्नशः ।
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा ॥ ४६ ॥

यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः । व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तं

तत्परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति श्रुतम् । एकेन जन्मना देवि ! वाराणस्यां तदाप्नुयात्
भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदये चैव मूर्धनि ।
यथाऽविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ॥ ४९ ॥
वरणायास्तथाचास्या मध्ये वाराणसी पुरी ।
तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवं विमुक्तकम् ॥ ५० ॥
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति । यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । उपासते यं सततं देवदेवः पितामहः ॥५२॥
महापातकिनो देवि ! ये तेभ्यः पापकृत्तमाः ।
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५३ ॥
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद्वै मरणान्तकम् । वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते
किं तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः । ततो नैवाचरेत्पापं कायेन मनसा गिरा ॥
एतद्रहस्यं देवानां पुराणानां च सुव्रते ! । अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न कश्चिद्वेत्ति तत्त्वतः ॥

नारद उवाच ।

देवतानामृषीणां च शृण्वतां परमेष्ठिनाम् । देवदेवेन कथितं सर्वपापविनाशनम् ॥
यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः । यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानामेतदुत्तमम् ॥
यैः समाराधितो रुद्रः पूर्वस्मिन्नेकजन्मनि ।
ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम् ॥ ५६ ॥
कलिकल्मषसम्भूता येषामपहता मतिः । न तेषां विदितुं शक्यं स्थानं तत्परमेष्ठिनः ॥
ये स्मरन्ति सदा कालं वदन्ति च पुरीमिमाम् ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥ ६१ ॥
यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः । नाशयेत्तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिवः
आगच्छेत्तदिदं स्थानं सेवितं मोक्षकाङ्क्षिभिः । मृतानां च पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः ।
योगी वाप्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः ॥ ६४ ॥

न लोकवचनात्पित्रोर्न चैव गुरुवादतः । मतिर्न क्रमणीयास्यादविमुक्तगतिंप्रति
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विस्तरेणवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीस्थकृत्तिवासेश्वरमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तत्रेदं विमलंलिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम् । यस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः
एतत्परतरंज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम् । सेवितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम्
तत्र साक्षान्महादेवःपञ्चायतनविग्रहः । रमते भगवान्रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः ॥ ३
एतत्पाशुपतंज्ञानं पञ्चायतनमुच्यते । तदेतद्विमलंलिङ्गमोङ्कारं समुपस्थितम् ॥ ४

शान्त्यतीता तथा शान्तिर्विद्याचैवापरावरा ।
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चात्मं लिङ्गमैश्वरम् ॥ ५ ॥

पञ्चानामपि लिङ्गानां ब्रह्मादीनां समाश्रयम् । ॐकारबोधकंलिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते
संस्मरेदीश्वरंलिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम् । देहान्ते परमं ज्योतिरानन्दं विशते बुधः ॥
तत्र देवर्षयःपूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा । उपास्य देवमीशानमापुरन्ते परंपदम् ॥ ८
मत्स्योदर्यास्तटेपुण्ये स्थानं गुह्यतमं शुभम् । गोचर्ममात्रं राजेन्द्रॐकारेश्वरमुत्तमम्
कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम् । विश्वेश्वरं तथोङ्कारं कन्दर्पेश्वरमेव च ॥ १०

एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां युधिष्ठिर ! ।
न कश्चिदिह जानति विना शम्भोरनुग्रहात् ॥ ११ ॥
कृत्तिवासेश्वरस्यैव माहात्म्यं शृणु पार्थिव ! ।
तस्मिन्स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा शिवान्तिकम् ॥ १२ ॥

ब्राह्मणान्हन्तुमायातो यत्र नित्यमुपासते। तेषांलिङ्गान्महादेवःप्रादुरासीत्त्रिलोचनः
रक्षणार्थं महादेवो भक्तानां भक्तवत्सलः। हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः॥
वासस्तस्याकरोत्कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः। तत्र सिद्धिं परांप्राप्ता मुनयो हि युधिष्ठिर!
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत्परमंपदम्। विद्या विद्येश्वरा रुद्राःशिवा ये च प्रकीर्तिताः॥
कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गं नित्यमाश्रित्यसंस्थिताः। ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः
कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्तेन संशयः। जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोयच्चाप्यते न वा
एकेन जन्मना मोक्षःकृत्तिवासेऽत्र लभ्यते। आलयं सर्वसिद्धानामेतत्स्थानं वदन्ति हि
गोपितं देवदेवेन महादेवेनशम्भुना। युगेयुगेह्यत्रदान्ता ब्राह्मणावेदपारगाः॥ २०॥
उपासते महात्मानं जपन्ति शतरुद्रियम्। स्तुवन्ति सततंदेवं त्र्यम्बकं कृत्तिवाससम्

ध्यायन्ति हृदये देवं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम्॥ २१॥

गायन्ति सिद्धाःकिल गीतकानि वाराणसीं ये निवसन्ति विप्राः।
तेषामथैकेन भवेद्विमुक्तिर्ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ २२॥
सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म।
ध्याने समाधाय जपन्ति रुद्रं ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम्॥ २३॥
आराधयन्ति प्रभुमीक्षितारं वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीना स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम्॥ २४॥
नमो भवायामलयोगधाम्ने स्थाणुं प्रपद्येगिरिशं पुराणम्।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं जाने महादेवमनेकरूपम्॥ २५॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीस्थकृत्तिवासेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

———

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीस्थकपर्दीश्वरपिशाचमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथान्यत्तत्र वै लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् । स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन्द्विज

मुच्यते सर्वपापेभ्यो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।

पिशाचमोचनं नाम तीर्थमन्यत्ततः स्थितम् ॥ २ ॥

तत्राश्चर्यमयो देवो मुक्तिदः सर्वदोषहा । कश्चिद्दैत्यो जगामेदं शार्दूलो घोररूपधृक्

मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम् । तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्

धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता ।

तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः स महाबलः ॥ ५ ॥

जगाम चान्यं विजनं देशं दृष्ट्वा मुनीश्वरान् ।

मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी ॥ ६ ॥

अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा । त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितमूर्धजा

वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता । पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तत्समन्ततः

गणेश्वरी स्वयं भूत्वा न दृष्टा तत्क्षणात्ततः । दृष्ट्वा तदाश्चर्यवरं प्रशशंसुः सुरादयः

तन्महेशस्य वै लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् । स्मृत्वैवाशेषपापौघात्क्षिप्रमेव विमुच्यते

कामक्रोधादयो दोषा वाराणसीनिवासिनाम् ।

विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात् ॥ ११ ॥

तस्मात्सदैव द्रष्टव्यः कपर्दीश्वर उत्तमः । पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः

ध्यायतां चात्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम् ।

जायते योगसिद्धिः सा षण्मासेन न संशयः ॥ १३ ॥

ब्रह्महत्यादयः पापा विनश्यन्त्यस्य पूजनात् ।

पिशाचमोचने कुण्डे स्नातः स्यात्प्रशमो यतः ॥ १४ ॥

तस्मिन्क्षेत्रे पुरा विप्रस्तपस्वी संशितव्रतः । शङ्कुकर्ण इतिख्यातः पूजयामास शङ्करम्
जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं ब्रह्मरूपिणम् । पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः ॥

उपासीतात्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम् ।
कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम् ॥ १७ ॥

अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं निश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः

प्रोवाच को भवान्कस्माद्देशाद्देशमिमं श्रितः ।
तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद्वचः ॥ १९ ॥

पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः । पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः ॥
न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा । न कदाचित्कृतं पुण्यमल्पं वानल्पमेव च
एकदा भगवान्देवो वृषभेश्वरवाहनः । विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः ॥
तदा चिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः । न दृष्टं तन्महाघोरं यमस्य सदनं मुने ॥ २३ ॥

पिपासयाऽधुनाऽऽक्रान्तो न जानामि हिताहितम् ।
यदि कश्चित्समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो ! ॥ २४ ॥

कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः । इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत्

त्वादृशो नहि लोकेऽस्मिन्विद्यते पुण्यकृत्तमः ।
यत्त्वया भगवान्पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः ॥ २६ ॥

संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि । तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागतः

स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन्कुण्डे समाहितः ।
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि ॥ २८ ॥

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो दयालुना देववरं त्रिनेत्रम् ।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम् ॥ २९ ॥
तदावगाढो मुनिसन्निधाने ममार दिव्याभरणोपपन्नः ।
अदृश्यतार्कप्रतिमो विमाने शशाङ्कचिह्नीकृतचारुमौलिः ॥ ३० ॥

विभाति रुद्रैः सहितो दिविष्ठैः समावृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
सवालखिल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः ॥ ३१ ॥
स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः ।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमाम्बुमिश्रां गन्धर्वविद्याधरकिन्नराद्याः ॥ ३२ ॥
संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घैरवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात् ।
समाविशन्मण्डलमेतदग्र्यं त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम् ।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्निं प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिनं तम् ॥ ३४ ॥

शङ्कुकर्ण उवाच ।

कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद्गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम् ।
व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम् ॥ ३५ ॥
त्वां ब्रह्मसारं हृदि संनिविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिमं तम् ।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविष्टं महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥ ३६ ॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्ररूपं तमसः परस्तात् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम् ॥ ३७ ॥
यत्र प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन ।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयम्प्रभुं चित्पतिमेकरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ॥ ३९ ॥
यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः ।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तं ब्रह्मपारं परमस्वरूपम् ॥ ४० ॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्तिर्न सन्दृशो तिष्ठति यत्स्वरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४१ ॥
यद्वेदवादाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।

पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ ४२ ॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो बिभर्ति तेजः प्रणमन्ति देवाः ।
नमामि तं ज्योतिषि सन्निविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम् ॥ ४३ ॥
व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि ॥ ४४ ॥
स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽपि भगवन्तं कपर्दिनम् । पपात दण्डवद्भूमौ प्रोच्चरन्प्रणवं परम् ।
तत्क्षणात्परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् ।
ज्ञानमानन्दमत्यन्तकोटिज्वालाग्निसन्निभम् ॥ ४६ ॥
शङ्कुकर्णोऽथ मुक्तात्मा तदात्मा सर्वगोऽमलः ।
निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४७ ॥
एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं ते कपर्दिनः । न कश्चिद्वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति ॥
य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम् ।
त्यक्तपापो विशुद्धात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥
पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम् । प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयात्परम् ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये कपर्दीश्वरपिशाचमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीस्थमध्यमेश्वरमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

वाराणस्यां महाराज मध्यमेशः परात्परः । तस्मिन्स्थाने महादेवो देव्या सह महेश्वरः
रमते भगवान्नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः । तत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः ॥

उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्युतः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्परः ॥
आराधयन्हरिः शम्भुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ।
तस्य ते बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥ ४ ॥
लब्ध्वा तद्वदनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम् । तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः ।
ददौ कृष्णस्य भगवान्वरदो वरमुत्तमम् ।
येऽर्चयन्ति च गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम् ॥ ६ ॥
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मयम् । नमस्योऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैः ।
भविष्यन्ति न सन्देहो मत्प्रसादाद् द्विजातयः ।
येऽत्र द्रक्ष्यन्ति देवेशं स्नात्वा देवं पिनाकिनम् ॥ ८ ॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति ।
प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति ये मर्त्याः पापकर्मरता अपि ॥ ९ ॥
ते यान्ति तत्परं स्थानं नात्र कार्या विचारणा ।
धन्यास्तु खलु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः ॥ १० ॥
अर्चयित्वा महादेवं मध्यमेश्वरमीश्वरम् । ज्ञानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं ति...
एकैकशः कृतं कर्म पुनात्यासप्तमं कुलम् । सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तस्माद्दशगुणं त्विह ।
एवमुक्तं महाराज ! माहात्म्यं मध्यमेश्वरे ।
यः शृणोति परं भक्त्या स याति परमं पदम् ॥ १३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये मध्यमेश्वरमाहात्म्य-
वर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

वाराणसीस्थप्रयागतीर्थाद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अन्यानि च महाराज ! तीर्थानि पावनानि तु ।
वाराणस्यां स्थितानीह संशृणुष्व युधिष्ठिर ! ॥ १ ॥
गादधिकं तीर्थं प्रयागं परमं शुभम् । विश्वरूपं तथा तीर्थं तालतीर्थमनुत्तमम् ॥
काशाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभं परम् । सुनिलं च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम्
जापत्यं तथा तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च । जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम्
यातीर्थं परं तीर्थं तीर्थं चैव महानदी । नारायणपरं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम् ॥५॥
नतीर्थं पदं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम् । यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं सम्मूर्तिकं शुभम् ॥
ग्नितीर्थं महाराज ! कलशेश्वरमुत्तमम् । नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च ॥७॥
ताख्यं महागुह्यं मणिकर्ण्यमनुत्तमम् । घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थं च पितामहम् ॥
तीर्थं तु देवेशं ययातेस्तीर्थमुत्तमम् । कापिलं चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ॥९॥
तत्र लिङ्गं पुराणीयं स्थातुं ब्रह्मा यथागतः ।
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम् ॥ १० ॥
तत्र स्नात्वा समागम्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम् ।
मयाऽऽनीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि ॥ ११ ॥
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा मम ।
तस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति ॥ १२ ॥
श्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम् । गन्धर्वतीर्थं सुशुभं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम् ॥
र्वासिकं व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं युधिष्ठिर ! । चिन्ताङ्गदेश्वरं तीर्थं पुण्यं विद्याधरेश्वरम्
रतीर्थमुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम् । सारस्वतं प्रभासं च रुद्रकर्णह्रदं शुभम् ॥

कोकिलाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैव महालयम्। हिरण्यगर्भं गोप्रेक्षं तीर्थं चैवमनुत्त
उपशान्तं शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्। त्रिलोचनं महातीर्थं लोकार्कं चोत्तरा
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम्। शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम्॥ १
एवमादीनि तीर्थानि वाराणस्यां स्थितानि वै।
न शक्यं विस्तराद्वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि॥ १६॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वाराणसीमाहात्म्ये प्रयागतीर्थाद्यनेक
माहात्म्यवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

गयातीर्थाद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्।

नारद उवाच।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं तस्यां तीर्थानि च प्रभो!।
कथितानि समासेन तीर्थान्यन्यानि संशृणु॥ १॥
ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः। अश्वमेधमवाप्नोति गमनादेव भारत
यत्राक्षय्यवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। पितॄणां तत्र वै दत्तमक्षयं भवति प्रभो
महानद्यामुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः। अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलं चैव समुद्ध
ततो ब्रह्मसरो गच्छेद्ब्रह्मारण्योपसेवितम्। पुण्डरीकमवाप्नोति प्रभातमिव शर्व
सरसि ब्रह्मणा तत्र यूपश्रेष्ठः समुच्छ्रितः। यूपप्रदक्षिणं कृत्वा वाजपेयफलं लभे
ततो गच्छेत राजेन्द्र! धेनुकं लोकविश्रुतम्। एकरात्रोषितो राजन्प्रयच्छेत्तिलधेनु
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं व्रजेद्ध्रुवम्। तत्र चिह्नं महाराज! अद्यापि हि न सं
कपिला सहवत्सा वै पर्वते विचरत्युत। सवत्सायाः पदान्यस्या दृश्यन्तेऽद्यापि भा
तेषूपस्पृश्य राजेन्द्र! पदेषु नृपसत्तम!। यत्किञ्चिदशुभं पापं तत्प्रणश्यति भारत

ततो गृध्रवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य शूलिनः ।
स्नायात्तु भस्मना तत्र सङ्गम्य वृषभध्वजम् ॥ ११ ॥
ब्राह्मणेन भवेच्चीर्णं व्रतं द्वादशवार्षिकम् । इतरेषां तु वर्णानां सर्वपापं प्रणश्यति ॥
गच्छेत तत उद्यन्तं पर्वतं गीतनादितम् । सावित्रं तु पदं तत्र दृश्यते भरतर्षभ ! ॥
तत्र सन्ध्यामुपासीत ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
उपास्ता हि भवेत्सन्ध्या तेन द्वादशवार्षिकी ॥ १४ ॥
योनिद्वारं च तत्रैव विश्रुतं भरतर्षभ ! । तत्राभिगम्य मुच्येत पुरुषो योनिसङ्कटात् ॥
शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः । पुनात्यासप्तमं राजन्कुलं नास्त्यत्र संशयः
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् । यजेत वाऽश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्
ततः फल्गुं व्रजेद्राजंस्तीर्थसेवी नराधिप ! ।
अश्वमेधमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ॥ १८ ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! धर्मपृष्ठं समाहितः । यत्र धर्मो महाराज ! नित्यमास्ते युधिष्ठिरः !
धर्मं तत्राभिसङ्गम्य वाजिमेधफलं लभेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! ब्रह्मणस्तीर्थमुत्तमम् ॥
तत्राभिगम्य ब्रह्माणमर्चयेन्नियतव्रतः । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति भारत ! ॥
ततो राजगृहं गच्छेत्तीर्थसेवी नराधिप ! । उपस्पृश्य ततस्तत्र कक्षीवानिव मोदते ॥
यक्षिण्या नैत्यकं तत्र प्रागश्नि पुरुषः शुचिः । यक्षिण्यास्तु प्रसादेन मुच्यते ब्रह्महत्यया
मणिनागं ततो गच्छेद्गोसहस्रफलं लभेत् । नैत्यकं भुञ्जते यस्तु मणिनागस्य मानवः
दष्टस्याशीविषेणास्य न विषं क्रमते नृप ! । तत्रोष्य रजनीमेकां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
ततो गच्छेत ब्रह्मर्षे ! गौतमस्य वनं नृप ! । अहल्याया ह्रदे स्नात्वा व्रजेत परमां गतिम्
अभिगम्य श्रियं राजन्विन्दते श्रियमुत्तमाम् । तत्रोदपानो धर्मज्ञ ! त्रिषु लोकेषु विश्रुतः
तत्राभिषेकं कुर्वीत वाजिमेधमवाप्नुयात् । जनकस्य तु राजर्षेः कूपस्त्रिदशपूजितः ॥
तत्राभिषेकं कृत्वा च विष्णुलोकमवाप्नुयात् । ततो विनाशनं गच्छेत्सर्वपापप्रमोचनम्
वाजिमेधमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ।
गण्डकीं च समासाद्य सर्वतीर्थजलोद्भवाम् ॥ ३० ॥

वाजपेयमवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति। ततो ध्रुवस्य धर्मज्ञ ! समाविश्य तपो
गुह्यकेषु महाभाग ! मोदते नात्र संशयः। कर्मदां तु समासाद्य नदीं सिद्धनिषेवित

पुण्डरीकमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति।
ततो विशालामासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ ३३ ॥

अग्निष्टोममवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति। अथमाहेश्वरीं धारां समासाद्य नरा
अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्। दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नरः
न दुर्गतिमवाप्नोति वाजपेयं च विन्दति। माहेश्वरपदं गच्छेद्ब्रह्मचारी समा
माहेश्वरपदे स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत्। तत्र कोटिस्तु तीर्थानां विश्रुता भरत
कूर्मरूपेण राजेन्द्र ! असुरेण दुरात्मना। ह्रियमाणाऽऽहृता राजन्विष्णुना प्रभवि

तत्राभिषेकं कुर्वीत तीर्थकोट्यां नराधिप !।
पुण्डरीकमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ३९ ॥

ततो गच्छेन्नरश्रेष्ठ स्थानं नारायणस्य च। सदा सन्निहितो यत्र हरिर्वसति भारत
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः। आदित्या वसवो रुद्रा जनार्दनमुपास

शालग्राम इति ख्यातो विष्णोरद्भुतकर्मणः।
अभिगम्य त्रिलोकेशं वरदं विष्णुमच्युतम् ॥ ४२ ॥

अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति। तत्रोदपानो धर्मज्ञ ! सर्वपापप्रमोच
समुद्रास्तत्र चत्वारः कूपे सन्निहिताः सदा। तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र ! न दुर्गतिमवाप्नु
अभिगम्य महादेवं वरदं विष्णुमव्ययम्। विराजते यथा सोम ऋणैर्मुक्तो युधिष्ठि

जातिस्मर उपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः ॥ ४६ ॥

वटेश्वरपुरं गत्वा अर्चयित्वा च केशवम्। ईप्सितांल्लभते लोकानुपवासान्न संशय
ततस्तु वामनं गत्वा सर्वपापप्रणाशनम्। अभिवाद्य हरिं देवं न दुर्गतिमवाप्नुया
भरतस्याश्रमं गत्वा सर्वपापप्रमोचनम्। कौशिकीं तत्र सेवेत महापातकनाशिनी
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः। ततो गच्छेत धर्मज्ञ चम्पकारण्यमुत्त

तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत्। अथ गोविन्दमासाद्य तीर्थं परमसम्मतम् ॥
उपोष्य रजनीमेकामग्निष्टोमफलं लभेत्। तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम्
मित्रावरुणयोर्लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ। त्रिरात्रोपोषितस्तत्र अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥
कन्यावसथमासाद्य नियतो नियताशनः। मनोः प्रजापतेर्लोकानाप्नोति भरतर्षभ! ॥
कन्यायां ये प्रयच्छन्ति दानमण्वपि भारत!। तदक्षयमिति प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥

निष्ठावासं समासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ॥ ५६ ॥

ये तु दानं प्रयच्छन्ति निष्ठायाः सङ्गमे नराः। ते यान्ति नरशार्दूल! ब्रह्मलोकमनामयम्
तत्राश्रमो वसिष्ठस्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। तत्राभिषेकं कुर्वाणो वाजपेयमवाप्नुयात्
देवकूटं समासाद्य देवर्षिगणसेवितम्। अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥५९॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र! कौशिकस्य मुनेर्ह्रदम्।
यत्र सिद्धिं परां प्राप विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ६० ॥

तत्र मासं वसेद्धीरः कौशिक्यां भरतर्षभ!। अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तन्मासेनाधिगच्छति
सर्वतीर्थवरं चैव यो वसेत महाह्रदम्। न दुर्गतिमवाप्नोति विन्देद्बहुसुवर्णकम् ॥
कुमारमभिगम्याथ वीराश्रमनिवासिनम्। अश्वमेधमवाप्नोति शक्रलोकं स गच्छति ॥
नन्दिन्यां च समासाद्य कूपं त्रिदशसेवितम्। नरमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति कुरूद्वह

कालिकासङ्गमे स्नात्वा कौशिक्यारुणयोर्यतः।
त्रिरात्रोपोषितो विद्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६५ ॥

उर्वशीतीर्थमासाद्य तथा सोमाश्रमं बुधः। कुम्भकर्णाश्रमे स्नात्वा पूज्यते भुवि मानवः

तथा कोकामुखे स्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः ॥ ६७ ॥

सकृन्नदीं समासाद्य कृतार्थो भवति द्विजः। सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं च गच्छति
ऋषभद्वीपमासाद्य सेव्यक्रौञ्चनिषूदनम्। सरस्वत्यामुपस्पृश्य विमानस्थो विराजते ॥
औद्दानकं महाराज! तीर्थं मुनिनिषेवितम्। तत्राभिषेकं कुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

ब्रह्मतीर्थं समासाद्य पुण्यं ब्रह्मर्षिसेवितम् । वाजपेयमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥
ततश्चम्पां समासाद्य भागीरथ्यां कृतोदकः । दण्डार्पणं समासाद्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥
लाविढिकां ततो गच्छेत्पुण्यां पुण्यनिषेविताम् ।
वाजपेयमवाप्नोति विमानस्थश्च पूज्यते ॥ ७३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गयादितीर्थमाहात्म्यकथनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सन्ध्यातीर्थाद्यनेकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथ सन्ध्यां समासाद्य सद्विद्यां तीर्थमुत्तमम् ।
उपस्पृश्य नरो विद्वान्भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ १ ॥
रामस्य च प्रसादेन तीर्थराजं कृतं पुरा । तल्लौहित्यं समासाद्य विन्द्याद्बहुसुवर्णकम् ॥
करतोयां समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः । अश्वमेधमवाप्नोति शक्रलोकं च गच्छति ॥
गङ्गायास्त्वथ राजेन्द्र सागरस्य च सङ्गमे । अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
गङ्गायास्तु परं द्वीपं प्राप्य यः स्नाति भारत ! ।
त्रिरात्रोपोषितो राजन्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ५ ॥
ततो वैतरणीं गत्वा नदीं पापप्रमोचनीम् । विरजं तीर्थमासाद्य विराजति यथा शशी ॥
प्रभावे च कुलं पूत्वा सर्वपापं व्यपोहति । गोसहस्रफलं लब्ध्वा पुनाति स्वकुलं नरः ॥
शोणस्य ज्योतिरथ्याश्च सङ्गमे निवसञ्छुचिः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ८ ॥
शोणस्य नर्मदायाश्च प्रभवे कुरुपुङ्गव ! । वंशगुल्ममुपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत् ॥

ऋषभं तीर्थमासाद्य कोशलायां नराधिप ! । वाजिमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितो नरः
कोशलायां समासाद्य कालतीर्थमुपस्पृशेत् । वृषभैकादशगुणं लभते नात्र संशयः ॥
पुष्पवत्यामुपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः । गोसहस्रफलं विन्देत्कुलंचैव समुद्धरेत् ॥
ततो बदरिकातीर्थे स्नात्वा प्रयतमानसः । दीर्घायुष्यमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति
ततो महेन्द्रमासाद्य जामदग्न्यनिषेवितम् । रामतीर्थे नरः स्नात्वा वाजिमेधफलं लभेत्
मतङ्गस्य तु केदारं तत्रैव भरतर्षभ ! । तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥१५॥
श्रीपर्वतं समासाद्य नदीतीरमुपस्पृशेत् । अश्वमेधमवाप्नोति परां सिद्धिं च गच्छति ॥

श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः ।
न्यवसत्परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैर्वृतः ॥ १७ ॥

तत्र देवह्रदे स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः । अश्वमेधमवाप्नोति परां सिद्धिं च गच्छति
ऋषभं पर्वतं गत्वा पाण्ड्येषु सुरपूजितम् । वाजपेयमवाप्नोति नाकपृष्ठे च मोदते ॥

ततो गच्छेत कावेरीं वृतामप्सरसां गणैः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २० ॥

तत्र तीर्थे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत् । तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते
अथ गोकर्णमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । समुद्रमध्ये राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृतम्
यत्र ब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तपोधनाः । भूतयक्षाः पिशाचाश्च किन्नराः समहोरगाः ॥

सिद्धचारणगन्धर्वा मानुषाः पन्नगास्तथा ।
सरितः सागराः शैला उपासत उमापतिम् ॥ २४ ॥

तत्रेशानं समभ्यर्च्य त्रिरात्रोपोषितो नरः । दशाश्वमेधमाप्नोति गाणपत्यं च विन्दति

उपोष्य द्वादशरात्रं कृतार्थो जायते नरः ।
तस्मिन्नेव तु गायत्र्याः स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ २६ ॥

त्रिरात्रमुषितस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् । निदर्शनं च प्रत्यक्षं ब्राह्मणानां नराधिप ! ॥

गायत्रीं पठते यस्तु योनिसङ्करजो द्विजः ।
गाथा वा गीतिका वाणी तस्य सम्पद्यते नृप ! ॥ २८ ॥

अब्राह्मणस्य पठतः सावित्री तूपनश्यति । संवर्तस्य तु विप्रर्षेर्वापीमासाद्य दुर्ल
रूपस्य भागी भवति सुभगश्चाभिजायते । ततो वेणां समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवता
मयूरहंससंयुक्तं विमानं लभते नरः । ततो गोदावरीं प्राप्य नित्यसिद्धनिषेवित

गवामयुतमाप्नोति वायुलोकं च गच्छति ।
वेणायाः सङ्गमे स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३२ ॥

वरदासङ्गमे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् । ब्रह्मस्थूणां समासाद्य त्रिरात्रोपोषित
गोसहस्रफलंविन्देत्स्वर्गलोकं च गच्छति । कुब्जावनं समासाद्य ब्रह्मचारी समा

त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
ततो देवह्रदे स्नात्वा कृष्णवेणाजलोद्भवे ॥ ३५ ॥

ज्योतिर्मात्रह्रदे चैव तथा कन्याश्रमे नृप ! । यत्र क्रतुशतैरिष्ट्वा देवराजो दिवं
अग्निष्टोमशतंविन्देद्गमनादेव तत्र तु । सर्वदेवह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥

जातिमात्रह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः ।
ततो वापीं महापुण्यां पयोष्णीं सरितां वराम् ॥ ३८ ॥

पितृदेवार्चनरतोगोसहस्रफलं लभेत् । दण्डकारण्यमासाद्य महाराज ! उपस्पृ
शरभङ्गाश्रमं गत्वा शुकस्य च महात्मनः । न दुर्गतिमवाप्नोति पुनाति स्वकुलं न
ततः सूर्यारकं गच्छेज्जमदग्निनिषेवितम् । रामतीर्थे नरः स्नात्वाविन्देद्बहुसुवर्ण
सप्तगोदावरीं स्नात्वा नियतो नियताशनः । महापुण्यमवाप्नोति देवलोकं च ग
ततो देवपथं गच्छेन्नियतो नियताशनः । देवसत्रस्य यत्पुण्यं तदवाप्नोति मान
तुङ्गकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । वेदानध्यापयत्तत्र मुनीन्सारस्वतः
तत्र वेदान्प्रनष्टांस्तु मुनेराङ्गिरसः सुतः । उपविष्टो महर्षीणामुत्तरीयेषु भारत !
ॐकारेण यथान्यायं सम्यगुच्चारितेन ह । येन यत्पूर्वमभ्यस्तं तस्य तत्समुप
ऋषयस्तत्र देवाश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः । हरिर्नारायणो देवो महादेवस्तथै
पितामहश्च भगवान्देवैस्सह महाद्युतिः । भृगुं नियोजयामास याजनार्थं महा
ततः स चक्रे भगवानृषीणां विधिवत्तदा । सर्वेषां पुनराधानं देवदृष्टेन क

आज्यभागेन वै तत्र तर्पितास्तु यथाविधि ।
देवास्त्रिभुवनं याता ऋषयश्च यथासुखम् ॥ ५० ॥
तदरण्यं प्रविष्टस्य तुङ्गकं राजसत्तम ! । पापं विनश्यते सद्यः स्त्रिया वै पुरुषस्यवा
तत्र मासं वसेद्धीरो नियतो नियताशनः । ब्रह्मलोकं व्रजेद्राजन्पुनीते च कुलं पुनः ॥
मेधावनं समासाद्य पितृदेवांश्च तर्पयेत् । अग्निष्टोममवाप्नोति स्मृतिं मेधां च विन्दति
ततः कालञ्जरं गत्वा गोसहस्रफलं लभेत् । आत्मानं साधयेत्तत्र गिरौ कालञ्जरे नृप ! ॥
स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्त्यत्र संशयः । ततो गिरिवरश्रेष्ठे चित्रकूटे विशांपते ! ॥
मन्दाकिनीं समासाद्य नदीं पापविमोचनीम् ।
अत्राभिषेकं कुर्वाणः पितृदेवार्चने रतः ॥ ५६ ॥
अश्वमेधमवाप्नोति गतिं च परमां व्रजेत् । ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गुहस्थानमनुत्तमम्
यत्र देवो महासेनो नित्यं सन्निहतो नृप ! । पुमांस्तत्र नरश्रेष्ठ ! गमनादेव सिद्धयति
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य शिवस्थानं व्रजेन्नरः ॥ ५९ ॥
अभिगम्य महादेवं विराजति यथा शशी । तत्र कूपो महाराज ! विश्रुतो भरतर्षभ ! ॥
समुद्रा यत्र चत्वारो निवसन्ति युधिष्ठिर ! ।
तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ ६१ ॥
नियतात्मा नरः पूतो गच्छेत परमां गतिम् । ततो गच्छेत्कुरुश्रेष्ठ ! शृङ्गवेरपुरं महत् ॥
यत्र तीर्णो महाप्राज्ञो रामो दाशरथिः पुरा ।
गङ्गायां तु नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ६३ ॥
विधूतपाप्मा भवति वाजपेयं च विन्दति । ततो मुञ्जवटं गच्छेत्स्थानं देवस्य धीमतः
अभिगम्य महादेवमभ्यर्च्य च नराधिप ! । प्रदक्षिणमुपावृत्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! प्रयागमृषिसंस्तुतम् । यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः
लोकपालाश्च सिद्धाश्च निरताः पितरस्तथा । सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव च महर्षयः ॥
तथा नागाः सुवर्णाश्च सिद्धाः शुक्रधरास्तथा ।

सरितः सागराश्चैव गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६८ ॥

हरिश्चभगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः । तत्र त्रीण्यपि कुण्डानि तयोर्मध्ये न जाह्न
प्रयागात्समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रु
यमुना गङ्गया सार्द्धं सङ्गता लोकभाविनी । गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृ
प्रयागं जघनस्यान्तमुपस्थमृषयो विदुः । प्रयागं सुप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावु
तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः । तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्त्तिमन्तो युधि
प्रजापतिमुपासन्तं ऋषयश्च महानघाः । यजन्ते क्रतुभिर्देवांस्तथा चक्रधरा नृ
ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत! । प्रयागं सर्वतीर्थेभ्यः प्रभावेणाधिकं
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि । मृर्त्तिकालमनाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्य
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सङ्गमे संशितव्रतः । पुण्यं सुमहदाप्नोति राजसूयाश्वमेध
एषा यजनभूमिर्हि देवानामपि तत्कथा । दत्तं तत्र स्वल्पमपि महद्भवति भार
न देववचनात्तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्र
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः । येषां सान्निध्यमत्रैव कीर्त्तितं कुरुन
चतुर्विधे च यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत् । स्नातएव तदाप्नोति गङ्गायामुनसङ्ग

ततो भोगवती नाम वासुकेस्तीर्थमुत्तमम् ।
तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

तत्र हंसप्रपतनं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । दशाश्वमेधिकं चैव गङ्गायां कुरुनन्द
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्रतत्रावगाहिता । विशेषोवै कनखले प्रयागं परमं महत् ।
यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गावसेचनम् । सर्वंतत्तस्यगङ्गापोदहन्त्यग्निरिवेन्ध
सर्वं दहन्ति गङ्गापस्तूलराशिमिवानलः । सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृ
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं गङ्गाकलियुगे स्मृता । पुष्करे तु तपस्तप्येद्दानं दद्यान्महा
मलये त्वग्निमारोहेद्भृगुतुङ्गे त्वनाशनम् । पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गङ्गापोमध्यगेषु

सद्यस्तारयते जन्तुः सप्तसप्तावरांस्तथा ।
पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा पुण्यं प्रयच्छति ॥ ८६ ॥

अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम् ॥ ९० ॥
तावत्स पुरुषो राजन्स्वर्गलोके महीयते । यथा पुण्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च
उपास्य पुण्यं लब्ध्वा च भवति परलोकभाक् ।
न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥ ९२ ॥
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः । यत्र गङ्गा महाराज ! सदेशस्तत्र योजनम्
सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमागतम् । इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनां मानसेषु च ॥
सुर्कचैव जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च । इदं धर्म्ममिदं मेध्यमिदं स्वर्गमिदं सुखम् ॥
इदं पुण्यतमं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम् ।
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ९६ ॥
अधीत्य द्विजमध्ये च निर्मलत्वमवाप्नुयात् । श्रीमत्स्वर्ग्यं महापुण्यं सपत्नशमनं शिवम्
मेधाजननमग्र्यं वै तीर्थवंशानुकीर्त्तनम् । अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ॥
महीं विजयते राजा वैश्यो धनमाप्नुयात् ।
शूद्रो यातीप्सितान्कामान्ब्राह्मणः पारगः पठन् ॥ ९९ ॥
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं सदा शुचि । जातिस्मरत्वमाप्नोति नाकपृष्ठे च मोदते
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमान्यपि । मनसाप्यभिगच्छेत सर्वतीर्थमनीषया॥
तानि वसुभिः साध्यैरादित्यैर्मरुदश्विभिः । ऋषिभिर्देवकल्पैश्च कृतानि सुकृतैषिभिः
एवं त्वमपि कौरव्य ! विधिनाऽनेन सुव्रत ! । व्रज तीर्थानि नियतः पुण्यं पुण्येन वर्द्धते
भावितैः कारणैः पूर्वमास्तिक्यच्छ्रुतिदर्शनात् ।
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः ॥ १०४ ॥
नाव्रतो नाकृतात्मा च नाशुचिर्नच तस्करः । स्नाति तीर्थेह कौरव्य ! न च वक्रमतिर्नरः
त्वया तु सम्यग्वृत्तेन नित्यं धर्मार्थदर्शिना । पितरस्तर्पितास्तात सर्वे च प्रपितामहाः ॥
पितामहपुरोगाश्च देवाःसर्षिगणास्तथा । त्वं च धर्मेण धर्मज्ञ ! नित्यमेवाभितोषितः
दिलीपकीर्तिं महतीं प्राप्स्यसे भुवि शाश्वतीम् ।

एवमुक्त्वाऽभ्यनुज्ञाप्य वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ १०८ ॥

प्रीतः प्रीतेन मनसा तत्रैवान्तरधीयत। दिलीपः कुरुशार्दूल ! शास्त्रतत्त्वार्थदर्शनात्
वसिष्ठवचनाच्चैव पृथिवीमनुचक्रमे । एवमेषा महाभाग ! प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता ॥ ११०
तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी । अनेन विधिना यस्तु पृथिवीं पर्यटिष्यति
अश्वमेधशतं साग्रं फलं प्रेत्यैष भोक्ष्यते । ततश्चाष्टगुणं पार्थ ! प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम्

दिलीपः पार्थनृपतिर्यथा पूर्वमवाप्तवान् ।

नेता च त्वमृषीन्यस्मात्तस्मात्तेऽष्टगुणं फलम् ॥ ११३ ॥

रक्षोगणविकीर्णानि तीर्थान्येतानि भारत ! । न गतिर्विद्यतेऽन्यस्य त्वामृते कुरुनन्दन
इदंदेवर्षिचरितं सर्वतीर्थानुसंश्रितम् । यः पठेत्कल्यमुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते

ऋषिमुख्याः सदा यत्र वाल्मीकिस्त्वथ कश्यपः ।

आत्रेयस्त्वथ कौण्डिन्यो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ ११६ ॥

असितो देवलश्चैव मार्कण्डेयोऽथ गालवः । भरद्वाजस्य शिष्यश्च मुनिरुद्दालकस्तथा
शौनकः सह पुत्रेण व्यासश्च तपतांवरः । दुर्वासाश्च मुनिश्रेष्ठो जावालिश्च महातपाः
एते ऋषिवराः सर्वे त्वत्प्रतीक्षास्तपोधनाः । एभिः सह महाभाग ! तीर्थान्येतान्यनुव्रज

प्राप्स्यसे महतीं कीर्तिं यथा राजा महाभिषः ।

यथा ययातिर्धर्मात्मा यथा राजा पुरूरवाः ॥ १२० ॥

तथा त्वं कुरुशार्दूल ! स्वेन धर्मेण शोभसे ।

यथा भगीरथो राजा यथा रामश्च विश्रुतः ॥ १२१ ॥

यथा वै वृत्रहा सर्वान्सपत्नानदहत्पुरा । त्रैलोक्यं पालयामास देवराड्विगतज्वरः

तथा शत्रुक्षयं कृत्वा त्वं प्रजाः पालयिष्यसि ।

स्वधर्मेणार्जितामुर्वीं प्राप्य राजीवलोचन ! ।

ख्यातिं यास्यसि वीर्येण कार्त्तवीर्यार्जुनो यथा ॥ १२३ ॥

सूत उवाच ।

एवमाभाष्य राजानं नारदो भगवानृषिः । अनुज्ञाप्य महाराजं तत्रैवान्तरधीयत

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा ऋषिभिः सह सुव्रतः ।
जगामाखिलतीर्थानि सादरः पृथिवीपतिः ॥ १२५ ॥
[...]योकामृषयः सर्वे तीर्थयात्राश्रयां कथाम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स मुक्तः सर्वपातकैः
मयोक्तमखिलं तत्त्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ।
ऋषीणां पुण्यकीर्तीनां नावक्तव्यं ममास्ति वै ॥ १२७ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे नानाविधतीर्थकथनं
नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागस्य विशेषमाहात्म्यजिज्ञासया शौनकादीनां प्रश्नः ।

सूत उवाच ।

[...]मुक्तानि तीर्थानि विष्णुदेहानि सुव्रताः । एषामन्यतमासङ्गान्मुक्तो भवति मानवः
[...]र्थानुश्रवणं धन्यं धन्यं तीर्थनिषेवणम् । पापराशिनिपाताय नान्योपायः कलौ युगे
[...]सं कुर्य्यामहं तीर्थे तीर्थस्पर्शमहं तथा । एवं योऽनुदिनं ब्रूते स याति परमं महत् ॥
पापानि तस्य नश्यन्ति तीर्थालापनमात्रतः ।
तीर्थानि खलु धन्यानि धन्यसेव्यानि सुव्रताः ॥ ४ ॥
[...]र्थानां सेवनादेव सेवितो भवति प्रभुः ।नारायणो जगत्कर्ता नास्ति तीर्थात्परं पदम्
ब्राह्मणस्तुलसी चैव अश्वत्थस्तीर्थसञ्चयः ।
विष्णुश्च परमेशानः सेव्य एव सदा नृभिः ॥ ६ ॥
[...]ह्मणानां विशेषेण सेवनं मुनिपुङ्गवाः । सर्वतीर्थावगाहादेरधिकं विदुरग्रजाः ॥७॥
[...]स्माद्द्विजपदं साक्षात्सर्वतीर्थमयं शुभम् । भजेतानुदिनं विद्वांस्तत्र तीर्थाधिकं भवेत्
[...]श्वत्थस्य तुलस्याश्च गवां कुर्यात्प्रदक्षिणम् । सर्वतीर्थफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते

तस्माद्दुष्कृतकर्माणि नाशयेत्तीर्थसेवनात् ।
अन्यथा नरकं याति कर्म्मभोगाद्धि शाम्यति ॥ १० ॥
पापिनां नरके वासः सुकृती स्वर्गमश्नुते । तस्मात्पुण्य निषेवेत तीर्थं खलु विचक्षण

ऋषय ऊचुः ।

श्रुतानि किल तीर्थानि समाहात्म्यानि सुव्रत ! ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामः प्रयागस्य विशेषकम् ॥ १२ ॥
प्रयागं तु पुरा प्रोक्तं संक्षेपात्सूत ! यत्त्वया ।
विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामः सूत ! नः कथ्यतामिति ॥ १३ ॥

सूत उवाच ।

साधु पृष्टं महाभागाः प्रयागं प्रति सुव्रताः । हन्ताहं तत्प्रवक्ष्यामिप्रयागस्योपवर्णन
मार्कण्डेयेन कथितं यत्पुरा पाण्डुसूनवे । भारते तु तदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते
एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रोयुधिष्ठिरः । भ्रातृशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयंस्तु पुनः पुन
आसीद्दुर्योधनो राजा एकादशचमूपतिः । अस्मान्सन्ताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गत
वासुदेवं समाश्रित्य पञ्चशेषास्तु पाण्डवाः ।
कथं द्रोणं च भीष्मं च कर्णं चैव महाबलम् ॥ १८ ॥
दुर्योधनं च राजानं भ्रातृपुत्रसमन्वितम् । राजानो निहताः सर्वे येचान्ये शूरमानिनः
किं नो राज्येन कर्तव्यं किं भोगैर्जीवितेन वा ।
धिक्कष्टमिति सञ्चिन्त्य राजा विह्वलतां गतः ॥ २० ॥
निश्चेष्टोऽथ निरुत्साहः किञ्चित्तिष्ठत्यधोमुखः ।
लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तमानः पुनः पुनः ॥ २१ ॥
कं चरे विधिनायोगं नियमं तीर्थमेव वा । येनाहं शीघ्रमामुच्ये महापातककिल्बिषा
यत्र स्नात्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ।
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितं महत् ॥ २३ ॥
धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं महत् । व्यासं कथमहं पृच्छे यस्य गात्रक्षयः कृ

एवं वैक्लव्यमापन्नो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः। रुदन्तः पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाश्रिताः। कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः
भूमौ निपतिताः सर्वे रोदमानाः समन्ततः।
वाराणस्यां तु मार्कण्डस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः॥ २७॥
तथा विक्लवमापन्नो रोदमानः सुदुःखितः। अचिरेणैव कालेन मार्कण्डस्तु महातपाः
हस्तिनापुरमायातो राजद्वारे स तिष्ठति।
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान्द्रुतम्॥ २९॥
त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारे तिष्ठत्यसौ मुनिः।
त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह तत्परः॥ ३०॥

युधिष्ठिर उवाच।

स्वागतं ते महाप्राज्ञ! स्वागतं ते महामुने!। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे पावितं कुलम्
अद्य मे पितरस्तृप्तास्त्वयि दृष्टे महामुने। सिंहासन उपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः॥
युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम्।
ततस्तमूचे मार्कण्डः पूजितोऽहं त्वया विभो!॥ ३३॥
आख्याहि त्वरितो राजन्किमर्थं त्वरितं त्वया।
केन वा विक्लवीभूतः कथयस्व ममाग्रतः॥ ३४॥

युधिष्ठिर उवाच।

अस्माकं चैव यद्वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने!। एतत्सर्वं विदित्वा तु भगवानिह चागतः

मार्कण्डेय उवाच।

शृणु राजन्महाबाहो यत्र धर्मो व्यवस्थितः। नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः
किं पुनाराजधर्मेण क्षत्त्रियस्य विशेषतः। तदेवं हृदयेकृत्वा तस्मात्पापं न चिन्तयेत्॥
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
पृच्छामि त्वां मुनिश्रेष्ठ! सदा त्रैकाल्यदर्शनम्।
कथयस्व समासेन मुच्येऽहं ये न किल्बिषात्॥ ३८॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन्महाभाग ! यन्मां पृच्छसि भारत ! ।

एवं साङ्ख्यं च योगं च तीर्थं चैव युधिष्ठिर ! ॥ ३९ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणैः पुण्यैः कीर्तितं वै पुरा विभो ! । प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम्

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादवर्णनं नाम

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

———

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

विस्तरेण प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पुराकल्पे यथास्थितम् । कथं प्रयागगमनं नराणां तत्र कीदृशम्

मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां चैव किं फलम् ।

ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम् । एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे

मार्कण्डेय उवाच ।

कथयिष्यामि ते वत्स ! प्रयागस्य तु यत्फलम् ।

पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥

आप्रयागात्प्रतिष्ठानाद्धर्मकीवासुकीह्रदात् । कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाश्च बहुमूलिकः

एतत्प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।

अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ॥ ५ ॥

तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः । अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापप्रणाशकाः

नशक्याः कथितुं राजन्बहुवर्षशतैरपि । संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य च कीर्तनम्

षष्टिर्धनुः सहस्राणि परिरक्षन्ति जाह्नवीम् । यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः

प्रयागं तु विशेषेण स्वयं रक्षति वासवः। मण्डलं रक्षति हरिर्देवैः सह सुसंमतम् ॥
तं वटं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः। स्थानं रक्षति वै देवः सर्वपापहरं शुभम्॥१०॥
अधर्मेण मृतो लोके नैव गच्छति तत्पदम्। स्वल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप!॥
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्। दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि ॥

मृत्तिकालभनाद्वापि नरः पापाद्विमुच्यते।
पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र! येषां मध्ये तु जाह्नवी ॥ १३ ॥

प्रयागे तु प्रविष्टस्य पापं क्षरति तत्क्षणात्। योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः

अपि दुष्कृतकर्माऽसौ लभते परमां गतिम्।
कीर्तनान्मुच्यते पापैर्दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥ १५ ॥
अवगाह्य च पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
सत्यवादी जितक्रोधो अहिंसां परमां स्थितः ॥ १६ ॥

धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात्

मनसा चिन्तितान्कामान्सम्यक्प्राप्नोति पुष्कलान्।
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितृदेवांश्च तर्पयेत्। ईप्सिताँल्लभते कामान्यत्र तत्राभिजायते
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा ॥
तत्र सन्निहितो नित्यं साक्षाद्देवो महेश्वरः। दुष्प्रापं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर!
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र! स्वर्गलोकं सुखं गताः ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं
नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागतीर्थे दानादिमहिमावर्णनम्।

मार्कण्डेय उवाच।

श्रृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसं

आर्तानां च दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्।

स्थानं मुक्त्वा प्रयागं तु नाक्षयं तु कदाचन ॥ २ ॥

गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्। दीप्तकाञ्चनवर्णाभे विमाने सूर्यवर्चसि

गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः। ईप्सिताँल्लभते कामान्वदन्ति ऋषिपुङ्ग

सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः। वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः॥

गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते

तत्र स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते

तदेव स्मरते तीर्थस्मरणात्तत्र गच्छति। देशस्थो यदि वारण्ये विदेशे यदि वा

प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणन्परित्यजेत्।

स ब्रह्मलोकमाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥

सर्वकामफलावृत्ता मही यत्र हिरण्मयी। ऋषयो मुनयः सिद्धा यत्र लोके प्रग

स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे। मोदते ऋषिभिः सार्द्धं स्वकृतेनेह क

सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः। ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवे

ततः शुभानि कर्माणि चिन्तमानः पुनः पुनः।

गुणवान्वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः ॥ १३ ॥

कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु दानं प्रयच्छ

सुवर्णं मणिमुक्तां वा यदि धान्यं प्रतिग्रहम्।

स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा ॥ १५ ॥

निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तत्फलमश्नुते । एवं तीर्थं न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च ॥
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत् । कपिलां पाटलावर्णां प्रयागे यः प्रयच्छति
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकण्ठीं पयस्विनीम् ।
प्रयागे श्रोत्रियं साधुं ग्राहयित्वा यथाविधि ॥ १८ ॥
शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम् । सा गौस्तस्मै च दातव्या गङ्गायमुनसङ्गमे ॥
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ।
यावद्रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम ! ॥ २० ॥
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । यत्रासौ लभते जन्म सा गौस्तत्राभिजायते ॥
न च पश्यत्यसौ घोरं नरकं तेन कर्मणा । उत्तरान्सकुरून्प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥
गवांशतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम् । पुत्रान्दारांस्तथा भृत्यान्गौरेका प्रतितारयेत्
तस्मात्सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते । दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे ।
गौरेव रक्षां कुरुते तस्माद्देया द्विजातये ॥ २४ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

——————

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

यथाप्रयागस्य मुने माहात्म्यं कथितं त्वया । तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः
भगवन्केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः । प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तं मे ब्रूहि महामुने

मार्कण्डेय उवाच ।

कथयिष्यामि ते वत्स! तीर्थयात्राविधिक्रमम् । यो गच्छेतकुरुश्रेष्ठ! प्रयागं देवसंयुतम्

बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम् । वसते नरके घोरे गवां क्रोधे सुदारुणे।
सलिलं च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ।
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान्स्नापयेत्पाययेत्तथा ॥ ५ ॥
यथात्मनस्तथा सर्वान्दानं विप्रेषु दापयेत् । ऐश्वर्यलोभान्मोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं परित्यजेत् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति ॥ ७ ॥
आर्षेण तु विधानेन यथाविभवसम्भवम् । न पश्यति यमं घोरं नरकं तेन कर्मणा
उत्तरान्सकुरून्गत्वा मोदते कालमक्षयम् । पुत्रांस्तु दाराँल्लभते धार्मिकान्नयसंयुतान्
तत्र दानं प्रदातव्यं यथाविभवसम्भवम् । तेन तीर्थफलेनैव वर्द्धते नात्र संशयः ॥
स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र ! यावदाभूतसम्प्लवम् ।
वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ११ ॥
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं च गच्छति । तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ते रुद्रमाश्रिताः
निर्दहन्ति जगत्सर्वं वटमूलं न दह्यते । नष्टचन्द्रार्कपवनं यदा चैकार्णवं जगत्
स्वपित्यत्रैव वै विष्णुर्जायमानः पुनः पुनः । देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः
सदा सेवन्ति तत्तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमे । तत्र गच्छन्ति राजेन्द्र प्रयागं संयुतं च
तत्र ब्रह्मादयो देवादिशश्चैव दिगीश्वराः । लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसंमताः
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः । अङ्गिरप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे ॥ १६ ॥
तथा नागाश्च सिद्धाश्च सुपर्णाः खेचराश्च ये ।
सरितः सागराः शैला नागाविद्याधरास्तथा ॥ १८ ॥
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः । गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्
प्रयागं राजशार्दूल! त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत
श्रवणात्तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि । मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते
तत्राभिषेकं यः कुर्य्यात्सङ्गमे संशितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः
न वेदवचनात्तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति ॥ २५ ॥

दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथा पराः। येषां सान्निध्यमत्रैव कीर्तनात्कुरुनन्दन !
यागतिर्योगयुक्तस्य सद्बुत्थस्य मनीषिणः। सागतिस्त्यजतः प्राणान्गङ्गायमुनसङ्गमे ॥
ते न जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र यत्र युधिष्ठिर !।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २६ ॥
एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा ॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः
तत्र गत्वा तु तत्स्थानं महादेवस्य धीमतः। नरस्तारयते सर्वान्दशातीतान्दशापरान् ॥
कृत्वाऽभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायां त्रिषु लोकेषु भारत !। कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं तु विश्रुतम्
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्
उत्तरेण प्रतिष्ठानाद्भागीरथ्यास्तु पूर्वतः। हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥
अश्वमेधफलं तस्मिन्स्नातमात्रस्य भारत !। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते ॥
उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे। सलिलैस्तर्पयेद्यस्तु पितृंस्तत्र विमत्सरः ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। सेवतेपितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोकं नराधिप ! ॥
पूज्यते सततं तत्र ऋषिगन्धर्वकिन्नरैः।
ततः स्वर्गपरिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ॥ ३७ ॥
उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम्। गवां शतसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिप !॥
काञ्चीनूपुरशब्देनसुप्तोऽसौप्रतिबुध्यते । भुक्त्वातुविपुलान्भोगांस्तत्तीर्थंलभतेपुनः ॥
कुशासनधरोनित्यंनियतःसंयतेन्द्रियः। एककालं तु भुञ्जानो मासं भोगपतिर्भवेत् ॥
सुवर्णालङ्कृतानां तु नारीणां लभते शतम्।
पृथिव्यामासमुद्रायां महाभोगपतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥
दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिप !। धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः
स भुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं स्मरते पुनः।
अथ तस्मिन्वटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ४३ ॥

उपोष्य योगयुक्तश्च ब्रह्मज्ञानमवाप्नुयात् ।

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ ४४ ॥

कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिव
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले भवति रूपवान् । ततो भगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण
दशाश्वमेधकं तत्र तीर्थं तत्रापरं भवेत् । कृत्वाऽभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं

धनाढ्यो रूपवान्दक्षो दाता भवति धार्मिकः ।

चतुर्वेदेषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु यत्फलम् ॥ ४८ ॥

अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तद्भवेत् । कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाह
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा यत्र सिन्ध्वा समागता । यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोध

सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्रकार्या विचारणा ।

क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः ॥ ५१ ॥

दिवि तारयते देवांस्तेन सा त्रिपथा स्मृता ।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति तस्य देहिनः ॥ ५२ ॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनामुत्तमा न
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्ल
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुन
सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा
पवित्राणां पवित्रं या मङ्गलानां च मङ्गलम् । महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा
इतिश्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

———

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागस्थमानसतीर्थर्णमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणुराजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेवतु । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्रसंशयः
मानसं नाम तत्तीर्थं गङ्गायामुत्तरेतटे । त्रिरात्रोपोषितोभूत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥
गोभूहिरण्यदानेन यत्फलं प्राप्नुयान्नरः । एतत्फलमवाप्नोति तत्तीर्थं स्मरते पुनः ॥
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते । मृतस्तु भवति स्वर्गे नरकं च न पश्यति
अप्सरोगणसङ्गीतैःसुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते । हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥
बहुवर्षाणि राजेन्द्र ! षट्सहस्राणि भुञ्जते । ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टःक्षीणकर्मादिवश्च्युतः
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते स महाकुले । षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टितीर्थशतानि च ॥
माघेमासि गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसङ्गमे । गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्

प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पञ्चाग्निं यस्तु साधयेत् ॥ ६ ॥

अहीनाङ्गोह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः । यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रस्य देहिनः
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥
सभुक्त्वा विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते नरः । जलप्रवेशं यःकुर्यात्सङ्गमे लोकविश्रुते ॥
राहुग्रस्तो यथासोमो विमुक्तःसर्वपातकैः । सोमलोकमवाप्नोति सोमेनसह मोदते ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । स्वर्गलोकमवाप्नोति ऋषिगन्धर्वसेवितः ॥
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र ! समृद्धे जायते कुले । अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादःपिबेन्नरः
शतवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र ! अग्निहोत्री भवेन्नरः॥१६॥

भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते नरः ।
यस्तु देहं विकर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति ॥ १७ ॥

विहङ्गैरुपमुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम् । शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते
ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः । गुणवान्रूपसम्पन्नो विद्वान्सुप्रियवक्
भुक्त्वा तु विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः । यामुनेचोत्तरेकूले प्रयागस्य तु दक्षिणे
ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं तत्परमंस्मृतम् । एकरात्रोषितोभूत्वा ऋणैःसर्वैःप्रमुच्यते
सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणी च सदा भवेत् ॥ २२ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये मानसतीर्थर्णमोचनतीर्थ माहात्म्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागस्थगंगायमुनयोर्माहात्म्यवर्णनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत्त्वया कीर्तनं कृतम् । विशुद्धमेतद्धृदयं प्रयागस्य च कीर्तनात्
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम् ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन्प्रयागे तु अनाशकफलं विभो ! । प्राप्नोति पुरुषो धीमाञ्छ्रद्दधानश्च यादृक्
अहीनाङ्गो विरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः । अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे
कुलानि तारयेद्राजन्दशपूर्वान्दशापरान् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत परमंपदम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

महाभागोऽसि धर्मज्ञ ! दानं वदसि मे प्रभो ! । अल्पेनैव प्रदानेन बहून्धर्मानवाप्नु
अश्वमेधैस्तु बहुभिःसुकृतैःप्राप्यते इह । एतन्मे संशयं ब्रूहि परंकौतूहलं हि मे ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन्महावीर ! यदुक्तं पद्मयोनिना । ऋषीणां सन्निधौ पूर्वं कथ्यमानं मया

[पञ्च]योजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। संप्रविष्टस्य तद्भूमावश्वमेधं पदेपदे ॥
[अ]तीतान्पुरुषान्सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश। नरस्तारयते सर्वान्यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥
[ए]वं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र! सदा श्रद्धापरो भवेत्। अश्रद्धधानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः
न प्राप्नुवन्ति तत्स्थानं प्रयागं देवनिर्मितम् ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच।

[स्ने]हाद्वा द्रव्यलोभाद्वा ये तु कामवशंगताः। कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यमवाप्नुयुः
[वि]क्रयं सर्वभाण्डानां कार्याकार्यमजानतः। प्रयागे का गतिस्तस्य एवं ब्रूहि महामुने

मार्कण्डेय उवाच।

[शृ]णु राजन्महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। मासंवसंस्तु राजेन्द्र ! प्रयागे नियतेन्द्रियः ॥
[मुच्]यते सर्वपापेभ्यो यथा दिष्टं स्वयम्भुवा। शुचिस्तु प्रयतोभूत्वाऽहिंसकःश्रद्धयान्वितः
[मुच्]यते सर्वपापेभ्यःसगच्छेत्परमंपदम्। विस्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत्फलम्
[त्रि]कालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्। त्रिभिर्मासैःप्रमुच्येत प्रयागात्तु न संशयः
[अज्ञ]ानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्। सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते ॥
[स्थ]ानं स लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम्। एवं ज्ञानेन सम्पूर्णःसदा भवति भोगवान्
[ता]रिताःपितरस्तेन नरकात्प्रपितामहाः। धर्मानुसारे तत्त्वज्ञ ! पृच्छतस्ते पुनःपुनः।
त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ १६ ॥

युधिष्ठिर उवाच।

[अद्य] मे सफलंजन्म अद्य मे सफलं कुलम्। प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनाद्देवतेऽद्यवै
त्वद्दर्शनात्तु धर्मात्मन्मुक्तोऽहं सर्वपातकैः ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच।

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम्।
कीर्तनाद्वर्द्धते पुण्यं श्रुतं पापप्रणाशनम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर उवाच।

[यमु]नायां तु किंपुण्यं किंफलं तु महामुने !। एतन्मे सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्

मार्कण्डेय उवाच।

तपनस्य सुतादेवी त्रिषुलोकेषुविश्रुता। समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा।
येनैव निस्सृता गङ्गा तेनैव यमुनागता। योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात्पापनाशि
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर!।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥ २५॥
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥ २६॥
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणेतटे। पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं हरवरं स्मृतं
तत्र स्नात्वा दिवंयान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिण
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः। तीर्थं तु विरजंनाम यत्र देवाःसवासव
उपासतेस्म सन्ध्यां तु नित्यकालं युधिष्ठिर!।
देवाःसेवन्ति तत्तीर्थं ये चान्ये विदुषो जनाः॥ ३०॥
श्रद्धादानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्। अन्ये च बहवस्तीर्थाःसर्वपापहराःशुभा
तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते॥ ३२॥
केवलं श्रेष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते। एवं कुरुष्व कौन्तेय! स्वर्गतीर्थाभिषेचनं
यावज्जीवकृतंपापं तत्क्षणादेव नश्यति। यस्त्विदं कल्यउत्थाय पठते च शृणोति
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं च गच्छति॥ ३५॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यमुनामाहात्म्ये प्रयागस्थगङ्गायमुनामा
हात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

———

षट्चत्वरिंशोऽध्यायः

प्रयागस्य पूज्यत्वकथनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे पुण्यसम्मितम् ।
तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च ॥ १ ॥

सर्वपुण्याःपवित्राश्च गतिश्च परमास्मृता । पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्
प्रयागमपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते । सर्वाणि सम्परित्यज्य कथमेकं प्रशंससि ॥
अप्रमाणमिदंप्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम् । गतिं च परमांदिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान् ॥
किमर्थमल्पयोगेन बहुधर्मं प्रशंससि । एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि तद्भवेत् । नरस्य श्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः ॥ ६ ॥
अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः । एते पातकिनःसर्वे तेनेदं भाषितं मया ॥७॥
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम् । प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यत्सम्भविष्यति
नैवान्यन्मयादृष्टं पुरा राजन्यथाश्रुतम् । शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा तु पूज्यते योगमात्मनः
क्लिश्यते चापरस्तत्र नैवयोगमवाप्नुयात् । जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत मानवैः

यथा योगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः ।
यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥ ११ ॥

तेन दानेन दत्तेन योगोलभ्येत मानवैः । प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा ॥
प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्सु च भारत ! । यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वत्रैव तु दृश्यते ॥
ब्रह्मनैवास्ति वै किञ्चिद्यद्वक्तुंत्विदमुच्यते । यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्मसर्वत्र पूज्यते ॥
तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागःपूज्यते बुधैः । पूज्यते तीर्थराजश्च सत्यमेतद्युधिष्ठिर ! ॥
ब्रह्माऽपि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम् । तीर्थराजमनुप्राप्य नैवान्यत्किञ्चिदिच्छति

को हि देवत्वमासाद्य मानुषत्वं चिकीर्षति । अनेनैवानुमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधि
यथा पुण्यमपुण्यं वा तथैव कथितं मया ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं तद्यत्त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः ।
कथं योगेन तत्प्राप्तिःस्वर्गलोकस्तु कर्मणा ॥ १९ ॥
तदा च लभते भोगान्गां च तत्कर्मणां फलम् ।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनर्यैः प्राप्यते महान् ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन्महाबाहो ! यथोक्तकर्मणा मही ।
गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः ॥ २१ ॥
मातरं पितरं चैव यो निन्दति नराधिप ! । नैतेषामूर्ध्वगमनमेवमाह प्रजापतिः
एवं योगस्य सम्प्राप्तिःस्थानं परमदुर्लभम् । गच्छन्ति नरकंघोरं ये नराःपापकर्मि
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादि काञ्चनम् । परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद्दानं प्रयच्छ
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः ।
अनेन कर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरकेऽधमाः ॥ २५ ॥
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर ! ।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम् ॥ २६ ॥
निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाऽयं स्वयमाप्नुयात् ॥ २७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये प्रयागस्य पूज्यत्व
नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

———

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सर्वतीर्थेभ्यः प्रयागस्याधिक्यवर्णनम् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन्प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु । नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम्
कुरुक्षेत्रं गयांचैव गङ्गासागरमेव च । एतेचान्ये च बहवो ये च पुण्याःशिलोच्चयाः ॥
दशतीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे । प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः

त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता ॥ ४ ॥

तपनस्य सुता देवी त्रिषुलोकेषु विश्रुता । गङ्गायमुनयासार्धं संस्थिता लोकभाविनी॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्याजघनं स्मृतम् । प्रयागं राजशार्दूल! कलांनार्हन्ति षोडशीम्

तिस्रःकोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥ ७ ॥

प्रयागं समधिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । भोगवत्यथ या चैव वेदिरेषा प्रजापतेः ॥
तत्र देवाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर!। पूजयन्ति प्रयागं त ऋषयश्च तपोधनाः ॥
यजन्ते क्रतुभिर्देवांस्तथा बहुधना नृपाः । ततःपुण्यतमोनास्ति त्रिषु लोकेषु भारत!
प्रभावात्सर्वतीर्थेभ्यःप्रभवत्यधिकं विभो! । दशतीर्थसहस्राणि तिस्रःकोट्यस्तथापरे
यत्र गङ्गा महाभागा सदेशस्तत्तपोवनम् । सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम्

इति सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य वा ।
सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य वा ॥ १३ ॥

इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सेव्यमिदं शुभम् । इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्ममुत्तमम् ॥
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् । अधीत्य च द्विजो ध्यायन्निर्मलत्वमवाप्नुयात्
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदाशुचिः । जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते ॥

प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिःशिष्टार्थदर्शिभिः ।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य ! न च वक्रमतिर्भव ॥ १७ ॥
त्वया तु सम्यक्पृष्टेन कथितं तु मया विभो ! ।
पितरस्तारिताः सर्वे तारिताश्च पितामहाः ॥ १८ ॥
प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
एवं ज्ञानं च योगं च तीर्थं चैव युधिष्ठिर ! ॥ १९ ॥
बहुक्लेशेन युज्यन्ते ततो यान्ति परां गतिम् ।
प्रयागस्मरणाल्लोकं स्वर्गलोकं च गच्छति ॥ २० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये सर्वतीर्थेभ्यःप्रयागस्या[illegible]
क्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागस्य प्रजापतितीर्थत्वकथनम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कथा सर्वात्त्वियं प्रोक्ता प्रयागस्य महामुने ! । एवं मे सर्वमाख्याहि यथा च मम तारं[illegible]

मार्कण्डेय उवाच ।

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि प्रोक्तं सर्वमिदं जगत् । ब्रह्माविष्णुस्तथेशानो देवता प्रभुरव्य[illegible]
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत् । तान्येतानि परोलोके विष्णुःपालयति प्र[illegible]
कल्पान्ते तत्समग्रं हि रुद्रःसंहरते जगत् । न ददाति च नाध्येति न कदाचिद्धिनश्य[illegible]
ईश्वरःसर्वभूतानां यःपश्यति सपश्यति । उत्तरेण प्रतिष्ठानादिदानीं ब्रह्म तिष्ठति ॥ ५[illegible]
महेश्वरो घटेभूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः । ततो देवाःसगन्धर्वाःसिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ६[illegible]
रक्षन्ति परमंनित्यं पापकर्मपरायणान् । ये तु चान्ये च तिष्ठन्ति न यान्ति परमां ग[illegible]

युधिष्ठिर उवाच ।

आख्याह मे यथातत्त्वं यथैषां तिष्ठते श्रुतम् । केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ति लोकसंमताः

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । कारणं तु प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । तिष्ठन्ति रक्षणार्थाय पापकर्मनिवारणाः
तस्मिंस्तु स्वल्पकं पापं नरके पातयिष्यति । एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः
सप्तद्वीपाःसमुद्राश्च पर्वताश्च महीतले । तिष्ठन्ति ध्रियमाणाश्च यावदाभूतसम्प्लवम् ॥
ये चान्ये बहवःसर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर ! । पृथिवीस्थानमारभ्य निर्मितंदैवतैस्त्रिभिः
प्रजापतेरिदंक्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम् । एतत्पुण्यं पवित्रं च प्रयागं तु युधिष्ठिर ! ॥
स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र ! भ्रातृभिः सहितो भव ॥ १५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे प्रयागमाहात्म्ये प्रयागस्यप्रजापतितीर्थत्व-कथनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरेण मार्कण्डेयाय महादानदानम् ।

सूत उवाच ।

भ्रातृभिःसहिताःसर्वे पाण्डवा धर्मनिश्चयाः । ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्वा गुरुदेवांस्त्वतर्पयन्
वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा । पाण्डवैःसहितैःसर्वैःपूज्यमानःसमाधवः ॥
कृष्णेनसहितैःसर्वैःपुनरेव महात्मभिः । अभिषिक्तःस्वराज्ये तु धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयोमहात्मवान् । ततःस्वस्तीति चोक्त्वा वै क्षणादाश्रममागतः
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिःसहितस्तु सः । महादानं ददौ चाथ धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः
यस्त्विदं कल्यमुत्थाय पठते वा शृणोति वा ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच ।

ममवाक्यं तु कर्तव्यं तवस्नेहाद्ब्रवीम्यहम् । नित्यं यज्ञरतोभूत्वा प्रयागे विगतज्वरः
प्रयागं संस्मरन्नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर ! ।
स्वयं प्राप्स्यसि राजेन्द्र ! स्वर्गलोकं तु शाश्वतम् ॥ ८ ॥
प्रयागमनुगच्छेद्वा वसतेवापि यो नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकं च गच्छ
प्रतिग्रहादुपावृत्तःसन्तुष्टो नियतःशुचिः । अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १
अकोपनश्च राजेन्द्र ! सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नु
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम् ।
न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ! ॥ १२ ॥
बहूपकरणोयज्ञो नानासम्भारसम्भ्रमः । प्राप्यते विविधैरर्थैःसमृद्धैर्वा नरैःक्वचित्
यो दरिद्रैरपि वुधैःशक्यःप्राप्तुं नरेश्वर ! । ततो यज्ञफलैःपुण्यैस्तन्निबोध जनेश्वर !
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम ! । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥
दशकोटिसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापरे । माघमासे तु गङ्गायां गमिष्यन्ति नरा
स्वस्थो भव महाराज ! भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।
पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र ! यजमानो विशेषतः ॥ १७ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वासुदेवेन प्रयागमाहात्म्यानुमोदनं
नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विष्णुभक्तिप्रशंसनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

भवता कथितं सर्वं यत्किञ्चित्पृष्टमेव चं । इदानीमपि पृच्छाम एकं वद महामते ! ॥

एतेषां खलुतीर्थानां सेवनाद्यत्फलं लभेत्। सर्वेषां किल कृत्वैकं कर्म केन च लभ्यते
एतन्नो ब्रूहि सर्वज्ञ ! कर्मैत्वं यदि वर्तते ॥ ३ ॥
सूत उवाच।
कर्मयोगःकिलप्रोक्तो वर्णानां द्विजपूर्वशः। नानाविधो महाभागास्तत्र चैकं विशिष्यते
हरिभक्तिःकृता येन मनसा वचसा गिरा। जितं तेन जितं तेन जितमेव न संशयः॥
हरिरेव समाराध्यःसर्वदेवेश्वरेश्वरः। हरिनाम महामन्त्रैर्नश्येत्पापपिशाचकम्॥ ६ ॥
हरेःप्रदक्षिणं कृत्वा सकृदप्यमलाशयाः। सर्वतीर्थसमाप्लावं लभन्ते यन्न संशयः॥
प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्
विष्णुनाम परं जप्त्वा सर्वमन्त्रफलं लभेत्॥ ८ ॥
विष्णुप्रसादतुलसीमाघ्राय द्विजसत्तमाः। प्रचण्डं विकरालं तद्यमस्यास्यं न पश्यति
सकृत्प्रणामी कृष्णस्य मातुःस्तन्यं पिबेन्न हि।
हरिपादे मनो येषां तेभ्यो नित्यं नमोनमः॥ १० ॥
पुल्कसः श्वपचो वाऽपि ये चान्ये म्लेच्छजातयः।
तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः॥ ११ ॥
किं पुनर्ब्राह्मणाःपुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा। हरौभक्तिं विधायैव गर्भवासं न पश्यति
हरेरग्रे स्वनैरुच्चैर्नृत्यंस्तन्नामकृन्नरः। पुनाति भुवनं विप्रा गङ्गादि सलिलं यथा॥
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य आलापादपि भक्तितः। ब्रह्महत्यादिभिःपापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥
हरेःप्रदक्षिणं कुर्वन्नुच्चैस्तन्नामकृन्नरः। करतालादि सन्धानं सुस्वरं कलशब्दितम्॥
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेनैव करतालितम्। हरिभक्तिकथामुक्त्वाऽऽख्यायिकां शृणुयाच्चयः
तस्य सन्दर्शनादेव पूतो भवति मानवः।
किं पुनस्तस्य पापानामाशङ्का मुनिपुङ्गवाः!॥ १७ ॥
तीर्थानां च परंतीर्थं कृष्णनाम महर्षयः। तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः
तस्मान्मुनिवराःपुण्यं नातःपरतरं विदुः। विष्णुप्रसादनिर्माल्यं भुक्त्वा धृत्वा च मस्तके
विष्णुरेव भवेन्मर्त्यो यमशोकविनाशनः। अर्चनीयो नमस्कार्यो हरिरेव न संशयः॥

तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् । हरिंचैकं प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि
ये समानं प्रपश्यन्ति हरिं वै देवतान्तरम् । ते यान्ति नरकान्घोरान्नतांस्तु गणयेद्धरिः
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं केशवप्रियम् । श्वपाकं वा मोचयति नारायणःस्वयम्

नारायणात्परो नास्ति पापराशिदवानलः ।
कृत्वाऽपि पातकं घोरं कृष्णनाम्ना विमुच्यते ॥ २४ ॥
स्वयं नारायणो देवः स्वनाम्नि जगतां गुरुः ।
आत्मनोऽभ्यधिकां शक्तिं स्थापयामास सुव्रताः ॥ २५ ॥

अत्र ये विवदन्ते वै आयासलघुदर्शनात् । फलानां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं
तस्माद्धरौ भक्तिमान्स्याद्धरिनामपरायणः । पूजकं पृष्ठतो रक्षेन्नामिनं वक्षसि
हरिनाममहावज्रं पापपर्वतदारणे । तस्य पादौ तु सफलौ तदर्थगतिशालिनौ ॥
तावेव धन्यावाख्यातौ यौ तु पूजाकरौ करौ । उत्तमाङ्गमुत्तमाङ्गं तद्धरौ नम्रमेव

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम् ।
तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तन्नाम्नि चोत्थितिम् ॥ ३० ॥

कुर्वन्ति तच्च नेत्राम्बु यदच्युतप्रसङ्गतः । अहो लोका अतितरां दैवदोषेण वञ्चिताः
नामोच्चारणमात्रेण मुक्तिदं न भजन्ति वै । वञ्चितास्ते च कलुषाः स्त्रीणां सङ्गप्रसङ्गे
प्रतिष्ठन्ति च लोमानि येषां नो कृष्णशब्दने । ते मूर्खा ह्यकृतात्मानः पुत्रशोकादिविह्वला
रुदन्ति बहुलालापैर्नकृष्णाक्षरकीर्तने । जिह्वां लब्ध्वाऽपि लोकेऽस्मिन्कृष्णनामजपेन्न
लब्ध्वाऽपि मुक्तिसोपानं हेलयैव च्यवन्तिते । तस्माद्यत्नेन वै विष्णुं कर्मयोगेन मानवः

कर्मयोगार्चितो विष्णुः प्रसीदत्येव नान्यथा ।
तीर्थादप्यधिकं तीर्थं विष्णोर्भजनमुच्यते ॥ ३६ ॥

सर्वेषां खलु तीर्थानां स्नानपानावगाहनैः । यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं कृष्णसेवना
यजन्ते कर्मयोगेन धन्या एव नरा हरिम् । तस्माद्भजध्वं मुनयः कृष्णं परममङ्गलम्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विष्णुभक्तिप्रशंसनंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्मयोगकथने वर्णाश्रमसामान्यधर्मकथनम् ।

ऋषय ऊचुः ।

कर्मयोगः कथं सूत ! येन चाराधितो हरिः । प्रसीदति महाभाग ! वद नो वदतांवर !
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः । तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसङ्गतम्
तं कर्मयोगं वद नः सूतमूर्तिमयस्तु यः । इति शुश्रूषवो विप्रा भवदग्रे व्यवस्थिताः ॥

सूत उवाच ।

एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः । ऋषिभिरग्निसङ्काशैर्व्यासस्तानाह तच्छृणु

व्यास उवाच ।

शृणुध्वमृषयः सर्वेवक्ष्यमाणं सनातनम् । कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥

आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणार्थं प्रदर्शितम् ।
ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ॥ ६ ॥

सर्वव्याधिहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् । समाहितधियो यूयं शृणुध्वं गदतो मम ॥
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमः । गर्भाष्टमेऽष्टमेवाऽब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥

दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः ।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ९ ॥

कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा । ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा
सदोपवीती चैव स्यात्सदाबद्धशिखो द्विजः । अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम्

वसीताविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानीयं शुक्लं तान्तवमुत्तमम् ॥ १२ ॥

उत्तरं तु समाम्नातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् । अभावे गावयमपि रौरवं वा विधीयते
उद्धृत्य दक्षिणंबाहुं सव्यबाहौ समर्पितम् । उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत् ॥ १५ ॥
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे तर्प्ये तथैव च ।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥ १६ ॥
उपासने गुरूणां च सन्ध्ययोः साधुसङ्गमे । उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः
मौञ्जीं त्रिवृत्समांश्लिष्टां कुर्याद्विप्रस्य मेखलाम् ।
मुञ्जाभावे कुशेनाहुर्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥ १८ ॥
धारयेद्वैणवपालाशौ दण्डौकेशान्तिकौ द्विजः । यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेव
सायं प्रातर्द्विजः सन्ध्यामुपासीत समाहितः ।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत् ॥ २० ॥
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः ।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा ॥ २१ ॥
देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पैः पत्रैर्यवाम्बुभिः । अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः
असावहं भोनामेति सम्यक्प्रणतिपूर्वकम् । आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः ।
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरं प्लुतः ॥ २४ ॥
यो नवेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः
व्यत्यस्तपाणिना कार्यं पादसङ्ग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणे न तु दक्षिणः ॥ २६ ॥
लौकिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा । अवाप्य प्रयतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादये
नोदकं धारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधस्तथा । एवं विधानि चान्यानि नदेवार्थेषु कर्मसु
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ।
उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता त्राता च भीतितः ।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥ ३० ॥

वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः ।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ॥ ३१ ॥
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः ।
ज्ञेयस्तु गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः ॥ ३२ ॥
अनुवर्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः । गुरून्दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥
नैतैरुपविशेत्सार्द्धं विवदेन्नात्मकारणात् । जीवितार्थमपि द्वेषाद्गुरुभिर्नैवभाषणम् ॥
उद्रिक्तोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषीपतत्यधः । गुरूणामपि सर्वेषां पञ्च पूज्या विशेषतः ॥
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ।
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते ॥ ३६ ॥
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः ।
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः ॥ ३७ ॥
पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता । यावत्पिताच माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ
तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः ।
पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि ॥ ३९ ॥
सपुत्रः सकलं धर्मं प्राप्नुयात्तेन कर्मणा । नास्ति मातृसमं दैवं नास्तिपितृसमो गुरुः
तयोः प्रत्युपकाराऽपि न कथञ्चन विद्यते । तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा
न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् । वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा
धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः । सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ॥
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि ।
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूढोऽवमन्यते ॥ ४४ ॥
तेन दोषेण सम्प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति । पुंसां वर्त्मनि सृष्टेन पूज्यो भर्ता तु सर्वदा
अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम् ।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥ ४६ ॥
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ।

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ॥ ४७ ॥

भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् । अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा नम्य एव
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा । नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः । ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति
सवर्णेन सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् । गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गु
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः । विद्याकर्मवयोबन्धुर्वित्तं भवति
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् । पञ्चानां त्रिषुवर्णेषु भूयांसि बलव

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ।

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे विचक्षुषे ॥ ५४ ॥

वृद्धाय भारभग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च । भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्व
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया । भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपवीती द्विजोत्तमः

भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ॥ ५७ ॥

भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् । सजातीयगृहेष्वेव सार्ववणिकमे
भक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिविवर्जितम् । वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म
ब्रह्मचार्य्याहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । गुरोः कुलेन भिक्षेत न ज्ञातिकुलब
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् । सर्वं वा विचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भ
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन् । समाहृत्य तु भैक्ष्यान्नं यावदर्थममाय
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः । भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैवैकान्नो भवे
भैक्ष्येण वर्त्तिनो वृत्तिरुपवाससमास्मृता । पूजयेदशनं नित्यं मदाच्चैनमकुत्स

दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥ ६५ ॥

अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुखमेव वा ॥ ६६ ॥

वाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः। प्रक्ष्याल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत्
शुद्धे देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥ ६८ ॥
इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे कर्मयोगकथनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्तव्यनिषिद्धकर्मकथनम् ।

व्यास उवाच ।

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥ १ ॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनृतभाषणे । ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥
चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तमः ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥ ३ ॥
चाण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं दृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥ ४ ॥
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च । भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः
आगतो वाऽऽचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा ॥ ६ ॥
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीलीं वा परिधाय च । उपस्पृशेज्जलं वार्तं तृणं वा भूमिमेव च
केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससः स्खलितस्य च ।
अनुष्णाभिरफेनाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः ॥ ८ ॥
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः ।
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकेशशिखोऽपि वा ॥ ९ ॥

अकृत्वा पादयोः शौचं मार्गतो न शुचिर्भवेत् ।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद् बुधः ॥ १० ॥
न चैव वर्षधाराभिर्नतिष्ठन्नुदधृतोदकैः । नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पु
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा । न जल्पन्नहसन्प्रेक्षञ्छयानस्तत्स प
नाविक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा । शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्नक्षराभिस्तथैव
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्यान्नान्यमानसः । न वर्णरसदुष्टाभिर्नचैव प्रदरोद
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिर्गन्ध एव वा ।
हृद्गाभिः पूज्यते विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः ॥ १५ ॥
प्रासिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः ।
अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्राह्ममुच्यते ॥ १६ ॥
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्योः पितृणां तीर्थमुच्यते । कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्र
अङ्गुल्यग्रं स्मृतं दैवं तद्देवार्षं प्रकीर्तितम् । मूलेन दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स
तद्देव सौमिकं तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति । ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुप
होमयेद्वाथ दैवेन न तु पित्र्येण वै द्विजाः । त्रिः प्राश्नीयादपः पूर्वं ब्राह्मणेन प्रयत
संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् । कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशे
सर्वासामथ योगेन हृदयं तु तलेन वा । स्पृशेद्वै शिरसस्तद्वदङ्गुष्ठेनांसकद्वयम् ।
त्रिःप्राश्नीयाद्यदम्भस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः । ब्रह्माविष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनु
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् । संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृशेन्नासापुटद्वयम् । कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानिल
संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः । मूर्ध्नि संस्पर्शनादेकः प्रीतः स पुरुषो
नोच्छिष्टं कुर्वते वक्त्रे विप्रुषोऽङ्गे लगन्ति याः । दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेऽशुचि
स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भूमिपांसुसमा ज्ञेया न तैरस्पृश्यता भवेत ॥ २६ ॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे। फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः ॥
प्रचरन्नन्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत्
तैजसं वै समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत्
यद्द्रव्यं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः। अनिधायैव तद्द्रव्यं भूमौ त्वशुचितामियात्

वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्तत्संस्पृश्याचमेदिह।
अरण्ये निर्जने रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि ॥ ३४ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति। निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः। अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्टतृणेन वा
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम्। छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत्। न गोमये न काष्ठे वा महावृक्षेऽथ शाद्वले
न तिष्ठन्न च निर्वासा न च पर्वतमण्डले। न जीर्णदेवायतने वल्मीके न कदाचन॥३९॥
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न समाचरेत्। तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ॥
न क्षेत्रे न बिले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे। नोद्यानेऽपां समीपे वा नोषरे नगराशये

न सोपानत्पादुको वा छत्री यानान्तरिक्षके।
न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ॥ ४२ ॥

न देवदेवालययोरपामपि कदाचन। न ज्योतींषि निरीक्षन्वा न वा प्रतिमुखोऽथवा ॥
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च। आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणीम्
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः। नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांसुलां न सकर्दमाम्

न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचशिष्टां परस्य च।
न देवायतनात्कूपाद्ग्रामान्न च जलात्तथा ॥ ४६ ॥
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥ ४७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे कर्मयोगकथने कर्तव्यनिषिद्धकर्मकथनं नाम

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मचारिधर्मकथनम् ।

व्यास उवाच ।

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः । आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरो

नित्यमुद्यतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।

आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥ २ ॥

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ।

आसीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठेन्न पराङ्मुखः ॥ ३ ॥

नीचैः शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ । गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टि

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते । कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं ततो

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियः ।

न च वास्योत्तरं ब्रूयात्स्थितो नासीत सन्निधौ ॥ ७ ॥

उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा । मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वै सम

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि । आक्रामेदासनं चास्य च्छायादीन्वा क

साधयेद्दन्तकाष्ठादीँल्लब्धं चास्मै निवेदयेत् । अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहि

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन । जृम्भितं हसितं चैव कण्ठप्रावरणं

वर्जयेत्सन्निधौ नित्यमङ्गस्फोटनमेव च । यथाकालमधीयीत यावन्न विमना

आसीनोऽधोगुरोः पार्श्वे सेवां च सुसमाहितः । आसने शयने याने नैव तिष्ठे

धावन्तमनुधावेत गच्छन्तमनुगच्छति । गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादे तथाऽधोविष्ट

आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ।

जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ॥ १५ ॥

प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितकारिणीम्।
गन्धमाल्यं रसं कल्पं शुक्तिं प्राणिविहिंसनम्॥ १६॥
…ञ्जनाञ्जने पानं छत्रधारणमेव च। कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम्॥
…र्जनं परीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा। परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ १८॥
…म्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान्। आहरेद्यावदन्नानि भैक्ष्यं चाहरहश्चरेत्॥
…व लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितं च यत्। अनृत्यदर्शी सततं भवेद्गीतादिनिस्पृहः॥
…त्यं वै समीहेत नाचरेद्दन्तधावनम्। एकान्तमशुचि स्त्रीभिः शूद्राद्यैरभिभाषणम्॥
…च्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः। मलापकर्षणं स्नानं नाचरेद्धि कदाचन॥
न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कथञ्चन।
मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वा तु पतितो भवेत्॥ २३॥
लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा।
आददीत यतो ज्ञानं तं न द्रुह्येत्कदाचन॥ २४॥
…रवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागमथाब्रवीत्॥
…रौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्। नत्वाऽभिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत्
…गुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिषु योगिषु। प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्सु च
…सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु॥
बालः संमानयेन्मान्याञ्छिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन्गुरोः सूनुर्गुरुवन्मानमर्हति॥ २६॥
…दनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने। न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च
…वत्प्रतिपूज्याश्च सवर्णा गुरुयोषितः। असवर्णाश्च सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः
अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम्॥ ३२॥
…पत्नी तु युवतीनाभिवाद्या तु पादयोः। कुर्वीत वन्दनं भूम्यामसावहमिति ब्रुवन्
…प्य पादग्रहणपूर्वकं चाभिवादनम्। गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन्॥

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृःवसा। सम्पूज्यागुरुपत्नीवत्समास्ता गुरु

भ्रातृभार्याश्च सङ्ग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि।
विप्रोष्य तूपसङ्ग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः॥ ३६॥
पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥ ३७॥

एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम्। वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्य
संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्। हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गु

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।
शक्तोऽन्नदोऽम्बुदः साधुरध्याप्या दश धर्मतः॥ ४०॥
कृतकण्ठस्तथाऽद्रोही मेधावी गुरुकृन्नरः।
आप्तः प्रियोऽथ विधिवत्षडध्याप्या द्विजातयः॥ ४१॥

एतेषु ब्राह्मणे दानमन्यत्र तु यथोचितम्। आचम्य संयतो नित्यमधीयीत उद

उपसङ्गृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चाऽऽरमेत्॥ ४३॥

प्राक्कूलान्पर्युपासीत पवित्रैश्चैव पावकः। प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारम

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्तेऽपि विधिवद् द्विजाः।
कुर्यादध्यापनं नित्यं स ब्रह्माञ्जलिपूर्वतः॥ ४५॥

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम्। अधीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याद्धीयते
अधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या सदेवताः। प्रीणाति तर्पयन्कालं कामैर्हुताः सर्वै

यजूंष्यधीयते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम्॥ ४८॥
अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः।
धर्माङ्गानि पुराणानि मांसैस्तर्पयते सुरान्॥ ४९॥

प्रातश्च सायं प्रयतो नैत्यकं विधिमाश्रितः। गायत्रीं समधीयीत गत्वाऽरण्यं सम

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्तितः ॥
गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयाऽतोलयत्प्रभुः । एकतश्चतुरो वेदा गायत्री च तथैकतः ॥
ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ॥ ५३ ॥
पुरा कल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवःस्वः सनातनाः । महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः
प्रधानं पुरुषः कालो विष्णुब्रह्ममहेश्वराः । सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः
ॐकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदुत्तरम् ।
एष मन्त्रो महायोगः सारात्सार उदाहृतः ॥ ५६ ॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम् ।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ॥ ५७ ॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी । गायत्र्या न परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥
श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥ ५९ ॥
उत्सृज्यग्रामनगरं मासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान् । अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
मासि शुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥ ६१ ॥
छन्दांसि च द्विजोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षे तु वै द्विजः ।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षेषु मानवः ॥ ६२ ॥
इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वाणोऽभ्यस्यन्नपि प्रयत्नतः
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने । विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च सम्प्लवे
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः । एतानभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु ॥
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने । निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यानृतावपि । प्रादुष्कृतेष्वग्निषु च विद्युत्स्तनितनिस्वने ॥
स ज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ।

नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ६८ ॥

धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धं च नित्यशः । अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ
अनध्यायोरुद्यमाने समये जलदस्य च । उदके चार्धरात्रे च विण्मूत्रं च विसर्जयन्

उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य वेतनम् ॥ ७१ ॥

त्र्यहं न कारयेद्ब्रह्म राज्ञोराहोश्च सूतके । यावदेकान्ननिष्ठा स्यात्स्नेहालोपश्च तिष्ठति

विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत् ।

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ॥ ७३ ॥

नाधीयीतामिषं जग्ध्वा शूद्रश्राद्धान्नमेव च । नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरुभयोरपि

अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टमीषु च ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥ ७५ ॥

अष्टकासु अहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु । मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च

तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षेषु सूरिभिः ।

श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ॥ ७७ ॥

कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः । समानविद्ये च मृते तथासब्रह्मचारिणि

आचार्ये संस्थिते चापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।

छिद्राण्येतानि विप्राणामनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७९ ॥

हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विवर्जयेत् ।

नैत्यके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ॥ ८० ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे होममध्ये तथैव च । एकामृचमथैकं वा यजुः सामानि वा पुनः
नाष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चाभिधावति । अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु सर्वाण्येतानि वर्जयेत् । एष धर्मः समासेन कीर्तितो ब्रह्मचारिणः

ब्रह्मणाऽभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः ॥ ८४ ॥

स संमूढोन सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः । न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै भवेद्द्विजः
पाठमात्रावसानस्तु पङ्के गौरिव सीदति । योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्
स संमूढः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते । यदि त्वात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणम् । गत्वा वनं च विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥
अधीयीत तथा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः । सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः

अभ्यसेत्सततं युक्तो भिक्षाशनपरायणः ।
एतद्विधानं परमं पुराणं वेदागमे सम्यगिहोदितं वः ।
पुरा महर्षिप्रवराभिपृष्टः स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः ॥ ६० ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे स्वर्गखण्डे कर्मयोगकथने ब्रह्मचारिधर्मकथनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गृहस्थधर्मकथनम् ।

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान्वेदाङ्गानि तथा द्विजाः ।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥ १ ॥

गुरवे तु धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । तीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा शक्तो वा स्नातुमर्हति
वैणवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम् । यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् ॥
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुण्डले धार्ये कृत्तकेशनखः शुचिः

अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रो न रक्तां बिभृयात्स्रजम् ।
शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ॥ ५ ॥

न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै विभवे सति । न रक्तमुल्वणं चान्यधृतं वासो न कुण्डलम्

नोपानहौ स्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत् । उपवीतमलङ्कारं दर्भान्कृष्णाजिनं तथा ।
नापसव्यं परीदध्याद्वासोन विकृतं वसेत् । आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभान् ।
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् । असपिण्डां च वै मातुरसमानार्षगोत्रजाम् ।

आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम् ।
ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ॥ १० ॥

वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु । षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि । आदधीत विवाहाग्निं जुहुयाज्जातवेदसम् ।

एतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पावयेत् ।
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ १३ ॥

अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान् । अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञान्न हापयेत् ।

कुर्याद् गृह्याणि कार्याणि सन्ध्योपासनमेव च ।
सख्यं समाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ॥ १५ ॥

दैवतान्यभिगच्छेत कुर्याद्भार्याभिपोषणम् । न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि ।
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः । वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
देशवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेत्सदा । श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्साधुभिर्यश्च सेवितः ।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् । येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति ।
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ॥ २० ॥

सत्यवादीजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः । सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही ।
मातापित्रोर्हितेयुक्तो ब्राह्मणस्यहिते रतः । दाता यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ।

विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः ।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥ २४ ॥

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः । अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्

एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः। यथाशक्ति चरन्धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत्
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्याविचारणा॥ २७॥
विगर्हितजयक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्। अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥
स्वदुःखेष्वेव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदम्। दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम्
चतुर्दशानां विद्यानां धारणा हि परार्थतः। विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्धते॥
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्यते। धर्मकार्याणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते॥
सत्येन लोकं जयति सत्यं तत्परमं पदम्। यथाभूतप्रमादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥
दमःशरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः। अध्यात्ममक्षरं विद्या यत्र गत्वा नशोचति॥
यया स देवो भगवान्विद्यया विद्यते परः। साक्षादेव हृषीकेशस्तज्ज्ञानमितिकीर्तितम्
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनःशुचिः।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम्॥ ३५॥
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत्। नहि देहं विना विष्णुः पुरुषैर्विद्यते परः॥ ३६॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्
सीदन्नपि हि धर्मेण नत्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः। न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवसेत्॥
यस्त्विमं नियतो मर्त्यो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ ४०॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गृहस्थधर्मकथनं नाम
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गृहस्थाचारनीतिवर्णनम् ।

व्यास उवाच ।

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत्कचित् ।
नाहितं नाप्रियं वाच्यं न स्तेनः स्यात्कदाचन ॥ १ ॥

तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च । परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ॥ २॥
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि । न चान्यस्मादशक्तश्चेन्निन्दितान्वर्जयेद्बुधः
नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तं नैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतेः ॥ ४ ॥

न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमः । ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापत्स्वपि कदाचन ।
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः ।
पुष्पं शाकोदकं काष्ठं तथा मूलं फलं तृणम् । अदत्तानि च नस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः
ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः । नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ।
तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः । धर्मार्थं केवलं प्राहुरन्यथा पतितो भवेत् ।
तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः ।
क्षुधितैर्नान्यथा विप्रा धर्मादिभिरिति स्थितिः ॥ १० ॥

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् । व्रतेन पापं व्यागुह्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् ।
प्रत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः । छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ।
अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपतिष्ठति । स लिङ्गिनो हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते
याचनं योनिसम्बन्धं सहवासं च भाषणम् । कुर्वाणः पतते नित्यं तस्माद्यत्नेन वर्जयेत्
देवद्रोहं न कुर्वीत गुरुद्रोहं तथैव च । देवद्रोहाद्गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
जनापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम् ।

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया ॥ १६ ॥

कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः । कुविचारैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च

कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।

अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ॥ १८ ॥

अगोत्रधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् । अश्रोत्रियेषु दानाच्च वृषलेषु तथैव च ॥

विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् । अधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले वसेत्

शूद्रराज्ये च न वसेन्न पाखण्डजनैर्वृते हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं पूर्वपश्चिमयोः शुभम् ॥

मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः ।

कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः ॥ २२ ॥

पुण्या वा विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ।

अर्द्धक्रोशं नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः ॥ २३ ॥

नान्यत्र निवसेत्पुण्यं नान्त्यजग्रामसन्निधौ ।

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्नपुल्कसैः ॥ २४ ॥

न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्यैर्जायावसायिभिः ।

एकशय्यासने पङ्क्तिर्भाण्डे पक्वान्नमिश्रणम् ॥ २५ ॥

याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम् । सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च ॥

एकादशसमुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंस्थिताः ।

समीपे चाप्यवस्थानात्पापं सङ्क्रमते नृणाम् ॥ २७ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साङ्कर्य्यं परिवर्जयेत् । एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्

भस्मना कृतमर्यादा न तेषां सङ्करो भवेत् । अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विलेखतः

द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पङ्क्तिर्विभिद्यते ।

न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम् ॥ ३० ॥

परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षीत कर्हिचित् । न संवसेत्सूचकेन न कं वै मर्मणि स्पृशेत्

न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शराग्निकम् । परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनं वाथ काञ्चनम्

न कुर्याद् बहुभिः सार्द्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ ३३ ॥
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् ।
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत् । न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत् । यस्तु देवानृषींश्चैव वेदान्वा निन्दते द्विजः

न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ।
निन्दयेद्वा गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम् ॥ ३७ ॥

कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः । तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम्
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत् । वर्जयेद्वै रहस्यानि परेषां गर्हणं बुधः ।
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन । न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तम

सत्येन तुल्यो दोषः स्यादसत्याद्दोषवान्भवेत् ।
नृणां मिथ्याभिस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ॥ ४१ ॥

तानि पुत्रान्पशून्घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम् । ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेये गुर्वङ्गनागमे
दृष्टं वै शोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसने । नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं वाऽनिमित्ततः
नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम् । तिरोहितंसमीक्षेत नादर्शान्यनुगामिनम्
न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन । न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् ।
नाशुचिः सूर्यसोमादीन्ग्रहानालोकयेद्बुधः । नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वाऽवगुण्ठितः

न पश्येद्व्योमसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम् ।
न तैलोदकयोश्छायां न पङ्क्ति भोजनेऽसति ॥ ४७ ॥

न मुक्तबन्धनं पश्यन्नोन्मत्तं गजमेव वा । नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्

क्षुवतीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ।
नोदके चात्मनो रूपं शुभं वाऽशुभमेव वा ॥ ४९ ॥

न लङ्घयेच्च मतिमान्नाधितिष्ठेत्कदाचन । न शूद्राय मतिं दद्यात्कृसरं पायसं दधि

नोच्छिष्टं वा मधु घृतं न च कृष्णाजिनं हविः।
न चैवास्मै व्रतं ब्रूयान्न च धर्मं वदेद् बुधः॥ ५१॥
न च क्रोधवशं गच्छेद् द्वेषं रागं च वर्जयेत्।
लोभं दम्भं तथा शाठ्यं ह्यसूयां ज्ञानकुत्सनम्॥ ५२॥
ईर्ष्यां मदं तथा शोकं मोहं च परिवर्जयेत्।
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यं तु ताडयेत्॥ ५३॥

न हीनानुपसेवेत न च तृष्णामतिः क्वचित्। नात्मानं चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत्
न विशिष्टमसत्कुर्यान्नात्मानं वासनाद्बुधः। न नखेनलिखेद्भूमिंगां च संवेशयेन्नहि
न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वतेषु च पर्वतान्। आवासे भोजने वापि न त्यजेत्सहयायिनम्
नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिस्पृशेत्तथा। शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्

न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत स्वानि खानि न संस्पृशेत्।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत्॥ ५८॥

न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत्। न शिश्नोदरचापल्यं न च श्रवणयोः क्वचित्

न चाङ्गनखवाद्यं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन॥ ६०॥

न शातयेदिष्टिकाभिर्मूलानि च फलानि च। न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्नाकर्षेच्च पदासनम्
नखभेदनमास्फोटं छेदनं वा विलेखनम्। कुर्य्याद्विमर्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम्

नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यं वृथाचेष्टां न चाचरेत्।
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्॥ ६३॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।
न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद्वाक्पतेरपि॥ ६४॥
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत्।
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्॥ ६५॥
न गच्छंस्तु पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्।

न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ॥ ६९ ॥

न बालातपमासेवेत्प्रेतधूमं विवर्जयेत्। नैव स्वप्याच्छून्यगेहे स्वयं नोपानहौ ह
नाकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत्। न पादक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदा
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः। नाभिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान्गामथापि

वाय्वग्निनृपविप्रान्वा सूर्यं वा शशिनं प्रति।

अशुद्धः शयनं पानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम् ॥ ७० ॥

बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कदाचन। स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्तं भोजनं गति

उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत्।

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥ ७२ ॥

न चालनं पदा वापि नदेवप्रतिमां स्पृशेत्। नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान्कीर्तयेदृ
नावगाहेदगाधाम्बु धावयेन्नाऽनिमित्ततः। न वामहस्ते नोद्धृत्य पिबेद्वक्त्रेण वा ज
नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत्। अमेध्यालिप्तमहं वा लोहितं वा विषाणि
व्यतिक्रामेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्। चैत्यवृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमाच
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्। तुषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदा
न चाग्निं लङ्घयेद्धीमान्नोपदध्यादधः क्वचित्। न चैनं पादतः कुर्याच्छूर्पेण न धमेद्बु
न वृक्षमवरोहेत नावेक्षेताशुचिःक्वचित्। अग्नौ न च क्षिपेदग्निं नाद्भिःप्रशमयेत्तथा
सुहृन्मरणमात्रं वा स्वयं न श्रावयेत्परान्। अपण्यं कूटपण्यं वा विक्रये न प्रयोजये
न वह्निं मुखनिःश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः। पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्तं वाहयेन्न
न भिन्द्यात्पूर्वसमयमभ्युपेतं कदाचन। परस्परं पशून्व्याघ्रान्पक्षिणो न च योधयेत्
परबाधां न कुर्वीत जलवातातपादिभिः। कारयित्वा सुकर्माणि गुरून्पश्चान्न वञ्चये
सायं प्रातर्गृहद्वारान्रक्षार्थं परिघट्टयेत्। बहिर्माल्यं सुगन्धिं वा भार्यया सह भोज

विगृह्य वादं कृत्वा वा प्रवेशं च विवर्जयेत्।

न खादन्ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पेद्वा हसेद् बुधः ॥ ८५ ॥

स्वमग्निं चैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत्। न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणि

मुखेनाग्निं समिन्धीत मुखादग्निरजायत। परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् बुधः ॥
नैकश्चरेत्सदा विप्रः समुदायं च वर्जयेत्। न देवायतनं गच्छेत्कदाचिद्वाऽप्रदक्षिणम्
न पीडयेद्वा वस्त्राणि न देवायतने स्वपेत्। नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितेन वा। नोपानद्वर्जितो वाऽथ जलादिरहितस्तथा ॥

न वर्त्मनि चितिं वाममतिकामेत्कचिद् द्विजः।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान्व्रतिनो वा यतींस्तथा ॥ ६१ ॥
देवतायतनं प्राज्ञा देवानां चैव सत्रिणाम्।
नाक्रामेत्कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि ॥ ६२ ॥

स्वां तु नाक्रामयेच्छायां पतिताद्यैर्नरोगिभिः। नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम्। न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयं च पिबेद् द्विजः ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे गृहस्थाचारनीतिवर्णनं नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णनम्।

व्यास उवाच।

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि कामतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते त्वनापदि ॥ १ ॥
षण्मासान्यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥ २ ॥

ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः। यस्यान्ने नोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्

राजान्नं नर्तकान्नं च षण्ढान्नं चर्मकारिणाम्।

गणान्नं गणिकान्नं च षडन्नं च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा । गान्धर्वलोहकारान्नं मृतकान्नं विवर्जयेत् ।
कुलालचित्रकारान्नं वार्धुषेः पतितस्य च । पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशप्तस्य चैव हि ।
सुवर्णकारशैलूषव्याधवन्ध्यातुरस्य च ।
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च ॥ ७ ॥
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च । सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः ।
भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे । उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ।
पापीयोऽन्नं च सङ्घान्नं शस्त्राजीवस्य चैव हि ।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षुतम् ॥ १० ॥
ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं मृतकस्य च ।
वृथापाकस्य चैवान्नं शावान्नं चातुरस्य च ॥ ११ ॥
अप्रजसां तु नारीणां कृतघ्नस्य तथैव च । कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा ।
शौण्डान्नं घाण्टिकान्नं च भिषजामन्नमेव च । विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च ।
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः । अवज्ञातं चावधूतं सरोषविस्मयान्वितम् ।
गुरोरपि नभोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम् । दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम् ।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ।
आर्थिकः कुलमित्रं च गोपालो वाहनापितौ ॥ १६ ॥
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् । कुशीलवः कुम्भकश्च क्षेत्रकर्मक एव च ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पगुणं बुधैः । पायसं स्नेहपक्वं च गोरसश्चैव सक्तवः ।
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः ।
वृन्ताकं नालिकाशाकं कुसुम्भं भस्मकं तथा ॥ १९ ॥
पलाण्डुं लशुनं शुक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत् । छत्राकं विड्वराहं च स्विन्नं पीयूषमेव च ।
विलयं विमुखं चैव कोरकाणि विवर्जयेत् । गृञ्जनं किंशुकं चैव कूष्माण्डं च तथैव च ।
उदुम्बरमलावं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः । तथा कृसरसंयावौ पायसापूपमेव च ।

अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च । यवागूं मातुलिङ्गं च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्
नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् । पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं देवधान्यं तथैव च

रात्रौ च तिलसम्बन्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत् ।
नाश्नीयात्पयसा तक्रं नाभक्ष्यानुपयोजयेत् ॥ २५ ॥

क्रमिदुष्टं भावदुष्टं मृत्संसर्गं च वर्जयेत् । कृमिकीटावपन्नं च सुहृत्क्लेदं च नित्यशः
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा । उदक्यया च पतितैर्गवाऽऽघ्रातमेव च
अनर्चितं पर्य्युषितं पर्यस्तान्नं च नित्यशः । काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव सङ्गतम्
मनुष्यैरप्यवघ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च । न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोगया॥२९॥

मलवद्वाससा वाऽपि परवासोऽथ वर्जयेत् ।
विवत्सायाश्च गोःक्षीरं मेषस्यानिर्दशस्य च ॥ ३० ॥

आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत् । बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा ॥
कुररं च चकोरं च जालपादं च कोकिलम् । वायसान्खञ्जरीटांश्च श्येनं गृध्रं तथैव च
उलूकं चक्रवाकं च भासं पारावतं तथा । कपोतं टिट्टिभं चैव ग्रामकुक्कुटमेव च ॥
सिंहं व्याघ्रं च मार्जारं श्वानं सूकरमेव च । शृगालं मर्कटं चैव गर्द्दभं न च भक्षयेत्

न भक्षयेत्सर्वमृगाञ्छिखिनोऽन्यान्वनेचरान् ।
जलेचरान्स्थलचरान्प्राणिनश्चेति धारणा ॥ ३५ ॥

गोधाकूर्मः शशः खड्गः सल्लकश्चेति सत्तमाः । भक्ष्यान्पञ्चनखान्नित्यं मनुराह प्रजापतिः

मत्स्यान्सशल्कान्भुञ्जीत मांसं रौरवमेव च ।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च नान्यथा ॥ ३७ ॥

मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम् । वार्ध्रीणसं बकं भक्ष्यं मीनं प्राह प्रजापति
शफरीसिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ । मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणीया द्विजोत्तमाः
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया । यथाविधिप्रयुक्तं च प्राणानामपि चात्यये

भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते ।
औषधार्थमशक्तो वा नियोगाद्यज्ञकारणम् ॥ ४१ ॥

आमन्त्रितश्च यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥ ४२ ॥
अदेयं वाप्यपेयं वा तथैवास्पृश्यमेव वा ।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः ॥ ४३ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः ॥ ४४ ॥
भक्षयित्वाऽप्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत्तावद्यावत्तन्न जहात्यधः ॥ ४५ ॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः । अपेयानि च विप्रो वै तथाचेद्याति रौरवम्
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे भक्ष्याभक्ष्यनियमो नाम
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दानधर्मवर्णनम् ।

व्यास उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् । ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम्
अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्
यो ददाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया परया युतः । तद्वै वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते ।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥ ४ ॥
अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्य फलं तस्माद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम्
यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम्

अपत्यविजयैश्वर्यसुखार्थं यत्प्रदीयते। दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥
यदीश्वरस्य प्रीत्यर्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते। चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥
दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः। उपास्यते तु तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥९॥
कुटुम्बभुक्तिवसनाद्देयं यदतिरिच्यते। अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम् ॥ १० ॥
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने। व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम् ॥

यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ १२ ॥

इक्षुभिः संयुतां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति। ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते
भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन। अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्
यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशीलिने। ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते
दद्यादहरहः स्वर्णं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात् ॥

गृहस्थायान्नदानेन फलमाप्नोति मानवः।
अन्नमेवास्य दातव्यं दत्त्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥ १८ ॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा।
उपोष्य विधिना शान्तः शुचिः प्रयतमानसः ॥ १९ ॥

पूजयित्वा तिलैः कृष्णैर्मधुना च विशेषतः। प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते ॥

यावज्जीवं तु यत्पापं तत्क्षणादेव नश्यति।
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ॥ २१ ॥

ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्। घृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां तु विशेषतः
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्। सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा
तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति। माघमासे तमिस्रे तु द्वादश्यां समुपोषितः ॥

शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलानेव समाहितः ॥ २५ ॥

जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः। अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याच्चोद्दिश्य केशवम्। प्रीयतामीश्वरो विष्णुर्हृषीकेशः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद्द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः। कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये।

स्नात्वाऽभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः।
प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम्॥ ३०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्।
द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः॥ ३१॥

अमावास्यां तथा भक्तैः पूजनीयस्त्रिविक्रमः। एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
अर्चयेद्ब्राह्मणमुखे स गच्छेत्परमं पदम्। एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशी शुक्लपक्षके।
तस्यामाराधयेद्देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्। यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ।
दीयते विष्णुमेवापि तदनन्तफलं स्मृतम्। यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः।

ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नात्स तु तां तोषयेत्ततः।
द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः॥ ३६॥

पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित्। प्रतिमादिषु यत्नेन तस्मात्फलमभीप्सता।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः। विभूतिकामः सततं पूजयेद्धि पुरन्दरम्।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ज्ञानकामुकः। आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्वै विनायकम्। भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम्।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्। यस्तु योगं तथा मोक्षमन्विच्छेज्ज्ञानमैश्वरम्।
अर्चयेत विरूपाक्षं प्रयत्नेन सुरेश्वरम्। ये वाञ्छन्ति महाभोगाञ्ज्ञानानि च महेश्वरम्।

ते पूजयन्ति भूतेशं केशवं चापि भोगिनः।
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति जलदानं ततोऽधिकम्॥ ४३॥

तैलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्। भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदाताऽग्र्यवेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्। वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्वदो यानमुत्तमम्।

अन्नदाता श्रियं स्वेष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् । यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ।
धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ॥ ४७ ॥
वेदविद्याविशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते । गवां चान्नप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः । फलमूलानि पानानि शाकानि विविधानि च
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदायुक्तः सदा भवेत् । औषधं स्नेहमाहारं रोगिणो रोगशान्तये
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च । असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम् ॥
तीक्ष्णतापं च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्यापेक्षितं गृहे ॥
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता । अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ५३ ॥
सङ्क्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् । प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीप्रस्रवणेषु च । दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥
तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः ।
स्वर्गाय भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये ॥ ५६ ॥
मुमुक्षुणा तु दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम् । दीयमानं तु यो मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च
निवारयत्यधर्मात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत सः ।
यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान्सुरान् ॥ ५८ ॥
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात्प्रवासयेत् । यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ॥
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः । न तस्मात्प्रतिगृह्णीयुर्न वसेयुश्च तेन हि ॥
अङ्कयित्वा स्वकाद्राष्ट्राद्राजा तं विप्रवासयेत् ।
पश्चात्सद्भ्यो ददातीह स्वद्रव्यं धर्मसाधनम् ॥ ६१ ॥
स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ।
स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ६२ ॥
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमाः ।
प्रभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद् द्विजम् ॥ ६३ ॥

न च मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम् । सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति।

स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ।

यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ॥ ६५ ॥

तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्य च सन्निधिम् । योऽर्चितं प्रतिगृह्णीयाद्द्यादर्चितमेव च।

तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये । न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च।

न पाखण्डेषु सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित् ।

रूप्यं चैव हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान् ॥ ६८ ॥

अविद्वान्प्रतिगृह्णीयाद्भस्मी भवति काष्ठवत् ।

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः ॥ ६९ ॥

अपि राजन्यवैश्याभ्यां न तु शूद्रात्कथञ्चन । वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्।

धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते । वेदानधीत्य सकलान्यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः।

न तां गतिमवाप्नोतिसन्तोषाद्यामवाप्नुयात् । प्रतिग्रहरुचिर्नस्याच्छूद्रान्नं तु समाहरेत्।

स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन्ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।

यस्तु याति न सन्तोषं न स स्वर्गस्य भाजनम् ॥ ७३ ॥

उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः । गुरुं भृत्यांश्चोज्जिहीर्षुस्तर्पयन्देवतातिथीन्।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयंततः । एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः।

वर्तमानः संयतात्मा याति तत्परमं पदम् ।

पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य गत्वाऽरण्यं तु तत्त्ववित् ॥ ७६ ॥

एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः । एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः।

ज्ञात्वाऽनुतिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ॥ ७७ ॥

इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् ।

समतीत्य स सर्वभूतयोनिं प्रकृतिं याति परं न याति जन्म ॥ ७८ ॥

इतिश्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे गृहस्थधर्मनिर्णयो नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमाचारधर्मकथनम् ।

व्यास उवाच ।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः । वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत्सदारः साग्निरेव च
निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद्वनमथापि वा। दृष्ट्वाऽपत्यस्यवाऽपत्यं जर्जरीकृतविग्रहः
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे प्रशस्ते चोत्तरायणे । गत्वाऽरण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात्समाहितः
फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत् । यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ ४ ॥

पूजयेदतिथिं नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान् ।
गृहादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥ ५ ॥
जटाश्च बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्यायं सर्वथा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः ॥ ६ ॥

अग्निहोत्रं च जहुयात्पञ्चयज्ञान्समाचरेत् । उत्पन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ॥
चीरवासा भवेन्नित्यं स्नायात्त्रिषवणं शुचिः । सर्वभूतानुकम्पश्च प्रतिग्रहविवर्जितः ॥
दर्शेन पौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः । ऋत्विष्ट्यांग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि कारयेत्
उत्तरायणं च क्रमशो दक्षिणायनमेव च । वासन्तशारदैर्मेध्यैरुत्पन्नैः स्वयमाहृतैः ॥
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् । देवताभ्यः पितृभ्यश्च दत्त्वा मेध्यतरं हविः
शेषं समुपभुञ्जीत लवणं च स्वयङ्कृतम् । वर्ज्जयेन्मद्यमांसानि भौमानि कवकानि च
भूस्तृणं शष्पकं चैव श्लेष्मातकफलानि च । न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केन.चित्

न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च ।
श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत्सदा ॥ १४ ॥
न द्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत् ।
न नक्तं किञ्चिदश्नीयाद्रात्रौ ध्यानपरो भवेत् ॥ १५ ॥

जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत् ॥ १६ ॥
यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् । तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥
तत्र यो जायते गर्भो न स स्पृश्यो द्विजातिभिः ।
न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥ १८ ॥
भूमौ शयीत सततं सावित्रीजप्यतत्परः । शरण्यः सर्वभूतानां संविभागपरः सदा ॥
परिवादं मृषावादं निद्रालस्ये च वर्जयेत् ।
एकाग्निरनिकेतः स्यात्प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत् ॥ २० ॥
मृगैः सह चरेद्दान्तस्तैः सहैव च संवसेत् । शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः ॥
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयिकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वापि समानिचय एव वा ॥ २२ ॥
नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वास्यात्किवाप्यष्टमकालिकः ॥ २३ ॥
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्जयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥ २४ ॥
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा । स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥
भूमौ वा परिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत् ॥
ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः । आर्द्रवासाश्च हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः ॥
उपस्पृशेत्त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् । एकपादेन तिष्ठेत मरीचिं वा पिबेत्सदा ॥
पञ्चाग्निधूम्रगो वास्यादूष्मगः सोमपोऽपि वा ।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु गोमयम् ॥ २९ ॥
शीर्णपर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्तयेत्सदा ।
योगाभ्यासरतश्च स्याद्रुद्राध्यायी भवेत्सदा ॥ ३० ॥
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः । यमान्सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः ॥

कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
अथ चाग्नीन्समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ॥ ३२ ॥
अनग्निरनिकेतो वा मुनिर्मोक्षपरो भवेत् । तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनचारिषु । ग्रामादाहृत्य चाश्मीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा । विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत् ॥
विद्याविशेषान्सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च । महाप्रस्थानिकं वाऽसौ कुर्यादनशनं तथा
अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः ॥ ३६ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे वानप्रस्थाश्रमाचारधर्मो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

यतिधर्मकथनम् ।

व्यास उवाच ।

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थं चायुषो भागं संन्यासेन नयेत्क्रमात्
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥ २ ॥
यदा मनसि सम्पन्नं वैराग्यं सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासमिच्छेच्च पतितः स्याद्विपर्यये
प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः । दान्तः शुक्लकषायोऽसौब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्
ज्ञानसंन्यासिनःकेचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे । कर्मसंन्यासिनस्त्वन्येत्रिविधाःपरिकीर्तिताः
यः सर्वत्र विनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः ।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी आत्मन्येव व्यवस्थितः ॥ ६ ॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः । प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ॥

यस्त्वग्निमात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः । ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः

त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः ।

न तस्य विद्यते कार्यं नलिङ्गं वा विपश्चितः ॥ ६ ॥

निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वः पर्णभोजनः ।

जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारी जिताहारो ग्रामादन्नं समाहरेत् । अध्यात्मरतिरासीत निरपेक्षो निराशिषः

आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनम् ।

कालमेव प्रतीक्षेत निर्वेशं भृतको यथा । नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन ।

एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते । एकवासाश्च वा विद्वान्कौपीनाच्छादनोऽपि वा

मुण्डी शिखी वाऽथ भवेत्त्रिदण्डी निष्परिग्रहः ।

काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः ॥ १५ ॥

ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि वा । समः शत्रौ तथा मित्रे तथा मानापमानयोः

भैक्ष्येण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत्क्वचित् ।

यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः ॥ १७ ॥

न तस्य निष्कृतिः काचिद्धर्मशास्त्रेषु दृश्यते ।

रागद्वेषवियुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ १८ ॥

प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात्सर्वनिस्पृहः ।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ १६ ॥

सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत् । नैकत्र निवसेद्देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः ।

स्नात्वा शौचयुतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः । ब्रह्मचर्यरतोनित्यं वनवासरतो भवेत्

मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेन्द्रियः । दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः

आत्मज्ञानगुणोपेतो यदि मोक्षमवाप्नुयात् । अभ्यसेत्सततं देवं प्रणवाख्यं सनातनम्

स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु ।

यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः ॥ २५ ॥

धौतकाषायवसनो भस्माच्छन्नतनूरुहः। अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च॥
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्।
पुत्रेषु चाथ निवसन्ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः॥ २६॥
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम्। अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपःपरम्॥
क्षमादयाचसन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः। वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान्समाहितः॥
कुर्यादहरहः स्नात्वा भिक्षार्थे नैव तेन हि। होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः
स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्।
ध्यायेच्च सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम्॥ ३०॥
एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्॥
कमण्डलुकरो विद्वांस्त्रिदण्डो याति तत्परम्॥ ३१॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे यतिधर्मनिरूपणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः

षष्टितमोऽध्यायः

यतिनियमविधानकथनम्।

व्यास उवाच।

एवं त्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्। भैक्ष्येण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापिवा
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरे। भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति
सप्तागारं चरेद्भैक्ष्यमलाभे न पुनश्चरेत्। गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः॥
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमादद्याद्वाग्यतः शुचिः।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च समाचम्य यथाविधि॥ ४॥
आदित्यं दर्शयित्वाऽन्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखो नरः।

हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः ॥ ५ ॥

आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायेत परमेश्वरम् । अलाबुदारुपात्रे च मृण्मयं वैणवं तथा ।
चत्वारि यतिपात्राणि मनुराह प्रजापतिः । प्राग्रात्रे मध्यरात्रे च पररात्रे तथैव च ।

सन्ध्यासूक्तिविशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ।

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम् ॥ ८ ॥

आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम् । सर्वस्याधारमव्यक्तमानन्दं ज्योतिरव्ययम् ।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं शिवम् । तदन्तं सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् ।

ओङ्कारान्तेऽथवाऽऽत्मानं समाप्य परमात्मनि ।

आकाशे देवमीशानं ध्यायेदाकाशमध्यगम् ॥ ११ ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् । पुराणपुरुषं विष्णुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात् ।
यद्वा गुहादौ प्रकृतौ जगत्संमोहनालये । विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ।
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते । आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः ।
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम् । अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत वाग्यतः ।
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम् । योऽवतिष्ठेत्सदाऽनेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम् ।
तस्माज्ज्ञानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः । ज्ञानं समभ्यसेद्ब्रह्म येन मुच्येत बन्धनात् ।
मत्वा पृथक्त्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् । आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायेत च ततः परम् ।

यस्माद्भवन्ति भूतानि यज्ज्ञात्वा नेह जायते ।

स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद्योऽधितिष्ठति ॥ १६ ॥

यदन्तरे तद्गमनं शाश्वतं शिवमव्ययम् । य इदं स्वपरोक्षस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः ।
व्रतानि यानि भिक्षूणां विहितानि तथा यमः । एकैकातिक्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ।

उपेत्य च स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं समाहितः ।

प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सान्तपनं शुचिः ॥ २२ ॥

ततश्चरेत नियमात्कृच्छ्रं संयतमानसः । पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ २३ ॥
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः । तथापि च न कर्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ।

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा । उक्त्वाऽनृतं प्रकर्तव्ये यतिना धर्मलिप्सुना ॥
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः । स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः

हिंसा चैवापरा तृष्णा याच्ञाऽऽत्मज्ञाननाशिका ।
यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ॥ २७ ॥
स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम् ।
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रतच्युतः ॥ २८ ॥

भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः । अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ॥

कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ।
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात्स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥ ३० ॥
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।
दिवा स्कन्दे त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं बुधाः ॥ ३१ ॥

एकान्ने मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च । प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् ।
तस्मान्नारायणं ध्यात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत् ॥ ३३ ॥

यद्ब्रह्मणः परं ज्योतिः प्रविष्टाक्षरमव्ययम् । योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः
एष देवो महादेवः केवलः परमशिवः । तदेवाक्षरमद्वैतं तदनित्यं परंपदम् ॥ ३५ ॥
तस्मान्महीयते देवे स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते । आत्मयोगात्परे तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः
नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तं प्रपश्यति । तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परमं पदम्
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् । न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः
एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बध्यते ॥ ३६ ॥
तस्माद्यतेत नियतं यतिः संयतमानसः । ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥
एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः । पितामहेन मुनिना विभुना पूर्वमीरितः ॥
पुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादेवमनुत्तमम् । ज्ञानं स्वयम्भुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम्

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं सुरवरपरितोषे यद्भवेदेकहेतुः ।

न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति ॥ ८३ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे तृतीयेस्वर्गखण्डे यतिनियमविधानकथनंनामषष्टितमोऽध्यायः

———

एकषष्टितमोऽध्यायः

सर्वधर्मेभ्योऽपिसंसारदुःखकथनपूर्वकंविष्णुभक्तेराधिक्यवर्णनम् ।

सूत उवाच ।

एवमुक्तं पुरा विप्रा व्यासेनामिततेजसा । एतावदुक्त्वा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः
समाश्वास्य मुनीन्सर्वाञ्जगाम च यथागतम् ।
भवद्भ्यस्तु मया प्रोक्तं वर्णाश्रमविधानकम् ॥ २ ॥
एवं कृत्वा प्रियोविष्णोर्भवत्येव नचान्यथा । रहस्यं तत्र वक्ष्यामि श्रृणुत द्विजसत्तमाः
ये चात्र कथिता धर्मा वर्णाश्रमनिबन्धनाः । हरिभक्तिकलांशांशसमाना नहिते द्विजाः
पुंसामेकेहवै साध्या हरिभक्तिः कलौ युगे । युगान्तरेण धर्मा हि सेवितव्या नरैः
कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक् । दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम्
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम् । कलिकालोरगादंशात्किल्विषात्कालकूटतः
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः । किंजपैः श्रीहरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः
किंस्नानैर्विष्णुपादाम्बुमस्तके येन धार्यते । किंयज्ञेन हरेः पादपद्मं येन धृतं हृदि
किंदानेन हरेः कर्म सभायां वै प्रकाशितम् । हरेर्गुणगणाञ्छ्रुत्वा यः प्रहृष्येत्पुनः पुनः
समाधिनाप्रहृष्टस्य सा गतिः कृष्णचेतसः । तत्र विघ्नकराःप्रोक्ताः पाखण्डालापपेशलाः
नार्यस्तत्सङ्गिनश्चापि हरिभक्तिविघातकाः । नारीणां नयनादेशः सुराणामपि दुर्जयः
स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते । माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः
हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्तिजुषां द्विजाः ।
राक्षस्यः कामिनीवेषाश्चरन्ति जगति द्विजाः ॥ १४ ॥

नराणां बुद्धिकवलं कुर्वन्ति सततं द्विताः। तावद्विद्या प्रभवति तावज्ज्ञानं प्रवर्तते ॥
तावत्सुनिर्मला मेधा सर्वशास्त्रविधारिणी। तावज्जपस्तपस्तावत्तावत्तीर्थनिषेवणम्
तावच्च गुरुशुश्रूषा तावद्वितरणे मतिः। तावत्प्रबोधो भवति विवेकस्तावदेव हि ॥१७
तावत्सतां सङ्गरुचिस्तावत्पौराणलालसा। यावत्सीमन्तिनीलोलनयनान्दोलनं नहि।
जनोपरि पतेद्विप्राः सर्वधर्मविलोपनम्। तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रसादिताः ॥१६॥
तेषां न नारीलोलाक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत्। जन्मजन्महृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः ॥
द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरक्तिस्तत्र तत्र हि। नारीणां किल किंनाम सौन्दर्यं परिचक्षते।
भूषणानां च वस्त्राणां चाकचक्यं तदुच्यते। स्नेहात्मज्ञानरहितं नारीरूपं कुतःस्मृतम्
पूयमूत्रपुरीषासृक्त्वङ्मेदोऽस्थिवसान्वितम्। कलेवरं हि तन्नाम कुतः सौन्दर्यमत्र हि

तदेवं पृथगाचिन्त्य स्पृष्ट्वा स्नात्वा शुचिर्भवेत्।
तैः संहितं शरीरं हि दृश्यते सुन्दरं जनैः ॥ २४ ॥

अहोऽतिदुर्दशा नृणां दुर्दैवघटिता द्विजाः। कुचावृतेऽङ्गे पुरुषो नारीबुद्ध्या प्रवर्त्तते

का नारी वा पुमान्को वा विचारे सति किञ्चन।
तस्मात्सर्वात्मना साधुर्नारीसङ्गं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥
कोनाम नारीमासाद्य सिद्धिं प्राप्नोति भूतले।
कामिनीकामिनीसङ्गसङ्गमित्यपि सन्त्यजेत् ॥ २७ ॥

तत्सङ्गाद्रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते। अज्ञानाल्लोलुपा लोकास्तत्र दैवेन वञ्चिताः ॥
साक्षान्नरककुण्डेऽस्मिन्नारीयोनौ पचेन्नरः। यत एवागतःपृथ्व्यां तस्मिन्नेव पुनारमेत्

यतः प्रसरते नित्यं मूत्रं रेतोमलोत्थितम्।
तत्रैव रमते लोकः कस्तस्मादशुचिर्भवेत् ॥ ३० ॥

तत्रातिकष्टलोकेऽस्मिन्नहोदेवविडम्बना। पुनः पुना रमेत्तत्र अहो निस्त्रपता नृणाम् ॥
तस्माद्विचारयेद्धीमान्नारीदोषगणान्बहून्। मैथुनाद्बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते

निद्रयाऽपहृतज्ञानः स्वल्पायुर्जायते नरः।
तस्मात्प्रयत्नतो धीमान्नारीं मृत्युमिवात्मनः ॥ ३३ ॥

पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद्बुधः। इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम्।
विहाय को महामूढो नारीपादं हि सेवते। जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी।

नारीणां योनिसेवा हि योनिसङ्कटकारिणी।
पुनः पुनः पतेद्योनौ यन्त्रनिष्पाचितो यथा ॥ ३६ ॥

पुनस्तामेवाभिलषेद्धिग्यादस्य विडम्बनम्। ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः।
गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि। नारीसङ्गं परित्यज्य यश्चापि परिवर्त्तते।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः। कुलाङ्गना दैवयोगादूढा यदि नृणां सती।
पुत्रमुत्पाद्य यस्तत्र तत्सङ्गं परिवर्जयेत्। तस्य तुष्टो जगन्नाथो भवत्येव न संशयः।
नारीसङ्गो हि धर्मज्ञैरसत्सङ्गः प्रकीर्त्यते। तस्मिन्सति हरौ भक्तिः सुदृढा नैव जायते।
सर्वसङ्गं परित्यज्य हरौ भक्तिं समाचरेत्। हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्ल्लभा हि मता।
हरौ यस्य भवेद्भक्तिः स कृतार्थो न संशयः। तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन।

तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्।
हरौ भक्तिं विना नृणां वृथा जन्म प्रकीर्तितम् ॥ ४४ ॥

ब्रह्मेशादि सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे। नारायणमनाव्यक्तं न तं सेवेत को जनः।
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकृती। जनार्दनपदद्वन्द्वं हृदये येन धार्यते।
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल। इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषां निरये गतिः।
ब्राह्मणा हि विशेषेण प्रत्यक्षं हरिरूपिणः। पूजयेयुर्यथायोगं हरिस्तेषां प्रसीदति।
विष्णुर्ब्राह्मणरूपेण विचरेत्पृथिवीमिमाम्। ब्राह्मणेन विना कर्म सिद्धिं प्राप्नोति नैव।

द्विजपादाम्बुभक्त्या यैः पीत्वा शिरसि चार्पितम्।
तर्पिताः पितरस्तेन आत्माऽपि किल तारितः ॥ ५० ॥
ब्राह्मणानां मुखे येन दत्तं मधुरमर्चितम्।
साक्षात्कृष्णमुखे दत्तं तद्वै भुङ्क्ते हरिः स्वयम् ॥ ५१ ॥
अहोऽति दुर्भगा लोकाः प्रत्यक्षे केशवे द्विजे।
प्रतिमादिषु सेवन्ते तदभावे हि तत्क्रिया ॥ ५२ ॥

[...]ब्राह्मणानामधिष्ठानात्पृथ्वी धन्येति गीयते। तेषां पाणौ च यद्दत्तं हरिपाणौ तदर्पितम्।

तेभ्यः कृतान्नमस्कारात्तिरस्कारो हि पाप्मनाम्।
मुच्यते ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो विप्रवन्दनात् ॥ ५४ ॥
तस्मात्सतां समाराध्यो ब्राह्मणो विष्णुबुद्धितः।
क्षुधितस्य द्विजस्यास्ये यत्किञ्चिद्दीयते यदि ॥ ५५ ॥

[...]स्य पीयूषधाराभिः सिञ्चते कल्पकोटिकम्। द्विजतुण्डं महाक्षेत्रमनूषरमकण्टकम्

तत्र चेदुप्यते किञ्चित्कोटिकोटिफलं लभेत्।
सुघृतं भोजनं चास्मै दत्त्वा कल्पं स मोदते ॥ ५७ ॥

[...]वासुमिष्टमन्नं यो ददाति द्विजतुष्टये। तस्य लोका महाभोगाः कोटिकल्पान्तमुक्तिदाः
[...]ह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेनानुकीर्तितम्। पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम् ॥
[...]राणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते। यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ॥ ६० ॥
[...]था सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ॥ ६१ ॥
[...]वान्तः प्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥
[...]स्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः। श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥
[...]ष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमपि दुर्लभम्। पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम् ॥
[...]स्मिन्वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा। पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात्तत्परमो भवेत्

पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम्।
तस्मात्कृते पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥ ६६ ॥

[...]क्षात्स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम्। एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेवभवेन्नरः
[...]था गङ्गाम्बुसेकेन नाशयेत्किल्बिषं स्वकम्। केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम्।

वैष्णवो विष्णुभजनस्याकाङ्क्षी यदि वर्तते।
गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरणं चरेत् ॥ ६९ ॥
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते।
विष्णुरूपा हि सा गङ्गा लोकनिस्तारकारिणी ॥ ७० ॥

ब्राह्मणेषु पुराणेषु गङ्गायां गोषु पिप्पले । नारायणधिया पुम्भिर्भक्तिः कार्या द्वि

प्रत्यक्षविष्णुरूपा हि तत्त्वज्ञैर्निश्चिता अमी ।
तस्मात्सततमभ्यर्च्या विष्णुभक्त्यभिलाषिणा । ७२ ॥
विष्णौ भक्तिं विना नृणां निष्फलं जन्म उच्यते ।
कलिकालपयोराशिं पापग्राहसमाकुलम् ॥ ७३ ॥

विषयामज्जनावर्त्तदुर्बोधफेनिलं परम् । महादुष्टजनव्यालमहाभीमं भयानकम् ॥
दुस्तरं च तरन्त्येव हरिभक्तितरि स्थिताः । तस्माद्यतेत वै लोको विष्णुभक्तिप्रसा
किं सुखं लभते जन्तुरसद्वार्तावधारणे । हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते

तद्विचित्रकथा लोके नानाविषयमिश्रिताः ।
श्रोतव्या यदि वै नृणां विषये सज्जते मनः ॥ ७७ ॥
निर्वाणे यदि वा चित्तं श्रोतव्या तदपि द्विजाः ।
हेलया श्रवणाच्चापि तस्य तुष्टो भवेद्धरिः ॥ ७८ ॥
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नानाकर्म चकार सः ।
शुश्रूषूणां हितार्थाय भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ ७९ ॥

न लभ्यते कर्मणाऽपि वाजपेयशतादिना । राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स
यत्पदं चेतसा सेव्यं सद्भिराचरितं मुहुः । भवाब्धितरणें सारमाश्रयध्वं हरेः प
रेरे विषय संलुब्धाः पामरा निष्ठुराः नराः । रौरवे हि किमात्मानमात्मना पात
विना गोविन्दसौम्याङ्घ्रिसेवनं मा गमिष्यथ । अनायासेन दुःखानां तरणं यदि
भजध्वं कृष्णचरणावपुनर्भवकारणे । कुत एवागतो मर्त्यः कुत एव पुन
एतद्विचार्य मतिमानाश्रयेद्धर्मसङ्ग्रहम् । नानानरकसम्पातादुत्थितो यदि पू
स्थावरादि तनुं लब्ध्वा यदि भाग्यवशात्पुनः । मानुष्यं लभते तत्र गर्भवासोऽति
ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यदि वा जायते भुवि । बाल्यादिबहुदोषेण पीडितो भवति
पुनर्यौवनमासाद्य दारिद्र्येण प्रपीड्यते । रोगेण गुरुणा वापि अनावृष्ट्यादिना
वार्द्धकेन लभेत्पीडामनिर्वाच्यामितस्ततः । [illegible]स्ततो मरणमा

तस्मादधिकं दुःखं संसारेऽप्यनुभूयते। ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यमलोके प्रपीड्यते ॥९०॥
यातियातनां भुक्त्वा पुनरेव प्रजायते। जायते म्रियते जन्तुर्म्रियते जायते पुनः ॥
नाराधितगोविन्दचरणस्येदृशी दशा। अनायासेन मरणं विनायासेन जीवनम् ॥९२
नाराधितगोविन्दचरणस्य न जायते। धनं यदि भवेद्गेहे रक्षणात्तस्य किं फलम्

यदाऽसौ कृष्यते याम्यैर्दूतैः किं धनमन्वियात्।
तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम् ॥ ९४ ॥
दानं स्वर्गस्य सोपानं दानं किल्बिषनाशनम्।
गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥ ९५ ॥

यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्व्ययं चरेत्। हरेरग्रे नृत्यगीतं कुर्यादेवमतन्द्रितः ॥
किञ्चिद्विद्यते पुंसां तच्च कृष्णे समर्पयेत्। कृष्णार्पितंकुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम्
दृश्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम्। श्रोत्राभ्यांकलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम्
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः। घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम्

त्वचा स्पृष्ट्वा हरेर्भक्तं मनसाध्याय तत्पदम्।
कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा ॥ १०० ॥
तन्मनाहि भवेत्प्राज्ञस्तथा स्यात्तद्गताशयः।
तमेवान्तेऽभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा ॥ १०१ ॥

मनसा चाप्यनुध्यातः स्वपदं यः प्रयच्छति। नारायणमनाद्यन्तं न तं सेवेत को जनः
सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे वितरणमनुशक्तिप्रीतये तस्य कुर्यात्।
अमतिरतिमस्याङ्घ्रिद्वये संविदध्यात्स हि खलु नरलोके पूज्यतामाप्नुयाच्च ॥१०३॥

इति श्रीपाद्मेमहापुराणे तृतीये स्वर्गखण्डे विष्णुभक्तेराधिक्यवर्णनं
नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

पाद्मपुराणमाहात्म्यम् ।

सूत उवाच ।

एवं यन्महिमा लोके लोकनिस्तारकारणम् ।
तस्य विष्णोः परेशस्य नानाविग्रहधारिणः ॥ १ ॥
एवं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत् । ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम् ॥ २॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः ।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम् ॥ ३ ॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते ।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः ॥ ४ ॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः । लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम् ॥ ५॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम् ।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते । एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः ॥
हृदयं तत्र वै पाद्मं यच्छ्रुत्वाऽमृतमश्नुते । पाद्ममेतत्पुराणं तु स्वयं देवोऽभवद्धरिः ॥
यस्यैकाध्यायमध्याप्य सर्वैः पापैः प्रमुच्यते । तत्रादिमं स्वर्गमिदं सर्वपाद्मफलप्रदम् ॥
स्वर्गखण्डं समाकर्ण्य महापातकिनोऽपि ये ।
मुच्यन्ते तेऽपि पापेभ्यस्त्वचो जीर्णाद्यथोरगाः ॥ १० ॥
अपि चेत्सुदुराचारः सर्वधर्मबहिष्कृतः । आदिस्वर्गं समाकर्ण्य पूयते नात्र संशयः ॥
सर्वं पुराणमाकर्ण्य यत्फलं लभते नरः । तत्सर्वं समवाप्नोति श्रुत्वा पाद्ममहो द्विजाः ॥
समग्रं पाद्ममाकर्ण्य यत्फलं समवाप्नुयात् । आदिस्वर्गमिदं श्रुत्वा तत्फलं लभते...
माघे मासे प्रयागे तु स्नात्वा प्रतिदिनं नरः। यथा पापात्प्रमुच्येत तथा हि श्रवणाद्...

दत्ता तेन स्वर्णतुला दत्ता चैव धराऽखिला। कृतं वितरणं तेन दरिद्रे यद्गुणं कृतम् ॥
हरेर्नामसहस्राणि पठितानि ह्यभीक्ष्णशः। सर्वेवेदास्तथाऽधीतास्तत्तत्कर्म कृतं तथा ॥
अध्यापकाश्च बहवःस्थापिता वृत्तिदानतः। अभयं भयलोकेभ्यो दत्तंतेन तथा द्विजाः
गुणवन्तो ज्ञानवन्तो धर्मवन्तोऽनुमानिताः। मेषकर्कटयोर्मध्ये तोयंदत्तं सुशीतलम् ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे च प्राणास्त्यक्ताश्च ते न हि।
अन्यानि च सुकर्माणि कृतानि तेन धीमता ॥ १६ ॥

येनादिखण्डं सदसि श्रुतं संश्रावितं तथा। स्वर्गखण्डं समाधीत्य नानाभोगान्समश्नुते
अन्तःपुरगनारीणां सुखसुप्तः प्रबुध्यते। किङ्किणीरवसन्नादैस्तथा मधुरभाषणैः ॥
इन्द्रस्यार्धासनं भुङ्क्ते इन्द्रलोके वसेच्चिरम्। ततः सूर्यस्य भवनं चन्द्रलोकं ततोव्रजेत्
सप्तर्षिभवनेभोगान्भुक्त्वा याति ततो ध्रुवम्। ततश्च ब्रह्मणोलोकं प्राप्यतेजोमयं वपुः
तत्रैव ज्ञानमासाद्य निर्वाणं परमृच्छति। सद्भिः सह वसेद्धीमान्सत्तीर्थेस्नानमाचरेत् ॥
कुर्यादेव सदालापं सच्छास्त्रं शृणुयान्नरः। तत्र पाद्मं महाशास्त्रं सर्वाम्नायफलप्रदम्

स्वर्गखण्डं च तन्मध्ये महापुण्यफलप्रदम् ॥ २६ ॥

भजध्वं गोविन्दं नमत हरिमेकं सुरवरं गमिष्यध्वं लोकानतिविमलभोगानतितराम् ॥
शृणुध्वं हेलोका वदत हरिनामैकमतुलं यदीच्छावीचीनां सुखतरणमिष्टानि लभत ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे स्वर्गखण्डे पाद्मपुराणमाहात्म्यकथनं नाम
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

सम्पूर्णमिदमादिखण्डापरनामकमादिस्वर्गखण्डं स्वर्गखण्डं वा
॥ शुभमस्तु ॥ ॥ श्रीरस्तु ॥

———



* श्रीवेदव्यासायनमः *

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

पाद्मपुराणम्

अथ चतुर्थं ब्रह्मखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

कलिकालीनलोकोद्धारणायप्रश्ने सूतेन व्यसजैमिनिसंवादवर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

कलौ समागते सूत प्राणिनां केन कर्मणा । उद्धारो वै भवेत्तत्त्वं कथयस्व ममाग्रतः ॥

सूत उवाच ।

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! पुण्यात्मप्रवरो भवान् ।
सर्वेषां च जनानां त्वं शुभवाञ्छो निरन्तरम् ॥ २ ॥

व्यासः पुरा विप्रः सर्वज्ञः सर्वपूजितः । पृष्टो जैमिनिना तं स यदाह शृणु वैष्णव ! ॥

दण्डवत्प्रणिपत्यासौ व्यासं सर्वार्थपारगम् । गुरुं सत्यवतीसूनुं पप्रच्छ मुनिपुङ्गवः

जैमिनिरुवाच ।

कलौ नृणां भवेत्केन मोक्षो वै कथयस्व मे ।
अल्पेनापि च पुण्येन मर्त्याश्चाल्पायुषो यतः ॥ ५ ॥

व्यास उवाच ।

साधुसङ्गाद्भवेद्विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो ! । हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञानं ततो गतिः

न रोचते कथा भूमौ पापिष्ठाय जनाय वै। वैष्णवी स तु विज्ञेयः पापिष्ठप्रवरो द्विज

श्रीकृष्णस्य कथां श्रुत्वाऽऽनन्दी भवति वैष्णवः।
असत्यां तां तु यो ब्रूयाज्ज्ञेयः स पापिनां गुरुः ॥ ८ ॥
यस्मिन्यस्मिन्स्थले विप्र! कृष्णस्य वर्तते कथा।
तस्मात्तस्माज्जगन्नाथो याति त्यक्त्वा न कर्हिचित् ॥ ९ ॥

कृष्णस्य यःकथारम्भे कुर्याद्विघ्नं नराधमः। नरकान्निष्कृतिर्नास्ति मन्वन्तरशतावधि

ये पुराणकथां श्रुत्वा निन्दन्त्युपहसन्ति वै।
तेषां करस्था नरका बहुक्लेशकराः सदा ॥ ११ ॥
जन्मान्तरार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।
श्रीकृष्णचरितं यो वै श्रोतुमिच्छां करोत्यपि ॥ १२ ॥
भक्त्या यो वै नरःकुर्याच्छ्रीकृष्णचरितं तथा।
न जाने श्रवणे तस्य का गतिर्वा भविष्यति ॥ १३ ॥

ब्रह्महत्यादिकं पापमकालमरणं तथा। सुरापानं तथास्तेयं सर्वं नश्यति पापिनः ॥
पापं कृत्वा तु यो मर्त्यःपश्चात्पापं निवर्तयेत्। तस्य पापंव्रजेन्नाशमग्निना तूलराशिवत्
श्रीकृष्णचरितं विप्र! तिष्ठेद्वैपुस्तकं गृहे। तस्य गृहसमीपं हि नायान्ति यमकिङ्कराः

जैमिनिरुवाच।

वदन्ति वैष्णवान्कांश्च वाञ्छा ब्रूहि गुरो! मम।
इदानीं तान्समाज्ञातुं तेषां माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥

व्यास उवाच

यो नरो मस्तके भक्त्या वैष्णवाङ्घ्र्यम्भसो द्विज!।
करोति सेचनं पापी तीर्थस्नानेन तस्य किम् ॥ १८ ॥

साधुसङ्गं तु यःकुर्यात्क्षणं वाऽर्द्धक्षणं द्विज। तस्य नश्यन्ति पापानि ब्रह्महत्यामुखानि
यत्र यत्र कुलेचैव एको भवति वैष्णवः। कुलं तस्य यदापापैर्युक्तं तन्मोक्षगामि
हिंसादम्भकामक्रोधैर्वर्जिताश्चैव ये नराः। लोभमोहपरित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज

पितृभक्ता दयायुक्ताःसर्वप्राणिहितेरताः ।
अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेयाः सत्यभाषिणः ॥ २२ ॥
विप्रभक्तिरता ये च परस्त्रीषु नपुंसकाः । एकादशीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥
गालन्ति हरिनामानि तुलसीमाल्यधारकाः ।
हर्यङ्घ्रिसलिलैःसिक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥ २४ ॥
श्रोत्रयोर्मस्तकेयेषांतुलस्याःपर्णमुत्तमम् । कर्हिचिद्दृश्यते विप्र! विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः
पाखण्डसङ्गरहिता विप्रद्वेषविवर्जिताः । सिञ्चेयुस्तुलसीं ये च ज्ञातव्या वैष्णवा नराः
पूजयन्ति हरिं ये च तुलस्या चार्चयन्ति ये । कन्यादानरता ये च ये वै ह्यतिथिपूजकाः
शृण्वन्ति विष्णुचरितं विज्ञेया वैष्णवा नराः ।
यस्य गृहे सुप्रतिष्ठेच्छालग्रामशिलाऽपि च ॥ २८ ॥
मार्जयन्ति हरेःस्थानं पितृयज्ञप्रवर्तकाः । जने दीने दयायुक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः
परस्वं ब्राह्मणद्रव्यं पश्यन्ति विषवच्च ये ।
हरिनैवेद्यं येऽश्नन्ति विज्ञेया वैष्णवा जनाः ॥ ३० ॥
वेदशास्त्रानुरक्ता ये तुलसीवनपालकाः । राधाष्टमीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः
श्रीकृष्णपुरतो ये च दीपं यच्छन्ति श्रद्धया ।
परनिन्दां न कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥ ३२ ॥

सूत उवाच ।

पृष्टो जैमिनिना व्यास इत्युवाच यथाक्रमम् ।
मयेदं कथ्यते ब्रह्मन्यत्प्रसङ्गाद्गुरोः श्रुतम् ॥ ३३ ॥
अध्यायं श्रद्धया युक्ता ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः परंपदम् ॥ ३४ ॥
इति श्रीपाद्मपुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे व्यासजैमिनिसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

हरिमन्दिरलेपनमार्जनादिमाहात्म्यदण्डकनामकचौरवृत्तान्तकथनम्।

सूत उवाच।

श्रृणु शौनक! वक्ष्यामि चान्यधर्मं पुरातनम्।
व्यासजैमिनिसंवादं श्रोतॄणां पापनाशनम्॥ १॥

जैमिनिरुवाच।

कर्मणा हि गुरो! केन मन्दिरं जगतीपतेः। याति तत्कथयस्वाद्य नरः पापी च मे प्रभो!

व्यास उवाच।

श्रीकृष्णमन्दिरे यो वै लेपनं कुरुते नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेर्गृहम्॥
यश्चाम्बुलेपनं कुर्यात्संक्षेपाच्छृणु जैमिने!। तस्य पुण्यमहं वच्मि मन्दिरे जगतीपतेः॥
तत्र यावन्ति वै सन्ति रजांसि च द्विजोत्तम!।
तावत्कल्पसहस्राणि स वसेद्विष्णुमन्दिरे॥ ५॥

पुराऽऽसीद्दण्डकोनाम्ना चौरो लोकभयप्रदः। ब्रह्मस्वहारी मित्रघ्नो युगे द्वापरसंज्ञके
असत्यभाषी क्रूरश्च परस्त्रीगमने रतः। गोमांसाशी सुरापश्च पाखण्डजनसङ्गभाक्॥
वृत्तिच्छेदी द्विजातीनां न्यासापहारकस्तथा।
शरणागतहन्ता च वेश्याविभ्रमलोलुपः॥ ८॥

एकदा स द्विजश्रेष्ठ! कस्यचिद्विष्णुमन्दिरम्। जगाम हरणार्थाय विष्णोर्द्रव्यं समृद्धधीः
अथ द्वारि प्रविश्यासावङ्घ्रिं कर्दमसंयुतम्। प्रोञ्छयामास वै निम्ने भूमौ देवगृहस्य च
तेनैव कर्मणा भूमिर्निम्नरिक्ता बभूव ह। लोहस्य च शलाकाभ्यामुद्घाट्य त्वरं मुदा।
प्रविवेश हरेर्गेहं वितानवरशोभितम्। रत्नकाञ्चनदीपाढ्यं परिध्वस्तमहत्तमः॥१२॥
नानापुष्पसुगन्धाढ्यं नानापात्रसमाकुलम्। सुवासितस्य तैलस्य गन्धेन परिपूरितम्।
अनेन हारकेणाथ पर्यंके सुमनोहरे। शायितो राधयासार्द्धं दृष्टःपीताम्बरोऽच्युतः॥१४

प्रणम्य राधिकानाथं निष्पापःसोऽभवत्तदा । नेष्याम्यथ न नेष्यामि अनेन किं भवेन्मम
सेवां कर्तुमशक्तोऽहं यतश्चोरोऽस्मि सर्वदा । द्रव्येण कार्यमस्तीति तन्नेतुं कृतवान्मनः

पातयित्वांऽशुकं भूमौ कौशेयं कमलापतेः ।
बबन्ध वस्तुजातं च पाणौ कृत्वा स कम्पितः ॥ १७ ॥
विष्णोर्मायापतेश्चाथ तानि सर्वाणि जैमिने ! ।
कृत्वा शब्दं सुघोरं च पतितान्यथ तानि वै ॥ १८ ॥
परित्यज्य सुनिद्रां च धावन्त इति किन्वहो ।
आगता बहुशो लोकाश्चौरो द्रव्यं जवेन च ॥ १९ ॥
त्यक्त्वा धनं च चौरोऽपि त्रस्तःकिञ्चिज्जगामह ।
दंशितः कालसर्पेण मृतोऽसौ गतकिल्विषः ॥ २० ॥

यमाज्ञया तस्य दूताःपाशमुद्गरपाणयः । आगतास्तं समानेतुं दंष्ट्रिणश्चर्मवाससः ॥
बबन्धुश्चर्मपाशेन निन्युर्दुर्गमवर्त्मना । दृष्ट्वा तं शमनः क्रुद्धःपप्रच्छ सचिवं प्रति ॥

यम उवाच ।

अनेन किं कृतं कर्म पापं वा पुण्यमेव वा । समूलं वेद हे प्राज्ञ ! चित्रगुप्त ! ममाग्रतः ॥

चित्रगुप्त उवाच ।

सृष्टानि यानि पापानि विधात्रा पृथिवीतले । कृतान्यनेन मूढेन सत्यमेतन्मयोदितम् ॥
किं त्वाकर्णय लोकेश ! सुकृतं चास्य वर्त्तते । मन्येऽहं यमुनाभ्रातः !सर्वपापविलोपितत्

धर्मराज उवाच ।

किं पुण्यं वर्ततेऽमात्य वदसारं ममान्तिके । श्रुत्वैवं तद्विधास्यामि यत्र योग्योभवेदसौ

व्यास उवाच ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सभयश्चित्रगुप्तकः। कृत्वा हस्ताञ्जलिंप्राह चात्मनःस्वामिने द्विज !

चित्रगुप्त उवाच ।

हरणार्थं हरेर्द्रव्यं गतोऽसौ पापिनांवरः । प्रोज्झितःकर्दमोराजन्पादयोर्द्वारतो हरेः ॥
बभूव लिप्ता सा भूमिर्बिलच्छिद्रविवर्जिता । तेन पुण्यप्रभावेण निर्गतंपातकं महत् ॥

वैकुण्ठं प्रतियोग्योऽसौ निर्गतस्तव दण्डतः ॥ २९ ॥

व्यास उवाच ।

श्रुत्वा सवचनं तस्य पीठं कनकनिर्मितम् । ददौतस्मै चोपविष्टस्तत्र पूज्यो यमेन सः।
ननाम शिरसा तं वै प्रोवाच विनयान्वितः ॥ ३० ॥

यम उवाच ।

पवित्रं मन्दिरं मेऽद्य पादयोस्तव रेणुभिः ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥ ३१ ॥

इदानीं गच्छ भो साधो ! हरेर्मन्दिरमुत्तमम् । नानाभोगसमायुक्तं जन्ममृत्युनिवारणम्।

व्यास उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मराजोऽसौ स्यन्दने स्वर्णनिर्मिते ।
राजहंसयुते दिव्ये तमारोप्य गतैनसम् ॥ ३२ ॥

समस्तसुखदं स्थानं प्रेषयामास चक्रिणः । एवं प्रविष्टो वैकुण्ठे तत्र तस्थौसुखंचिरम्।
लेपनं ये प्रकुर्वन्ति भक्त्या तु हरिमन्दिरे । तेषांकिं वा भविष्यति न जानेऽहंद्विजोत्तमाः।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठेद्यो वा समाहितः । कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यत्येव न संशयः।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थेब्रह्मखण्डे हरिमन्दिरलेपनमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

———

तृतीयोऽध्यायः

कार्तिकमासमाहात्म्यकथनम् ।

शौनक उवाच ।

कार्त्तिकस्य च माहात्म्यं ब्रूहि सूत ! ममाग्रतः ।
तद्व्रतस्य फलं किं वा दोषं किं तदकुर्वतः ॥ १ ॥

सूत उवाच।

पुरैकदा मुनिश्रेष्ठ ! व्यासं सत्यवतीसुतम्। जैमिनिः पृष्टवानेतदारेभे कथितुं मुनिः॥

व्यास उवाच।

तिलतैलं मैथुनं यः शुभदे कार्त्तिके त्यजेत्। बहुजन्मकृतैःपापैर्मुक्तोयाति हरेर्गृहम्॥
मत्स्यं च मैथुनंयो वै कार्त्तिके न परित्यजेत्। प्रतिजन्मनि संमूढः शूकरश्च भवेद्ध्रुवम्
कार्त्तिके तुलसीपत्रैः पूजयेद्वै जनार्दनम्। पत्रेपत्रेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥
कार्तिके मुनिपुष्पैर्यः पूजयेन्मधुसूदनम्। देवानां दुर्लभं मोक्षं प्राप्नोति कृपया हरेः॥
कार्त्तिके मुनिशाकं वै योऽश्नाति च नरोत्तमः। संवत्सरकृतंपापं शाकेनैकेन नश्यति

फलं तस्य नरोऽश्नाति चोर्जे यो वै हरिप्रिये।
प्रदाय तु हरेर्ब्रह्मन्वृजिनं कोटिजन्मजम्॥ ८॥

सुरसं सर्पिषा युक्तं दद्याद्यो हरयेऽपिच। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सगच्छेद्धरिमन्दिरम्॥९॥
कार्तिके यो नरो दद्यादेकपद्मं हरावपि। अन्ते विष्णुपदं गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः॥
प्रातः स्नानं नरो योवै कार्तिके श्रीहरिप्रिये। करोति सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वातत्फलंलभेत्
कार्तिके यो नरोदद्यात्प्रदीपं नभसि द्विजः। विप्रहत्यादिभिःपापैर्मुक्तोगच्छेद्धरेर्गृहम्।
मुहूर्तमपि यो दद्यात्कार्त्तिके प्रीतये हरेः। दीपं नभसि विप्रेन्द्र! तस्मिंस्तुष्टःसदाहरिः।

यो दद्याच्च गृहे दीपं कृष्णस्य सघृतं द्विजः।
कार्तिके चाश्वमेधस्य फलंस्याद्वै दिने दिने॥ १४॥

प्रदीपस्य च माहात्म्यं विशेषमुच्यते मया। निशामय द्विजश्रेष्ठ सेतिहासं समाहितः॥
पूर्वं त्रेतायुगे विप्रो वैकुण्ठो नामतः शुचिः। यस्य सङ्गप्रभावेण मुक्तोभवति पातकी
एकदा कार्तिके सोऽपि प्रदीपं पुरतो हरेः। दत्त्वागृहं गतो विप्रो घृतपूर्णं द्विजर्षभ!।
सर्पिस्तत्खादितुं चाखुरागतोऽपि प्रदीपतः। यावत्खादितुमारेभे बोधितोऽसौप्रदीपकः
मूषकोऽग्निभयात्तत्र वेगेनापि पलायितः। आखोश्च सकलंपापं विनष्टं कृपया हरेः॥
सर्पेण दंशितश्चाखुःप्राणत्यागं चकारह। ततो यमाज्ञया दूताः पाशमुद्गरपाणयः॥
आगतास्तं समानेतुं बबन्धुश्चर्मरज्जुभिः। यावन्नेतुं मनश्चक्रुः शङ्खचक्रगदाधराः॥

आगता गरुडारूढा विष्णुदूताश्चतुर्भुजाः । विमानं गगनेचैव राजहंसयुतं शुभम् ॥ २२ ॥

निर्मितं कनकैः शुद्धैः कामगं कृपया हरेः ।

पाशं छित्त्वा ततो दूताः प्रोचुस्ते यमकिङ्करान् ॥ २३ ॥

विष्णुभक्तोऽप्यसौ मूढा व्यर्थं तु बन्धनं कृतम् ।

गच्छध्वं शमनप्रेष्या यदि वाञ्छाऽस्ति जीवितुम् ॥ २४ ॥

श्रुत्वा प्रकम्पितास्ते वै पृच्छन्ति विनयान्विताः ।

केन पुण्य प्रभावेण युष्माभिर्नीयते पुरम् ॥ २५ ॥

असौ विष्णोर्महापापी यूयं तद्वक्तुमर्हथ ॥ २६ ॥

विष्णुदूता ऊचुः ।

पुरतोवासुदेवस्य प्रदीपबोधनं कृतम् । तेनैव कर्मणा दूता नयामो विष्णुमन्दिरम् ॥

अनिच्छयाऽपि यः कुर्याद्विष्णोर्दीपस्य बोधनम् ।

कोटिजन्मार्जितं पापं त्यक्त्वा याति हरेर्गृहम् ॥ २८ ॥

भक्त्या प्रदीपं यो दद्यात्कार्तिके तु हरेर्दिने । तस्यपुण्यं समाख्यातुं न शक्तोहरिणाक्षि ॥

घृतपूर्णप्रदीपं यो भक्त्या दद्याद्धरेर्गृहे । अश्वमेधसहस्रेण तस्य किंवा प्रयोजनम् ॥

अश्वमेधप्रकर्ता यः स्वर्गंयाति हरेर्दिने । कार्तिके दीपदाता च सगच्छेद्धरिमन्दिरम् ॥

व्यास उवाच ।

इति श्रुत्वा ततो दूता गतास्ते वै यथाऽऽगताः ।

विष्णुदूता रथे कृत्वा गतास्तं विष्णुमन्दिरम् ॥ ३२ ॥

विष्णुसान्निध्य एवास्य मन्वन्तरशतं गतम् । ततो मर्त्ये राजकन्या बभूव कृपया हरेः ॥

पुत्रपौत्रसमायुक्ता चिरं भोगं चकार सा । ततःपुनर्गता सा तु गोलोकं हरिसेवया ॥

सूत उवाच ।

भक्त्या शृणोति यो मर्त्यो दीपमाहात्म्यमुत्तमम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति विष्णुमन्दिरम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे दीपदानमाहात्म्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

जयन्तीव्रतमाहात्म्यकथनम् ।

शौनक उवाच ।

जयन्त्याः सूत माहात्म्यं कदा सा क्रियते जनैः ।
कथयस्व मम त्वं वै पोतःसंसारसागरे ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामियत्पृष्टो मुनिसत्तम ! । पुरा ब्रह्मा नारदेन पृष्ट एतत्सुरालये ॥२॥

नारद उवाच ।

जयन्त्यश्चैव माहात्म्यं कथयस्व पितामह । यच्छ्रुत्वाऽहं गमिष्यामि तद्विष्णोःपरमंपदम्

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्वावहितो विप्र तवाग्रे कथयाम्यहम् । जयन्त्या उपवासेन विष्णुलोकं स गच्छति
स्मरणात्कीर्तनात्पापं सप्तजन्मार्जितं मुने ! । जयन्ती दहते तच्च किं पुनःसोपवासकृत्
जन्माष्टमी च नवमी चैत्रेमासि सिताशुभा । कृष्णा चतुर्दशी कुम्भे मेषेशुक्ला चतुर्दशी
दुर्गाष्टम्याश्विने शुक्ला द्वादशी श्रवणान्विता ।
महापुण्याश्च शुभदा जयन्त्यः षट् प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥
कृष्णजन्माष्टमी पूर्वा प्रसिद्धा पापनाशिनी । क्रतुकोटिसमाह्येषा तीर्थानामयुतैःसमा
कर्ता गवां सहस्रं तु यो ददाति दिनेदिने । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ।
हेमभारसहस्रं तु कुरुक्षेत्रे रविग्रहे । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥१०॥
कृष्णाजिनसहस्राणि तिलधेनुशतानि च । तत्फलंसमवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे
कन्याकोटि सहस्राणां दाने भवति यत्फलम् । तत्फलंसमवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे
स सागरामिमां पृथ्वीं दत्त्वा यल्लभतेफलम् । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यांसमुपोषणे
वापीकूपतडागादि कर्तव्यं देवतालये । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥

मातापित्रोर्गुरूणाञ्च भक्तियुक्तः करोति यः। तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यांसमुपोषणे

आपदा हरणार्थाय तीर्थसेवा कृतात्मनाम्।

सत्यव्रतानां यत्पुण्यं जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १६ ॥

गङ्गायां नर्मदायां यत्पुण्ये सारस्वते जले। स्नात्वा पुण्यमवाप्नोति जयन्त्यांसमुपोषणे

यत्पुण्यं श्राद्धकर्तृणां पितृणामिन्दुसंक्षये।

तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १८ ॥

नारद उवाच।

केन केन कृता पूर्वं कथयस्व पितामह ! ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच।

कार्तवीर्येण कर्णेन कुमारेण च धीमता। सगरेण दिलीपेन काकुत्स्थेन कृता पुरा

गौतमेन च गार्ग्येण जामदग्न्येन धीमता। वाल्मीकिनाकृतापूर्वं द्रौपदेयेन साधुना

ददाति वाञ्छितान्कामान्भाद्रकस्य सिताष्टमी। प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता विशेषेण मताऽ

वर्षेवर्षे प्रकर्तव्या प्रीत्यर्थे चक्रपाणिनः। कोटिजन्मार्जितं पापं मुहूर्तेन विलीयते

रात्रौ जागरणं कृत्वा निष्ठापूर्वं जितेन्द्रियः। गन्धपुष्पादि नैवेद्यैः पूजनीयः पृथक्पृ

एवं यः कुरुते विप्र ! जयन्तीसमुपोषणम्। कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः

प्रसादाद्देवकीसूनोर्यामार्द्धेन विलीयते। जयन्ती तिथिसम्प्राप्तौ भुञ्जते ये नराधमाः

त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुञ्जते ते न संशयः। सागराद्यानि तीर्थानि मुक्तिस्थानानि सर्व

गृहे तिष्ठन्ति सर्वाङ्गे जयन्तीव्रतकारिणः। तस्य सर्वाणि तीर्थानि देहे तिष्ठन्ति

करोति यो नरो भक्त्या जयन्तीं कृष्णवल्लभाम्। न वेदेन पुराणेन मया दृष्टं महामुने

तत्समं नाधिकं वापि कृष्णराधाष्टमीव्रतम्।

न करोति नरो भक्त्या स भवेत्क्रूरराक्षसः ॥ ३० ॥

यो नरोऽश्नाति मूढात्मा जयन्तीवासरे द्विज। महानरकमश्नाति यथा च हरिवासरे

अतीतमागमिष्यच्च कुलमेकोत्तरं शतम्। पतेत्तु नरके घोरे जयन्त्यां भोजनेन वै

जयन्ती बुधवारे च रोहिण्या सहिता यदा। भवेच्च मुनिशार्दूल! किं कृतैर्व्रतकोटिभिः

[...]ते त्रेतायुगे चैव द्वापरे च कलौयुगे। कृता सम्यग्विधानेन जयन्ती पापनाशिनी ॥
[...]गरे पद्मनाभस्य पुराणं पाठयेत्तु यः। आजन्मोपार्जितं पापं दहते तूलराशिवत् ॥३५

यः शृणोति नरो भक्त्या पुराणं हरिवासरे।
कोटिजन्मार्जितं तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥

[...]सरे पद्मनाभस्य पूजयेद्वाचकं मुनेः। कुलकोटिं समुद्धृत्य विष्णुलोके स पूज्यते ॥
[...]न्त्यामुपवासे च यो नरोऽत्र पराङ्मुखः। सर्वधर्मविनिर्मुक्तो यात्यसौ नरकं ध्रुवम्
[...]धपुष्पैश्च धूपैश्च घृतपूर्णप्रदीपकैः। पूजयेद्भक्तिभावैश्च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥३९॥
[...]विधिनाऽनेन यो विप्र जयन्तीं प्रकरोति च। नरो वै तारयेद्भक्त्या पुरुषानेकविंशतिम्।
[...]दौर्भाग्यं न वैधव्यं न भवेत्कलहो गृहे। सन्ततेर्न विरोधं च न पश्यति धनक्षयम्।

यान्यांश्चिकीर्षते कामाञ्जयन्तीसमुपोषकः।
तांस्तान्प्राप्नोति सकलान्विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४२ ॥
विष्णुभक्तिपरा नित्यं जयन्तीव्रतमानसाः।
ते धन्यास्ते कुलीनास्त ईश्वरास्ते च पण्डिताः ॥ ४३ ॥

[...]नि कानि च तीर्थानिव्रतानिनियमानिच। जयन्तीवासरस्यैवकलांनार्हन्तिषोडशीम्
[...]द्वे वै चोभये पक्षे यः करोतिसभार्यकः। राधाकृष्णाष्टमीं वत्स!प्राप्नोति हरिसन्निधिम्
[...]तं च पुण्यकारं च यः करोति सदाहरेः। स याति विष्णोर्वैकुठं जयन्तीसमुपोषकः
[...]चारं कुलभ्रष्टं कीर्तिहीनं कुयोनिजम्। नाशयत्याशु पापं च जयन्ती हरिवल्लभा ॥
[...]तुल्यानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। न निर्दहति सर्वाणि जयन्त्यां समुपोषकः ॥
[...]र्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्। मोक्षार्थी लभते मोक्षं जयन्त्यां समुपोषकः
[...]न्तीकरणे चित्तं येषां भवति तत्परम्। यमोऽपि शङ्कतेनित्यं ते यान्ति परमांगतिम्

सूत उवाच।

[...]थयित्वा नारदं तु ययौ स च यथाऽऽगतः। मयाऽपि कथितं ब्रह्मन्यत्पृष्टोऽहंत्वया मुने

माहात्म्यं च जयन्त्या ये शृण्वन्ति भक्तिभावतः।
तेऽपि यान्ति परं धाम विमुक्ताः सर्वपातकैः ॥ ५२ ॥

पुराणवाचकं ब्रह्मञ्जयन्तीव्रतिनं तथा। ये पश्यन्ति नराः पापास्ते यान्ति परमं पदम्॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे जयन्तीव्रतमाहात्म्यं नाम
चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

स्त्रीणां पुत्राराहित्यत्वादिप्रतिबन्धककारणानां कथनम्

शौनक उवाच।

कथयस्व महाप्राज्ञ! पुत्रहीनो जनो भवेत्। कर्मणाकेन वै सूत! पुत्रो भवति केन च॥

सूत उवाच।

एतत्पृष्टः पुराब्रह्मा नारदेन महात्मना। स यदाह तदा तं च शृणुष्व मुनिपुङ्गव!॥

नारद उवाच।

पितामह! महाप्राज्ञ! सर्वतत्त्वार्थपारग!। अपुत्रो वै भवेन्मर्त्यः कर्मणाकेन पद्मज॥
वन्ध्या स्त्री वा भवेत्केन वृजिनेन ममाग्रतः। कथय शृण्वतो वै मे सर्वप्राणिहिताय च॥
दुहिता जायते केन कर्मणा वा नपुंसकः। मृतवत्सो भवेत्केन मृतवत्सातिदुःखिता॥
केन पुण्येन भो ब्रह्मन्पुनः पुत्रो भवेद्वद॥ ५॥

ब्रह्मोवाच।

कथयामि समासेन सावधानेन तच्छृणु। वृत्तान्तं पृच्छसि त्वं वै शृण्वतां विस्मयप्रदम्॥
पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो वर्तनं ब्राह्मणस्य च। हरेद्वा हारयेदत्र पुत्रहीनो भवेत्किल॥
इह जन्मनि यो मर्त्यः पुराणश्रवणं हि च। स सस्यभूमेर्दानं च कुर्याद्वै श्रद्धयान्वितः॥
धेनुं बहुगुणां हैमीं बहुदुग्धां सदक्षिणाम्। सुवर्णप्रतिमां चैव तस्य पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥
पूर्वजन्मनि या नारी परबालकघातनम्। करोति कपटेनैव बालहीना भवेद्ध्रुवम्॥
सौवर्णं प्रतिमादानं या नारी श्रद्धयान्विता। कुर्यात्पानं ब्राह्मणस्य भक्त्या वै चरणाम्बु

पुराणश्रवणं चैव दद्याद्वै बहुदक्षिणाम् । बहुपत्या जीववत्सा भवेन्नास्त्यत्र संशयः ।
जले निमग्नं बालं यो दृष्ट्वा या न समुद्धरेत् ।
इहजन्मन्यपुत्रो वै साऽपुत्री च भवेद्ध्रुवम् ॥१३॥
वृषभं चैव कूष्माण्डं ससुवर्णसवस्त्रकम् । दद्याद्दानं ब्राह्मणस्य कुर्याद्बालव्रतंशुभम् ॥
गौरीं कन्यां तथा कुर्यात्पुराणश्रवणं हि यः । पुत्रो वै जायते तस्य सर्वपातकनाशनम्
पूर्वजन्मनि यो मर्त्यो निराशं चातिथिं द्विज !
कुर्यात्क्रोधेन दण्डं च पुत्रहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ १६ ॥
ब्राह्मणं चातिथिं चैव कुर्याद्भक्त्या प्रपूजनम् । अन्नदानं जलंचैव तथादेवालयं शुभम् ।
पूर्वजन्मनि या नारी भ्रूणहत्यां च योनरः । कुर्यात्सा मृतवत्सा च मृतवत्सोभवेद्ध्रुवम्
या नारी स्वामिसहिता कुर्याच्च हरिवासरम् ।
सुपुत्रा भर्तृ सुभगा भवेत्सा प्रति जन्मनि ॥ १९ ॥
यो नरो गोदमं कुर्याच्छूद्रः कुर्याद्विमोहितः । ब्राह्मणीहरणं वापि कर्मणा स नपुंसकः
इदं तु वृजिनं कृत्वा पश्चात्पुण्यं करोतियः । इह पुण्यप्रभावेण दुहिता जायते द्विज !
आसीत्त्रेतायुगे राजाश्रीधरो नामतो द्विज ! अपुत्रो धनवांस्तस्य जायाहेमप्रभावती ॥
व्यासं सकलशास्त्रज्ञं सर्वलोकहितैषिणम् । आगतं चैव पप्रच्छ चापुत्रोऽहं कथंद्विज !
उवाच नृपतेः श्रुत्वा वचनं विनयान्वितम् । राज्ञा दत्ते च पीठे च निर्मिते कनकादिभिः
राजा राज्ञी तस्य पादौ धौतौ कृत्वा च हर्षितौ ।
पीत्वा पादोदकं द्वौ च सर्वपातकनाशनम् ॥ २५ ॥

व्यास उवाच ।

राजञ्छृणुष्व यत्पृष्टमपुत्रो येन कर्मणा । तवेयं राज्ञी चापुत्री चैकपत्नीव्रतस्तथा ॥ २६
पूर्वजन्मनि चन्द्रस्त्वं नाम्ना वरतनुः स्मृतः ।
भार्या तवापि शुभ्राङ्गी नाम्ना वै शङ्करी स्मृता ॥ २७ ॥
एकदा पथियातौ च नीचपुत्रं जलेऽपि च । मग्नं दृष्ट्वा हेलया च गतौ स पञ्चतांगतः
बहुपुण्यप्रभावेण राज्ञी राजा गतौ युवाम् । तेन कर्मविपाकेन युवयोर्न भवेत्सुतः ॥

राजोवाच

इदानीं केनपुण्येन सुतो वै जायते प्रभो! । अपुत्रस्य मनुष्यस्य जीवनं हि निरर्थकम् ।

व्यास उवाच ।

सवस्त्रं चैव कूष्माण्डं वृषभं ससुवर्णकम् । देहि दानं ब्राह्मणस्य कुरु बालव्रतं तथा ।
गौरीं कन्यां तथा देहि पुराणश्रवणं कुरु । पुत्रो वै जायते तत्र सर्वपातकनाशनम् ।

ब्रह्मोवाच ।

इति श्रुत्वा ततो राजा व्यासोक्तं दानमुत्तमम् । पुराणश्रवणं चैव चकार गतकिल्बिषः ।
ततः पुत्रो वर्षमध्ये बभूव सर्वपूजितः । अभूद्राजा सार्वभौमः सुन्दरः कुलनायकः ।

सूत उवाच ।

य इदं शृणुयाद्भक्त्या करोति दानमुत्तमम् । अपुत्रो लभते पुत्रं संक्षेपात्कथितं मया ।
भक्त्या श्रुत्वा तु या नारी कुर्याद् ब्राह्मणपूजनम् ।
सुपुत्रा सा भवेन्नित्यं शास्त्रोक्तविधिना द्विज !। ३६ ॥
सुवर्णं रजतंवस्त्रं पुष्पमाल्यं च चन्दनम् । यो दद्यात्पुस्तके भक्त्या सर्वपापप्रणाशनम् ।
पूर्वजन्मनि यो मूढो ब्रह्मबालकघातकः । तस्य क्रूरो भवेत्पुत्रः सप्तजन्मान्तरैर्द्विजः ।
इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे कर्मविपाककथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

विष्णोर्ब्राह्मणस्य च मन्दिरलेपनादिमाहमावर्णनम्

शौनक उवाच ।

केन पुण्येन भो सूत! वैकुण्ठं समवाप्यते । तद्वदस्व शृण्वतो मे पोतो हि भवसागरे ।

सूत उवाच ।

साधुसाधु मुनिश्रेष्ठ! सर्वमङ्गलकारक! । कथयामि समासेन शृण्वतां पापनाशनम् ।

विष्णवे ब्राह्मणायैव मृदा वेश्मविनिर्मितम् ।
यो वै दद्याद् द्विजश्रेष्ठ ! तस्यपुण्यं निशामय ॥ ३ ॥
विष्णुलोके च विप्रः स सर्वपापविवर्जितः । सौधवासी भवेन्नित्यं विष्णुलोके प्रपूज्यते
विष्णवे सौधगेहं यो दद्याद्वै ब्राह्मणाय च । हरेर्निकेतनं प्राप्य स्वर्गवासी भवेद्ध्रुवम्
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा युक्तः कोटिकुलैर्द्विज !
स्वर्णसौधे गृहे स्थित्वा कुर्याद्भोगं यथासुखम् ॥ ६ ॥
ब्राह्मणस्थापने पुण्यं यद्वै भवति भोमुने ! । सङ्ख्यां कर्तुमशक्तस्तु तद्वेधाः सर्वकारकः
गण्यन्ते रेणवश्चैव गण्यन्ते वृष्टिविन्दवः । न गण्यते विधात्रादि ब्रह्मसंस्थापने फलम्
नारदेन पुरा ब्रह्मा पृष्टः संसारसम्भवः । वेधास्तं कथयामास तच्छृणुष्व महामुने ! ॥
पुराऽऽसीद्द्वापरे ब्रह्मन्वारनारी सुशोभना । सुकेशी हरिणीनेत्रा सुमध्या चारुहासिनी
नाम्ना सा चञ्चलापाङ्गी ययौ देशान्तरं कदा । सर्वपापसमायुक्ता नरके पातयन्ति च
सह जारेण सा वित्तकामादेवालयं गता । तत्र क्षणं सोपविष्टा ताम्बूलभक्षणं कृतम् ।
शेषं चूर्णं सौधभित्तौ दत्त्वा निम्ने कुतूहलात् । ततोगता जारकाङ्क्षी धनार्थंनगरंप्रति
जारेण केनचित्सार्द्धं सङ्केतः सहसा कृतः । सङ्केतं तु गता वेश्या वनं रात्रौ विमोहिता
सङ्केतं नागतो वैश्यो व्यशङ्किष्ट विलोकिता ।
कथं कान्तो नागतो मे सर्पव्याघ्रैश्चभक्षितः ॥ १५ ॥
सङ्केतनं कथं हित्वा गतः किं कामविह्वलः । अन्यया ज्ञातया सार्द्धमभिलाषी भवेत्किमु
परामृश्येति ह्यन्तः कोटपालभयाद् द्विज ! । नगरं नागता सा हि लोकमार्गे तमोवृते ।
एतस्मिन्नन्तरे व्याघ्रः कामरूपी क्षुधातुरः । प्रेषितः कालदेवेनाग्रसदागत्य तां द्विज !॥
ततस्तु यमुनाभ्रातुर्दूतास्ते भीमवर्ष्मिणः । आगता गिरिकूटाङ्गा नेतुं तां पापकर्मणा ।
वक्रपादावक्रमुखा उन्नासा बहुदंष्ट्रिणः । चर्मरज्जूर्मुद्गरांश्च गृहीत्वा पांसुलान्द्विज ! ॥
बन्धयामासुरुन्मत्ता गणिकां चर्मरज्जुभिः । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः ॥
प्रेषिता देवदेवेन तद्भक्तवत्सलेन च । कृष्णजीमूतसङ्काशाः स्फुरद्वदनपङ्कजाः ॥ २२ ॥
श्रेणीधराश्चारुनासा दिव्यकुण्डलभूषिताः । ददृशुः पथिगच्छन्तो विष्णोर्दूताःमहाबलाः

विष्णुदूता ऊचुः ।

के यूयं विकृताकारा लक्ष्यध्वे कर्बुरा इव ।
इमां विष्णोः प्रियतमां नीत्वा क्व व्रजथोत्तमाम् ॥ २४ ॥

इदं वचनमाकर्ण्य तेषां ते तु द्रुतं ययुः । अथ ते क्रोधसम्पन्ना विष्णोर्दूता महाबलाः ।
जघ्नुस्ते सन्देशहरान्यमस्य जगतः प्रभोः । चक्रादिशस्त्रसङ्घैश्च सूर्यकोटिसमप्रभैः ॥
कृतान्तस्य भटाः सर्वे रुदन्तस्ते पलायिताः । यमं प्रोचुः सुभीताश्च वृत्तान्तं सकलं द्विज ।

यमोऽपि तत्कथां श्रुत्वा चित्रगुप्तमुवाच ह ॥ २७ ॥

धर्म उवाच ।

केन पुण्येन भो मन्त्रिन्वेश्या मुक्तिं समागता । एतन्मे पृच्छतः सर्वं कथयस्व यथा

चित्रगुप्त उवाच ।

तया पापान्यर्जितानि जन्मतः सुबहून्यपि । किंत्वाकर्णय लोकेश ! यदस्याः पुण्यमस्ति
गणिकैकदा धर्मराज सर्वालङ्कारभूषिता । काञ्चित्पुरीं जगामाशु जारकामा धनार्थिनी ।

तत्र देवालये तस्मिन्स्थित्वा ताम्बूलभक्षणम् ।
कृत्वा तच्छेषचूर्णं तु ददौ भित्तौ तु कौतुकात् ॥ ३१ ॥

तेन पुण्यप्रभावेण गणिका गतपातका । वैकुण्ठंप्रति सा याति निर्गता तव दण्डतः ।

सूत उवाच ।

इति श्रुत्वा ततो दूता यमोऽपि वचनं द्विज ! व्यापारे चान्यतश्चित्तं ददुः सा गणिकापि
आरूढा स्यन्दने दिव्ये राजहंसयुते तथा । विष्णुलोकं ययौ सा च वेष्टिता विष्णुकिङ्करैः
श्रीविष्णोराज्ञया सार्थ कुलकोटियुताऽपि च । तस्थौ सौधगृहे विप्र ! नानाभोगं चकार
भक्त्या यो वै हरेर्गेहे दद्याच्चूर्णं प्रयत्नतः । पुण्यं किं वा भवेत्तस्य न जाने द्विजपुङ्गव

भक्त्याऽध्यायं पठेद्यो वै शृणोति सादरोऽपि च ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यात्यसौ हरिमन्दिरम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

भाद्रशुक्लपक्षे राधाजन्माष्टमीमाहात्म्यम्

शौनक उवाच ।

कथयस्व महाप्राज्ञ! गोलोकं याति कर्मणा । सुमते दुस्तरात्केन जनः संसारसागरात् ।
राधायाश्चाष्टमीं सूत तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

ब्रह्माणं नारदोऽपृच्छत्पुरा चैतन्महामुने । तच्छृणुष्वसमासेन पृष्टवान्स यथा द्विज ! ।

नारद उवाच ।

पितामह,! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविदांवर ! । राधाजन्माष्टमी तात कथयस्व ममाग्रतः ॥
तस्याःपुण्यफलं किं वा कृतं केन पुरा विभो ! ।
अकुर्वतां जनानां हि किल्बिषं किं भवेद्विभो ! ॥ ४ ॥
केनैव तु विधानेन कर्तव्यं तद्व्रतं कदा । कस्माज्जाता च सा राधातन्मे कथयमूलतः

ब्रह्मोवाच ।

राधाजन्माष्टमीं वत्स! शृणुष्व सुसमाहितः । कथयामि समासेन समग्रं हरिणा विना
कथितुं तत्फलं पुण्यं न शक्नोत्यपि नारद । कोटिजन्मार्जितं पापं ब्रह्महत्यादिकंमहत् ।
कुर्वन्ति ये सकृद्भक्त्या तेषां नश्यति तत्क्षणात् । एकादश्याःसहस्रेण यत्फलं लभतेनरः
राधाजन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा यत्फलमाप्यते ॥ ६ ॥
सकृद्राधाष्टमीं कृत्वा तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
कन्यादानसहस्रेण यत्पुण्यं प्राप्यते जनैः ॥ १० ॥
वृषभानुसुताष्टम्या तत्फलं प्राप्यते जनैः । गङ्गादिषु च तीर्थेषु स्नात्वा तु यत्फलंलभेत्
कृष्णप्राणप्रियाष्टम्या फलं प्राप्नोति मानवः । एतद्व्रतं तु यःपापी हेलया श्रद्धयाऽपि वा

करोति विष्णुसदनं गच्छेत्कोटिकुलान्वितः । पुरा कृतयुगे वत्स! वारनारी सुशोभना
सुमध्या हरिणीनेत्रा शुभाङ्गी चारुहासिनी ।
सुकेशी चारुकर्णी च नाम्ना लीलवती स्मृता ॥ १४ ॥
तयाबहूनि पापानि कृतानि सुदृढानि च । धनाशया चैकदा सा निस्सृत्य पुरतःस्वत
गतान्यनगरं तत्र दृष्ट्वा सुज्ञजनान्बहून् । राधाष्टमी व्रतपरान्सुन्दरे देवतालये ॥१६॥
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्नानाविधैःफलैः । भक्तिभावैःपूजयतो राधाया मूर्तिमुत्तमाम्॥
केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति पठन्ति स्तवमुत्तमम् । तालवेणुमृदङ्गांश्च वादयन्ति च केचि
तांस्तांस्तथाविधान्दृष्ट्वा कौतूहलसमन्विता ।
जगाम तत्समीपं सा पप्रच्छ विनयान्विता ॥ १९ ॥
भोभोःपुण्यात्मानो यूयं किं कुर्वन्तो मुदान्विताः ।
कथयध्वं पुण्यवन्तो मां चैव विनयान्विताम् ॥ २० ॥
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा परकार्यहितेरताः । आरेभिरे तदा वक्तुं वैष्णवा व्रततत्पराः
राधाव्रतिन ऊचुः ।
भाद्रेमासि सिताष्टम्यां जाता श्रीराधिकायतः । अष्टमी साद्य सम्प्राप्ताकुर्महेतांप्रयत्न
गोघातजनितं पापं स्तेयजं ब्रह्मघातजम् । परस्त्रीहरणाच्चैव तथा च गुरुतल्पजम्
विश्वासघातजं चैव स्त्रीहत्याजनितं तथा । एतानि नाशयत्याशु कृताया चाष्टमीनृणा
तेषां च वचनं श्रुत्वा सर्वपातकनाशनम् ।
करिष्याम्यहमित्येव परामृश्य पुनः पुनः ॥ २५ ॥
तत्रैव व्रतिभिःसार्द्धं कृत्वा सा व्रतमुत्तमम् । दैवात्सा पञ्चतां याता सर्पघातेन वि
ततो यमाज्ञया दूताश्पाशमुद्गरपाणयः । आगतास्तां समानेतुं बबन्धुरतिकृच्छ्रतः ॥२
यदानेतुं मनश्चक्रुर्यमस्य सदनं प्रति । तदाऽऽगता विष्णुदूताःशङ्खचक्रगदाधराः ॥ २
हिरण्मयं विमानं च राजहंसयुतं शुभम् । छिन्नं च चक्रधाराभिः पाशंकृत्वात्वरान्वि
रथे चारोपयामासुस्तां नारीं गतकिल्बिषाम् ।
निन्युर्विष्णुपुरं ते च गोलोकाख्यं मनोहरम् ॥ ३० ॥

कृष्णेन राधया तत्र स्थिता व्रतप्रसादतः । राधाष्टमी व्रतं तात यो न कुर्याच्चमूढधीः
नरकान्निष्कृतिर्नास्ति कोटिकल्पशतैरपि । स्त्रियश्च या न कुर्वन्ति व्रतमेतच्छुभप्रदम् ।
राधाविष्णोःप्रीतिकरं सर्वपापप्रणाशनम् । अन्तेयमपुरीं गत्वा पतन्ति नरके चिरम् ॥

कदाचिज्जन्म चासाद्य पृथिव्यां विधवा ध्रुवम् ।
एकदा पृथिवी वत्स ! दुष्टसङ्घैश्च ताडिता ॥ ३४ ॥
गौर्भूत्वा च भृशं दीना चाययौ सा ममान्तिकम् ।
निवेदयामास दुःखं रुदन्ती च पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
तद्वाक्यं च समाकर्ण्य गतोऽहं विष्णुसन्निधिम् ।
कृष्णे निवेदितश्चाशु पृथिव्या दुःखसञ्चयः ॥ ३६ ॥

तेनोक्तं गच्छ भोब्रह्मन्देवैःसार्द्धं च भूतले । अहं तत्रापि गच्छामि पश्चान्ममगणैः सह ।
तच्छ्रुत्वा सहितोदेवैरागतः पृथिवीतलम् । ततः कृष्णः समाहूय राधांप्राणगरीयसीम्
उवाच वचनं देवि ! गच्छेऽहं पृथिवीतलम् । पृथिवीभारनाशाय गच्छत्वंमर्त्यमण्डलम्
इति श्रुत्वाऽपि सा राधाऽप्यागता पृथिवीं ततः । भाद्रेमासिसितेपक्षे अष्टमीसंज्ञकेतिथौ

वृषभानोर्यज्ञभूमौ जाता सा राधिका दिवा ।
यज्ञार्थं शोधितायां च दृष्टा सा दिव्यरूपिणी ॥ ४१ ॥

राजाऽऽनन्दमनाभूत्वा तां प्राप्य निजमन्दिरम् । दत्तवान्महिषींहस्ते सा च तां पर्यपालयत्
इति ते कथितं वत्स ! त्वयापृष्टं च यद्वचः । गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

सूत उवाच ।

य इदं शृणुयाद्भक्त्या चतुर्वर्गफलप्रदम् । सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे श्रीराधाष्टमी
माहात्म्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

———

अष्टमोऽध्यायः

समुद्रमथनकथावर्णनम्

शौनक उवाच ।

समुद्रमथनं सूत पुराकस्मात्कृतं गुरो । हृदये कौतुकं जातं श्रोतुं मे वद चामरैः ॥१॥

सूत उवाच ।

ब्रह्मन्वच्मि समासेन सिन्धोर्मथनकारणम् । दुर्वासःसेन्द्रसंवादमितिहासं शृणुष्वतम्

महातपा महातेजा दुर्वासाईश्वरांशजः । ब्रह्मर्षिः प्रययौ स्वर्गमिन्द्रंद्रष्टुं स चैकदा ॥३॥

तस्मिन्ददर्शकाले तं गजारूढं शचीपतिम् । दृष्ट्वा स्रजं पारिजातां ददौतस्मैमहामुनिः

गृहीत्वा तां स्रजंचेन्द्रो विन्यस्य गजमूर्द्धनि । देवराट् प्रययौ ब्रह्मन्ससैन्योनन्दनं प्रति

हस्ती चादायतां मालांछित्त्वा तु धरणीतले । चिक्षेप च महाक्रुद्धस्तमित्याहमहामुनिः

त्रैलोक्यैकश्रिया युक्तो यस्मात्त्वमवमन्यसे ।
तव त्रैलोक्यश्रीर्नष्टा भवत्येव न संशयः ॥ ७ ॥

ततः शक्रोजगामाशु सुसश्च स्वपुरं पुनः । ददर्श जगतां माता चान्तर्द्धानं गता स्वयम्

तस्यामन्तर्हितायां तु सर्वं नष्टं जगत्त्रयम् । क्षुत्पिपासान्विताःसर्वे चुक्रुशुर्वैनिरन्तरम्

न ववर्षुर्वारिवाहाः शुष्काश्चैव जलाशयाः । सर्वे ते शाखिनःशुष्काःफलपुष्पविवर्जिताः

क्षुत्पिपासार्दिताःसर्वे ब्रह्मणःसन्निधिं ययुः । तं सर्वे कथयामासुर्दुःखशोकं पितामहम्

देवानां वचनं श्रुत्वा धाता देवगणैः सह । भृग्वादिमुनिभिश्चैव प्रययौ क्षीरसागरम्

विष्णुं समर्चयामास क्षीराब्धेरुत्तरे तटे । मन्त्रमष्टाक्षरं वेधा जपन्ध्यायन्जगत्पतिम्

ततः प्रसन्नो भगवान्सर्वेषां च दिवौकसाम् । वैनतेयं समारुह्य चागतः सदयः प्रभुः

पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दृष्ट्वा तं जगतामीशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥ १५ ॥

विष्णुं भवोदधेःपोतं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कमानन्दाश्रुपरिप्लुताः

तुष्टुवुर्जयशब्देन नमश्चक्रुर्निरन्तरम् ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वरंवृणीध्वं भो देवाः कस्माद्यूयं समागताः । वरदोऽस्मि तद्वदतवोददामि च नान्यथा

देवा ऊचुः ।

कृपालो ब्रह्मशापेन सम्पद्धीनं जगत्त्रयम् । क्षुत्पिपासार्दितं नाथ! स देवासुरमानुषम् ।
रक्ष सर्वानिमाँल्लोकान्याताः स्म शरणं तव ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

इन्दिरा ब्रह्मशापेन चान्तर्द्धानं गतासुराः । यस्याः कटाक्षमात्रेण जगदैश्वर्यसंयुतम् ॥
तदा यूयं सुराः सर्वे चोत्पाट्यस्वर्णपर्वतम् । मन्दरं घर्घरंकृत्वा सर्पराजेन वेष्टितम् ॥
कुरुध्व मथनं देवाः सदैत्याः क्षीरवारिधेः ।
तस्मादुत्पत्स्यते लक्ष्मीर्जगन्माता च भोः सुराः ॥ २१ ॥
तया दृष्टा महाभागा भविष्यति न संशयः । धारयाम्यहमेवाद्रिं कूर्मरूपेण सर्वतः ॥
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुरन्तर्द्धानं जगामसः । जग्मुः सुरासुरासर्वे समुद्रं द्विजपुङ्गव ! ॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे समुद्रमथनोद्योगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

समुद्रमथनकथावर्णनम्

सूत उवाच ।

ततोऽमरगणास्ते च सगन्धर्वाः सदानवाः । उत्पाट्यमन्दरंशैलं चिक्षिपुः पयसांनिधौ
ततः सनातनः श्रीमान्दयालुर्जगदीश्वरः । अधारयद्गिरेर्मूलं कूर्मरूपेण पृष्ठतः ॥ २ ॥
अनन्तं तत्र संवेष्ट्य ममन्थुर्दुग्धसागरम् । एकादश्यां मथ्यमाने चोद्भूतं प्रथमं द्विज !
कालकूटविषं ते तु दृष्ट्वा सर्वे प्रदुद्रुवुः । ततस्तान्विद्रुतान्दृष्ट्वा शङ्करश्चोक्तवानिदम् ।
भोभोऽमरगणा यूयं विषं कुरुत मे करे । वारयिष्याम्यहं तूर्णं कालकूटं महाविषम् ॥

इत्युक्त्वा पार्वतीनाथो ध्यायन्नारायणं हृदि। महामन्त्रं समुच्चार्य विषमादद्भयङ्करम्॥
महामन्त्रप्रभावेण विषं जीर्णमभून्महत्। अच्युतानन्तगोविन्द इतिनामत्रयं हरेः॥७॥
यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तिकम्।
विषभोगाग्निजं तस्य नास्ति मृत्योर्भयं तथा॥ ८॥
प्रहृष्टमनसो देवा ममन्थुः क्षीरसागरम्। ततोऽलक्ष्मी समुत्पन्ना कालास्यारक्तलोचना
रूक्षपिङ्गलकेशा च जरतीं बिभ्रती तनुम्। सा च ज्येष्ठाऽब्रवीद्देवान्किंकर्तव्यं मयेति वै
देवास्तथाऽब्रुवंस्तां च देवीं दुःखस्य भाजनम्। येषां नृणां गृहे देवि कलहः सम्प्रवर्तते
तत्र स्थानं प्रयच्छामो वसज्येष्ठे! शुभान्विता। निष्ठुरं वचनं ये च वदन्ति येऽनृतं नराः
सन्ध्यायां ये हि चाश्नन्ति दुःखदा तिष्ठ तद्गृहे।
कपालकेशभस्मास्थितुषाङ्गाराणि यत्र तु॥ १३॥
स्थानं ज्येष्ठे! तत्र तव भविष्यति न संशयः।
अकृत्वा पादयोर्धौतिं ये चाश्नन्ति नराधमाः॥ १४॥
तद्गृहे सर्वदा तिष्ठ दुःखदारिद्र्यदायिनी। बालुकालवणाङ्गारैः कुर्वन्ति दन्तधावनम्॥
तेषां गेहे सदा तिष्ठ दुःखदा कलिना सह। छत्राकं श्रीफलं शिग्रुं ये खादन्ति नराधमाः
गेहे तेषां तव स्थानं ज्येष्ठे कलुषदायिनि। तिलपिष्टमलावुं ये गृञ्जनं पोतिकादलम्॥
कलम्बुकं पलाण्डुं ये चाश्नन्ति पापबुद्धयः। तेषां गृहे तव स्थानं भविष्यति न संशयः
गुरुदेवातिथीनां च यत्र पूजा न विद्यते। यत्र वेदध्वनिर्नास्ति तत्र तिष्ठ सदाऽशुभे!॥
दम्पत्योः कलहो यत्र पितृदेवार्चनं न वै। दुरोदररता यत्र तत्र तिष्ठ सदाऽशुभे!॥२०॥
परदाररता यत्र परद्रव्यापहारिणः। विप्रसज्जनवृद्धानां यत्र पूजा न विद्यते॥ २१॥
तत्र स्थाने सदा तिष्ठ पापदारिद्र्यदायिनी। इत्यादिश्य सुराज्येष्ठां सर्वे तां कलिवल्लभाम्
क्षीराब्धेर्मथनं चक्रुः पुनस्ते सुसमाहिताः॥ २२॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे समुद्रमथनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

———

दशमोऽध्यायः

ऐरावतादीनामुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच ।

ऐरावतस्ततो जज्ञे तथैवोच्चैःश्रवाहयः । धन्वन्तरिःपारिजातःसुरभीश्चाप्सरोगणः ॥१
ततःप्रभातसमये द्वादश्यामुदिते रवौ । उत्पन्ना श्रीमहालक्ष्मीःसर्वलक्षणशोभिता ॥२
ददृशुस्तां महादेवीं मातरं धर्मदेवताः । प्रहृष्टाःसर्वजन्तूनां श्रीकृष्णहृदयालयाम् ॥३॥

लक्ष्मीभ्राता शीतरश्मिर्जातश्च सुधया ततः ।
उत्पन्ना सा हरेर्जाया तुलसी लोकपावनी ॥ ४ ॥

तं शैलं पूर्ववत्स्थाप्य परिपूर्णमनोरथाः । समेत्य मातरंस्तुत्वा जेपुःश्रीसूक्तमुत्तमम् ॥
ततःप्रसन्ना सादेवी सर्वान्देवानुवाचह । वरं वृणीध्वं भद्रं वो वरदाऽहं सुरोत्तमाः ॥

देवा ऊचुः ।

प्रसीद कमलेदेवि सर्वमातर्हरिप्रिये । त्वया विना जगच्छून्यं कुरुप्राणप्ररक्षणम् ॥७॥
इत्युक्ता सा महालक्ष्मीः प्राह नारायणप्रिया । इदानीं सर्वजन्तूनां प्राणरक्षां करोम्यहम्
ततो नारायणश्रीमाञ्छङ्खचक्रगदाधरः । आविर्बभूव सहसा दयालुर्जगदीश्वरः ॥ ६ ॥
ततस्ते तुष्टुवुर्देवाः प्रणम्य जगतांपतिम् । कृताञ्जलिपुटाःप्रोचुर्हर्षगद्गदभाषिणः ॥ १० ॥
गृहाण मातरं विष्णो ! महिषीं वल्लभां तव । संसाररक्षणार्थाय लक्ष्मीमनपगामिनीम्
यावत्प्रतिज्ञां नो चक्रे तावत्प्राहेन्दिरा हरिम् ॥ ११ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

अविवाह्य कथं ज्येष्ठामलक्ष्मीं मधुसूदन । तस्याः कनिष्ठां मां नाथव्युदूढां कर्तुमिच्छसि
ज्येष्ठायां च स्थितायां वै कनिष्ठा परिणीयते ॥ १२ ॥

सूत उवाच ।

इति श्रुत्वा ततो विष्णुर्ददौ चोद्दालकाय च । वेदवाक्यानुरूपेण ह्यलक्ष्मीं निर्जरैःसह

ततो नारायणःश्रीमाल्लँक्ष्मीमङ्गीचकारह। ततःसुरगणाः सर्वे नभश्चक्रुः पुनः पुनः।
अथ ते चा सुरान्सर्वाञ्जघ्नुःसर्वे बलाधिकाः। सर्वे ते क्रन्दमानाश्च गताश्चैव दिशो
सुधां तत्खादितुं चक्रुर्देवाःपङ्क्तिं यथाक्रमम्।
श्रीविष्णोराज्ञया सर्वे चोचुश्चैव परस्परम् ॥ १६ ॥
त्वं च देहि त्वं च देहि त्वं च देहीति चाब्रुवन्।
न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मीति चाब्रुवन् ॥ १७ ॥
ततो विष्णुःसमुत्तस्थौ स्त्रीरूपं च दधार ह। चकार स्वर्णपात्रेण पीयूषपरिवेषणम्
पीयूषभक्षणं राहुर्यावत्कुर्याद्द्विजोत्तम!। चन्द्रसूर्यौ चोक्तवन्तौ राक्षसोऽसौ छलात्
ततःक्रुद्धो जगन्नाथो जघान स्वर्णपात्रतः। शिरस्तस्य पपातोर्व्यां केतुर्नाम्ना बभूव
राहुकेतू ततस्तूर्णं गतौ तौ भयविह्वलौ। इदानीं तद्दिनेप्राप्ते चन्द्रसूर्यौ स युध्यति
कुर्याद्ग्रासं सैंहिकेयस्तत्क्षणं दुर्लभं भवेत्। सर्वं गङ्गासमं तोयं वेदव्याससमाद्विजाः
स्नाति वायसतीर्थे यो गङ्गास्नानफलंलभेत्। दानमक्षयपुण्यंस्यात्कोटिजन्मार्जितं
पापं नश्येत्समूलं च किं पुनःक्रतुकोटिभिः। विद्यार्थी लभते विद्यां पुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात्
मोक्षार्थी लभते मोक्षं मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
इति ते कथितं विप्र समुद्रमथनं तु तत् ॥ २५ ॥
इति श्रीपाद्मे महापुराणे चतुर्थे ब्रह्मखण्डे सूतशौनकसंवादे समुद्रमथनं नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

गुरुवारव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

शौनक उवाच।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व यथार्थतः। हरिस्वरूपिणा साक्षाद्वेदव्यासेन भाषितम्
निरहङ्कार हे सूत! लोकानुग्रहकारक! केन स्यात्सुभगानारी पापिनी च सुदुर्भगा

६६३	२५	कष्ठोष्ठ	कण्ठौष्ठ
६६६	२	पट्टिशकरो	पट्टिशधरो
,,	५	सर्चाङ्गा	सर्वाङ्गा
,,	६	कण्ठैकतानेत्र	कण्ठैकतालेन
,,	१८	स्पशवायोश्च	स्पर्शवायोश्च
६६८	२	माहिनी	मोहिनी
६७०	८	स्रष्टं	स्रष्टुं
,,	१७	ब्रह्मावाच	ब्रह्मोवाच
६७१	२४	कुर्मा	कुर्मो
,,	२५	गुरा	गुरो
६७२	२	कार्तिर्या	कीर्तिर्या
,,	२५	वाह्ये	वाह्ये
६७४	२३	कण्ठोष्ठ	कण्ठौष्ठ
६७५	६	श्रीकृष्प	श्रीकृष्ण
,,	८	पूर्णा	पूर्णो
,,	१२	जसा	तेजसा
६७७	१६	प्रतिविम्बश्च	प्रतिबिम्बश्च
६७८	१४	अताव	अतीव
,,	१७	लाचने	लोंचने
,,	२३	चक्षंषि	चर्क्षूंषि
६८०	१६	स्तोत्रेश्च	स्तोत्रैश्च
६८१	७	तत्सप्रन्न	तत्प्रसन्न
६८२	२	भुङ्क्त	भुङ्क्ते
,,	,,	सङ्क्तः	सङ्गतः

७८२	२३	साकार	साकारे
७८३	१३	वाच्छितम्	वाञ्छितम्
७८४	८	तञ्चालयिन्तुं	तञ्चालयितुं
"	१४	जगाह	जग्राह
"	२१	विभति	विभर्ति
७८७	४	पुलकाञ्चिति	पुलकाञ्चित
७८८	११	महाविष्णु	महाविष्णुं
७८९	८	प्रविशामा	प्रविशामो
७९०	२१	घूर्णंन्	घूर्णन्
७९३	१२	अहा	अहो
"	२३	नारायण	नारायणे
७९४	१६	तद्दह	तद्देह (यं देवमित्यपि पाठः)
७९६	५	बृद्धा	वृद्धा
"	१२	नत्य	नृत्य
"	२१	भिक्षकम्	भिक्षुकम्
७९९	६	सुरांस्तस्था	सुरांस्तथा
८०२	४	मद्वाकं	मद्वाक्यं
८०३	२	देवेश	देवेशं
८०४	१९	स्वरूपिणा	स्वरूपिणी
०६	१८	सावणि	सावर्णि
	२०	"	"
८१०	१६	सर्वषां	सर्वेषां
"	"	सर्वज्ञ	सर्वज्ञ
८१२	२०	विवजिते	विवर्जिते

८१४	९	त्यागान्तरं	त्यागानन्तरं
८१५	११	बभ्रामं	बभ्राम
८१९	९	वं	हं
८२४	११	वह्नि	वह्नि
८२७	२५	कैलासञ्च	कैलासञ्च
८२९	२	कर्त्तूं	कर्त्तुं
,,	१८	निमग्नानेन्दऽऽसागरे	निमग्नाऽऽनन्दसागरे
८३०	१२	इत्युत्वा	इत्युक्त्वा
,,	२०	पुष्व	पुष्प
८३१	६	सर्ष	सर्व
,,	७	सामदाय	समादाय
,,	२०	चन्दनागुरू	चन्दनागुरु
,,	२३	क्रीडा	क्रीडां
८३२	१४	दिव्व	दिव्य
८३३	१६	मद्‌भृत्यानत्ञ्च	मद्‌भृत्यानाञ्च
८३४	१९	लभे	लेभे
८३७	६	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
८३९	१६	कतिचितां	कतिचित्रं
८४०	२५	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
८४६	१२	,,	,,
८४९	२	षरं	परं
८५०	२१	जेगद्गोरि	जगद्गौरि
८५५	८	प्रेमणा	प्रेम्णा
८५७	२१	जगाम्	जगाम

८५६	२२	षड़	षड़्
८६२	२३	क्लष्ट	क्लिष्ट
८६३	२१	पुत्रनस्तः	पुत्रस्ततः
८६४	२	ब्रह्मणशापेन	ब्रह्मशापेन
,,	१७	वंभूव	बंभूव
८६७	५	निष्ठरं	निष्ठुरं
८७१	६	चन्द्र	चन्द्रे
,,	१८	विवजितम्	विवर्जितम्
,,	२१	दृष्टा	दृष्ट्वा
८७२	४	दुर्लंमम्	दुर्लभम्
८७५	७	वरवणिनी	वरवर्णिनी
८७६	१७	गृहिष्यस्ति	ग्रहीष्यसि
८८५	१०	गजखञ्जन	गजखञ्जन
८८६	२३	त्वक्ष्यामि	त्यक्ष्यामि
८८७	१५	प्रकारेण	प्रकारेण
८८८	१८	धर्मा	धर्मो
८८९	३	जटांम्	जटाम्
,,	६	भत्रा	भर्त्रा
,,	२१	तालुका	तालुका
८९२	२	जानका	जानकी
,,	८	करिष्यमि	करिष्यामि
९०	१७	प्रययौ	प्रययौ
,,	१६	शीघ्रं	शीघ्रं
८१२	१५	मह्य भूषायां	मह्यमूषायां

८६८	२२	सोऽक्रो	सोऽक्रूरो
८६६	७	समाहतं	समाहर्त्तुं
६००	६	दक्ष्याम्यद्य	द्रक्ष्याम्यद्य
”	१३	धर्मिणांसर्वकर्मिणाम्	धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्
६०१	११	रत्नसिंहासन	रत्नसिंहासने
६०२	१२	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठौ
६०५	१४	केचिद्द्वाः	केचिद्देवाः
६०५	१६	मूति	मूर्ति
६०८	१०	रमणश्रष्ठ	रमणश्रेष्ठ
६०६	७	शुचिस्मता	शुचिस्मिता
६१०	१८	मंनीन्द्रैः	मुंनीन्द्रैः
६१२	१०	कुत्वा	कृत्वा
”	१५	तार्सा	तासां
”	१७	गोपीमिः	गोपीभिः
६१४	२०	बोधयासु	बोधयामासु
”	२३	मातृसमापतः	मातृसमीपतः
६१५	७	विवजितः	विवर्जितः
६१६	१२	सिद्धान्नं	सिद्धान्नं
६१६	१७	भातृ	भ्रातृ
६२०	”	विप्रहम्	विग्रहम्
”	२०	नित्यविहः	नित्यविग्रहः
”	२२	रूपश्च	रूपश्च
”	”	वेशश्च	वेशश्च
६२१	१६	सहाक्रूरगणै	सहाक्रूरगणैः

६२२	३	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
"	२०	ग्रणम्य	प्रणम्य
६२३	५	प्रसस्ता	प्रशस्ता
"	१८	गच्छतं	गच्छन्तं
६२७	१५	या	यो
६२६	१४	मसन्वितः	समन्वितः
६३०	७	सुशाभितं	सुशोभितं
६३१	२	चतुर्भुजा	चतुर्भुजो
"	२२	कपिला	कपिलो
६३२	२०	शस्त्राणां	शस्त्राणां
६३३	४	काननेषु	काननेषु च
"	७	मत्कारण	मत्कारणं
६३७	६	वैष्णवाणां	वैष्णवानां
"	२५	लभेच्छ्र् चम्	लभेच्छुचम्
६४२	६	खञ्जनाञ्च	खञ्जनानां
६४३	४	पूणिमा	पूर्णिमा
"	१५	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
"	१७	क्षयोध्या	अयोध्या
"	१६	प्रयोगे	प्रयागे
"	२३	दोलयामानं	दोलायमानं
६४५	२	परमात्मन	परमात्मनः
६४६	६	एतत्त	एतत्ते
"	१३	सुस्वप्रदशने	सुस्वप्रदर्शने
"	१६	ब्रह्मवैवत्त	ब्रह्मवैवर्त्त

९५२	२०	वंह्विरूपा	वंह्निरूपा
९५३	८	सर्वासद्धश्वरः	सर्वसिद्धेश्वरः
९५९	५	जमग्निश्च	जमदग्निश्च
९६४	७	भगवात्	भगवान्
९७६	८	केशवेणा	केशवेणी
९७७	२५	भर्त्तें	भर्त्रे
९७९	२५	नरबुद्धिश्च	नरबुद्धिश्च
९८१	२१	चन्दनाचितम्	चन्दनार्चितम्
९८६	१३	बुद्ध्या	बुद्ध्या
९८७	११	मक्ष्यं	मभक्ष्यं
९९१	१४	अहङ्कृती	अहङ्कृतो
,,	१७	हिंस्राणश्च	हिंस्राणाश्च
,,	१८	श्चतुर्वर्णा	श्चतुर्वर्णो
९९२	९	वर्षणाश्च	वर्षाणाश्च
९९६	२४	पापं	पापं
९९८	५	जन्सु	जन्मसु
१००१	१२	लीलामं	लीलाभं
१००२	१४	द्वन्दे	द्वन्द्वे
१००३	१४	प्रतापवतः	प्रतापतः
,,	१६	केतन	केचन
१००४	४	रहस्थलम्	रहःस्थलम्
,,	२३	ब्रह्महत्या	ब्रह्महत्या
,,	२५	क्षणं	क्षणं
१००६	११	घुन्दे	वृन्दे

१००८	२०	धर्माऽयं	धर्मोऽयं
१०१४	३	व्याधियुक्श्च	व्याधियुक्तश्च
,,	४	गृहीत्रा	ग्रहीत्रा
१०१५	६	निर्गणश्च	निर्गुणश्च
,,	१५	जेतुमाश्वरः	जेतुमीश्वरः
१०२०	२०	चतुर्युगानां	चतुर्युगाणां
१०२८	१८	कणिकानां	कर्णिकानां
१०३१	१८	लोले	लोके
१०४२	१०	ब्रह्म	ब्रह्मे
१०४३	४	माप्सितम्	मीप्सितम्
,,	१३	कुमाश्च	कुमारश्च
१०४५	२	चक्षषो	चक्षुषो
,,	२१	नारारायण	नारायण
१०४७	२५	र्गरुः	र्गुरुः
१०४८	१३	माधवा	माधवी
१०५०	२३	जम्मृत्यु	जन्ममृत्यु
१०५२	२	मसषट्कं	मासषट्कं
,,	३	पूणिमा	पूर्णिमा
,,	७	दशम्येकाशी	दशम्येकादशी
१०५३	२५	नृमाणं	नृमानं
१०५४	३	नृणा	नृणां
,,	६	चगुर्युगम्	चतुर्युगम्
१०५८	४	भस्मीभृतं	भस्मीभूतं
,,	१८	कातरम	कातरम्

१०५६	५	कीड़ा	क्रीड़ा
१०६०	१५	श्वयं	स्वयं
१०६३	२४	चाभिर्भूता	चाविर्भूता
१०६८	१६	उशाच	उवाच
१०७१	१८	षदम्	पदम्
१०७२	१५	स्वगश्रेष्ठ	खगश्रेष्ठ
१०७४	१६	ग्रसिद्धश्च	प्रसिद्धश्च
,,	२४	चणकादिनां	चणकादीनां
१०७७	१५	प्रफुल्लपुष्पै	प्रफुल्लपुष्पैः
१०७८	१०	ग्रीष्मध्याह्न	ग्रीष्ममध्याह्न
१०७९	११	स्त्रिकोटिभिः	स्त्रिकोटिभिः
,,	२०	याष्यन्ति	यास्यन्ति
,,	२१	प्रविशद्गु	प्राविशद्गु
१०८०	१५	न्त्यकारं	न्त्यक्कारं
,,	२३	गुणां	गुणा
१०८१	२५	सत	सती
१०८४	२३	योगिनाम	योगिनाम्
,,	२५	नपः	नृपः
१०८५	४	सस्याढ्यां	शस्याढ्यां
,,	११	भिक्षणा	भिक्षूणा
१०८६	२१	नृपाश्चैव	नृपांश्चैव
१०८७	३	श्वेतक्षत्रं	श्वेतच्छत्रं
१०८८	७	माणीक्य	माणिक्य
,,	२४	गृहीतुं	ग्रहीतुं

१०९१	२५	भिक्षुकेभ्यो	भिक्षुकेभ्यो
१०९७	१२	रुक्मिणी	रुक्मिणी
,,	,,	सास्मिताम्	सस्मिताम्
१०९८	२५	समर्प्यय	समर्प्य च
११००	१८	सिद्ध्यात्मकश्च	सिद्ध्यात्मकश्च
११०४	२	वदन्ता	वदन्ती
११०६	११	मारुह्म	मारुह्य
१११३	४	बभूव तस्य राजश्च	बभूव तस्य राजश्च
१११४	१०	पुष्पतत	पुष्पित
१११५	२३	सुशाला	सुशीला
१११७	२०	गृह्णामि	गृह्णामि
,,	२३	रुदता	रुदती
१११९	१४	चन्दने	क्रन्दने
११२०	८	दुःस्व	दुःख
११२२	१७	कन्या	कन्यां
११२४	१९	बचनं	वचनं
११२५	३	मुढवत्	मूढवत्
११२६	१६	भल्लकात्मजा	भल्लूकात्मजा
११२६	२१	गवालम्बं	गवालम्बं
११३०	६	चन्देंण	चन्द्रेण
११३३	१०	सर्वापायेश्च	सर्वोपायैश्च
,,	१५	कातिकादपि	कार्तिकादपि
११३५	१३	वैष्णनां	वैष्णवानां
,,	१६	वैण्णव	वैष्णव

११३५	१८	तद्देहे	तद्देहे
११३६	५	भ्रात्र	भ्रात्रे
११३८	१०	कृतमिढं	कृतमिदं
११४०	२३	रण भूर्धनि	रणमूर्धनि
११४१	१७	वर्मना	वर्त्मना
११४४	१६	निर्गणः	निर्गुणः
”	१६	भुवोधुना	भुवोऽधुना
११४७	१०	पूणिमायाञ्च	पूर्णिमायाञ्च
११५३	४	निविघ्नं	निर्विघ्नं
”	७	दुर्लभया	दुर्लभया
”	१३	सुकाठने	सुकठिने
११५४	३	सब	सव
”	८	परमाह्लादकं	परमाह्लादकं
११५५	८	प्रसूनकम	प्रसूनकम्
११६०	१४	गाकुलं	गोकुलं
११६१	१४	राधाया	राधया
११६३	१०	सश्वन्न	शश्वन्न
”	१७	चूर्णाभूतं	चूर्णीभूतं
११६४	२५	मानिना	मानिनी
११६७	१४	त्यज्येन्	त्यजेन्
”	२०	दीप्ते	दीप्ते
११६६	६	तस्भै	तस्मै
११७१	१४	मुत्तमम	मुत्तमम्
”	२२	रथातूर्ण	रथात्तूर्णं

११७३	७	सुलिलिप्त	सुनिर्लिप्त
११७३	१६	त्रेलोक्ये	त्रैलोक्ये
११७७	७	परिपूर्ण	परिपूर्णं
११७८	६	द्रष्ट्वा	द्रष्ट्वाऽ
११८७	७	कातिकोद्धरणं	कार्तिकोद्धरणं
११९१	१८	चतुविशति	चतुर्विंशति
११९२	५	नारायण	नारायणं
"	२०	महापुण्वती	महापुण्यवती

समाप्तमिदं श्रीब्रह्मवैवर्त्तमहापुराणस्य श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम्।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु

